आशापूर्णा देवी

बंगला भाषा के सर्वोच्च पुरस्कार—
रवीन्द्र पुरस्कार से सम्मानित बृहत् उपन्यास
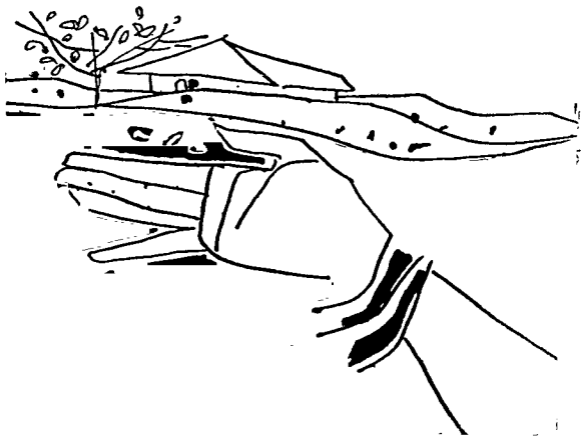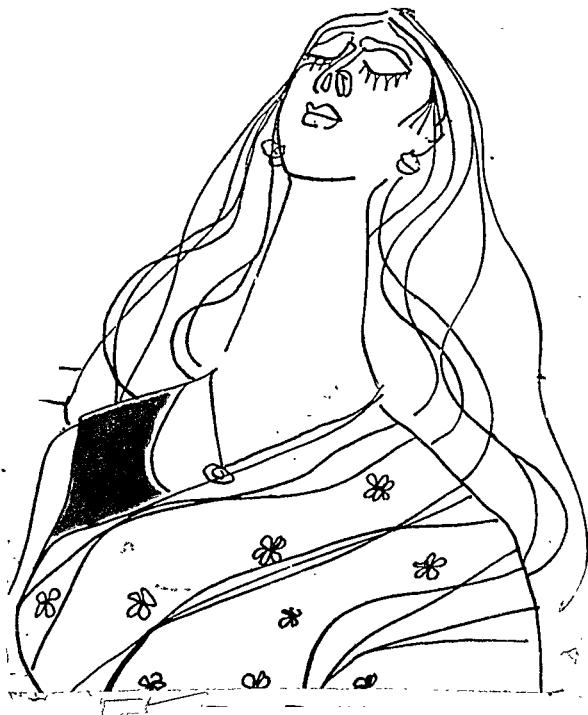
अनुवादक : हंसकुमार तिवारी

मूल्य • [illegible] रुपये
प्रथम संस्करण • १९७२
आवरण • नीला चटर्जी
प्रकाशक • नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
२३, दरियागंज, दिल्ली-६
मुद्रक • आदर्श कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-३२

PRATHAM PRATISHRUTI (*Novel*)
by Asha Purna Debi Rs. [illegible]

एक समय
एक अलौकिक संसार में विराजित हो
जो साक्षरता की प्रथम प्रतिश्रुति
अंकित कर गए हैं—
उन्हीं आदरणीयों की स्मृति को

प्रथम प्रतिश्रुति
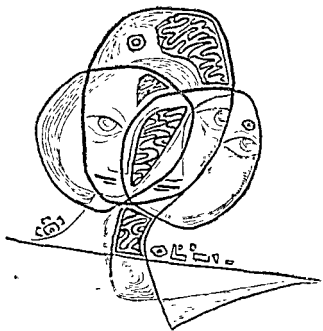
सत्यवती की यह कहानी मेरी लिखी हुई नहीं है। यह कहानी वकुल की कॉपी से ली गई है। वकुल ने कहा था, इसे कहानी कहना चाहो, कहानी है, वास्तव कहना चाहो, तो वास्तव।

वकुल को मैं बचपन से ही देखती आयी हूं। सदा कहा किया है—वकुल, तुम पर कहानी लिखी जा सकती है। वकुल हंसती है। कौतुक और अविश्वास की हंसी। उहूं, वह खुद कभी नहीं सोचती कि उस पर कहानी लिखी जा सकती है। अपने बारे में उसे कोई मूल्य-बोध नहीं, कोई चेतना ही नहीं।

वकुल भी इस दुनिया के लोगों में से एक है, यह बात मानो वह मान ही नहीं पाती। वह महज़ यही समझती है कि वह कुछ भी नहीं, कोई भी नहीं। निहायत मामूली लोगों में से एक, बिलकुल साधारण—जिन पर कहानी लिखना चाहो तो लिखने को कुछ भी नहीं मिलता।

वकुल की ऐसी धारणा जो बनी, शायद हो कि इसके पीछे उसकी जिंदगी की बुनियाद की तुच्छता हो। शायद हो कि आज बहुत कुछ पाने के बावजूद छुटपन में बहुत कुछ न पाने का क्षोभ रह गया हो उसके मन में। उसी क्षोभ ने उसके मन को बुझा-बुझा सा कर रखा हो, कुंठित कर रखा हो उसकी सत्ता को।

वकुल सुवर्णलता के बहुत-से बाल-बच्चों में से एक है। उसके अन्तिम ओर की लड़की।

सुवर्णलता के घर में वकुल की भूमिका अपराधी की थी। जैसे विधाता का यह निर्देश हो कि उसे किसी अजाने अपराध से हर समय संत्रस्त रहना पड़ेगा।

इसलिए वकुल का शिशु-मन एक अजीब धूपछांही परिमंडल में तैयार हुआ था, जिसका कुछ हिस्सा तो सिर्फ भय, सन्देह, आतंक और घृणा का था और कुछ ज्योतिर्मय रहस्यपुरी की चमकती चेतना से दीपित। फिर भी मनुष्य को प्यार किए बिना नहीं रह सकती वकुल। मनुष्य को प्यार करती है, तभी तो—

लेकिन छोड़िए भी! यह तो वकुल की कहानी है नहीं। वकुल ने कहा है, मेरी कहानी यदि लिखनी ही है तो आज नहीं; और कभी। जीवन की लम्बी राह

तय कर आने के बाद वकुल ने समझना सीखा है, दादी-परदादी का ऋण चुकाए बिना अपनी बात नहीं कहनी चाहिए।

सूने गांव की छायाढकी तलैया ही भरी बरसात मे छलककर नदी से जा मिलती है और प्रवाह बनकर दौड पडती है। दौडती हुई वही धारा एक दिन जाकर समंदर मे जा पहुचती है। उस छाह-ढंकी पहली धारा को तो मानना ही पड़ेगा।

आज के बंगाल की अनगिनत बकुल-पारुलो के पीछे है वर्षों के संग्राम का इतिहास। बकुल-पारुलो की मा-नानी, दादी-परदादियो के संघर्ष का इतिहास। गिनती मे वे असंख्य नही थी, बहुतो मे वे एक-एक थी। वे अकेली आगे बढ़ी—आगे बढी खाई-खंदक पार करके, चट्टानें तोड-तोड़कर, कंटीली झाड़ियो को उखाडती हुई। रास्ता बनाते हुए शायद हो कि दिशा खो बैठी, अपनी ही बनाई हुई राह को छेककर बैठ पड़ी। उसके बाद दूसरी आई, उसने उनके किए काम को अपने हाथ में ले लिया। और राह इसी तरह तो बनी, जिससे होकर ये बकुल-पारुल आगे बढती जा रही है। और ये बकुल-पारुल भी खट रही हैं बेशक। बिना खटे काम कैसे चले? पाव-प्यादे चलने का रास्ता बना जाने से ही तो नही हो गया।

रथ चलने का रास्ता चाहिए न।

वह रास्ता कौन बनाएगा, कौन जाने? वह रथ कौन चलाएगा, कौन जाने?

जो लोग चलाएंगे, अलस कौतूहल से इतिहास के पन्ने पलटते-पलटते वे शायद सत्यवती को देखकर हंस उठें।

नाक में बुलाकी और पैरो में झांझर पहने आठ बरस की सत्यवती को।

कभी बकुल भी हंसती थी।

अब नही हसती। काफी दूरी पार करके आने के बाद वह पथ की वास्तविकता को समझना सीख गई है। इसीलिए जिस सत्यवती को बकुल ने कभी आखो देखा तक नही, उसे उसने स्वप्न और कल्पना, ममता और श्रद्धा मे देखा।

जभी तो बकुल की बही मे सत्यवती की ऐसी साफ शकल आकी हुई है।

नाक मे बुलाकी, कान मे करनफूल, पैरो में झांझर, वृन्दावनी छाप की आठ हाथ वाली साड़ी पहने आठ साल की सत्यवती। कोई साल भर पहले ब्याह हो चुका है, ससुराल अभी नही गई। अपने रोब-दाब से मुहल्ले के सारे लड़के-लड़कियों की अगुआ बनी जो चाहे जहा खेलती फिरती है। सत्यवती की मा, दादी, बड़ी चाची, बुआ—कोई भी उसे दबा नही पाती।

दबा नहीं पाती, शायद इसलिए कि उसकी मनमानी को बाप का कुछ सहारा है।

सत्यवती के पिता रामकाली चटर्जी है तो ब्राह्मण ही, पर पेशा उनका ब्राह्मणोचित नही है। वेद-शास्त्र के बजाय उन्होंने आयुर्वेद की शरण ली। ब्राह्मण परिवार का होते हुए भी वे कविराजी करते है। गांव में इसीलिए लोग उन्हें 'नब्जटटोल' ब्राह्मण कहते है। उनका घर 'नब्जटटोल' का घर है।

रामकाली का आरम्भिक जीवन उनके अपने भाइयों और दूसरे नाते-गोतों से अलग-सा रहा। कुछ अजीब-सा भी शायद। नही तो उस अधेड आदमी को इतनी छोटी-सी लड़की क्यों? सत्यवती तो रामकाली की पहली सन्तान है। उस ज़माने के लिहाज़ से ब्याह की उम्र बिता देने के बाद रामकाली ने शादी की थी। सत्यवती उनकी उस पार हो चुकी उम्र की संतति है।

कहते है, निरी किशोरावस्था मे बाप से रूठकर रामकाली घर से भाग गये थे। वजह गोकि वैसी कुछ खास नही थी, लेकिन किशोर रामकाली के मन में उसी ने शायद गहरी छाप छोड़ी थी।

पता नही, ऐसी कौन-सी असुविधा हुई कि रामकाली के पिता जयकाली ने अभी-अभी जनेऊ हुए अपने बेटे पर गृह-देवता जनार्दन की पूजा-आरती का भार उस दिन के लिए दिया। रामकाली ने बड़े उत्साह से वह जिम्मेदारी ली। उसकी आरती की घंटी के मारे घर भर के लोग 'त्राहि जनार्दन' कर उठे। लेकिन उत्साह की उस झोंक में एक बड़ी भारी भूल हो गई। बड़ी भारी भूल!

रामकाली की दादी जब ठाकुरघर धोने-पोंछने गई, तो वह भूल पकड़ मे आयी। उनके घुटे सिर के छोटे-छोटे बाल साहिल के कांटे-से खड़े हो गये। वह भागकर गई और अपने भतीजे यानी रामकाली के बाप जयकाली के पास पछाड़ खाकर गिर ही-सी पड़ी।

'गज़ब हो गया, जय!'

जयकाली चौंक उठे—'हुआ क्या है, फुआ?'

'छोटे छोकरों पर ठाकुर-सेवा का भार देने से जो होता है, वही हुआ है। रामा ने ठाकुर को फूल-बताशे दिये, पानी नही दिया!'

जयकाली के सारे शरीर का खून सिर पर सवार हो गया। 'ऐं'—आर्त्तनाद-सा कर उठे वे।

एक ठंडा निश्वास छोड़ती हुई फुआ उसी सुर मे सुर मिलाती हुई बोली—'हा। पता नही, किसके भाग्य में अब क्या बदा है। फूल-तुलसी की भूल नही हुई, भूल हुई एकबारगी प्यास के पानी की!'

पाव का खड़ाऊं खोलकर हाथ मे लेते हुए जयकाली ने आवाज दी—'रामू! अरे रामू!'

इस चीख से रामकाली को पहले तो कोई आशंका नही हुई, क्योंकि पुत्र-

परिजनों से स्नेह-संभाषण भी उनका इससे नीचे के परदे पर नही होता। इसलिए हाथ में लगे बेल के लट्ठे को सिर मे पोंछते हुए वह पिता के सामने आ खड़ा हुआ।

लेकिन यह क्या! जयकाली के हाथ में खड़ाऊं!

रामकाली की आखों के सामने कुछ पीले फूलों ने भीड लगा दी।

'अबे, ईश्वर की याद कर, रामू!'—खूंख्वार-से होकर जयकाली बोले—'तेरे नसीब में आज मरना लिखा है।'

रामकाली की नजरों के सामने से उन पीले फूलों की भीड गायब हो गई—रह गया सिर्फ गाढा अंधेरा। उसी अंधेरे मे टटोलकर उसने एक बार खोजने की कोशिश की कि आखिर किस कसूर से विधाता ने आज उसकी किस्मत में मौत की सज़ा लिखी है। लेकिन नही खोज पाया, खोजने की सामर्थ्य भी नही रही। वह अंधकार धीरे-धीरे रामकाली की चेतना पर छा गया।

'आज तूने ही जनार्दन की पूजा की थी न?'

रामकाली चुप।

यानी कि ठाकुर-घर में ही कोई अपराध बन पड़ा है। लेकिन कहां? कौन-सा अपराध? हाथ-पांव धोकर, जनेऊ के वक्त जो मिला था, वही कपड़ा पहनकर तो वह पूजाघर में गया था! फिर? आसन। फिर? आचमन। फिर? आरती।'फिर—कि सिर पर ठायं से एक चोट पड़ी।

'भोग के समय पानी दिया था?' खड़ाऊं की मार के साथ जयकाली ने बेटे से पूछा।

और खड़ाऊं न पड़े, इस डर से रामकाली बोल पड़ा—'दिया तो था!'

'दिया था? पानी दिया था?'—जयकाली की फुआ यशोदा अपने नाम के विपरीत ढग से बोल उठीं—'दिया था तो वह पानी आखिर गया कहां रे, अभागे? गिलास तो बिलकुल सूखा पड़ा है।

पूछने वाली थीं दादी।

सो छाती की धड़कन कुछ हलकी-सी हुई। धीमे से रामकाली ने कह दिया, 'ठाकुर ने पी लिया होगा!'

'क्या? क्या कहा?' फिर एक बार ठक् की आवाज और आखों में अंधेरा छा जाने की और भी गहरी अनुभूति।

'अभागा, सूअर! ठाकुर ने पी लिया होगा! तुम भूत ही नही, शैतान भी हो गए हो। जान का डर नही है? ठाकुर के नाम से झूठ!'

गर्ज कि झूठ भी उतना बड़ा अपराध न हो, ठाकुर के नाम के साथ जुड़कर वह बहुत भयंकर अपराध हो गया है। मारे डर के रामकाली फिर झूठ बोल बैठा—'जी, सच कह रहा हूं! ठाकुर कसम। दिया था पानी।'

'हरामजादे ! ब्राह्मण घर का चंडाल ! ठाकुर के नाम से कसम ? पानी दिया था तूने ? ठाकुर पी गए पानी ? ठाकुर पानी पीते है ?'

सिर में जलन हो रही थी ।

सिर की उस जलन से छटपटाकर डर-भय भूल रामकाली बोल पड़ा—'जब जानते है कि ठाकुर पानी नही पीते, तो देते क्यों है ?'

'ओ, मुझसे यह ढिठाई !' जयकाली ने फिर खडाऊं का सदुपयोग किया । कडककर बोले, 'जा, ब्राह्मण के घर का बैल, दूर हो जा । मेरी नजरों के सामने से दूर हो जा !'

बस !

जयकाली ने इससे ज्यादा कुछ नही किया । और, ऐसा व्यवहार तो वे सदा ही सबसे किया करते हैं । मगर कब जो किस बात से क्या हो जाता है !

रामकाली की आंखों के सामने से मानो एक परदा खिसक गया ।

वह सदा से जानता आया था, जनार्दन एक दयालु व्यक्ति है । क्योकि जब-तब घर के लोग कहा करते—'जनार्दन, दया करो ।' मगर उस दया का एक कण भी कहां है ?

मन ही मन रामकाली ने जोरों से प्रार्थना जो की 'हे ठाकुर, इन अविश्वासियों के सामने एक बार प्रकट तो हो, छिपकर दैववाणी ही करो कि रे जयकाली, नाहक ही बेचारे लड़के को सता रहे हो । मैंने सच ही पानी पी लिया है । मुट्ठी भर बताशे खा लेने से मुझे बड़ी प्यास लग गई थी ।'

न: ! दैववाणी का नाम नही ।

उसने उसी क्षण यह ईजाद कर लिया, ठाकुर झूठ है, देवता झूठ हैं, पूजा-पाठ—सब कुछ झूठ है । अमोघ सत्य है बस खडाऊं ।

जनेऊ के समय उसे भी एक जोडा खडाऊं मिला था । पता नहीं, उसका उपयुक्त उपयोग वह कब कर पाएगा ?

गोकि इस वक्त सारे संसार पर उसके उपयोग की इच्छा हो रही थी ।

'अब मैं दुनिया मे नहीं रहूंगा ।' रामकाली ने पहले यह संकल्प किया ।

उसके बाद दुनिया छोडकर चले जाने का कोई उपाय न निकाल सकने के कारण उसने मन से समझौता किया ।

बहरहाल दुनिया तो हाथ मे रहे । इसे तो जब जी चाहे छोडा जा सकता है । छोडने लायक और भी एक चीज है, वह भी दुनिया का ही प्रतीक है ।

घर !

रामकाली घर ही छोड़ देगा ।

जीवन में फिर कभी जिसमें जनार्दन की पूजा की नौबत न आए ।

उस समय तक 'नव्जटटोल का घर' नाम नही पडा था। आदि और अकृत्रिम 'चटर्जी बाड़ी' ही था। सब की श्रद्धा सम्मान का भी आधार था। सो कुछ दिनों तक हलचल-सी रही, चटर्जी बाड़ी का लडका खो गया।

गाव के सभी तालावों मे जाल डाला गया। गाव के सभी देवी-देवताओं की मन्नतें मानी गई। रामकाली की मा बेटे के नाम से नित्य नियमित रूप से घाट मे प्रदीप बहाने लगी, जयकाली नियम से जनार्दन को तुलसी चढ़ाने लगे। लेकिन कुछ न हुआ।

धीरे-धीरे जब सब लोग भूल-से गये कि चटर्जी के रामकाली नाम का एक लड़का था, तो गाव के किसी एक नौजवान ने एक दिन यह घोषणा की कि रामकाली है। वह मकसुदाबाद गया था। वहा उसने अपनी आखों देखा कि वह नवाब के कविराज गोविंद गुप्त के यहां है, उनसे कविराजी सीख रहा है।

सुनकर जयकाली टुकुर-टुकुर ताकते रह गए। लडके के सही-सलामत रहने की खबर और लडके के जात गवाने की खबर, इन दो उल्टी-पुलटी खबरो से वे यह भूल गए कि खुशी के मारे उछलें कि शोक से हाहाकार करें।

लड़का वैद्य के घर की रसोई खा रहा है, उसी की शरण में है—यह तो उसके मरने के समाचार के ही बराबर है।

लेकिन, रामकाली अभी तक मरा नही है, यह सुनकर जी के भीतर से क्या तो उमगा-उमगा आ रहा था। क्या ? खुशी ? आवेग ? अनुताप की पीडा से छुटकारे का सुख ?

बस्ती के लोगों से राय-सलाह करने लगे जयकाली। अंत तक यह तय पाया कि जयकाली को खुद एक बार जाना चाहिए। वहां जाकर अपनी आखों देख आएं कि बात क्या है। वास्तव में रामकाली ही है या नहीं, यही कौन जानता है। जिसने देखा है वह कुछ निकट के नाते का तो है नहीं, आखों का भ्रम होने में क्या लगता है ?

लेकिन इस राय से जयकाली आसमान से गिर पड़े —मैं जाऊं ? मैं कैसे जाऊं ? जनार्दन की सेवा छोडकर मेरे हिलने की गुजाइश भी है भला ?

रामकाली की मा, जयकाली की दूसरी स्त्री रोने-पीटने लगी। उसकी जुबान पर आ गया था—'जनार्दन ही तुम्हारे लिए इतने बड़े हुए ?'

कहने की हिम्मत न पड़ी, सिर्फ आंसू बहाने लगी।

आखिर बहुत-बहुत सोच-विचार के बाद यह तय हुआ कि जयकाली का एक भानजा जाएगा। वयस्क भानजा। उसके साथ जयकाली के पहले घर का लड़का कुजकाली जायेगा।

लेकिन इस गंवई गाव से मकसुदाबाद जाना कुछ आसान तो नही ! बैलगाड़ी से पहले गंज जाना होगा। वहा जाकर पता करना होगा, नाव कब

मकसूदाबाद जाएगी। उसके बाद चावल-चूड़ा बांधकर बैलगाड़ी से तीन कोस चलकर घाट पर धरना देना।

खर्च भी कम नही है।

जयकाली ने सोचा, खर्च-खाते बैठाए आकड़े को फिर जमाखाते ले जाने में कम झमेला नही है। इतने टंटे की जरूरत भी क्या थी ? उस बदमाश छोकरे पर गुस्सा आया, जो यह खबर ले आया था। इतना झमेला खड़ा करने वाला नायक वही है।

यों रामकाली तो खर्च हो ही चुका था। यह शैतान खबर नहीं लाता तो···

लेकिन रामकाली की मा के लिए इसकी जरूरत थी, सो सारी झंझटें झेलकर भानजे और लड़के को जयकाली ने भेजा। और कई दिनों के बाद आकर उन लोगों ने बताया, खबर सच्ची है। रामकाली निपूते गोविंद कविराज का दत्तक होकर राजा जैसे आराम से है। अब शायद पटना जाएगा। उसने इन लोगों से कहा—राजवैद्य बनकर, रुपयों की गांठ लेकर ही गांव लौटूंगा, उसके पहले नही।

सुनकर जिन लोगों को ज्यादा ईर्ष्या हुई, उन लोगो ने कहा—ऐसे कुलांगार की तो शकल नही देखनी चाहिए। और फिर वह तो जात से भी गया।

जिन्हे जरा कम ईर्ष्या हुई, वे बोले—मगर फिर भी अध्यवसायी कहना चाहिए। और, जात से ही क्यों जाएगा ? कुज ने तो यह बताया कि गोविंद गुप्त ने रामकाली के लिए किसी ब्राह्मण के यहा खाने का इन्तजाम करा दिया है।

गाव में कुछ दिनो तक फिर इसी की आलोचना होती रही। और जब ये आलोचनाएं बुझ आयी, लोग फिर से रामकाली का नाम भूल चले तो एक दिन रामकाली रुपयो की गठरी लिए खुद हाजिर हो गया !

गोविंद गुप्त ने राय दी, अब तुम्हें राजवैद होने की कोई जरूरत नहीं, राज्य में अन्दर ही अन्दर घुन लग गया है, नवाब की नवाबी तो छींके पर जा रही ! मेरे इतने दिनो की कमाई हुई दौलत लेकर अपने घर भाग जाओ और खुद ही नवाबी करो ! हमने तय किया है, पति-पत्नी दोनो काशी चले जाएंगे।

सो रामकाली चला आया।

गंज के घाट से अपनी ही पालकी पर आया।

उसे गोविंद गुप्त वाली पालकी भी मिल गई। नाव से ले आया।

लेकिन यही बहुत बड़ा अफसोस रहा कि तब तक जयकाली गुजर चुके थे।

रामकाली अपने बाप को दिखा नहीं पाया कि वही घर से भगाया हुआ लड़का आदमी बनकर लौटा है !

गंज के मेले में जैसे लोग पांच पावों वाली गाय को देखने के लिए लपकते हैं, वैसे ही इलाके के तमाम लोग रामकाली को देखने के लिए आने लगे। मन ही मन खीजते हुए भी रामकाली ने जिसे जैसा चाहिए, सम्मान दिया। और अपने से उम्र में बड़े को एक जोड़ा धोती, नकद दो रुपए देकर प्रणाम किया।

घर-घर में चर्चा होने लगी—उफ़, कैसी ऊंची निगाह हो गई है! बहुतों ने अपने सदा बेकार बैठे बेटों की ओर ताककर नि:श्वास फेंका।

फिर भी कुछ दिनों तक जात गए की नाईं रामकाली को रहना तो पड़ा था। घर के बाहर ही सोना पड़ता, घर का कोई छोटा लड़का उसे छू लेता तो उसे कपड़ा बदलना पड़ता। लेकिन रामकाली ने ही एक दिन गांव के मुखियों को पंच मानकर बुलाया।

—आखिर ऐसा क्यों? मैंने तो एक दिन के लिए भी उस वैद का अन्न नहीं छुआ! नाहक ही मुझे अजात होकर क्यों रहना पड़ेगा?

गांव के मुखिया सिर खुजाते हुए हे-हे करने लगे, साफ कुछ नहीं कह सके। क्योंकि यह छोरा क्या तो राजवैद गोविंद गुप्त की सारी की सारी विद्या और सारे रुपए हथिया ले आया है।

इसके सिवा छोरे का हाथ भी खूब खुला है।

सुनने में आया है, जल्द ही जलाशय-प्रतिष्ठा करेगा।

गांव के मुखिया जब हे-हे करने लगे, तो रामकाली ने खुद ही अपना वक्तव्य पेश किया—देखिए, मेरे गुरु की दवा बोलती है। मैंने उनका थोड़ा-बहुत आशीर्वाद भी तो पाया है। वह विद्या मेरी जन्मभूमि, मेरे पड़ोसी, मेरे जात-गोतों के काम आए, मैं यही चाहता हूं। हां, आप लोग यदि ऐसा न चाहते हों तो मुझे यहां से और कहीं चला जाना होगा।

अब की लोग हा-हा कर उठे। सच तो, बात तो यों ही उड़ा देने की नहीं है। सबको कभी न कभी संकट तो पड़ ही सकता है।

वे लोग जब हा-हा कर रहे थे, तो रामकाली ने कहा—मैंने जो अभी एक तालाब खुदवाने की सोची है, उसके उपलक्ष में एक दिन ग्राम-भोजन कराने की उम्मीद लिए बैठा हूं, तो मेरी वह उम्मीद पूरी न होगी?

अबकी लोग द्विधाशून्य होकर बोल उठे—अरे, सो क्या! सो क्या!—कि इतने में फेलू बनर्जी ने एक चाल चल दी। एक कोई संस्कृत श्लोक झाड़कर हंसते-हंसते कहा—जानते हो न, ठीक उमर में विवाह न होने से लड़की जैसे अरक्षणीया होती है, वैसे ही पुरुष भी पतित होता है।

रामकाली ने सिर झुकाकर कहा—मेरी उमर तो तीस से ज्यादा हो चली,

इस उमर में मुझे लड़की कौन देगा ?

फेलू बनर्जी ने वीर की नाई कहा—मैं दूंगा। इसके लिए भाई लोग मुझे जात से अलग करें तो करें।

फेलू बनर्जी को जात से अलग करना !

जात के जो सिरमौर है !

सभा मे हां-हां का प्रवाह वह चला।

और फेलू की चालाकी की इस चाल पर सब अपने-अपने गाल पर आप ही थप्पड़ मारने लगे। लड़की भला किसके घर नही है ?

कुछ ही दिन बाद फेलू बनर्जी की नौ साल की लड़की भुवि या भुवनेश्वरी से रामकाली का ब्याह हो गया।

बड़े दिनों से गांव में इतनी धूमधाम से शादी हुई नही थी। इसलिए कि रामकाली ने शायद पाच सौ रुपए धूमधाम के लिए मा दीनतारिणी को चुपके से दे दिए थे।

यह बेहयाई बेशक निंदायोग्य थी, उस धूमधाम के खान-पान निंदनीय नही थे।

सो रामकाली फिर से समाज में प्रतिष्ठित हो गया। घर मे खाने-सोने की अनुमति मिल गई।

खैर ! उसके बाद भी तो कितने दिन बीते।

वही 'भुवि' बड़ी हुई। गिरस्ती बसी। पंद्रह-सोलह साल की उमडती नदी बनी। उसके बाद तो सत्यवती !

बुढ़ापे की पहली संतान है, इसीलिए शायद सत्यवती को बाप का कुछ प्रश्रय है।

३

दीनतारिणी निरामिष रसोईघर में रसोई कर रही थी। सत्यवती बरामदे के नीचे छज्जे मे आ खड़ी हुई। ऊंची नीव का घर। बरामदे का किनारा सत्यवती की नाक के बराबर। पैर के अंगूठे पर सारे बदन का भार देकर कतराकर गला बढ़ाती हुई अपने स्वाभाविक मजे गले से उसने आवाज दी—दादी जी, ओ दादी जी !

निरामिष रसोईघर के बरामदे पर आने की इजाजत सत्यवती क्यो, किसी को नहीं थी। केवल निरामिष खाने वाले ही जा सकते है। माटी के बरामदे के एक कोने से खाग काट-काटकर सीढ़ी बनाई गई है और उस

सीढ़ी से एकबारगी घाट तक जाने की राह बनाई गयी है। दीनतारिणी, मझली देवरानी शिवजाया, दीनतारिणी की दो ननदें—काशीश्वरी और मोक्षदा, महज यही कई इस रास्ते से आने-जाने की अधिकारिणी हैं। घड़ा लिए घाट जाती हैं, नहाकर घड़ा भरकर गीले कपड़ों उन कई सीढ़ियों से उस स्वर्ग में चली जाती हैं। उसी रसोईघर की दीवार पर उनके कपड़े-लत्ते सूखते हैं, क्योंकि रात को वहां फिर रसोई की बला नहीं रहती। घर लीपने के लिए भी कोई अछूत वहां नहीं जाएगा। वह काम मोक्षदा का है। जूठे-कूठे के मामले में शायद मोक्षदा स्वयं भगवान पर भी पूरा विश्वास नहीं कर सकती। लिहाजा वह काम अपने ही हाथों करती है। इसके सिवा उम्र में मोक्षदा ही सबसे छोटी पड़ती है, और सब उनकी गुरुजन है, सो सबके खाने-पीने के बाद यह उन्हीं की ड्यूटी है।

रसोई का जिम्मा दीनतारिणी का। उस रसोई की शुद्धता बचाने की जिम्मेदारी मोक्षदा की। बाकी दो जनी यह-वह जुटाने वाली। यह जुटाने का काम भी कुछ कम नहीं। प्रयोजन चार जने का होते हुए भी आयोजन दस जने का होता है।

खैर, ये बातें रहने दीजिए।

असल में बच्चों को इस आंगन में कदम रखने का हुक्म नहीं है, लेकिन सत्यवती को कोई रोक नहीं पाता। वह जब-तब बरामदे से नीचे खड़ी हो, नाक बढ़ाकर पुकारती है—ओ दादी जी, या ओ फुआ दादी!

उसकी आवाज पाते ही दीनतारिणी अपनी गरदन बढ़ाकर दरवाजे से उझकती हुई बोली—हाय राम, कितनी शैतान है यह छोरी! फिर आ गई तू? भाग-भाग, कहीं छोटी ननद जी ने देख लिया तो खैर नहीं।

सत्यवती ने होंठ उलटकर कहा—छोटी दादी जी को छोड़ो, तुम जरा सुनो न।

दीनतारिणी के कमाऊ पूत की बेटी है सत्यवती। और फिर उसका ब्याह हो चुका है, इसलिए उसके नसीब में ज्यादा दुर्-छि नहीं जुटता। इसीलिए उसके लाड़ में दीनतारिणी जरा बरामदे में आ गईं। इशारे से पूछा कि क्या चाहिए?

पीठ की तरफ मुड़े हुए हाथ को घुमाकर केले के एक छोटे-से पत्ते को फैलाकर सत्यवती ने कहा—एक चीज दो न।

'अभी चीज कौन-सी दूं री! अभी कुछ पका भी है? और पका भी हो तो तेरी मंझली दादी के 'गोपाल' के भोग लगने के पहले कैसे? पता चले तो 'गुरुद्दिनर' नहीं मचा देगी?'

'मुझे भोग से पहले कुछ नहीं चाहिए, वह भला-बुरा पका-चुराकर तुम्हीं लोग खाओ, बाबा। मुझे थोड़ा-सा बासी भात दो न?'

बासी भात ?

दीनतारिणी आसमान से गिर पड़ी। और उसी दम जैसे पाताल फोड़कर निकल आयी मोक्षदा। सफेद कोर की गीली साड़ी पहने, कमर पर भरा हुआ घड़ा।

मोक्षदा का यह शायद तीसरा नहान था।

जिस कारण से भी हो, चावल या साग धोने के लिए घाट पर जाते ही मोक्षदा नहा लेती। कब वह बरामदे पर आ पहुंची, दादी-पोती किसी की नजर नहीं पड़ी। नज़र पड़ी एकबारगी साक्षात् पर।

दीनतारिणी तो अजीब अप्रतिभ। सत्यवती खीजी।

और मोक्षदा ?

वह रंगे हाथों चोर पकड़ने वाले डिटेक्टिव जैसी उल्लसित।

'फिर तू आ गई यहां ?' तीखे स्वर में मोक्षदा ने पूछा।

सत्यवती ने जरा सकपकाते हुए कहा, 'वाह, मैं क्या तुम लोगों के बरामदे पर गई हूं ?'

'बरामदे पर नहीं आयी, मैं कहती हू रास्ते से आकर उन्हीं पैरों इस आंगन में तो आई है ? तुलसी चौरे पर पानी देने के लिए हम लोगों को आंगन में उतरना नहीं पड़ेगा ?'

सत्यवती बुदबुदाकर बोली, 'दस घड़ा पानी उंड़ेले बिना तो उतरती नहीं, फिर ऐसा क्या ?'

'बात पर बात देना ठीक नहीं है, सत्ती ! आदत सुधार।' घड़े को धप्प से रसोई के चौखट के उस पार रखकर आंचल निचोड़-निचोड़कर पैर का कादो धोते हुए मोक्षदा ने कहा—'बाप के लाड़ में इस कदर सिर चढ़ गई है, मैं पूछती हूं, ससुराल में नहीं बसना है ? पराई गिरस्ती नहीं करनी है ? और कितने दिन यह धिंगी नाच नाचती फिरेगी ? बहुत और तो दो-चार साल। उसके बाद गले में रस्सी डालकर खींच नहीं ले जाएगा ? तब क्या करेगी ?'

बात-बात में पराए घर जाने की विभीषिका दिखाकर काबू करने की यह कोशिश सत्यवती को फूटी आंखों नहीं सुहाती। इससे बल्कि दो हाथ जमा दें, सो बेहतर है। लेकिन यह पराए घर का उलाहना उसे बर्दाश्त नहीं। लेकिन वही मानो इन लोगों का ब्रह्मास्त्र है। इसीलिए सत्यवती खीजकर बोली—'करूंगी क्या ?'

'करेगी क्या ? उठते-बैठते सास का ठुनका खाएगी। वहीं पटल घोषाल के भतीजे की बहू जैसा, ठुनका खाते-खाते गाल पर काले दाग पड़ जाएंगे।'

सत्यवती अपने से ज्यादा उम्रवाली की भंगिमा में झंकार उठी—'दुनिया-भर की औरतें आखिर पटल काका की भौजी जैसी लड़ाकिन तो नहीं हैं न !'

'हाय राम, जरा इस लडकी की बात तो सुनो !' अपने हरताल रंग के दोनों पुष्ट हाथों को हिलाकर मोक्षदा ने कहा—'कहेगी क्यों नहीं ! बहू का दोष नहीं, दोष हुआ सास का ! वैसी मुहजोर बहू का करे क्या, सो तो बता। फूल-चन्दन से पूजा करेगी बिठाकर ?'

'अहा, जैसे पूजा के सिवा और कुछ है ही नहीं ! जरा भली नजर से देख नहीं सकती ? दो मीठी बातें नहीं कर सकती ?'

'हाय मेरी मा !' मोक्षदा हंसकर बोली—'भीतर-भीतर तो पक्की उस्ताद हो गई है छोरी ! अरी देखूगी री देखूगी, तेरी सास तुझसे कैसी शहद-घोली बातें करेगी ! कैसी सुनहली नजर से देखेगी ! खैर, छोड़ यह सब—बासी भात की क्या कह रही थी ?'

दीनतारिणी अब तक चुप थी, अब हंसी।

हंसकर बोली, 'वह मुझसे बासी भात मागने आयी थी।'

'बासी भात मागने !' मोक्षदा एकाएक मानो फट पड़ी—'हमारी रसोई में बासी भात मागने आयी है और सुनकर तुम वदन हलकी किए हंस रही हो, नई मंझली बहू ? पोती को और कितना लाड़ दोगी ! परकाल जो साफ बनता जा रहा है। मैं पूछती हूं, ससुराल जाकर कही विधवा की रसोई से थोडा-सा बासी भात मांग बैठे, तो वे लोग कहेंगे क्या ? यह नहीं सोचेंगे वे लोग कि हम लोग शायद गपागप बासी हांडी का भात निगलते हैं ! कहो, कहेंगे कि नहीं।'

'ऐसा भी कभी कोई कहता है, छोटी ननद जी ?' बात को कुछ हलका करने की गरज से जरा हसने की कोशिश करते हुए दीनतारिणी ने कहा, 'लड़क-बुद्धि, अज्ञान मे क्या नहीं कहती ?'

'लड़क-बुद्धि ! हाय मेरी मा, ससुराल में बसे तो यह बच्चे की मां हो सकती है, समझे नई बहू !' कंधे से अंगोछा उतारकर झाडते हुए मोक्षदा ने कहा, कानों से इसकी बोलचाल तो सुनती नहीं हो न। लाड से ही फूली जा रही है। सुन सत्ती, मैं तुझे कहे देती हूं, खबरदार, पांच जने के सामने ऐसी बात मत कह बैठना। पडोसिने मुहझौंसी तो इन्ही बातो की ताक लगाए बैठी हैं, सुनेंगी तो ठीक यही कहेंगी कि हम लोग बासी हाड़ी का खाती हैं।

सत्यवती ही-ही करके हंस उठी। कहा, 'बला से ! लोगों ने कहा, तो क्या तुम्हारे वदन मे फोले पड जाएंगे ?'

सत्य को छुआ जाने के भय से मोक्षदा छू नहीं सकती थी, इसलिए अपने ही गाल पर एक चपत लगाकर बोली, 'सुन ली न नई बहू, सुन ली न अपनी पोती की हिमाक़त की बात ! कहती है, बला से लोगों ने कहा। शास्तर-पोथी मत कहा है, जिसे छिः कहा, उसका क्या रहा ? और कहनी क्या है—'

यह रे, हुआ अब !

दीनतारिणी ने देखा, मोक्षदा ने एक बार शुरू कर दिया तो खैर नहीं। मोक्षदा की तन्दुरुस्ती गजब की है। जबर्दस्त भूख-प्यास। उस भूख-प्यास को दबाए रखती है। तीन पहर बेला ज" चुकी होती है तब तो जलपान करती है, बेला जब झुक आती है, तब भोजन। सुबह की तरफ उसके शरीर के अन्दर झां-झां खा-खा होता रहता है। इसीलिए अपनी बातों के मारे लोगो के छक्के छुड़ाए रहती है।

इसीलिए दीनतारिणी ने झट प्रसंग को बदल दिया, 'हां री सत्ती, सुबह नाश्ता नहीं किया है? कुबेर में बासी भात की खोज?'

'अहा, बलिहारी तुम्हारी बुद्धि की! बासी भात खाऊंगी? केंचुए मिलाकर मछली मारने का चारा बनाऊंगी।'

'क्या करेगी?' दीनतारिणी से पहले ही मोक्षदा ने अपनी आंखें कपाल पर उठा ली—'क्या करेगी?'

'चारा डालूंगी, चारा। मछली मारने का चारा। नेड़ू ने मेरे लिए बड़ी बढ़िया 'छिप' तैयार कर दी है बांस की। पिछवाड़े के पोखरे में मैं मछली मारूंगी।

'सत्ती!' मोक्षदा मानो तिलमिला गई—' 'छिप' से मछली मारेगी तू? मान गई मैं, बाप की बड़ी दुलरुआ बिटिया है, तो क्या सांप के पैर देख लिए? लड़की होकर 'छिप' से मछली मारेगी तू?'

सत्यवती ने अपने घुघराले बालों में झटका देकर कहा, 'अहा, छोटी दादीजी का कहना सुन लो जरा! लड़कियां मछली नहीं मारती। रागा चाची वगैरह मारती नहीं है? उस घर की फुआ नहीं मारतीं?'

'हाय राम! अरी मुहजली, वे लोग छिप से मारती है मछली? वे तो अंगोछे से छानती है। छोटी-छोटी मछलियां।'

'तो क्या हुआ!' सत्यवती ने हाथ के पत्ते को बरामदे पर पटकते हुए कहा, 'अंगोछे से मारें तो दोष नहीं, बंशी से मारें तो दोष हो गया? छोटी मछलियां मारें तो कुछ नहीं, बड़ी मछली मारी, तो गुनाह! तुम लोगों के इन दोषों का शास्तर किसने लिखा है भला!'

'सत्ती!' दीनतारिणी ने कड़ाई से कहा—'रत्ती भर की लड़की, इतनी बड़ी जबान क्यों? ननद जी ठीक ही कह रही हैं, पराए घर जाकर गत होगी।'

'बाप रे, थोड़े से बासी भात के लिए ऐसी लानत-मलामत! मैं आमिष रसोई में जाती हूं। वहां भी क्या जाऊं? वहां भी तो बड़ी चाची विराजमान हैं। गुर्राती हुई नजर। खेंदी के यहां से मांग लेती, वही अच्छा था।'

'क्या कहा? खेंदी के यहां से? कायथ के घर का भात छीटेगी तू?'

'छीटा है क्या?' बाप रे, बात-बात में दोष और दोष! खैर, मैं उस

रसोई में ही जाती हूं। लेकिन जब इतनी बड़ी मछली मार लाऊंगी, तब देखना !

यह कहकर सत्यवती ने पटकते-पटकते फटे हुए पत्ते को फेंक दिया और बरामदे के कोने की ओर से सीधे उस ओर चली गई।

वहां तो हर घड़ी बहुत बड़े यज्ञ जैसा काम। दोनों वेला दो-ढाई सौ पत्तलों के लिए प्रबंध। इतने लोग खाते।

वहा भी ऐसे ही ऊंचे बरामदे का घर। लेकिन बरामदे के ऊपर जाने में रोक नहीं। सत्य बेपरवाह ऊपर चली गई। इधर-उधर निगाह दौड़ाकर उसने नारियल की एक खोली उठा ली और रसोई के दरवाजे पर जाकर हिम्मत करके आवाज दी, 'बड़ी चाची !'

४

तमाम दिन ऊमस-सी रही। अचानक ठंडी बयार का एक झोंका आया। बदन जुड़ा गया। लेकिन जी मे खौफ हो आया। समय बुरा है, चैत का अंत। ईशाण कोने में बादल—उसकी छाया ने आधे आकाश पर मानो घूंघट डाल दिया। ठीक जैसे कोई खूंख्वार राक्षस धरती पर कूद पड़ने को पैंतरा मांज रहा हो।

घाट-बाट, खेत-पथार मे जो जहां थे, वे बार-बार आसमान की ओर ताकते हुए अपने हाथ के काम को खत्म कर लेने लगे।

देखते ही देखते हवा में तरंग उठाते हुए गांव के इस छोर से उस छोर तक सानुनासिक स्वर की एक धुन-सी शुरू हो गई। वह स्वर क्रम से ऊपर चढ़ने लगा, बीच-बीच में उतरने लगा। उसकी भाषा थी—धौली आं—गोली आ···

आंधी की आशंका से घर के निबोले जीवों को गुहाल में लौट आने की पुकार।

सत्यवती को पता न था कि आंधी से पहले या सांझ को जब गाय-गोरुओं को पुकारा जाता है, तो वैसे नकिआए सुर में क्यों ? वह इतना ही जानती है कि ऐसा ही नियम है। अवश्य जो लोग बुलाते हैं, वही लोग आठ साल की सत्यवती से ज्यादा क्या जानते हैं ? उन्होंने भी जब से होश सम्हाला है, यही देखा किया है कि गाय-गोरू को सांझ के वक्त घर लौटने के लिए अकास-बतास कंपाते हुए पुकारा जो जाता है, वह आवाज सानुनासिक होती है। कौन जाने,

कभी कोई वरदान पाया हुआ गोरू आदमी की भापा सीखकर मनुष्य से अपनी पसंद-नापसंद का नमूना जता सका है या नही ? यह बताया है या नही कि यही सानुनासिक स्वर ही मुझे रुचता है।

फिलहाल देखने मे यह आया कि वे बे-बोल प्राणी इस-उस छोर तक गूंज रही पुकार से अपने गुहालों की ओर मुड़े। वे भी एक-एक वार गरदन उठाकर आसमान को देख लेने लगे।

सत्यवती एक खवर जुटाकर बनर्जी-टोले से जल्दी-जल्दी घर की तरफ भागी जा रही थी। फिर भी आस-पास गूंजती उस पुकार को सुनकर उसने भी ऊंचे गले से आवाज़ लगाई—'सावली आ—धौली आ…'

आम के बगीचे से होकर रामकाली राय-टोले से पैदल ही आ रहे थे।

अपनी पालकी वही उधार दे आए।

गाव के बूढ़े राय बाबू की हालत नाजुक है। खबर पाकर उनकी नाडी देखने गए थे रामकाली। उनकी नाडी की स्थिति देखकर उन्हे गगायात्रा कराने की सलाह दी। सलाह दी और मुसीबत में पडे।

राय बाबू के दोनों लड़के गुज़र चुके है। तीन नाती हैं, पर उन नातियो की यह जुर्रत नहीं कि पालकी का किराया और कहारो की मजूरी देकर दादाजी की गंगायात्रा का इंतजाम कर सकें। लेकिन वैसे सदाचारी बूढे आदमी आखिर घर में पड़े-पड़े मरे, आंखों देखकर यही कैसे सहा जा सकता है ? और यदि ले जाया जाय तो त्रिवेणी की गंगा ले जाना ही अच्छा है। गंगायात्रा की सलाह से राय बाबू के पोते जब आपस मे एक-दूसरे का मुह तकने लगे तो लाचारी रामकाली को कहना पड़ा, 'पालकी की फिकर मत करो तुम लोग, राय काका मेरी ही पालकी से जाएंगे।'

राय बाबू के पोतों ने धीमे से कहा, 'जी, आपको मरीज देखने के लिए दूर-दूर जाना पडता है, पालकी दे देने से…'

रामकाली ने गंभीरता से हंसकर कहा, 'तो फिर दादाजी को कंधों पर ही ले जाओ—तीन-तीन लायक पोते हो।'

गुरुजन के मजाक से हंसे, ऐसी बेअदबी की-सोची भी नहीं जा सकती, लिहाज़ा वे तीनों अपना सिर खुजाने लगे। और उन तीनों में जो बड़ा था, उसने कहा, 'सोच रहा था, बैलगाड़ी से…'

'तुम लोगों का ऐसा सोचना वाजिब नही है, भैया। बैलगाडी मे ले जाने पर वानवे साल का यह पिंजड़ा पंछी समेत गंगाजी पहुंच सकेगा ? पिंजडा छोड़कर पंछी फुर्र हो जायेगा। मैं भी उनका बेटा जैसा ही हूं, तुम लोगों को सकुचाहट नही होनी चाहिए। और फिर जल्दी की भी जरूरत है, कब क्या हो जाय, कहा नही जा सकता।'

राय बाबू की धुमैली आखो मे आसू की दो बूदें टपक पड़ी । उभरी नसों वाले दाएं हाथ को आशीर्वाद देने के ढंग से उठाकर बोले, 'जयस्तु !'

बाहर निकलकर रामकाली ने पालकी के कहारों से कहा, नाहक ही पालकी यहा से ले जाकर क्या करोगे ? इसे रहने दो और तुम लोग घर जाकर खा-पी लो । भोर-भोर को उठकर चले आना । और हां, मेरे यहा जाकर कल दिन भर के लिए जलपान-कलेवा ले आना । समझे ? और हा, यह भी देख, यहां अभी कोई जरूरत तो नही है ? मैं जा रहा हूं ।'

लपके ही चले जा रहे थे रामकाली । क्योंकि बाहर निकलते ही देखा, ईशाण कोने में मेघ है । पालकी से रोगी देखने जाते हैं, इसका यह मतलब नही कि रामकाली चल नही सकते । रोज वह ब्राह्ममुहूर्त मे जगते है, नित्यक्रिया से निवृत्त होकर दो कोस का चक्कर काट आना उनके नित्य के कर्मो मे पहला काम है । लेकिन हा, रोगी के यहां जाना और बात है । मान-मर्यादा का प्रश्न ।

रास्ता कम होगा, इसके लिए बगीचे की राह चले थे, परन्तु आम के बगीचे के पास पहुचते ही झड़े पत्तों और धूल की आधी उठी । झट वे बगीचे के बीच से निकलकर किनारे चले आए और आते न आते ठिठक गए । यह आवाज ?

सत्य की है न ?

हा, गला तो यह सत्य जैसा ही लग रहा है ।

हवा की सांय-सांय के विपरीत होने से गोकि आवाज को समझने में जरा देर लगी, लेकिन जरा ही देर । और फिर गैयों के नाम भी जाने-चीन्हे । सांवली-धौली उन्हीं की गायें है । गायें तो रामकाली के एक गुहाल है, पर ये दोनों सुलक्षणवाली हैं, इसलिए रामकाली की बड़ी प्रिय है । समय मिलते ही वे अपने हाथों उनके आगे घास डालते है, बदन पर हाथ फेरते है । घर की कुआंरी लडकिया सावली-धौली से ही 'गोकाल व्रत' करती है और मोक्षदा उन्ही के गोबर से घर की शुद्धता बरकरार रखती है ।

कान खड़े करके रामकाली ने अनुमान लगाया कि आवाज़ आ कहां से रही है । फिर लपके । लपककर जाकर उसे पकड़ लिया । सत्यवती उस समय धूल के थपेड़ों मे बचने के लिए आख पर दोनो हाथों से आंचल रखे हुए थी ।

'जा कहां रही है ?' जल्द गंभीर स्वर मे रामकाली ने कहा ।

सत्यवती चौंकी । मुह पर से कपड़ा हटाया कि काठ की मारी-सी रह गई ।

सत्यवती को गरचे सभी बाप की दुलरुआ कहते हैं और सच ही वह बाप के बड़े प्यार की है भी; और फिर सुलक्षनवाली है, इसलिए रामकाली मन-ही-मन मानते भी हैं, तो भी यह मतलब नहीं कि आमने-सामने आदर-खातिर का कुछ हो । सो, पिता की आवाज़ सुनते ही उसके होश उड़ गए ।

रामकाली ने फिर एक बार पूछा—'ऐसे वक्त गई कहां थी तू ?'

सत्यवती ने धीमे से कहा—'संझली फुआ के यहां।'

सत्यवती ने यह जो संझली फूआ का नाम लिया, वह रामकाली की चचेरी बहन है। इसी गांव में ससुराल है उसकी। यहीं रहती है।

भौंह सिकोड़कर रामकाली ने कहा—'इतनी दूर अकेली जाने की क्या पडी थी ? साथ में कोई है क्यों नहीं ?'

बस यही। इसीलिए सत्यवती को लोग बाप की दुलरुआ कहते है।

थप्पड़ नहीं, मुक्का नहीं, कान मल देना भी नहीं। बस, कैंफियत पूछ लेना।

अब हिम्मत पाकर सत्यवती ने कहा—'अकेली क्यों जाने लगी, पुन्नू फुआ साथ में थी। फिर मैं आपको बुलाने के लिए दौडी आ रही हूं।'

'मुझे बुलाने के लिए दौड़ी आ रही है ?' भौंह सिकोड़कर वे बोले—'किसलिए ? मेरी क्या जरूरत पड़ गई ?'

अब की वह पूरा साहस पाकर उत्साह से बोली—जटा भैया की स्त्री की अब-तब हालत है। नाड़ी छूट गई है। इसीलिए संझली फुआ रोते-रोते बोली—सत्ती, जाकर जरा मंझले भैया को बुला.ला, जहां से भी हो। मैं रायटोले गई। वहां मालूम हुआ, आप अभी-अभी चल दिए।

'रायटोला भी गई थी तू ? न, आफत कर दी तूने। जटा की बहू को अचानक क्या हो गया कि उसकी नाडी छूटी जा रही है ?'

'छूटी जा क्या रही है'—सत्य ने और भी उत्साह से कहा—'छूट गई है। संझली फुआ चीख रही है। छाती पीट रही है। और, तकिया-बिस्तर हटा रही है।'

'अरे, क्या कह रही है ! चल, देखें।' रामकाली बोले—'आंधी आ गई। पानी भी आ चला। अजीब मुसीबत है। हुआ क्या था ?'

'कुछ नहीं। संझली फूआ ने कहा, रसोई-वसोई कर-कराके जैसे ही वह खाने बैठी कि जटा भैया ने पान मांगा। भौजी ने कहा, पान खत्म हो गया है। कहना था कि बस बाबू बिगड़ गए। भौजी की पीठ पर धमाधम लात। लात कि भौजी मुह के बल गिरी।'

सत्यवती सहसा खुक्-खुक् करके हंसने लगी।

'हंस क्या रही है ?'

रामकाली डपट उठे। खीजे भी। कैसी असभ्य है यह लडकी ! हंसी का कोई समय-असमय नहीं है ? कहा—'कोई मर रहा हो तो हंसना चाहिए ? यही शिक्षा-दीक्षा है ?'

सत्यवती यों ही हंस पड़ी थी। अब पिता की डांट से सम्हलकर मुंह को

मलीन बनाने की कोशिश करती हुई बोली, 'संझली फुआ ने कहा था धक्का लगाना था कि कोंहड़े की तरह लुढ़कती हुई वह आगन मे जा गिरी।' किसी तरह से हंसी रोककर सत्यवती ने फिर कहा, 'जटा भैया की बीवी बहुत भात खाती है, है न बाबूजी ! अभी इतनी मोटी है।'

'आः !' ऊब दिखाते हुए रामकाली तेजी से चलते रहे।

सत्यवती भी चलने मे कुछ कम नही। बाप के साथ ही साथ वह भी चलती रही।

जटा की स्त्री के लिए रामकाली को जितनी सहानुभूति न हुई हो, जटा के इस व्यवहार से उन्हें मन ही मन खीज हुई। अभागा, ब्राह्मण के घर का सांड़ है। काला अच्छर भैंस बराबर, गाजा-भंग में उस्ताद। और फिर कुल से बाहर की यह आदत, बीवी की पिटाई ! जटा-फटा का बाप तो ऐसा नहीं था। बल्कि रामकाली की गुणवंती बहन ने ही जिंदगीभर उस बेचारे की नाक मे दम करे रक्खा।

क्या पता, कहा ठौर-कुठौर लगा है। सचमुच ही मर-वर जाए तो बड़े झमेले में पड़ना पड़ेगा।

सत्यवती को भूलकर रामकाली ने और भी जोर से कदम बढ़ाया। सत्यवती ने अब दौड़ना शुरू किया। वह हार नही मानने की।

आंखें ऊपर को उठकर थिर हो गई हैं। मुह से फेन बहकर सूख गया है। हाथ-पाव ठंडे।

संदेह की गुजाइश कहा ? सारे लक्षण साफ ही थे। इसी बीच उसे तुलसी-तले लिटा दिया गया था। तकलीफ करके घर से लाना बेशक नही पड़ा। लात की ठोकर से लुढककर आंगन में तुलसीतले के करीब ही जा रही थी। पल में बेतार-समाचार की तरह सारे गांव में खबर फैल गई और सारी बस्ती बुहार-कर औरतें वहीं आ जुटीं—आने वाली आंधी की भी फिकर न रही किसी को।

मामला कुछ कम मजेदार नहीं—रोजमर्रा के विचित्रताविहीन जीवन-नाटक में ऐसा एक जोरदार दृश्य देखने का सौभाग्य जीवन मे कितनी बार आता है ?

पहले तो भीड़ मे दबी उत्तेजना की एक खलबली मची—जटा ने क्या तो अपनी बीवी को मार ही डाला है ? उसके बाद हाय-हाय। जटा के बारे में लोगों की रायें भी अब जटा की मां का कान बचाकर नही हो रही थी। इस-लिए कि साफ-साफ सुना देने का ऐसा अवसर ही किसी के जीवन मे कै बार आता है ?

'सचमुच मर गई ? छिः-छिः-छिः ! कैसा हत्यारा लडका है यह !'····'धन्य

लड़के को गर्भ में धारण किया था मां ने। अच्छा, यह जटा ही ऐसा गंवार कैसे हुआ ? उसका बाप तो बड़ा भलामानुस था।'...'कैसे हुआ ? तुम अब ऐसे बदन में आग न लगाओ, ननद जी ! मैं पूछती हूं, उसको जन्म देने वाली कैसी है ? जैसा पेड़, वैसा फूल।'...'अहा, सूधी, निरी बेचारी-सी बहू, अपने मां-बाप की बेटी, नाहक ही जान गई।' ऐसी ही तरह-तरह की आलोचनाएं चलती रहीं। एक स्त्री के लिए इससे ज्यादा दर्द की और क्या उम्मीद की जा सकती है ?

पड़ोसिनों की ये शिकायतें चुपचाप पी जाने को मजबूर थीं जटा की मां, क्योंकि आज वह बड़े बेकायदे पड गई थी। इसलिए ये सारी बातें जिसमे दब जाएं, उन्होंने जार-बेजार रोना शुरू कर दिया। छाती पीट-पीटकर बड़ी ही हृदय-विदारक भाषा में शोक जताती हुई रोने लगीं।

घर के करीब आते ही रामकाली के कानों में अपनी चचेरी बहन की वह कलेजा हिलानेवाली शोकगाथा सुनाई पड़ी।—'हाय रे, मेरे घर की लच्छमी आज घर छोड़कर कहां चली गई रे ! हाय-हाय, सोने की प्रतिमा को डुबाकर मैं फिर किस मन से गिरस्ती करूंगी रे ? अरे रे जटा, तेरे तो नगर पहुंचते न पहुंचते बाजार में आग लग गई रे !'

सत्यवती बोल उठी, 'जा, सर्वनाश हो गया।'

रामकाली के तेज़ कदम धीमे हो गए। उन्होंने भंवें सिकोड़ीं। होना था सो हो ही गया। अब जाकर करेंगे भी क्या ? अब कमबख्त जटा के नसीब में कितनी दुर्दशा है, कौन जाने !

अचानक बड़े ज़ोरों की एक चीख उठी, शायद फिनिशिंग टच। 'अरे बाप रे, यह मेरा कैसा सत्यानाश हुआ रे ! कैसी मूरत जैसी बहू ले आयी थी मैं !'

पा-पा चलते हुए रामकाली अचानक दरवाजे के पास पहुंचते ही मुड़ गए। बोले—तो सब खत्म ही हो चुका। सत्ती, तू घर जा।

सत्यवती तो काठ।

'घर ! अकेली ?'

'क्यों ? अकेली क्यों ? तूने कहा न, नेड़ू और पुन्नू आयी है ?'

सत्यवती ने डरते-डरते कहा, 'आए तो थे, लेकिन अब वे जाएंगे भला ?'

'नहीं जाएंगे ? मतलब ? उनकी गरदन जाएगी ! देख तो, कहां हैं वे ? मुझे तो अब इनका इधर का सब देखना होगा।'

कैफियत देते हुए रामकाली शायद ही कभी किसी से बात करते हों। लेकिन सत्यवती के सामने वह कुछ सहज हैं।

सत्यवती धीरे-धीरे जाकर एक बार फुआ के आंगन में खड़ी हुई। इधर-

उधर नजर दौड़ाई। नेडू और पुन्नू, किसी को वहां न देखकर लौट आयी। मुंह सुखाकर बोली, 'यहां तो उनमें से कोई नहीं है।'

'क्यों, गए कहां वे ?'

'क्या पता ?' धीरे-धीरे हिम्मत करके सत्यवती ने अपने मन की बात कह डाली—'आप तो मरे को जिंदा कर सकते हैं बाबूजी ?'

'मरे को जिंदा ! धत्, पगली !'

सत्य मुरझाकर बोली, 'लोग जो कहते हैं।'

'लोग कहते है ? क्या कहते है लोग ?' बिटिया को अनमना-सा होकर जवाब देते-देते रामकाली इधर-उधर ताकते रहे, शायद किसी मर्द-सूरत पर नजर पड जाए। जब आ ही पड़े हैं, तो जिम्मेदारी से कतराकर तो नही जाया जा सकता। जटा को अपना बंसवेरा न हो तो वे अपने ही यहां से बास काटकर ले आने को कहेंगे। लेकिन कहा ? कहां है कोई ? अन्दर से तरह-तरह के सुर गूंज रहे हैं, बाहर सूना, सन्नाटा !

अच्छा यही हुआ कि मेघ जाते रहे, आसमान साफ हो गया। और यह पता चला कि सांझ होने में अभी देर है।

अचानक सत्यवती एक दुस्साहसिक काम कर बैठी। अपने बाप के एक हाथ को दोनों हाथों से दबाकर रुंधे स्वर मे बोली, 'लोग जो कहते हैं, कविराज जी मरे हुए को जिला सकते है। जटा भैया की स्त्री को कोई दवा दो न बाबू जी !'

इस अबोध विश्वास के सामने सकपकाकर रामकाली ने हठात् कैसा तो असहाय-सा अनुभव किया। इसलिए उसे डाट उठने के बजाय सिर हिलाकर बोले, 'लोग ग़लत कहते है, बिटिया ! मैं कुछ नही कर सकता। झूठे मद से कुछ जड़ी-बूटिया करता-देता हूं, लोगों को ठगता हूं।'

सत्यवती इस बात के सुर को पकड़ नही सकी, पकड़ सकने की बात भी नहीं। समझा कि यह बाबूजी की नाराजगी की बात है। लेकिन अभी तो वह अड़ गई। नसीब में चाहे जो लिखा हो। बाबूजी के हाथों पिटना लिखा हो तो वही सही—मगर उसकी कोशिश से जटा भैया की बहू जी जाए कहीं ! सो आंख-कान मूदकर उसने पिता की चादर की कोर खीचकर कहा, 'पैरों पड़ती हूं बाबूजी, दो न कोई दवा। अन्तिम बार। आह, जटा भैया की स्त्री बिना दवा के ही मर जाएगी !'

मरने के बाद दवा-दारू से कुछ नही होता, बेटी को फिर यह बात व्याख्या करके नही बता सके रामकाली। उन्होने सिर्फ एक नि श्वास छोड़ा और फिर से उधर पलटकर कहा, 'चल, देखें।'

जमे-जमाए नाटक के बीच में गोया अचानक शामियाना टूट गिरा।

'यह कविराज जी का गला-खखार है न ?'

'हां, वही तो।' विशालकाय खूबसूरत-से आदमी दरवाजे पर खड़े। और तुरत सत्यवती का धार चढाया गला गूंज उठा—'बाबूजी भीड़ हटाने को कह रहे हैं।'

पड़ोस की स्त्रियां माथे पर कपड़ा डालकर चुप हो गईं। सिर्फ जटा की जननी फुक्का फाड़कर रो उठी—'हाय, मंझले भैया, मेरा जटा आज विधुर हो गया !'

'रुक जा !' जैसे कोई बाघ गरज उठा—'अपने जटा का नाम भी मत ले। कमबख्त ! एकबारगी मार ही डाला न ?'

भीड़ हट गई। कविराज जी ने भानजे की बहू के करीब जाकर भी जितनी संभव थी, दूरी बचाकर दो अंगुली से उन्होंने नाड़ी पकड़ी और दूसरे ही पल चौंक उठे।

खैर, सारा मजा-तमाशा हवा हो गया।

नाटक का एक दृश्य ही महज घायल नहीं हुआ, शुरू से आख़िर तक नाटक ही खत्म ! 'बह्वारंभे लघुक्रिया' का ऐसा उदाहरण कभी किसी ने देखा या सुना है ? जटा की बहू का यह रवैया जैसे ढीठपन हो, क्षमा के लायक नहीं। छि:-छि, औरत की जान, लेकिन ऐसी भी काठ-परमायु हो भला ? लेकिन हां, इस औरत के नसीब में अनत दुःख लिखा है, इस बात में कोई मतभेद नहीं रहा। मरकर तुलसीतले लिटाई गई और कुछ घड़ियों मे ही उठकर घर में जाकर सोयी, गटागट एक कटोरा गरम दूध पी गई। ऐसी किसी औरत के बारे में इससे पहले कम-से-कम इन लोगों को तो जानकारी नहीं थी।

'छि.-छि: ! हद हो गई। कोई मर्द होता तो उतना-सा स्वर्णसिंदूर जीभ से लगाते ही उठ नहीं बैठता।'····'जो भी कहो, जटा की बहू ने खूब तमाशा दिखाया !'····'अब सास के हाथों जो दुर्गत होगी उसकी, साफ समझ सकती हूं। सास का आज बड़ा अपमान हुआ है !'····'लेकिन जो भी कहो चाहे, तुलसीतले से यों हुट् करके घर के अंदर उठा ले जाना ठीक नहीं हुआ—अंग-पराचित्त कराना जरूरी था।'····'कौन जाने बाबा, सचमुच ही जिंदा थी या कोई भूत-प्रेत सवार हुआ ! मुझे तो कैसा संदेह-सा हो रहा है।'····'एको भी संझली, शाम-वाम को अकेली घाट जाया करती हूं, बदन छम्छम् करेगा। लेकिन उसकी निगाह कैसी-कैसी तो लगी !'····'नहीं-नहीं, वह सब कुछ नहीं है। कविराज जी ने तो बता ही दिया, अचानक धक्का लगने से चक्कर आ गया था।'

'अरे बाबा, चल भी। अभी दुनिया का काम पड़ा है। खामखाह पांच घड़ी समय की बर्बादी हुई।'····'जटा की मां का बनना देख लिया, लगा, बहू के मर जाने से उसका कलेजा फटा जा रहा है!'····'देखा! देखने को और कुछ बाकी नहीं है। छाती ही फटी होती तो बहू के जी जाने से फटी! उसकी उतनी बड़ी आशा पर पानी फिर गया। सोच रही थी, बेटा उसका 'भागमान' है। तुरत उसकी शादी करेगी, दान-दहेज, गहना-पत्तर से फिर घर भरेगी।'

बातों का प्रवाह रुक नहीं रहा था।

घाट-बाट में, अपने-अपने घर की चौहद्दी में वाक्यों का वृन्दावन बस गया। एक इतनी बड़ी घटना को इतनी आसानी से बुझा देने को किसी का जी नहीं चाह रहा था। जटा की मा को गिराने का इतना बड़ा सुनहला मौका भी यों ही चला गया। जटा की बहू पर कोई भी किसी प्रकार से प्रसन्न होना नहीं चाह रही थी। उस दईमारी ने मानो सबको बेहद छका दिया। नाते की चचेरी सास ने जैसे ही सुना, वह आंचल में छिपाकर अलता और सिंदूर ले आयी थी कि सबसे पहले सिंदूर लगाने की बहादुरी उन्हीं को मिले। लाचार, उसे अब पोखरे में बहा आयी। जो भी हो चाहे, लाया तो आखिर लाश के ही लिए था! सो, जटा की बहू पर सबसे ज्यादा गुस्सा उन्हीं को आ रहा था!

न:, नाम किसी को नहीं मालूम! जानने की कोशिश भी नहीं। 'जटा की बहू'—बस, यही उसका परिचय था। इसके बाद होगा—फला की मा। तो फिर नाम की जरूरत ही क्या? नाम से जरूरत न हो, लेकिन उसकी बात से सबको जरूरत है। उन्ही जरूरी बातों में नाते की चचेरी सास एकाएक बोल उठी—'हमारे मैके की बात होती, तो उस बहू को फिर से घर में घुसने का भाग्य नहीं होता। गुहाल या ढेकीशाल में ही जिंदगी काटनी पड़ती।'

दो-एक जनी आपस में एक-दूसरे की मुंह देखादेखी करती रही—यह 'जिंदगी' से खीचतान क्यों?

चचेरी सास ने फिर राय दी, 'एक तो तुलसीतले से उठाकर ले जाना—फिर अनाचार कैसा, ममिया ससुर से छुई हुई! कविराज जी ने जब बे-भरोसे नाड़ी पकड़ी, मैं तो तभी हा हो गई! अवश्य उन्होंने यही सोचा था कि मर गई है। और मर गई होती तो दाह-संस्कार के पहले देह-शुद्धि का पराच्छित तो करना ही पड़ता। लेकिन वह तो धड़ाके से जी ही उठी। बिना पराच्छित किए कैसे होगा?'

बड़ी-बड़ी छानबीन के बाद यह निष्कर्ष निकला कि ममिया ससुर से छुलाने के पाप का प्रायश्चित्त जटा की बहू को करना ही पड़ेगा। और फिर मरकर जी जाने का दूसरा प्रायश्चित्त। नहीं तो जटा की मां को 'पतित' होकर रहना पड़ेगा।

जो कसूरवार थी, वह तो बेहोश। जटा की मां भी जटा को खोजती फिर रही थी, लिहाज़ा एकतरफा डिग्री हो गई।

लेकिन सत्यवती को यह सब कुछ भी नहीं मालूम। वह एक अनोखे गौरव से छलकती हुई अपने बाप के साथ घर लौटी।

ओ., नाराज होकर बाबूजी ने कैसी उलटी बात कह दी थी। कहा था—'इलाज-विलाज मैं कुछ नही जानता।' सत्य ने क्या यों ही दुस्साहस करके बाप का हाथ पकड़कर सिर्फ ज़रा-सी दवा देने को कहा था। जभी न बेचारी बच गई! अहा, सत्यवती जब ससुराल जाएगी, तब यदि सत्य का स्वामी (अदेखे उसके चेहरे पर जरा हंसी फूट उठी) उसे ऐसे ही मार डाले तो बड़ा अच्छा हो। खबर पाते ही बाबूजी जाएंगे और शहद में मिलाकर थोड़ा-सा 'स्वर्णसिंदूर' उसे खिला देंगे और जरा ही देर में सत्य आखें खोल सबको सामने देख झट घूंघट काढ़ लेगी।

उं., कैसा मजा आएगा!

उसके बाप रामकाली कविराज के जादू से इलाकेभर के लोग हक्के-बक्के रह जाएंगे। बाप रे, उसका बाप कुछ ऐसा-वैसा है! गांव की और किस लड़की का ऐसा बाप है?

हंसी की बात सोचते-सोचते अचानक हंस पड़ना सत्य की सदा की बीमारी है।

रामकाली ने चौंककर पूछा, 'क्या हो गया? हंस क्यों पड़ी?'

सत्य ने बडी मुश्किल से सम्हलकर थूक घोंटते हुए कहा—'यों ही।'

'अपनी इस यों ही हंसी को थोडा कम कर तो तू।' रामकाली ने लगभग हंसते हुए कहा, 'नहीं तो ससुराल जाने पर तेरी भी जटा की बहू जैसी ही दशा होगी।'

उन्हे बडी खुशी हुई। रात हो चली। खामखाह बहुत-बहुत झमेला होता। जटा की बहू ने उन झमेलों से बचा लिया। बाप के मन की प्रसन्नता का कारण न समझते हुए भी उनकी प्रसन्नता को वह ताड सकी और उसी साहस से प्राय: उच्छ्वसित होकर बोली, 'इसीलिए मैं हंसी। मैं मर जाऊंगी तो आप जाकर मुझे झट जिला देंगे।'

'हूं! अच्छा!' मुख्तसर में बोले रामकाली।

वे चुपचाप कुछ दूर तक तेजी से बढ़ गए और बाप के साथ चलने के लिए सत्यवती लगभग दौड़ती ही रही।

अचानक ही एक जगह रुककर रामकाली ने कहा—'मर जाने पर खुद भगवान आकर भी कुछ नही कर सकते, समझी! जटा की बहू मरी नहीं थी।'

'नही मरी थी ?' सत्य जरा अनमनी हो गई। मरना फिर और कैसा होता है ? उसके विचार की गति पलटी, उत्सुक होकर बोली, 'मगर तुमने जाकर स्वर्ण-सिंदूर या क्या तो खिलाया न होता तो जटा भैया की बहू वैसी ही मरी-मरी-सी ही तो रहती ? और सब कोई मिलकर उसे पाकडतल्ला मसान में जाकर जला आते ?'

रामकाली जरा चौंके।

अजीब है ! इतनी छोटी-सी लड़की, इतना डूबकर सोचती कैसे है ? अहा, लड़की है, इसी से सब बेकार ! यह दिमाग कही नेड़ू के होता ! मगर सो नही हुआ। आठ साल का वह हाथी, अभी तक अ-आ ही कर रहा है। नेड़ू रामकाली के बड़े भाई कुंजकाली की आखिरी प्राप्ति है। तेरह-तेरह बच्चो को पालने के बाद चौदहवें के वक्त उसकी स्त्री की बागडोर एकबारगी ढीली हो गई। ब्राह्मण घर का साड़ होगा, और क्या !

लेकिन बच्चियो का इतना डूबकर सोचना-सीखना भी ठीक नही, इसलिए रामकाली ने जरा डपट की-सी आवाज मे कहा, 'ठहर, इतना ज्यादा बोल मत। कदम बढा। देख रही है न, गहरा अंधेरा हो गया ?'

'अंधेरा ! हुं !' सत्यवती ने लापरवाही से कहा, 'अंधेरे से मैं डरती हूं क्या ? इससे भी गहरे अंधेरे में बगीचे में जाकर उल्लू की आखें नही गिनती ?'

'क्या करती है अंधेरे मे ?'

रामकाली चौंके।

सत्य सकपका गई। बोली, 'मैं अकेले नही। नेड़ू और पुन्नू फुआ रहते हैं। उल्लू की आखें गिनती हूं।'

रामकाली एकाएक ठठाकर हंस पड़े।

देर तक खुले गले से हंसते रहे। इस लड़की को कोई डांटे क्या, शासन क्या करे ?

सूनी राह पर अंधेरे में वह हंसी मानो स्तर-स्तर में गूजने लगी।

बनर्जी के चंडी-मंडप से गाव के दो-एक प्रौढ़ उत्कर्ण हो उठे।

'कविराज चटर्जी का गला है न ?'

'हा, वैसा ही लगता है।'

'अंधेरे मे अकेले-अकेले ऐसी हंसी क्यो ?'

'अकेले क्या ? वह धड़ंग लड़की भी जरूर साथ मे होगी। नहीं तो…'

'रामकाली ने यह एक शाबाश लड़की तैयार की है ! उस लड़की से इनके नसीब मे दुःख लिखा है।'

'दुःख ! अरे बाबा, घर में रुपयों का ढेर लगा है, दुःख किस बात का ! मैंने सुना, कल वर्दवान के राजा के यहां से आदमी आया था—राजवैद बनने

के लिए आग्रह लिए।'

'अच्छा ! सुना तो नही ! तो अब चटर्जी गांव की माया काट रहा है !'

'नही-नही, मैंने सुना, नही जाएगा।'

'अच्छा ! फिर भी गनीमत। तुमसे किसने कहा ?'

'कुंज का बड़ा लड़का बता रहा था।'

'हूं। ठीक ही है। इस उमर मे परदेस जाकर राजा की नौकरी ! लेकिन रामकाली की मति गति बडी वैसी है। उत्ती बड़ी लड़की को ऐसी आज़ादी देना ठीक नही। टोले के लडके ही उसके खिलाडी हैं।'

'हां ! पेड़ पर चढ़ने मे, तैरने में, मछली मारने में वह लड़कों से दसगुना आगे है !'

'यह कोई गौरव की बात नही है, चाचा ! जो भी हो, आखिर लड़की है, तिस पर एक सम्मानित घर की बहू हुई है ! उन्हे यदि इन बातो की खबर हो जाय, तो इसे अपने घर रखने मे हिचक नहीं जाएंगे ?'

'कोई कलंक रटा देने में क्या देर लगती है ?'

वैद चटर्जी और उनकी धड़ंग बेटी की चर्चा से चंडी-मंडप का वातावरण भारी हो उठा। जिस आदमी के सामने अदब करना होता है, पीठ पीछे उसकी निंदा न कर पाए तो आदमी जिंदा कैसे रहे ?

इन सब समालोचनाओं की पात्री उस समय अपने बाप के पीछे-पीछे दौड़ रही थी और मन ही मन आकुल प्रार्थना कर रही थी—'हे भगवान, मेरा पाव बाबूजी जैसा बड़ा बना दो न, तो मैं भी इनकी तरह चलू। इनसे हार न जाऊं।'

हारने मे सत्यवती को बिलकुल एतराज है।

कभी किसी हालत मे हार नही मानेगी, यही प्रतिज्ञा है उसकी !

'ऐ पुन्नू, पद्य जोड़ सकती है ?'

छत के ऊपर सीढीघर मे सत्यवती का खेलने का अड्डा है।

उसकी प्रधान संगी है रामकाली के नाते के चाचा की बेटी पुण्यवती ! और-और लोगों के सामने सभ्यता से गरचे सत्य उसे पुन्नू फुआ कहती है, मगर अपने इलाके में पुन्नू ही कहती है।

'बया का घोसला ले आ सकती है ?' या 'सोनापोका'[1] पकड़ सकती है ?' या कि 'तैरकर तीन बार बडे तालाब के आर-पार आ-जा सकती है ?'—इसी तरह के परीक्षामूलक प्रश्न सत्य प्रायः पूछा करती। लेकिन पद्य रच सकती है

---

१. एक कीड़ा जिससे टिकुली बनाती हैं।

या नहीं, ऐसा सवाल बिलकुल नया है।

पुन्नू विमूढ़-सी होकर बोली, 'पद्य ? काहे का पद्य ?'

'जटा भैया पर पद्य। समझी ? पद्य बनाकर गांवभर के सब लड़कों को रटा देंगे, जटा भैया पर नज़र पड़ते ही ताली बजा-बजाकर सब गुनाने लगेंगे।'

'ही-ही-ही !'

जटाधर की दुर्गत की सोचकर दोनों गरदन हिला-हिलाकर हंसने लगीं।

इसके बाद पुण्यवती ने एक पलटा सवाल किया, 'अच्छा, खूब तो बोली, मैं पूछती हू, लड़कियों को भला पद्य बनाना चाहिए ?'

'नहीं बनाना चाहिए ?' तुरन्त वह अग्निमूर्ति-सी बन बैठी—'नहीं चाहिए ? लड़की ! लड़की ! लड़कियां क्या मा के पेट से नहीं पैदा होतीं, बाढ के पानी में बहकर आती है ? बार-बार लड़की-लड़की करती रहेगी तो मेरे साथ खेलने मत आना।'

पुन्नू मुसकरायी। कहा, 'अहा रे, और जब तेरा दुलहा कहेगा ?'

'क्या कहेगा ?'

'वही लड़की !'

'इस्स ! कहेगा ? दिखा नहीं दूंगी मैं ? तू क्या सोचती है, मैं क्या जटा भैया की बहू जैसी हूगी ? हरगिज नहीं। तू देख तो जरा, पद्य बनाकर क्या दुर्गत करती हूं उसकी।'

पुन्नू ज़रा सहमकर बोली, 'लेकिन कैसे बनाएगी ?'

'कैसे ? जैसे कनक ठाकुर जोड़ते जाते है। थोड़ा-सा बनाया भी है। सुनेगी ?'

'बनाया है ? सुना न ज़रा, सुना !'

सत्य ने आत्मस्थ होकर, जैसे स्वाद ले-लेकर इमली खाते है, कहा—

'जट्टा भैया, सूजे पाव,
जैसे भोंदू हाथी;
बहू-मार भैया के मेरे,
बेंग मारे दुलत्ती !'

'अरी सत्ती !' पुन्नू ने अचानक अकुलाकर सत्य को जकड़ लिया—'तू क्या है री ? अब तो तू पयार[1] बनाना सीखेगी।'

वह भी सत्य के लिए कोई बड़ी बात नहीं, कुछ इस भाव से वह बोली, 'वह जब सीखूगी, तब सीखूगी। अभी तो इसी पद्य को जो जहां है, सबको सिखाना पड़ेगा, समझी ? और जटा भैया को देखा नहीं कि—हि-हि-हि-हि।'

---

१. एक छंद।

धूप से पीठ बडी देर से चनचना रही थी, अचानक मानो हू-हू करके जलने लगी । ओ, मौलसिरी की छाया बरामदे से हट गई ! यानी बेला कुछ कम नहीं हुई है । मुसीबत में पड़ गईं मोक्षदा । उनके दोनों हाथ फंसे हुए थे और इधर पीठ का कपडा खिसक जाने से धूप सीधे पीठ पर पड़ रही थी । खुद वह देख नहीं पा रही थीं । और कोई पास में होती तो देख पाती कि हरताल के रंग जैसी उनकी पीठ का कुछ हिस्सा फफोले पड़ा-सा लाल हो उठा था ।

न:, तशर का यह कपड़ा न पहनकर भीगी सफेद कोर की साड़ी पहनकर ही यह अचार के काम में लगना था । भीगे कपड़े से देह की जलन कुछ मिटती है । ऊंची कोर के पत्थर वाले बड़े-बड़े दो बर्तनों को खींचकर वह बरामदे की खूंटी की ओट में पीठ को बचाने के लिए खिसक गईं ।

समंदर मे तिनका ! और धूप तो अभी दौड़ रही है । जरा ही देर में खूंटे की छाह सरक जाएगी ।

एकाएक मोक्षदा एक सत्य का आविष्कार कर बैठीं । तमाम साल धूप में ही जल-जलकर मरी मैं । यह तो टिकोरो का अचार चल रहा है, इसके बाद गुठलीवाले आम का मीठा अचार, तीता अचार, उसके बाद ही आ पड़ेगा अमावट का मौसम । और उस मौसम को सम्हाल लेना आसान नहीं । हां, अमावट के दिन बीतते-बीतते वर्षा उतर आती है । बरसात के दो-तीन महीने ही धूप में जलने से छुटकारा मिलता है । वर्षा खत्म होते न होते दुर्गा पूजा की धुन । दुर्गा पूजा के पहले सारे भंडारघर की झाड-पोंछ और सब कुछ को धूप में सुखाने की धूम पड़ जाती है । उसके बाद तिल के लड्डू ।

कविराज चटर्जी के यहा दुर्गा पूजा में तिल के जो लड्डू बनते है, मशहूर हैं । इतने बड़े-बड़े बनते हैं कि पकड़कर दात से काटते नही बनता । पकवान, आनंद लड्डू—कविराज के यहां का हर कुछ प्रसिद्ध है । लेकिन ये चीजें तो खैर, पांच जने के हाथ की है । देवी के भोग के लिए कुछेक सेर मिठाइया गंगाजल से भोग के घर में जरूर बनती है, पर बाकी सारे के सारे मे बहुतेरे लोग मदद देते है । लेकिन तिल का लड्डू मोक्षदा का ही डिपार्टमेंट है । क्योंकि तिल के लड्डू बनाने का वैसा हाथ सिर्फ इसी गांव में क्या, इस इलाके में नहीं । और यह नाम कुछ ऐसे ही हुआ है ? शुरू से अंत तक अपने ही जिम्मे रखती है, इसीलिए इधर-उधर नही हो पाता । बोरा बंदी तिल तो आ गया, उसके बाद ? उन तिलों को चुनना-बीनना, सफाई के साथ धोना, धूप मे सुखाना, ढेंकी मे कूटना—पीतल का बहुत बड़ा बर्तन चूल्हे पर चढ़ाकर गुड को उबालना

और फिर बड़े से धामे मे तिलचूर को डालकर गरम रहते ही लड्डू बनाना—इसका कोई भी काम अपने हाथों किए बिना चल सकता है भला ! एक बार शायद बडी बहू और छोटी बहूरानी ने तिल कूटा था। उस बार के जो लड्डू बने, मत पूछिए। छिलकों से भरे। और रंग भी काला कुचकुच ! लड्डू देखकर रामकाली हंसे थे। पूछा था—ये लड्डू किसके बनाए है ?

तभी से मोक्षदा सावधान हो गई है। ढेंकी के पास किसी को महज़ विठाने के सिवा और सारा कुछ आप ही करती है।

दुर्गा पूजा में धूप मे जलना तो सिर्फ तिल के लड्डू के लिए ही नही होता, घर-घर न्योता देने जाना, गुरु-पुरोहित के यहा सीधा पहुंचाना, यह सब भी तो मोक्षदा की ही ड्यूटी मे शामिल है। क्योंकि वह यहा की बेटी है। पहले काशीश्वरी ने भी कुछ-कुछ किया है, पर अब वह वीमारी से लाचार-सी हो गई हैं। घाट-बाट मे चलकर धूप में घूम-घूमकर काम कर लेना उनकी सामर्थ्य से बाहर है। सब कुछ मोक्षदा ही करती हैं और दिन मे कम से कम चौदह-पंद्रह बार नहाती है।

पता नही क्यो, आज मोक्षदा को बार-बार धूप की ही बात याद आ रही है। याद आया, पूजा की धूम कटते न कटते बरी का मौसम। साल मे बारह-चौदह मन बरी की खपत है। आमिष-निरामिष, दोनो तरफ की ज़रूरत इसी तरफ से पूरी की जाती है, क्योंकि बरी भी अचार की तरह शुद्धाचार की ही चीज़ है। और शुद्धाचार के लिए अपने सिवा और किस पर निर्भर करें मोक्षदा ?

बरी बनाते-बनाते मोक्षदा का हरताल रंग काला पड़ जाता है। हां, चीज़ जो बनती है, देखकर टकटकी बंध जाती है। गजब का हाथ। सावधान भी खूब रहती है। जहा तक बनता है, किसी को छूने ही नही देती। मिट्टी के बड़े-बड़े बर्तनों मे भरकर ढकने से ढंककर छीके पर रख देती है। जब जैसी जरूरत, निकालकर देती हैं। कितनी किस्में ! कोहड़ा बरी, खास्ता बरी, पोस्ता बरी, तिलौरी, जीरा बरी, मसालेदार बरी, खट्टी सब्ज़ी मे डालने के लिए मटर-खिसारी की बरी। स्वादों की बहार।

इन्ही मे फिर मूली की बरी को अलग रखना पड़ता है। कही भूल से कोई माघ महीने मे खा ले। माघ में मूली खाना और गोमांस खाने मे कोई फर्क नही।···खूटे की धूप खिसक गई। फिर से पीठ चनचनाने लगी। मन भी मानो चिनचिन करने लगा।

यह बरी का अध्याय खत्म हुआ कि आये बेर, आयी इमली। फिर धूप से जलने की छुट्टी कब मिले ?

यह सालों भर धूप मे जलने की जिम्मेदारी मोक्षदा को किसने दी, कौन

बताए ? लेकिन मोक्षदा जानती है, यह उन्हीं की जिम्मेदारी है।

कच्चे आम के अचार का काम समय-सापेक्ष है। तेल और आम को खूब मिलाना पड़ता है न ! हो जाने पर राय की महीन बुकनी मिलाकर बराबर धूप मे सुखाना।

कमर को खींचकर उठ खडी हुई मोक्षदा। पीठ में जहां जलन हो रही थी, हिलने-डुलने से वह फिर हू-हू कर उठी। लेकिन ताज्जुब है, सरसों बूकने के लिए रसोई में दाखिल होते ही जी हू-हू क्यों कर उठा ?

अंदर जाते ही कैसी बुद्धू-सी खड़ी हो गई मोक्षदा। कमरा आज इतना बड़ा क्यों दीख रहा है ? कहां, और कभी तो ऐसा नही लगता था ? बल्कि खाने के लिए बैठते वक्त एक-दूसरे से थोड़ी-थोड़ी दूरी रखकर जगह बनाने मे तो जगह कम ही लगती है।

कमरे में धूप नही है, तो भी छाया शीतल। इतना बड़ा कमरा जैसे धूप से खां-खां करते आंगन जैसा ही झां-झा, खां-खा कर रहा है। और उसी खा-खां करते कमरे के एक किनारे बड़े-बड़े दो चूल्हे अपनी लिपी-पुती साफ-सुथरी शकल लिए बहुतेरी अनकही शून्यता के प्रतीक-से बैठे हैं।

चूल्हों को आज आग की आंच नही सहनी पड़ेगी। आज अकेले में बैठकर स्तब्ध हो वे अपने सूनेपन का परिमाण आंकने का अवसर पाएंगे।

आज चूल्हों की छुट्टी है। इन सबकी आज एकादशी है।

मोक्षदा को छुट्टी क्यों नही है ?

कमरे के नाले के पास सदा एक पानी भरा घड़ा रखा रहता है—मौके-बेमौके के लिए। मोक्षदा ही अपने अंतिम स्नान के वक्त लाकर उसे रख देती हैं।

घड़े को झुकाकर अपने तेलवाले हाथों को मोक्षदा ने धो लिया और बार-बार पानी के छींटे मारने लगी—जलनवाली जगह ज़रा ठंडी हो। दुर्, हाथ धोने के लिए पोखरे में ही जाना ठीक था। एक बार बदन धो लिया जाता। बदन का चमड़ा भीगने से भी भीतर की प्यास कुछ मिटती है।

एकादशी के दिन प्यास की बात मन में लाना भी पाप है। मोक्षदा क्या यह नहीं जानतीं हैं ? तिस पर उन-जैसी उमरवाली सख्त-पोख्त मजबूत विधवा। लेकिन मन मे नही लाऊंगी, सोचने के बाद भी यदि मन में आ जाय तो उस पाप को किस हथियार से खेदा जा सकता है ?

धूप लगने से वैशाख-जेठ की धूप में प्यास ज्यादा लगती है, लेकिन उपाय क्या है ? आज ही तो दुनियाभर के बढ़ती कामों के करने का परम दिन है। आज जैसा अखंड अवसर और कब-कब मिलता है ?

राय की तलाश में ताख पर रखे फूलकढ़े रंगीन छोटे-छोटे बर्तनों में से एक को मोक्षदा ने उतारा। उन बर्तनों में चुन-फटककर साल भर का मसाला रखा जाता है और रोज की जरूरत के लिए निकालकर गीले लत्ते की पोटली में बांध दिया जाता है। केवल ऐसे खास प्रयोजन के वक्त ही मूल भंडार में हाथ डाला जाता है।

पत्थर के एक कटोरे में अंदाज से राय निकालकर सिलौटी बिछाकर मोक्षदा बैठने ही जा रही थी कि दरवाजे के पास शिवजाया का गला सुनाई पड़ा—'होते-होते यह कौन-सा काल आ गया, यह तो कलिकाल के चारों चरण पूरे हो गए लगता है। हमारी उस धड़ंग लड़की की हिमाकत की सुनी, छोटी ननद जी ?'

धड़ंग अवतार लड़की की हिमाकत सुनने से पहले भौजी की हिमाकत पर ही रे-रे कर उठी मोक्षदा—'आंगन के पांव से ही तुम बरामदे पर चढ़ आयी, संझली ? यहीं पर मेरे अचार की हांडी रखी है। यदि तुम लोग भी ऐसी यवन हो जाओ···'

शिवजाया जरा नाराज होकर बोली, 'तुम्हारी वही एक बात, छोटी ननदजी, भला अंगने के पांव से मैं यों ही बरामदे पर आ सकती हूं। देख लो, पांव में गोबर लगा है। हाथ से गोबर लाकर नीचे डाला और उसी में पांव रखकर तब तो ऊपर आयी हूं !'

पोखरे से पांव धोकर आना अगर संभव नहीं हो तो अनुकम्पा के रूप में मोक्षदा ने यही व्यवस्था कर रखी है। तो भी संझली की बात से वह निश्चिंत न हुई। संदिग्ध स्वर में बोली—'मैंने कहा, गोबर तो अपने ही यहां का है न ? या कि और किसी के यहां की जूठा-कूठा खाने वाली गाय का है ?'

'जरा सुनो इनकी बात'—जिरह को रोकने की चेष्टा में बोल उठीं शिवजाया—'भला अपने आंगन में दूसरे की गाय का गोबर कहां से आया ?'

लेकिन रोकना चाहने से ही क्या सब चीज रुकती है ? मोक्षदा का जिरह भी न रुका। वह जरा कटु हंसकर बोल उठी—'हाय राम, हमारे अंगना में परायी गाय का गोबर कहां से आएगा ! तुम्हारी बात सुनकर कभी-कभी लगता है संझली कि तुम अभी-अभी मां के पेट से निकली हो !'

शिवजाया ननद को बहुत डराती है, फिर भी छोटी ही ननद है न। इसीलिए खीजकर बोल उठी—'लो बाबा, देखती हूं, तुम्हारे पास आना ही बला है। गोविंद के यहां से लौटते समय अपने यहां की कीर्तिमान लड़की की करतूत सुनी और यहां हो गई, इसीलिए, खैर···'

मोक्षदा अब कुछ नर्म पड़ी। प्रायः सन्धि के ही सुर में बोली—'क्यों, किसने क्या किया ? सत्ती ने शायद ?'

'और फिर कौन ?' शिवजाया ने उदासी हटाकर वड़े ही उत्साह से वही पुराना अलाप लिया—'सत्य के सिवा कलेजे का इतना चौड़ा पाट और किसका है ? हरामजादी ने क्या तो पद्य बनाकर टोलेभर के लड़कों को सिखा दिया है और टोले के सारे ही लड़के जटा या जटा की मा को देखते ही झाड़ियों की आड़ से वही सुना देते है। जटा की मां तो गुस्से से गाली-सराप से एकाकार कर रही है।'

आखिर सारा कुछ सुनने के लिए धीरज धरे चुपचाप ताके हुई थीं मोक्षदा, अब भवों पर बल डालकर तीखे स्वर में बोल उठीं, 'पद्य बनाया है, मतलब ?'

'मतलब क्या मैंने ही पहले खाक समझा था।' लड़किया पद्य बनाती हैं, यह मैंने बाप के जनम मे भी नही सुना था। रास्ते से आते हुए सुना, एक झुंड लड़के ही-ही करके हंसते हुए कह रहे है—'जट्टा भैया सूजे पांव'''होठ बिचका-कर पयार छंद मे और जानें कितना क्या कहते जा रहे हैं।'

मोक्षदा ने भवो को और सिकोड़कर कहा, 'सत्ती ने पद्य बनाया है ?'

'और फिर कह क्या रही हू ?'

'इसी लड़की से इस कुल के मुंह पर कालिख-चूना पुतेगा।' सिलौटी को ठीक से बिछाते हुए मोक्षदा ने कहा, 'रामकाली चंदर अभी समझ नही रहे है, इसके बाद समझेंगे जब ससुराल से उसे यहा पहुंचा जाएगा। यह होंठ बिचकाकर पद्य—इसलिए कि जटा ने बीवी को मारा है ?'

'और नही तो क्या ? मैं कहती हू, बीवी को कौन मर्द नहीं मारता है। लेकिन ढलेल बीबी ने तिल को ताड़ कर दिया, दांती बैठाकर मुहल्लेभर के लोगों को जताकर तब रही। जटा की मा कहती है, टोले के इन छोरों की हरकत से बेचारा जटा घर से निकल नहीं पाता है। कैसी आफत है, समझो !'

घस-घस करके सिलौटी पर राय रगड़ते हुए मोक्षदा बोलीं, 'हाथ का काम निबटाकर मैं बहू के पास जाती हू। अच्छी तरह से समझा आती हूं। मां का सहारा रहे बिना लड़की कभी इतनी बिलल्ला बन सकती है ? टोले के लड़कों के साथ ही रात-दिन ऐसी मसखरी क्यों ? कोई कलंक रट जाय तो रामकाली का मुह कहा रहेगा ? पैसेवाला जानकर समाज तो रियायत नहीं करेगा।'

शिवजाया का काम कुछ बना।

जेठानी की पोती के खिलाफ छोटी ननद को जरा उकसा पायी। अन्त में बोलीं, 'तुम ही छोटी ननद जी कि यहां अभी भी वाजिब कहती हो, वरना हम लोग तो भय से ही काटा है।'

'भय किस बात का ?'

मोक्षदा दुम् से सिलौटी को उठाकर बोली, 'भय किस बात का ? भय

करूंगी भूत का, भय करूंगी भगवान का। आदमी से क्यों भय करने लगी? विधवा फुआ को अन्न से पाल रहा है, इसलिए रामकाली को वाजिब नहीं सुनना पड़ेगा, यह तुम मत सोचो। खैर, जाने दो। जटा की वहू के पराच्छित का कुछ हुआ?'

'हाय राम, तुमने सुना नही। पराच्छित नही करेंगे वे।'

'नही करेंगे?'

'नही! रामकाली ने शायद पंडित को धमकाया है—पराच्छित का विधान बताएंगे तो उन्हें गांव से निकाल दिया जाएगा।'

'मतलब?' आसमान से गिर पड़ीं मोक्षदा।

'मतलब समझो! दंभ और क्या! मैं गांव का सिरमौर हूं, मैं जो जी मे आएगा, करूंगा।'

'हूं!'

राय की बुकनी छिड़के हुए अचार के दोनों बर्तनों को धमाधम रखकर कमरे के किवाड़ को खीचकर जंजीर चढाती हुई बोली—'जा रही हूं। देखती हूं, पैसे का कितना गुमान हुआ है रामकाली को। सत्ती घर में है?'

'घर में? दोपहर को घर मे रहने वाली लड़की है वह? जाने कहा अगीचे-बगीचे में घूमती फिर रही है। ब्याहता लडकी का ऐसा कलेजा अपनी इतनी उमर मे मैंने कभी नही देखा।'

तशर के कपड़े को सम्हालकर पहना, अंगना पार करके घेरे के दरवाज़े को खोलकर मोक्षदा रास्ते पर उतरी। लौटने के बाद नहाना तो होगा ही, एक बार क्यों, जाने कितनी बार—लेकिन इन बातों का कोई किनारा करना ही होगा।

दुनिया मे कही कोई अनाचार हो, मोक्षदा नही सह सकती।

लेकिन यह क्या?

जरा ही आगे बढ़ी कि ठिठक जाना पड़ा।

ऐसा ठिठकना, जैसे काठ मार गया हो।

देखा, तीन कोर की साडी पहने, कमर बांधे, रूखे बाल उड़ाती हुई घुटने भर धूल लगाए लड़के-लड़कियों की एक टोली के साथ सत्ती ही-ही करती हुई आम के बगीचे में जा रही है—और एक स्वर में कोई पद्य-सा पढती हुई!

दांतों से दांत दबाकर और जरा आगे बढ़ी मोक्षदा, उस टोली के पीछे एक पेड़ की आड़ में खडी होकर सब-कुछ सुनने की कोशिश की। मगर ही-ही हसी की बाढ में खाक कुछ सुनाई भी पडे! तो भी बच्चों के गले की पैनी आवाज और फिर बार-बार दुहरा रहे थे, लिहाजा सब कर्णगोचर होकर मर्मगोचर हो गया।

परत-परत में जिसके हंसी थी, वह पद्य सुना—

जट्टा भैया, सूजे पांव,
जैसे भोंदू हाथी;
वहू-भार भैया के मेरे,
बेंग मारे दुलत्ती ।
जट्टा-जट्टा पेट मोटा,
और अकल का काल;
देखो मजा जाएं तो हजरत
अब अपनी ससुराल ।

कहते-कहते वे सब चले गए ।

मोक्षदा सन्न-सी होकर खड़ी रही ।

सन्न हुई भतीजे की बिटिया की कवित्व-शक्ति देखकर नही, उस लड़की के भविष्य की सोचकर । और उसी को वह शासन करने आयी है । अब उसे मार-पीट कर सीधी करने की साध उन्हें नही रही ; सिर्फ मन ही मन इतना समझा, इसके चलते उन लोगों को ही सदा जल-जलकर मरना होगा । क्योंकि ससुराल से तो मार-मारकर निकाल ही देगा ।

कागज की पुड़िया में मुड़ी कुछ गोलियों को आचल की गाठ से खोलते-खोलते पैने गले को कुछ धीमा करके सत्य ने कहा, 'यह लो भौजी, कोई गोली है । बाबू जी ने कहा है, सुबह-साझ एक-एक गोली पान के रस मे खाना । बदन में जोर होगा ।'

खाक जोर !

मन का जोर तो समंदर में डूब गया । मारे डर के छाती मे कंपकपी । करुण स्वर मे जटा की बहू ने फिसफिसाकर कहा, 'ननद जी, पैरो पड़ती हूं तुम्हारे, दवा तुम ले जाओ । दवा खाते देखकर सास जी मुझे जिन्दा न छोड़ेगी ।'

सत्य गृहिणी की नाईं गाल पर हाथ रखकर बोली, 'हाय राम, जरा हाल सुन लो ! शरीर कमजोर हो गया है, सेंत की दवा मिल रही है, खाने से सास तुम्हें मार डालेगी ? तुमने तो हैरान कर दिया, भौजी !'

'दुहाई तुम्हारी, जरा धीरे बोलो'—प्रायः रुआसी-सी हो जटा की बहू ने कहा, 'तुम्हारे दोनों पैरों पड़ती हूं । सास सुन लेगी तो तालाब में डूब मरने के सिवा और कोई चारा नही रहेगा ।'

अब की सत्य जरा सम्हलकर बैठी । बैठकर अवाक् हो धीरे-धीरे बोली—'अजी, क्या सुन लेगी तो ?'

'यही जो मार डालने की बात कही । सभी तो तुम्हें मालूम है बहना । मामा

जी ने दवा भेज दी है और वह दवा मैं खा रही हूं ! अरे बाप रे, देखो ननद जी, मेरे कलेजे मे जैसे ढेकी कूटी जा रही है।'

जटा की स्त्री की व्याध द्वारा पीछा किए गए हिरन की आखो जैसी आखें और राख जैसे हुए चेहरे के रंग की ओर देखते-देखते सहसा सत्यवती कैसी चिन्ताशील-सी लगने लगी। जरा देर वह चुप रही और दवा की गोलियों को फिर से गाठ मे बांधती हुई बोली, 'अच्छा तो इन्हें वापस ले जाती हूं।'

वापस !

मामाजी के पास !

दूसरे एक भय से जटा की बहू के कलेजे का लहू हिम हो आया। और अब की वह रुआसी-सी नही हुई, फक् से रो ही पड़ी। —'अरी ओ सत्ती ननद जी, तुम्हारा पैर धोआ पानी पीऊं, तुम्हारी खरीदी हुई बांदी बनी रहूं—दवा की गोलियां मामाजी को वापस मत देना।'

'मामाजी को वापस मत देना !'

और सत्य अचानक अपनी स्वाभाविक हंसी हंस उठी।—'बस हो गया ! देखती हूं बीमारी से तुम्हारी अकल भी मारी गई है, भौजी ! गोलियां तुम खाओगी नही, इन्हें वापस भी न दू, फिर क्या करूं, मैं खा जाऊं ? वही सही, पान के पत्ते का रस दो थोड़ा। घोलकर सबको एक ही साथ पी जाऊं मैं !'

इस बार जटा की बहू ने खोलकर मन की बात कही। सास की गैरहाजिरी मे उसे दवा खाने की हिम्मत नहीं है और कह-सुनकर उनकी मौजूदगी में खाने की तो और नही—सो···

'सो पोखरे में !'

'पोखरे में ?'

सत्य की आंखों में चिनगारी लहक उठी। 'दवा बाबूजी की दी हुई है। स्वयं धन्वंतरि। इन गोलियों का अपमान धन्वंतरि का अपमान है, समझती हो ?'

'तो मैं क्या करूं ?'

फफक्-फफक्कर रोने लगी जटा की बहू।

उसकी हालत देखकर सत्य कातर हुए बिना नही रह सकी। जरा सोच-समझकर बोली—'तो फिर एक काम करूं। फूफू को ही दिए जाती हूं। कहूंगी, गोलिया बाबूजी ने भेजी हैं। बाबूजी ने बेशक यह कहा था कि अपनी फुआ को मत देना, नही तो वह दवा खाने नहीं देगी, फेंक देगी। मैं खुशामद करके, निहोरा-विनती करके उनसे कह जाती हूं।'

सत्य उठ खड़ी हुई कि तुरत उसके कपड़े की कोर खींचकर जटा की बहू उसके पैरों पड गई—'ऐ ननद जी, इससे तो बेहतर है तुम मेरे गले में पांव रख-

कर मुझे मार डालो, मछली काटने के उस हंसुए से मेरा गला काटकर जाओ।'

सत्य फिर बैठ पड़ी।

एक निःश्वास छोड़कर बोली—'अच्छा भौजी, यह तो बताओ, तुम लोगों को इतना डर काहे का है?'

६

हुम् हुम् हुम्!

फटे हुए पांवों के घुटनों तक ही नहीं, जीभ और मुंह में भी धूल भर रही थी कहारों के! जेठ के दिन और खराब कच्ची सड़क। कुछ-कुछ तो बिलकुल धू-धू करता मैदान, कोई पेड़ नहीं, छांह नहीं। रास्ते को कुछ संक्षेप करने के लिए खेतों में उतरना पड़ रहा था, इसलिए और भी परेशान हुए जा रहे थे लोग! चार जने कंधा बदल-बदलकर दौड़ रहे थे, फिर भी रह-रहकर चूर हुए जा रहे थे वे।

लेकिन रामकाली को तो अभी कहारों को हमदर्दी दिखाने का उपाय नहीं था। चार दिन हो गए, गांव से बाहर हैं। गाव के कई रोगी हाथ में थे, पता नहीं, अभी वे कैसे हैं।

जीरेट के जमींदार के यहां रोगी देखने गए थे। एक-दो ही गाव मे तो नहीं, दस-दस गावों तक उनका नाम-जस है।

राजा जैसी खातिरदारी करके रखा था उन लोगों ने और दो दिन और रुक जाने के लिए पांव पकड़कर खुशामद कर रहे थे। रामकाली राजी न हुए। कहा, 'रुकने की जरूरत नहीं है। जो दवा दिए जा रहा हू, तीन दिन के अंदर उसी से रोगी भला-चंगा हो जाएगा। लेकिन हां, पथ्य के बारे में जो कहे जा रहा हूं, उसका पालन ठीक से होना चाहिए।'

कविराजजी के रास्ते में खाने के लिए उन लोगों ने कलमी आम की एक टोकरी पालकी पर रख दी थी। ना-ना नहीं सुनी। पांव पसारने में हर वक्त वह टोकरी पावों को लग रही थी और रामकाली खीज-खीज उठते थे। मुसीबत है! राह-बाट में रामकाली कुछ खाते नहीं, इस बात को उन लोगों ने माना नहीं। जमींदार साहब ने खुद खड़े होकर टोकरी रखवा दी। तो भी तो डाबों को रामकाली ने रखने नहीं दिया। कहा, 'तो फिर ये कहार आपके बगीचे के इन फलों को ही ले जायं, मैं पैदल ही चलता हूं।'

पके हुए आम! जेठ की दोपहर की झुलस से और भी तैयार हो गए। रह-

रहकर मीठी खुशबू आ रही थी। रामकाली आजिज हो रहे थे और कहार लोग मानो मन से उस खुशबू को चाट रहे थे। सोच रहे थे, उन डाबों को पालकी के अंते-कोने रख लिया होता, तो क्या नुकसान था! तो भी तो कान्हा के जीवों के भोग मे आता।

अनमने-से होकर शायद कुछ ढीले पड़ गए थे वे लोग कि मालिक की हांक से चौंक उठे।

पालकी से मुह बाहर निकालकर रामकाली कह रहे थे, 'अरे भैया, सो मत जा, जरा कदम बढा।'

बात खत्म की और फिर पलटकर बोले, 'एक-एक तो, धीमा कर। लगता है, पीछे से और कोई पालकी आ रही है।'

चार कहारों के आठ पांव ठिठक गए।

हा, पीछे से आवाज तो आ रही है। अचानक ही आ रही है। हुम् हुम् की आवाज धीरे-धीरे स्पष्ट हो रही है।

अगुआ कहार गदाई मुहमाली ने पालकी के डडे से गरदन हटाकर पीछे की ओर देखा और उमगे स्वर मे कहा, 'जी मालिक, आपने बिलकुल ठीक कहा! पालकी ही आ रही है कोई! लगता है, कोई दुलहा है।'

दुलहा!

रामकाली ने गरदन को पालकी से बाहर और बढाया और गले की आवाज को काफ़ी बढ़ा करके बोले, 'बारात का दुल्हा है, यह खबर इतनी जल्दी कौन दे गया तुझे?'

गदाई ने सिर खुजाते हुए कहा, 'पालकी के दरवाजे पर पीला कपड़ा लटक रहा है और कहारों के पहनावे में लाल रंग से रंगाया खेंटे है।'

खेंटे यानी धोती का संक्षिप्त संस्करण। और-और मजदूरों की नाई कहारों का भी पूरी धोती पहनने से नहीं चलता। नसीब भी कहां होता है? मोटी सात हाथ की खेंटे ही उनकी जातीय पोशाक है। शादी-ब्याह, जनेऊ-वनेऊ में लोगों के यहा से बीच-बीच मे वही धोती उन्हे मिलती है। लाल रंग से रंगी। इससे उन्हें सुविधा भी खूब होती है। तीन-चार महीने साफ किए बिना ही काम चल जाता है।

लाल और पीले रंग ही नही, धीरे-धीरे आदमी भी नजर आने लगे। गदाई ने और एक उमंग का आविष्कार किया, 'पीछे-पीछे बैलगाड़ी भी आ रही है, मालिक! बैलों के गले की घटी सुन पा रहा हूं। बेशक यह बरात ही है। इधर ही कहीं जायगी। बगल के उस गाव की सड़क से निकली है।'

'पालकी उतार दे!'

गंभीर स्वर में रामकाली ने आदेश दिया।

देख लेना जरूरी है कि गदाई का जो अंदाज है, बात वही है या नही ! और यह भी जान लेना जरूरी है कि बात अगर सच है तो उनके गाव में ऐसा कौन हिमाकती है, जो लड़की का व्याह कर रहा है और रामकाली को उसने खबर नही दी ! यदि इस गांव का न भी हो, तो भी पता लगाना चाहिए कि गांव से लोग यह बारात ले कहां जा रहे हैं !

रामकाली के मन में जो भी हो चाहे, जरा देर के लिए कहारों के जी में जी आया। उन्होंने पालकी एक पाकड़ के तले उतार दी और कुछ हटकर अपने गले के अंगोछे से हवा करने लगे।

मालिक की नजरों के सामने तो हवा नही खा सकते हैं न !

कुछ ही देर मे दूर की पालकी करीब, और करीब आ गई।

रामकाली पालकी से बाहर निकले। कंधे पर जो मटके की चादर थी, उसे संवार लिया और राजोचित ढंग से खड़े होकर जलद-गंभीर स्वर में आवाज दी, 'कौन है ?'

पालकी रुक गई। उस गले की उपेक्षा करके बिना रुके चल देने की जुर्रत किसे है ?

पालकी रुकी।

उस पर दुल्हा और उनका अभिभावक था। अभिभावक के साथ-साथ किशोर दुल्हे ने भी डरते-डरते अपना मुंह बाहर निकाला।

वैसे लंबे-चौड़े, गोरे-चिट्टे व्यक्ति नीचे खड़े है, लिहाजा उनके सामने पालकी पर कौन रह सकता है ?

उस पालकी से भी दुल्हा के अभिभावक निकले।

हाथ जोड़कर बोले, 'जी, आप ?'

रामकाली की भवें लेकिन तब तक सिकुड़ आयी थी। तीखी निगाह उनकी पालकी के अंदर गौर करने लगी थी। अभ्यास के मुताबिक दोनों हाथ उठाकर प्रतिनमस्कार के ढंग से बोले, 'मैं हूं रामकाली चटर्जी।'

रामकाली चटर्जी !

वह भले आदमी विह्वल-से हो, न स्वगत, न प्रश्न जैसा—कैसे ढंग से तो बोल पड़े—'कविराज जी !'

'हां ! उस नौजवान के कपाल पर चंदन देखा। लगा, व्याह है शायद।'

वह सज्जन उम्र मे रामकाली से छोटे न होने हुए भी विनम्रता से कीटाणु-कीट जैसा छोटा बनकर उनके चरणों की धूल लेते हुए बोले, 'जी हां ! ओह, कैसी खुशकिस्मती अपनी कि इस शुभ यात्रा में आपके दर्शन हुए।'

रामकाली की वह पैनी नजर पालकी के अंदर खोज करती ही रही, तो

भी धीमे से कहा, 'पहचानते हैं मुझे ?'

'अह् हा, आपको नहीं पहचानता है, इलाके में ऐसा कौन बदनसीब है ? हां, आंखों देखने का सौभाग्य पहले नहीं हुआ था। राजू, पालकी से बाहर निकलो ! चरणों की धूल लो।'

'छोड़िए-छोड़िए ! दुल्हा है ब्याह का !' रामकाली ने स्वाभाविक गंभीर गले से कहा, 'आपका लड़का है ?'

"जी नहीं, भतीजा है ! मेरे छोटे भाई का लड़का। वह पीछे है, बैलगाड़ी पर। और भी सब सगे-संबंधी आ रहे हैं न !'

'हूं। लड़की कहा की है ?'

'जी, इसी पाटमहल की। पाटमहल के लछमी बनर्जी की पोती !'

'लक्ष्मीकांत बनर्जी की पोती ?' रामकाली जैसे सहसा सचेत हुए—'अच्छा ? आप लोग कहां के है ? आपके ठाकुर का नाम ?'

'हम लोग वलागढ के है, ठाकुर का नाम है ईश्वर गंगाधर मुखोपाध्याय, पितामह का ईश्वर गुणधर मुखोपाध्याय, मेरा…'

'रहने दीजिए, आपके नाम की जरूरत नहीं। यानी आप लोग मुखुटी कुलीन हैं ! मगर रंग-ढंग ऐसे यजमानी भटचारज जैसा क्यों है ? खैर, छोड़िए। आपसे दो बातें करनी है। वर को लेकर आप घर से निकले कब है ?'

'यजमानी भटचारज' शब्द से दुलहे के बड़े चाचा कुछ खीजे। गंभीर होकर बोले—'आभ्युदायिक श्राद्ध के बाद।'

'सो तो समझा, लेकिन, कब ? किस समय ?'

'जी, एक पहर आगे।'

'हूं ! दुलहे के कपाल पर जो चंदन का टीका है, वह क्या उसी वक्त का है ?'

'चंदन का टीका ?'

यह कैसा सवाल !

दुलहा के चाचा तरह-तरह के सवालों के लिए तैयार हो रहे थे, पर दुलहे के चंदन-टीका के समय जैसे अजीब प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए अबोध की नाईं बोले, 'क्या कह रहे है ?'

'कह रहा हूं, लड़के के माथे पर जो चंदन लगा है, वह क्या रवाना होने के ही समय का है ?'

'जी हां ! बेशक उसी समय का है।' दुलहा के चाचा उत्साह के साथ बोले, 'चलते वक्त स्त्रिया जैसे लगा दिया करती है, वैसे ही लगाया गया है। हमारे घर की स्त्रियों का, समझा आपने, इन कामों में बड़ा नाम-गाम है। पीढे पर आलपना आंक देने के लिए मुहल्ले से बुलाहट आती है। श्री गढ़ने के लिए,

वर-वधू को सजाने-संवारने के लिए···'

पालकी की ओर ताकते-ताकते रामकाली फिर कैसे अनमने-से हो गए थे। इस बीच पीछे की दोनों बैलगाडिया आ पहुंची। पालकी का रुकना और दूसरी पालकी के सवार से बातचीत होते देख जरा घबराकर दुलहे के बाप भी उतरकर आ खड़े हुए।

अनमने रामकाली एक लंबा निःश्वास छोड़कर गहरे स्वर में बोले, 'मैं आपसे एक आग्रह करता हूं मुखर्जी महोदय, आप अपनी यात्रा स्थगित कर दें।'

'यात्रा स्थगित कर दें!'

बारात! दुलहे के चाचा और बाप हां किए ताकने लगे। यह आदमी पागल है कि शैतान! याकि कन्यापक्ष से इनका बैर है!

उधर कहारों के पसीना छूट रहा है। धूप असह्य होती जा रही है। दोनों पालकी के कहार जरा दूर खड़े आपस में बतियाते हुए बात को समझने की कोशिश कर रहे थे और बार-बार इधर ताक रहे थे, कब पालकी उठाने का हुक्म हो!

कोई बात जरूर है, यह अनुमान करके इतने में बैलगाड़ी से उछलकर एक आदमी उतर पड़े थे। ये थे दुलहा के फूफा। गाड़ी की टप्पर के अंदर बैठे-बैठे गरमी से यों ही पसीना-पसीना होकर उनका मिजाज़ गरम हो रहा था, उतरकर यात्रा स्थगित करने की बात सुनते ही आगबबूला हो उठे, 'आप हैं कौन, महाशय! चकमा देने को और कोई जगह नहीं मिली आपको? यात्रा बनाकर बारात निकली है और बीच रास्ते में आप रोड़ा अटका रहे हैं!'

दोनों भाई मुखर्जी बहनोई के ऐसे रूखे व्यवहार से विचलित होकर झट बोल उठे, 'आह, गांगुली बाबू, आप किनसे क्या कह रहे हैं? पता है, कौन हैं ये?'

'मैं जानना भी नहीं चाहता, मुखर्जी! जो आदमी ऐसे अर्वाचीन-सा बोलता है···'

'चुप रहो!' अचानक जैसे सोया बाघ गरज उठा जागकर—'ब्राह्मणकुल के गंवार, चुप रहो!'

'मुखर्जी!' बाघ के बाद लोमड़ी चिल्लाया, 'तुम्हारे बेटे के ब्याह में अपमानित होने के लिए नहीं आया हूं। ये तुम्हारे कोई बड़े कुटुंबी हैं शायद! तो फिर इन्हीं को ले जाकर ब्याह कराओ, मैं चला।'

''अह्‌ हा, कर क्या रहे हैं, गांगुली बाबू! ये हैं हमारे सात गांवों के अग्रगण्य कविराज जी! जरूर किसी अनिवार्य कारण से ये यात्रा स्थगित करने को कह रहे हैं।'

'कविराज चटर्जी! ऐ!'

गांगुली की धोती का पीछा ढीला हो आया। अचानक उन्होंने जीभ निकाली, जीभ को दांत से काटा और दोनों हाथों से कान मलकर उम्र की मर्यादा भूल साष्टांग दंडवत् कर बैठे।

रामकाली ने प्रणाम करने वाले की तरफ देखा ही नहीं। उसी स्थिरता के साथ कहा, 'हां, अनिवार्य कारण से ही कह रहा हूं, मुखर्जी बाबू ! यात्रा आप स्थगित कर दीजिए, वरना आपके बेटे की बारात रोक लेने को कहूं, ऐसा अर्वाचीन मैं वास्तव मे नही हूं।'

बड़े मुखर्जी ने हथेली रगड़ते हुए कहा, 'जी, भला यह भी बताना है ! मतलब लछमीकांत बाबू के कुल मे कोई दोष…'

'आ, मुखर्जी बाबू, दया करके आप मुझे इतना इतर न सोचें। मैं यह कह रहा हूं कि बेटे के ब्याह में जाकर आप विपत्ति मे पड़ेंगे। आपका बेटा अस्वस्थ है।'

लड़का अस्वस्थ है ? यह फिर कैसे दाव की बात ! यह तो ठीक समंदर की तरफ से ढेला आने जैसा हुआ। इस ढेले की तो आशंका नहीं थी।

कन्यापक्ष मे कुछ गोलमाल है और ये अवश्य ही कन्यापक्ष के कोई 'खास हितू' है—मुखर्जी-बंधु यही सोच रहे थे। जो स्वाभाविक है। सो नहीं, बीच रास्ते मे रोककर यह कैसा दबाव !

'लड़का अस्वस्थ है ! कह क्या रहे है, कविराज जी ! यह तो आप बिलकुल असंभव बात बता रहे हैं। लड़का तो मेरा सहज स्वस्थ हैं। उपवास और दोपहर के ताप से शायद थोड़ा सूखा-सूखा-सा लग रहा है।' छोटे मुखर्जी ने कातर होकर कहा।

'नहीं, सूखा-सा नही लग रहा है।' रामकाली ने बादल-से गंभीर स्वर में कहा, 'बात उलटी है बल्कि। लड़का बदस्तूर स्वस्थ है। गौर करें तो साफ पता चलेगा। मैंने शुरू मे ही देख लिया था और रोकने की नीयत से ही आपको टोककर रोका था। लड़के के चेहरे पर मैं शिरःशूली सान्निपातिक के लक्षण देख रहा हूं। विवाह-मंडप में ले जाकर आप मुसीबत मे पड़ेंगे। घर लौट जाइए और बेटीवालों को खबर पठा दीजिए।'

दुल्हे के फूफा विनय भूलकर फिर बिगड़ उठे, 'यह तो खासा झमेला खड़ा कर दिया ! आज ही ब्याह है, रात के पहले पहर मे लग्न, और यहां से हम दुल्हे को लेकर वापस लौट जाएं, बेटीवालों को खबर भेजें कि लड़का बीमार है ? यह बच्चों का खेल है क्या ? समझ रहा हूं, आप बेटीवालों के बड़े हितैषी हैं।'

रामकाली का गोरा मुखड़ा धूप से एक तो यों ही लाल हो उठा था, अब आग जैसा लहकता हुआ दीखने लगा।

तो भी वे उत्तेजित न हुए।

हिकारत से गांगुली पर एक कटाक्ष डालते हुए बोले, 'बजा फरमाया आपने—बड़े हितैषी! लक्ष्मीकांत बनर्जी मेरे मामा के सतीर्थ हैं—पिता तुल्य। उनकी पोती ब्याह की ही रात में विधवा हो जाय, यह मैं नही चाहता।'

स्वच्छ मेघहीन आकाश से जैसे गाज गिरी।

कैसे अलक्षण, अपशकुन की बात!

यह अभिशाप है कि किसी दिमाग खराब आदमी की बकवास? मुखर्जी बंधु गले का जनेऊ हाथ मे लेकर हा-हा कर उठे।

रामकाली अकंप दीए की लौ-से कठिन हृदय वाले विचारक अपराधी को फांसी की सजा सुनाकर भी जैसे स्थिर रहते हैं, वैसे ही अचल, अटल, अडिग खडे रहे।

अभिशाप देते न बना। हाथ मे जनेऊ थामे मुखर्जी बंधु रो पड़े, 'आप यह क्या कह रहे हैं, कविराज जी?'

'आखिर करूं क्या, कहिए! मैंने मुह पर स्पष्ट सुना देना नही चाहा था, आप लोगो ने ही कहलवाया। सुनिए, यदि भला चाहते हैं, तो अभी भी लड़के को उसकी मा के पास ले जाइए। मैं साफ देख रहा हूं, साक्षात् काल उसके सिरहाने खड़ा है। वाद-विवाद में और समय नष्ट न करें। और आप लोग यों उचाट होंगे तो लड़का घबराएगा।'

लेकिन दोनों भाई मुखर्जो भी तो आखिर रक्त-मास के ही आदमी ठहरे। उनका भी मन विश्वास-अविश्वास का बना है। जो लड़का पालकी के अन्दर मजे में बैठा है, बीच-बीच में सिर निकालकर देख लेता है कि बाहर क्या हो रहा है, जिसके कपाल पर चन्दन का टीका अभी भी झक-झक कर रहा है, गले की माला से सुगन्ध निकल रही है—उसके सिरहाने मौत खड़ी है, एक मामूली आदमी की बात पर कैसे विश्वास कर ले? और उसी बात पर यकीन करके एक भले आदमी को मौत सरीखे सर्वनाश मे ढकेलते हुए मूढ की नाईं रवाना हुए दुल्हे को लेकर लौट जाए? बेचारे बेटीवालों पर कैसी बीतेगी! कन्या का लग्नभ्रष्ट होना मरण से कुछ कम थोड़े ही है।

न:! असंभव है यह, निश्चय ही कुछ षड्यन्त्र है इसमे! शायद हो कि इस चटर्जी से लक्ष्मीकांत बनर्जी की कोई दुश्मनी हो, या यह आदमी कविराज चटर्जी ही न हो! कोई पगला ब्राह्मण हो! फिर भी उस व्यक्तित्व के सामने सब-कुछ कैसा तो गोलमाल हुआ जा रहा था। बेटे के बारे मे उतने बड़े अभिशाप जैसी बात!

छोटे मुखर्जी ने कुछ ही दूर पर खडी पालकी की ओर ताककर मास रुंधी छाती से कहा, 'मैं तो रोग का कोई लक्षण ही नही देख पा रहा हूं, कविराज जी!'

रामकाली जरा विषादसनी हंसी हंसे—'वह अगर देख पाते तब तो आपमें और मुझमें कोई फर्क ही नही रह जाता, मुखर्जी बाबू ! आइए, इधर खिसक आइए। लडके के कपाल पर चन्दन की रेखा को देख रहे है ? अभी-अभी लगाया गया हो, ऐसा गीला है, गोकि आप बता रहे है एक पहर आगे लगाया गया है ! वैसे में तो चंदन को सूखकर खडिया-सा हो जाना चाहिए था। नही हुआ। इसलिए कि छिपे सान्निपातिक से सारा शरीर रसस्थ हो गया है।'

'यह बात !' दुलहे के बडे चाचा हस पडे, 'कविराज जी, खूब सम्भव है, यात्रा-कष्ट से आप बहुत थक गए है इसीलिए लक्षण-निर्णय मे गलती कर रहे हैं। गर्मी के दिन है, पसीना चरने की वजह से चन्दन को सूखने का मौका नहीं मिला—यही बात है ! अरे ओ कहारो, चलो। पालकी उठाओ। शुभयात्रा मे यह कैसी आफत !'

रामकाली ने लक्षण-निर्णय मे गलती की ! उनके अपने ही माथे की नसें फट पड़ेगी क्या !

वे एक बार अपनी पालकी की ओर बढ़ने को तैयार हुए, मगर जाने क्या सोचकर ठिठक गये और और भी भारी गले से बोले, 'सुनिए मुखर्जी बाबू, रामकाली चटर्जी से लक्षण-निर्णय में भूल हुई है, यह वाक्य अगर और किसी क्षेत्र मे कहा होता तो इस ढिठाई का समुचित जवाब पा जाते लेकिन अभी आपका संकट का समय है, उधर बेटीवाले आफत में हैं, इसीलिए छुटकारा मिल गया। लक्ष्मीकांत बाबू के यहां तुरन्त यह खबर कर देनी चाहिए और वह काम मुझी को करना पडेगा। जरूरत हुई तो पालकी छोड़कर घोडे का सहारा लेना पड़ेगा। मगर आपको अन्तिम बार सावधान किए जाऊ कि लडके के माथे की नस फट-कर लहू बहना शुरू हो गया है—आंखो की नस का रंग और रग की सूजन को गौर करने से आप खुद भी इसे समझ सकते हैं। लगता है, जरा ही देर मे विकार शुरू होगा। बता देना मेरा फर्ज है, इसलिए मैंने बता दिया। लक्षण-निर्णय मे भूल बता रहे थे न ? ईश्वर से प्रार्थना है, रामकाली कविराज के विचार की जिसमें भूल ही हो ! धूप के पसीने को काल का पसीना सोच लेने का भ्रम ही उसे हुआ हो, जिसमे यही हो। और क्या कहूं ? अच्छा, नमस्कार ! ···अरे गदाई, उठा पालकी। तेजी से जरा बशीर के घर की तरफ चल तो। घोड़ा लेना पड़ेगा।'

पालकी उनकी चलने लगी कि छोटे मुखर्जी दौडे-दौड़े आए। लगभग रोकर ही चीख उठे, 'कविराज जी, आपने इतने बड़े सर्वनाश की सूचना ही जब दी, तो जरा दवा नही दी ?'

रामकाली गंभीर और उदास से अपना हाथ जरा हिलाकर कपाल से लगाते हुए बोले, 'देनी होती तो आपको कहना न पड़ता, मैं खुद ही देता। लेकिन अब

तो स्वयं धन्वंतरि के बाप के भी बूते की बात नहीं।'

उधर वाली पालकी पर सवार होकर बड़े मुखर्जी आजिज आए-से बोल उठे, 'दुर्गा-दुर्गा! इतना विघ्न! जाने किसका मुंह देखकर चले थे! कहां से तो यह आफत···ऐ राजू, ऐसे ऊंघ क्यों रहे हो? गर्मी से तकलीफ हो रही है?'

राजू ने दो सुर्ख आंखें खोलकर कहा, 'नहीं चाचा जी, सिर्फ सर्दी लग रही है जोरों की।'

७

आंचल डुबाकर हिला-हिलाकर नीचे के पानी को ऊपर और ऊपर के पानी को नीचे कर रही थी सब—गरम पानी को ठंडा करने के लिए। बेला झुक आयी थी, फिर भी पोखरे का पानी उबल रहा था। उस पानी मे उतरकर हिलोड़ने से बदन ठंडा होने के बजाय जलता ही है। फिर भी पानी का आकर्षण बड़ा आकर्षण है। इसीलिए बेला झुकते ही गांव की नवेलियां पोखरे मे उतरती ही है।

पुन्नू, टेंपी, खेंदी, पूटी आदि छोकरिया चटर्जी-पोखरे के पानी को घोंट-सी रही थी। अभी तक सत्य क्यों नही आयी, यही सोच रही थी वे और अनुपस्थित सत्य को सतुष्ट करने के लिए ही शायद पानी को ठंडा करने के अभियान को बड़े जोरों से चला रही थी। सत्य उन लोगों की प्राणो से प्यारी है।

सत्य क्या सिर्फ उनके दल की नेत्री है?

भगवान जाने, किस खूबी से सत्य उन सबके हृदय की भी नेत्री है। सत्य के बिना उन सबका खेल शिवविहीन दक्ष-यज्ञ के समान है। पोखरे में 'घोगघो रानी, कितना पानी' के खेल मे सत्य ही अगुआ है—इसीलिए पोखरे के उबलते पानी को बार-बार ऊपर-नीचे करते हुए वे एक-दूसरे से पूछ रही थीं—'सत्य को क्या हो गया?'····'घर मे तो उसे नही देखा?'····'कहा तो था कि ठीक वक्त पर भेंट होगी।'····'कहीं बगीचे में तो नही है?'····'दुर, अकेली-अकेली बगीचे मे क्या घूमेगी? ब्याही लड़की है, जी में डर नही है?'····'डर? सत्य को भी डर! देख लेना, ससुराल जाकर वह सास, फूफू-सास से नहीं डरेगी।' ····'इसमें ताज्जुब नहीं, जैसी है वह।'

सत्य अपनी सभी सखी-सगियों की जो प्राणों की देवी है, उसकी खास वजह शायद उसकी यही निर्भीकता है। अपने आप मे जो खूबी नही है, जो हिम्मत नही है, वह खूबी, वह हिम्मत दूसरे मे देखकर मोहित होना आदमी का स्वाभाविक धर्म है। निर्भीकता के सिवा भी सत्य में कितने गुण हैं। खेल-

कूद के मामले मे सत्य की सूझ-बूझ का सानी नही। बल और कौशल, दोनों ही उसमें दूसरों मे सौ गुना है। मोटे-सोटे गाछ के कटे कुदे को रस्सी मे बांधकर खीच लाना सत्य के लिए असभव नही है। और फिर उस कुदे को पानी में डालकर डोंगी बना लेना भी सत्य के कौशल से ही संभव है।

इन सबके सिवा 'पयार' जोडना।

पयार बनाने के बाद से टोले की सभी छोटी बच्चे-बच्चियां सत्य की गुलाम बन गई है।

उसी सत्य के लिए ये सब पानी को ठंडा कर रही है, यह कौन-सी बड़ी बात है। लेकिन सत्य को इतनी देर क्यो हो रही है? इधर इन लोगों की मियाद जो पूरी हुई जा रही है। कहीं दादी-फुआ को खयाल आ गया और खोज की कि बस, हो गया।

ठीक इसी वक्त तो अभिभाविकाओं के जरा झपकी लेने का समय है, इसीलिए इन्हे ऐसी बेरोक आजादी है। हां, इस झुकती बेला मे ही गृहिणियां जरा सो जाती है। तमाम साल तो नहीं (औरतों की दिवानिद्रा से बुरी बात दुनिया में और क्या है?) निहायत आम के मौसम मे।

आम का एक नशा जो है!

गृहिणिया कहती है, आम का मद।

आम खाओ चाहे न खाओ, इस समय बदन टिस्-टिस् ही करेगा। अवश्य नही खाने का सवाल ही नही उठता। आम-कटहल कौन नही खाता है? होरू भटचारज की मां की तरह आम जैसी चीज़ और कौन जगन्नाथ को चढ़ा सकती है? होरू भटचारज की मां उस बार श्रीक्षेत्र जाकर यही कर आयी हैं—क्षेत्र करने के बाद जगन्नाथ को फल देना होता है, इसलिए वह आम ही दे आयी। मन के दु:ख से होरू उस साल आम का बगीचा बेच देना चाह रहे थे। बोले, 'जब मेरी मां ही आम नही खाएगी तो आम के बगीचे की मुझे क्या जरूरत?' पर उनकी मा ने उनका हाथ पकडकर समझाया था—'बेटा, जनम भर तो खाती आयी, फिर भी खाने की लालसा नही मिटती। इसी से कहा, जिस चीज से इतनी आसक्ति है, उसी चीज को जगन्नाथ को चढ़ा दू। मगर इसके लिए तू बगीचा बेच देगा? बाल-बच्चे नही खाएंगे?'

छोटे-बडे, जवान-बूढ़े—आम के भक्त सभी हैं। आम के मौसम मे दिन-भर मे एक बीस, डेढ बीस आम खा लेना कुछ भी नहीं।

अवश्य सब आम सब कोई नहीं खाते।

यानी नही पाते।

संसार में सदस्यों की श्रेणी के हिसाब से ही आम की श्रेणी का हिसाब करके हिस्सा होता है। मालिकों के हिस्से पड़ता है जोड़कलम, गुलाबखास,

खीरसापाती, नवाबपसंद, बादशाह भोग, फजली आदि। गृहिणियों के लिए अलग करके रखा जाता है प्याराफूली, बेलसुवासी, काशीचीनी, सिंदुरिया।

और बहू-बेटियों, बच्चे-बच्चियों के लिए ढेरों वाले आम। ढेरो खाये बिना जिनका जी नही भरता उनके लिए ढेरों वाला छोडकर और क्या दिया जा सकता है ? घर की भर-भर टोकरियो से ही क्या उनकी ख्वाहिश पूरी होती है ? दोनों बेला जलपान के लिए भर-भर टोकरी तो पाते ही है, क्योंकि गृहिणिया प्रकृति के इस दाक्षिण्य के समय मुरमुरे भूनने की झंझट से थोड़ी रिहाई पाती है। लेकिन उससे क्या, घर में 'मिठुआ' के पहाड़ को खत्म करके वे उसी वक्त बगीचे की तरफ दौड पडते हैं—बहूभगोड़ या बंदर बस आमों के बगीचे की तरफ। इमली के बाप कोटि के इन आमो को पार करने का सहारा है नमक। नमक चीज तो निहायत नाचीज-सा है, लेकिन उसे भी जुटाने में बाल-सेना को दिक्कत होती है। क्योंकि उसकी जगह ही है रसोई या भडारा जो पूर्णतया 'गिन्नियों'[1] का इलाका है। और ये गृहिणिया बिलकुल सहानुभूति-हीनता की प्रतीक हैं। बच्चों के हर कुछ मे वे खड्गहस्त ही रहती है। नमक मागने जाओ, तो दुरदुरा देंगी, जानी हुई बात है। लेकिन बच्चों के नसीब का ज़ोर कहिए कि बच्चे हर समय उन सबके लिए अछूत रहते है। सो मारने को दौड़ें चाहे, मार नही पाती। उसके बाद बडी-बड़ी आरज़ू-मिन्नत, गिडगिड़ाने के बाद देंगी भी तो सोने के वज़न से। देंगी और फौरन कहेगी, 'फिर वही खट्टे आम खाने को जा रहे हो न ? जहर। घर मे इतना खाता है, मगर पेट नहीं भरता। कैसा राक्षसी पेट है रे बाबा। जहन्नुम मे जाओगे, रक्त-आमाशा से मरोगे। सब के सब एक साथ मनसा[2] थान में जाओगे ! जितने सारे पाप एक साथ जुटे हैं।'

बिना गाली के नमक ?

इसकी वे कल्पना ही नहीं कर सकते।

लेकिन सत्य पहले चरण मोदी की दूकान से काफी नमक ले आया करती थी, अब यानी बड़ी हो जाने के बाद से मोदी की दूकान से मांगने मे शर्म आती है। बहुत हुआ तो खुद दूर रहती है और किसी निरे शिशु को ललकार देती है।

कविराज जी की बेटी के नाते समाज मे सत्य की कुछ प्रतिष्ठा है।

उस प्रतिष्ठा की मर्यादा भी तो रखनी चाहिए ?

आज दोपहर को आम के बगीचे के अध्याय मे सत्य थी, फिर जाने कब घर चली गई थी।

---

१. गृहिणियों।   २. सापो की देवी।

खेंदी जरा कल्पना-प्रवण है, सो उसने कहा, 'सत्य की ससुराल से तो कोई नहीं आया ?'

'दुर्, ससुराल से भला कोई क्यों आने लगा ? और अगर आए भी तो उमसे सत्य का क्या ? जो आएगा, वह तो चंडी-मंडप में बैठेगा।'

अचानक पूटी चिल्ला उठी, 'आ रही है ! आ रही है !'

'आ रही है ! बाप्, जान मे जान आयी।'

'इतनी देरी क्यों हुई रे, सत्य ? हम लोग कब से पानी को ठंडा कर रही है।'

सत्य बिना कुछ बोले घाट की सीढ़ियों का टूटा-फूटा बचकर पानी मे उतरी।

'क्यों री सत्य, मुह में बोली नही है ? बाबा, आज ऐसी गंभीर क्यों है ?'

मुह मे पानी भरकर कुल्ला करती हुई होंठ बिचकाकर सत्य ने कहा, 'गंभीर क्या ? मनुष्यों का रीत-चरित्तर देखकर घिन लगने लगी है।'

'हाय राम, क्यों रे ? किसे देखकर ? किसकी कह रही है ?'

सत्य ने जलते स्वर मे कहा, 'कह रही हूं अपने जटा भैया की बहू की बात। डूब मरे ! गले मे डोरी डाले ! औरत जात की कलंक !'

सत्य की उम्र नौ साल की है, इसलिए सत्य के लिए ऐसा वाक्य-विन्यास असंभव है, ऐसा सोचने का हेतु नहीं। सिर्फ सत्य क्यों, सिर्फ भोली-भोंदी लड़कियों के अलावा उस युग मे आठ-नौ साल की लड़कियां ऐसी बातों में पक्की ही होती थी ! हो भी क्यों न ! चार साल की उम्र से ही जो उसे पराए घर जाने की तालीम दी जाती थी और वयस्काओं मे ही घूमने-फिरने की जगह बनाई जाती थी। और वहा उनके सामने 'शिशु' के नाते किसी भी तरह की बात न करने का ध्यान नही होता था।

लिहाजा सत्य ने बिगड़कर किसी को औरत जात का कलंक कहा तो आश्चर्य की कोई बात नही।

पुन्नू झट पूछ बैठी, 'क्यों रे, क्या हुआ है ?'

'यमराज जानता है !' कहकर पहले तो जरा देर यमराज पर भार छोड़कर, फिर सत्य ने ज़बान खोली, 'अब मरते तक उसका मुह मैं नही देखूगी। छि:-छि: ! गई थी मैं ! सोचा, खसम और सास के डर से बेचारी रोग की दवा नहीं खा पाती, जाकर जरा देख तो आऊं कैसी है। सुना, संझली फुआ तारकेश्वर गई है। जी इसी से और भी खुलासा था। हाय मेरी मा, जाकर तो घिन हो गई। उफ़, कैसा खराब खयाल !'

ये लोग टक लगाए ताकती रहीं, न जाने कौन-सी भयंकर कहानी सुना बैठे सत्य।

सिर्फ पुन्नू ने डरते-डरते कहा, 'क्या देखा री ?'

'क्या देखा ? कहने से पतियाओगी ! जाकर देखती क्या हूं कि कमरे में जटा-दा बैठा है । बीवी पान लगाकर दे रही है और हंसी-मजाक कर रही है।'

जटा-दा ?

खेंदी, पूंटी, टेपी सभी एक साथ बोल उठीं, 'हाय राम, इसी पर तुझे इतना गुस्सा ? सास घर मे नही है, उसी से कलेजे का पाट बढा है, और क्या !'

'कलेजे का पाट बढा है तो क्या पान लगाकर खिलाएगी ? हंसी-मजाक करेगी ?' सत्य मानो फूलती रही ।

पुन्नू और भी डरते हुए बोली, 'तो क्या, कोई पराया मर्द तो नहीं है, उसका अपना पति…'

'अपना पति !' सत्य ने झट-झट दो-एक बार कुल्ला फेंककर कहा, 'वैसे पति के मुंह पर झाड़ू मारो ! जो पति लात मारकर यमराज के घर भेजता हो, उसके साथ हंसी-मजाक ! फासी लगाने के लिए रस्सी नही जुटती ? और फिर मुझ से क्या कहा, मालूम है ? कहा, मेरे पति ने मुझे मारा है, तुम्हे तो मारने नहीं गया, ननद जी ? तुम्हें इतनी जलन किस बात की कि पद्य बनाकर भला-बुरा सुनाने आती हो ? इसके बाद भला अब मैं उसकी शकल देखूंगी ?"

आंचल को बदन से उतारकर ज़ोर-ज़ोर से पानी पर पछाड़ने लगी सत्य।

सखियों की सेना कुछ मुश्किल में पडी ।

वे सब अभियुक्त जटा की बहू को ऐसा कुछ दोष नही दे सकतीं, क्योंकि कभी किसी दिन उसने बीवी को बेदम पीटा, इसलिए पति को ज़िंदगी में कभी पान लगाकर खिलाया नही जायेगा, इतना कठोर, क्षमाहीन मनोभाव ला सकना उनके लिए कठिन है। लेकिन सत्य की बात का प्रतिवाद नही किया जा सकता । उसकी बात का समर्थन किए बिना नहीं चलता ।

लेकिन…अरे ! वह क्या ! वह कैसी आवाज !

अचानक इस विपद से मधुसूदन ने उन सबको बचा लिया । पोखरे के बांध पर जो ताड़ के पेड़ों की पांत है, उधर घोड़े की टाप सुनाई पड़ी ।

घोड़े की टाप है न ?

घोड़े पर कौन आ रहा है ?

पुन्नू धड़फड़ाकर ऊपर गई और देखकर गिरते-पड़ते भागी आयी—

'अरी ओ सत्ती, मंझले भैया !'

मंझले भैया ?

यानी रामकाली !

अविश्वास की हंसी हंसकर मुंह बिदकाते हुए सत्य ने कहा, 'सपना देख रही है क्या ? बाबूजी जीरेट गए हैं न ।'

'अहा, आखिर वहा बसने तो नही गए है। आएंगे नही ?'

इतने में घोड़े की टापें एक बार कुछ करीब में सुनाई देकर फिर दूर चली गई।

सत्य ने गरदन बढाकर एक बार देखने की कोशिश की, उसके बाद निर्विकार की नाई बोली, 'जैसी तुम्हारी अक्ल! बाबूजी क्या घोड़े पर जीरेट गए थे ? या कि पालकी बीच रास्ते मे घोड़ा बन गई ?'

पालकी! हा, ठीक ही तो। पुन्नू दुविधा जड़े कठ मे बोली, 'मैंने लेकिन साफ देखा, मझले भैया है, उनका घोडा है। घर ही की तरफ तो गए।'

सो गए! तो क्या जीरेट के रोगी की हालत हठात् अब-तब हो गई ? इसलिए किसी अचूक दवा की जरूरत आ पड़ी, जिसके लिए पालकी छोड़कर जल्दी के लिए रामकाली कविराज को घोड़े पर आना पड़ा ?

खेदी ने कहा, 'जो भी हो, तू भई घर जा, सत्ती। कविराज चाचा के सिवा इस गाव मे घोडे पर ही कौन चढ़ेगा ?'

यह बात भी दुरुस्त है।

घोड़ा है ही किसके पास ? इस इलाके मे कभी-कभार वर्दवान के राजा का कोई कर्मचारी या कपनी का कोई आदमी घोडे पर चढ़कर आता है, नही तो घोड़ा किसे कहा मिलता है ?

सत्य की सेना घाट से निकल पड़ी।

पहले सबका सत्य के यहा जाना। क्योंकि घोड़े के रहस्य को जाने बिना कौन थिर रह सकेगी ?

गीले कपड़ो से पानी सपसपाते हुए पैरो का झांझन बजाती हुई सब रवाना हुई। लेकिन गजब! यह तो बिलकुल परी की कहानी जैसी हो गई।

सत्य के घर के पास पहुंचते न पहुचते उन लोगों ने अवाक् होकर देखा, रामकाली घोड़े पर फिर लौटे जा रहे है। इस बार बढती मे उनकी पीठ पकड़े पीछे और-एक आदमी बैठा था।

वह आदमी था सत्य का बड़ा भैया।

रामकाली के बडे भाई कुंजविहारी का लडका रासविहारी।

पुन्नू की बात ही सत्य निकली। घुड़सवार रामकाली थे। लेकिन इस पर अभी पुन्नू ने अपनी बहादुरी की न कही, सिर्फ हा किए देर तक घोड़े की तेज टापों से उठती हुई धूल की आंधी की ओर देखती रही और नि.श्वास छोड़कर कहा, 'माजरा क्या है, कहो तो ?'

'मैं भी तो वही सोच रही हूं!" सत्य ने अवाक्-सी होकर कहा, 'बाबूजी यदि दवा लेने आए हो, तो बड़े भैया को पीठ मे बाधकर क्यों ले जाएंगे ?'

वही तो!

बेहद गरमी, फिर भी गीले सपसप कपड़े पर हवा का डैना फिर जाने से वदन कैसा तो सिर्-सिर् कर उठा। सत्य ने अबकी हा किए भाव को छोड़कर विचक्षण की नाईं कहा, 'ले-ले चल, दरवाजे पर खडी होकर बकवास करके क्या होगा ? घर जाने पर ही पता चलेगा, क्या हुआ है। तुम लोग जाओ। गीले कपड़े बदल आओ। मैं जाकर देखती हूं, क्या हुआ है।'

क्या हुआ है !

जो हुआ, सो सत्य के हिसाब के बिलकुल बाहर है। केवल सत्य ही क्यों, सभी के हिसाब के बाहर। घोड़े पर सवार हो आंधी के वेग से आकर सारे घर पर मानो बहुत वडा एक पत्थर मारकर लौट गए रामकाली। उस पत्थर की चोट सहज में कोई सम्हाल नही पा रही हैं।

भीतर आगन में जाकर सत्य ने देखा, आगन के बीचोबीच दो मोरियों के बीच मे पतली-सी जो जगह है थोड़ी-सी, वहा वडी चाची खडी है—ठीक जैसे काठ का पुतला हो। और, बरामदे की सीढी पर गाल पर हाथ धरे काठ हुई बैठी है दादी जी। और, बरामदे पर झुंड बांधे बैठी हैं और सब। केवल फुआ-दादी ही नही थीं।

अवश्य उनका न होना ही स्वाभाविक था, क्योंकि वह इस यवनाचारी बरामदे पर कभी पांव नही धरतीं। इस बरामदे पर रास्तो का चक्कर काटने वाले बच्चे आते है, मालिकों के खड़ाऊं चढ़ते है।

फुआ-दादी न सही, और सब तो जुट गई है। क्यो ? और किसी के मुह में बात क्यों नही है ? फुस-फुस करके बात, घूघट की आड़ मे हाथ-मुंह का हिलाना। जितना संभव था, दादीजी का वदन बचाकर सटकर बैठती हुई सावधानी के साथ इशारे से पूछा, 'क्या हुआ है, दादीजी ?'

दीनतारिणी चुप !

सत्य बोल उठी, 'दादीजी, बाबूजी उतनी तेजी से आकर फिर कहा चले गए ? अजीब आफत है ! बात का जवाब क्यों नही दे रही हो ? ऐ दादीजी, बाबूजी जीरेट से इस तरह घोड़ा दौड़ाते हुए आए ही क्यो और फिर चले ही क्यो गए ? ओ दादीजी, आप सब की बोलती बंद क्यों हो गई ?'

फिर भी दीनतारिणी के होंठ नही हिले। हां, होठ हिलाया संझली शिवजाया ने। होठ ही नही, एकाएक पांव-मुंह सब हिलाकर वह बोल उठीं, 'बोलती बंद होने जैसी घटना घटे तो बोलती बंद नही होगी ? तेरे बाप जो अमानवीय कांड कर गए !'

'बाबू जी ? अरे बाबा, खोलकर ही कहो न। घोड़ा दौड़ाते हुए बाबूजी जीरेट से आए और उसी वक्त फिर कहा चले गए ?'

'ओ, तब तो तुमने देखा ही है। फिर बुद्धू क्यों बन रही हो ? तेरे बाप

रामू को ब्याह कराने के लिए ले गए।'

'ब्याह कराने ? धत्त्।'' परिस्थिति की मर्यादा भूलकर सत्य हो-हो करके हंसती हुई लुढ़क गई—'अहा, दादीजी ने मुझे निरी भोली समझा, इसीलिए पागल को समझा रही है।. बड़े भैया का जैसे ब्याह बाकी है ? लड़के का बाप भी बन गए भैया !'

'बन गया तो क्या ?' अबकी दीनतारिणी ने हठात् चुप्पी तोड़कर पोती को डाट बताई—'बड़ी तो टन् टन् बोलना सीख गई है तू ! बेटे का बाप बन जाने से और ब्याह नही होता ? महाभारत अशुद्ध हो जाता है ?'

सत्य के जवाब देने के पहले शिवजाया ही सांसारिक मत्स्यन्याय को भूलकर फट् से जेठानी के मुह पर कह बैठी, 'महाभारत अशुद्ध होने की बात नहीं दीदी, मगर यह भी कह दू, रामकाली ने जो एकबारगी किसी को देखने भी नही दिया, चील की तरह झपट्टा मारकर लड़के को उठा ले गया, घर में गर्भवती बहू, जाते वक्त दूर से एक बार पति को एक नजर देख भी नही पायी —यह क्या अच्छा हुआ ?'

इस बीच इधर के बेड़े के दरवाज़े से कब जो मोक्षदा आकर खड़ी हो गईं और बातचीत के अंतिम हिस्से को सुन लिया, इसकी किसी को खबर नही रही। थान-साड़ी घुटने तक उठी, कंधे पर गमछा, यानी मोक्षदा नहाने जा रही है। अवश्य नहाने जा रही हैं, इसीलिए अंदर के इस घर में यानी सोने के घर के आंगन में वह कदम रखती, सो नही। लेकिन आज की बात अलग है। आज की इस उत्तेजना में मरने-बचने का इतना होश रखने से नही चलता। आज न होगा तो घाट में दस-पांच बुड़कियां लगाकर फिर तालाब में नहाने जाएंगी—लेकिन इन लोगों की मजलिस में शामिल होना चाहिए।

मोक्षदा ने संझली भाभी की बातें सुन लीं और उसी से सारे नाटक का अनुमान कर लिया। इसी से वह तीन अंगुलियों से चलकर कुछ बढ़ आयी और गला बढ़ाकर बोली—'क्या कहा संझली, क्या कहा ? एक बार फिर कहो तो सुनूं ?'

शिवजाया ने बेशक फिर से नही कहा, सिर्फ माथे के कपड़े को ज़रा खींचकर मुंह फेर लिया।

ज़रा जहरीली हंसी हंसकर मोक्षदा बोली, 'बोलना अवश्य नहीं पड़ेगा, मेरे कान में सब पहुंच चुका है। लेकिन मैं यह सोचती हूं, तुम हठात् ऐसी भटचारज कब से हो गईं ! जाते वक्त अपने रासू की स्त्री से चार आंखें नहीं हुईं, इसी अफ़सोस से मरी जा रही हो ? कलजुग अब और कितना पूरा होगा ? चार काल होकर तो कलजुग अब छलक रहा है। शुभ काम में जाते हुए लोग देवी-देवता का पट देखकर घर से निकलते हैं, गुरजन के चरण-दर्शन करके निकलते हैं, यही तो

मैं जानती हूं, यही तो सदा से जानती आयी हूं ! बीवी का मुखड़ा देखकर नहीं जाने से जात जाती है, यह तुम्हीं ने पहले-पहल सुनाया, संझली !'

शिवजाया ननद से डरती हैं, तो भी इतने लोगों के सामने हार जाने को राज़ी नहीं हुईं। इसलिए बोल पड़ी—'मैंने रासू की बात नहीं कही है, बड़ी पोत-पतोहू की कही है। बेचारी ने न जाना, न सुना, औचक ही सिर पर पहाड़ टूट पड़ा। अपना पति मात्र अपना ही रहते-रहते एक बार वह अंतिम बार के लिए उसे नहीं देख सकी, यही बात हो रही थी।'

मोक्षदा अचानक खिलखिलाकर हंस पड़ी, 'अरी ओ संझली, अब घर क्या बैठी हो ? जात्रा[1] का नाटक लिखो न ! सत्य ने पयार बनाया है, तुम्हीं बाकी क्यों रहो ! तुम लोगों की जो मति-गति देख रही हूं मैं, यह गृहस्थ घर के योग्य नहीं। बुड्ढी हो गई, चार काल बीता, एक पर जा टिका है, वह बात ज़बान पर लाते शर्म नहीं आयी तुम्हें ? आखिर पति क्या कोई पेड़ा-मिठाई है कि अकेले समूचा खाए बिना पेट नहीं भरेगा ? हिस्सा हो जाने पर जान न बचेगी ? छिः-छिः, एक भलेमानुस को कितनी बड़ी विपत्ति से बचाने के लिए गया रामकाली और उसके काम की लिहाड़ी ली जा रही है !'

बड़ी के इस वाक्-युद्ध में सत्य हा किए ताक रही थी, मोक्षदा का कहना खत्म होते ही एकाएक वह दादी की गोद के पास से खिसक आयी और बोल बैठी, 'संझली दादी ने तो ठीक ही कहा है फुआ-दादी ! बाबूजी से यह साफ अन्याय हुआ है।'

बाबूजी का अन्याय ! वह भी दुविधाजनक नहीं—साफ। आंगन में क्या वज्रपात हुआ !

कलजुग खत्म होकर क्या प्रलय आया ?

८

दुःसंवाद के साथ ही अंदर रोना-पीटना शुरू हो गया। खुशी में शोक ! बिना बादलों के यह कैसा वज्रपात ! और किसके यहां कब ऐसी दुर्घटना घटी है ? इतने बड़े सर्वनाश की कल्पना कभी किसी ने दुःस्वप्न में भी की है ?

यही अभी-अभी तो लड़की केले के नीचे सिलौटी पर खड़ी हो क्वांरीपने का नेग करके, बदन में हल्दी लगाने के लिए कोरी साड़ी पहने बाल बांधने बैठी है—टोले की कलाकार औरतें ब्याह की कन्या की केश-रचना में कौन-कितनी

---

१. बिना पर्दे का जो नाटक खेला जाता है।

कुशलता दिखा सकती है, इसी की आलोचना से अंदर दालान को मुखर किए हुए हैं कि बाहर से आग की चिनगारी की तरह यह बुरी खबर आ धमकी।

नतीजा क्या हुआ? जैसे जंगल में आग लग गई।

विश्वास करने योग्य बिलकुल न होते हुए भी विश्वास किए बिना उपाय नहीं। क्योंकि खबर और कोई नहीं, स्वयं रामकाली ले आए हैं! जिनके बारे में जरा भी सदेह करने की गुंजाइश नहीं! नहीं तो बुरी खबर फैलाकर ब्याह नष्ट करके तमाशा देखने वाले अपने लोगों की भी कमी नहीं! लेकिन ये रामकाली है।

लिहाजा इसकी आशा ही नहीं कि खबर झूठी भी हो सकती है। न:, कोई आशा नहीं। इसके सिवा कविराजजी दुल्हे के सिरहाने मौत को खुद देख आए हैं।

सो कोरी साड़ी मे लिपटी आठेक साल की हक्की-बक्की-सी हुई उस लड़की को घेरकर इस वेग से रुलाई शुरू हुई कि मारे डर के उस बेचारी लड़की के तो प्राण-पखेरू उड़ भागने की नौबत!

ब्याह के लिए बारात में निकला हुआ वर मृत्यु-रोग से वापस लौट जाए और ब्याह का लग्न भ्रष्ट हो, तो ऐसा क्या सर्वनाश हो सकता है, यह बेचारी की बुद्धि के अगोचर थी—बुराई कुछ अगर हो सकती है तो वह उसके दादाजी की होगी, उसे क्या?

लेकिन उसे क्या, यह बात वह आप कुछ न समझे चाहे, स्त्रियां उसी को हिला-हिलाकर जोर-जोर से चीखने लगीं—'अरी ओ पटली, तेरे नसीब में ऐसी राख भरी है, यह तो हमने कभी सोचा भी नहीं! अरे, इस लग्नभ्रष्ट लड़की को लेकर हम क्या करेंगे रे? अरे, तुझी को मौत ने क्यों नहीं पकड़ा रे, वह इससे अच्छा था।' वे सब रोती-पीटती रहीं और पटली बुत बनी बैठी रही। बैठी-बैठी वह महज इतना ही सोच पायी कि यह इतना कुछ कुछ भी नहीं होता, यदि वह रातोंरात हैजे से मर गई होती!

उधर चंडीमंडप मे लक्ष्मीकांत बनर्जी सिर पर हाथ धरे पत्थर की मूरत-से बैठे थे और पत्थर की उस मूरत के मस्तिष्क के रेशे-रेशे में यही ध्वनित हो रहा था, तुमने यह किया क्या भगवान! यह क्या किया?

रामकाली के चले जाने के बाद से लक्ष्मीकांत ने एक शब्द भी न कहा। उन्हें संबोधन करने की किसी की हिम्मत ही न हुई। उधर उनका बड़ा लड़का श्यामकांत भी उदास चेहरा लिए घाट के किनारे शिव के मंदिर मे चुपचाप बैठा था। बाप के करीब जाने का उसे साहस नहीं था। उसके जमाई जरूर हो रहा है, मगर उमर भी क्या है उसकी! अभी भी तो तीस से कम ही है। बाप से वह यमराज जैसा डरता है।

पटली की मां विहुला ने भी भंडार-घर में मुंह छिपा लिया। वह अपने आपको ही सबसे ज्यादा दोषी समझ रही थी। बेशक मैं बहुत बड़ी पापिन हूं, वरना मेरी ही लड़की के ब्याह में इतनी बड़ी दुर्घटना हो! इतना बड़ा अपशकुन! सभी फुसफुसाने लगी, यह लड़की बडी कुलच्छनी है, कोहवर में पहुंचने से पहले ही अपने पति को कचमचाकर चवा गई। अब विहुला इस सर्वनाशी विटिया को गले में वाधकर जनमभर पड़ी रहे। जात, धरम, कुल, मान—सब गया, रह गई सिर्फ मरने तक यह पीड़ा।

हा, ब्याह की रात मे क्या वर-विभ्राट और नही होता? मड़वे से भी दुलहे को उठकर चले जाते देखा है बहुतों ने। लेकिन वह और किसी कारण से। या तो दहेज के रुपए मौके पर नहीं दे पाने की वाताबाती से या किसी हितैषी द्वारा कन्या-कुल की किसी खामी के जाहिर हो जाने की वजह से या फिर लड़की को बदलकर काली-कुरूपा लडकी गले मढ देने की कोशिश करने से—वाताबाती से हाथापाई, मारपीट और आखिर गुस्से से वारातवाले दुलहे को उठा ले जाते हैं। लेकिन इतना होते हुए भी उसकी कोई राह निकल आती है।

क्योकि लग्न-भ्रष्ट हो जाने से ही लड़की आधी विधवा होकर बाप के घर पड़ी रहेगी, इस दु ख से दया-परवश होकर टोले का कोई न कोई कमर कसकर जुट पडता है और रातो-रात कही न कहीं से दूसरा लड़का खोज लाता है। इस तरह भले आदमी के जात और मान की रक्षा होती है।

लेकिन यह तो विलकुल उलटा है। लडकी ही जीती-जागती राच्छसी! पति को निगलने वाली ऐसी लडकी के लिए अपना लड़का देने को तैयार हो, तीनों लोक में ऐसा महानुभाव कौन है?

नः, विहुला की इस वेटी के लिए रातों-रात लड़का मिलने की आशा, महज दुराशा है। रामकाली कविराज शायद 'कोशिश कर देखता हूं' का दिलासा दे गए हैं, लेकिन साफ ही तो समझ मे आ रहा है, वह मात्र सात्वना है! एक इतना बड़ा दुःसंवाद घर तक आकर दे गए, इससे सिर कुछ नीचा हुआ न, इसीलिए एक संतोष देकर चल दिए!

विहुला वेवकूफ हो सकती है, लेकिन इतना समझती है। 'हाय दुर्गा मैया, मेरी पटली ऐसी अभागिन है, तुमने तो यह कभी समझने नहीं दिया! देखने में फूल जैसी, घर की पहली संतान, सबके लाड़-प्यार की, आज तक बाग-बगीचे मे ही खेलती फिरी है, फिलहाल कुछ बड़ी हुई है इसलिए घर में ही कैद-सी रहती थी—लेकिन जैसी खूबसूरत है, वैसी ही हंसमुख—कह कौन सकता है कि यह लड़की सर्वनाशी राक्षसी है?'

'ससुरजी तो कहते हैं, पटली का देवगण है। फिर? देवगण की लड़की ने ऐसा राक्षसवाला नसीब कैसे पाया? और आज ही भर क्या? यह लड़की यदि

घर रहे, तो गिरस्ती मटियामेट हो जाएगी ?'

मानदा की फुआ ने तो साफ कह दिया—'इस लड़की को कौन लेगा ? अपनी गिरस्ती को आग लगाने की किसे ख्वाहिश होगी ? वह सदा ऐसी ही पड़ी रहेगी और अपने दादा की गिरस्ती को चबा-चबाकर खाएगी, और क्या !'

बिहुला फुक्का फाडकर रो उठी।

रोते-रोते बोली, 'हे मा ओलाई बीबी ! ऐ मां शीतला ! पटली को तुम उठा लो। इस घर में उसकी तीन रात भी जिसमें न कटे।'

माटी पर पछाड खाकर बिहुला रोती रही।

सभी रो रहे है।

घर की गृहिणी से लेकर वह बागदी औरत तक, जो बिचाली काटा करती है। दूसरे के दुख मे रोने का इतना बड़ा मौका जिंदगी मे कितनी बार आता है ?

रो नही रही है सिर्फ पटली, जो इस विवाह-विभ्राट नाटक की प्रधान नायिका है। बड़ी देर से काठ-सी बैठी-बैठी अब उसने यह सोचना शुरू किया, ब्याह जब नही ही हो रहा है, तो फिर इन लोगो ने पटली को उपवास कराए क्यो रखा है ? कोई यह क्यों नही कह रहा है कि 'अरे, तो पटली को तब तक मोतीचूर के लड्डू या और कोई मिठाई देकर पानी पीने को दो !' छाती से पेट तक पटली को धूल-सा सूखा लग रहा था।

लेकिन बैठकर यह सोचने का अवसर किसे है कि पटली के पेट में, कलेजे मे धूल उड रही है ? उस पर बल्कि गुस्से और घृणा से सबका बदन टी-टी कर रहा है।

श्यामकात दो-तीन बार पोखरे की तरफ से आ-आकर बाप को झाककर देख गया है और जितनी बार भी देखा, देखा कि बाबू जी तम्बाखू नही पी रहे है, उनके हाथ मे हुक्का नही है, उतनी ही बार उसका कलेजा फटकर चौचीर होता रहा है। लेकिन हिम्मत बटोरकर चिलम चढ़ा करके उन्हे दे आए, कलेजे का यह बल उसमें नहीं। एक ही बात का इंतजार था, टोले के कोई बूढे-पुरनिए आ जाएं अगर। वैसे किसी के आने से हो सकता है, लक्ष्मीकात की चुप्पी टूटे।

अपनी जितनी भी बड़ी विपत्ति क्यो न हो, लक्ष्मीकात मानी का मान जरूर रखते हैं।

लेकिन टोले के भले लोगों में आने को बाकी कौन रह गया है ? सभी तो एक-एक करके आ चुके है !

बेला झुक आयी।

अर्थात् सर्वनाश की घडी करीब आ गई।

ऐसे समय श्यामकांत की मुराद पूरी हुई। राखो हरीघोपाल आए। खासे वयस्क व्यक्ति। भरसक दूर रहते हैं, इसीलिए अब तक आ नही पाए थे। आए और चुपचाप खड़ाऊं खोलकर फर्श पर आकर बैठ गए। टेट से घोघे की नसदानी निकालकर नस ली और तब इतमीनान से बोले, 'बात तो सब सुन चुका लक्ष्मीकात, लेकिन तुम्हारे यों हथियार डाल देने से तो काम नही चलेगा।'

उम्र का सम्मान रखना लक्ष्मीकात जानते है, लेकिन घोपाल-ब्राह्मण के पैरों की धूल तो नही ले सकते न, सो सिर को जरा झुकाकर थकी हुई आवाज मे पथ्य की ओर गला बढ़ाकर बोले, 'अरे ऐ, कौन है, घोपालजी को तंबाखू दे जा।'

'छोडो-छोड़ो, परेशान होने की जरूरत नही।' राखो हरीघोपाल बोले, 'सांझ तो हो आई। अब करोगे क्या, सो कुछ सोचा?'

'मैं अब सोचू भी क्या, घोपालजी!' हताश की नाई लक्ष्मीकात बोले, 'स्वयं यज्ञेश्वर ही जब यज्ञ मिट्टी करने को तुले हैं…'

'लेकिन हिम्मत हारने से तो नही चलेगा भाई, कमर कसनी होगी। ठीक लग्न के समय कन्या को किसी के हाथों सौंपना ही पड़ेगा। लग्न कब है?'

'आधी रात के बाद!'

'ठीक है। हाथ मे कुछ समय है। मेरी सुनो, मेरे साथ तुम एक बार दयाल के यहां चलो।'

'दयाल? दयाल मुखर्जी?'

'हां। कोशिश कर देखो, यदि हाथ-पैर पड़कर उसे राजी कर सको। ऐसे ही तो देर हो चुकी।'

लक्ष्मीकांत ने हैरान नजर से देखते हुए कहा, 'मुखर्जी बाबू के यहां किसकी उम्मीद लेकर जाऊंगा, मैं ठीक-ठीक समझ नही पा रहा हूं, घोपालजी!'

'और किसकी आशा पर, तुम तो निरे नादान बन रहे हो लक्ष्मीकात, खुद मुखर्जी की ही आशा पर। नही तो रातोंरात तुम्हें स्वघर-पात्र और मिलता कहा है?'

लक्ष्मीकात ने कातर होकर कहा, 'मुखर्जी के साथ पटली का ब्याह? पटली को आपने देखा है, घोपालजी?'

'क्यो नही?' राखोहरी जरा रसिक हंसी हंसे—'तुम्हारी पोती को देखकर मुनि का भी मन डोलता है—यदि घराना मिलता तो मैं ही इस उमर में मौर पहन लेना चाहता! मुखर्जी की भी उमर होने से क्या, रसिक आदमी है। अभी उसी दिन तो पटली को देखकर कह रहा था…'

चिपकाकर राखोहरी ने कहा—'नही तो मारते क्या ?'

बदला चुकाने का मौका मिला है, बदला तो लेंगे ही घोषाल ।

घोषाल ब्राह्मणो के लिए लक्ष्मीकात बनर्जी के मन में तुच्छता का जो भाव है, राखोहरी का तो वह अजाना नही है । कितनी ही विनय वह क्यों न दिखाए, उसकी नज़र से ही ऊंच-नीच का वह भाव साफ झलक आता है । आज उसी का बदला चुकाने का मौका मिला है, यह मौका घोषाल क्यों छोड़े ?

'मुझे रिहाई दीजिए, घोषालजी !' दोनों हाथ जोड़कर लक्ष्मीकात ने कहा—'ईश्वर की अगर मेरा जाति-मान बचाने की इच्छा होगी तो लग्न से पहले ही मुझे उपयुक्त पात्र मिल जाएगा—नही तो सोचूगा···'

'लग्न से पहले ही उपयुक्त पात्र !' राखोहरी ने फिर एक बार व्यग्य की हंसी से शकल बनाई—'उस पात्र को शायद ईश्वर स्वयं वैकुठ से भेज देंगे ?'

लक्ष्मीकात क्या तो जवाब देने जा रहे थे कि इतने में श्यामकात अपने स्वभाव के विरुद्ध उत्तेजित हो दौड़ता हुआ आया । बोला, 'बाबू जी, चटर्जी कविराज जी आ रहे है । घोड़े पर है । अपने पीछे किसी और को भी लिए हुए है ।'

'ऐं ! नारायण !'

लक्ष्मीकात उठने की कोशिश करते हुए बैठ पड़े ।

९

सजी-सजाई महफिल मे दुलहे को बैठाने का वक्त नहीं रह गया था । हड़बड़ाकर एकबारगी केला के नीचे का नेग करके नहला कर सीधे कन्यादान के पीढे पर ले जाकर बैठाना पड़ेगा । उसी पीढ़े पर दूब-धान और अंगूठी देकर 'पक्की दिखाई' की रस्म अदा कर लेनी होगी ।

रामू ने अवश्य दिन मे चार-पाच बार खाया है, लेकिन किया क्या जाय ! ऐसे आकस्मिक कार्य में उन नियमों को मानने का उपाय कहां है ? 'उठ छोरी, तेरा व्याह' करके कितनी तो लड़कियों की शादिया हो रही है । दूर क्या, लक्ष्मीकात के ही तो नाते के एक भतीजे की लड़की की शादी उस बार ऐसे ही हुई—आधी रात को सोयी हुई लड़की को उठाकर मडप पर ले गए । गांव के और किसी घर मे वर व्याह करने के लिए आया था—उसके बाद जो होता है ! जाने कहां से कन्या के कुल की खोट निकल आयी, उसके बाद कहा-सुनी, उसके बाद दुलहे को उठाकर ले गए ।

खैर, गोली मारिए इस बात को । असली बात यह कि ऐसे आकस्मिक

ब्याह में पुआ-पकवान खाने के बावजूद ब्याह के आसन पर बैठा जा सकता है।

अब बात रासू की है।

रासू की क्या हालत है ?

वह क्या अभी बड़े ही अंतर्द्वंद्व में पड़ा है ? कोई तीखी पीड़ा, भयंकर कोई अनुताप, प्रबल किसी मानसिक विद्रोह का आलोड़न क्या रासू को तार-तार किए दे रहा है ? बात नहीं, चीत नहीं, चील की तरह झपट्टा मारकर उसे उठा लिया और घोड़ा दौड़ाकर ले आए फिर एक सात फेरे के बंधन में बांध देने के लिए। चाचा के इस षड्यंत्र से गुस्से से क्या क्षिप्त हो उठा था रासू ?

नहीं, उसकी शक्ल देखकर तो ऐसा नहीं लगता।

बलिदान के बकरे की हालत होने के बावजूद बलि के बकरे-सा कांप भी नहीं रहा था रासू। सिर्फ कैसा तो भावशून्य-सा टुकुर-टुकुर ताकते हुए अपनी भूमिका अदा करता जा रहा था वह।

हां, इस आकस्मिकता की चोट से बेचारे रासू का चेहरा ही नहीं, मन भी कैसा तो भावशून्य हो गया है। वहां सुख-दुःख, भला-बुरा, द्विधा-द्वन्द्व—कुछ की भी बला नहीं थी।

रासू के उस मन में धक्का लगा स्त्री-आचार के समय। उस धक्के से जैसे उसकी चेतना लौटी।

उस चेतना से मन में एक भयानक कष्ट का अनुभव करने लगा वह।

सात विवाहिता स्त्रियों ने मिलकर जब श्री, सूप, वरण डाला, धतूरा के फूल का दीया सजा थाल इत्यादि लिए वर-वधू की प्रदक्षिणा की, वह धक्का रासू को तब लगा।

विवाहिताओं के गले तक घूंघट, लेकिन फिर भी तो आकार-प्रकार नाम की एक चीज होती है ! जिस बहू के माथे पर परिछन की डाली थी, उसका रंग-ढंग हूबहू शारदा जैसा था। गरचे दिन के वक्त भी एक-ब-एक शारदा को देख लेने से रासू उसकी शकल को ठीक-ठीक पहचान सकेगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता, फिर भी उसका रंग-ढंग वह पहचानता है। बैंगनी रंग की ऐसी ही साड़ी उसने कभी-कभी शारदा को भी पहनते देखा है। टोले के किसी के शादी-ब्याह में या कि सिंहवाहिनी को अंजलि देते समय।

देखा अवश्य दूर से है और ठीक से गौर करने की हिम्मत भी नहीं पड़ी। क्योंकि आधी रात से पहले, सारा घर सन्नाटा हुए बिना नजदीक जाने का उपाय कहां ? और उस समय तो शारदा साज-सिंगार, गहने-पाते के भार से मुक्त होती है। और फिर शारदा कमरे के अंदर आते ही कोने के जलते हुए दीये को

घुता देती है। कहती है, 'कहीं से कोई देख ले अगर !'

देखने का कोई उपाय अवश्य है नहीं। रामकाली चटर्जी के घर की किवाड़-खिड़की आखिर टोले के और पांच जने के यहां जैसी आम की लकड़ी की तो है नहीं कि छेद-वेद हो। कटहल की मजबूत लकड़ी का, लोहे का पत्तर दिया दरवाजा। कड़े और जंजीर ही दरवाजे के वजन में कई सेर होंगे। और खिडकी ? वह खिड़की कहा, गवाक्ष। मनुष्य के सिर से काफी ऊंचाई पर सूराखें-सी बनी—वहां से भला कौन नजर डालेगा ? फिर भी सावधान की मौत नहीं।

गर्मियों में मर्द मूरतें अवश्य ऐसे घुटे कमरे में नहीं सो सकते उनके लिए चंडी-मंडप में या छत पर भीगे अंगोछे से पोंछ-पोंछकर शीतलपाटी बिछाई रहती है। वहीं तकिया जाता है, पंखा जाता है ताड़ का, गड़ुआ और गमछा जाता है। वह चरवाहा लड़का या कमिया ले जाता है। मालिकों को कोई असुविधा नहीं।

जान जाती है घर की औरतों की और नए-नए ब्याहे युवकों की। वे लोग बाहर सोने को जी से जा नहीं पाते और अंदर के कमरों में जानमारू घुटन होती है।

लेकिन शारदा जैसी बहू की बात अलग है। शारदा गर्मियों में पंखा भिगोकर सारी रात रासू को झलती रहती है।

रासू का कलेजा कैसा तो ऐंठने लगा। कल रात भी शारदा ने पति की सेवा में कोई कोर-कसर नहीं की। माया से रासू ने बार-बार उसे मना किया, फिर भी नन्हे बच्चे के बहाने वह पंखा झलती ही रही। और सबसे खौफ़नाक बात, जिसे सोचकर हठात् कलेजा ऐसा मरोड़-मरोड़ उठता है रासू का—बस, कल ही रात को शारदा ने उससे एक भयानक सत्य करा लिया था।

पंखा झलने को मना करने पर शारदा चुपचाप हंसती हुई बोली—'इतनी तो माया है, इस माया का परिचय सदा दे सकोगे ?'

रासू ठीक समझ नहीं सका। ज़रा अवाक्-सा हंसकर बोला—'सदा क्या ऐसी ही गरमी रहेगी ?'

'अहा, वह नहीं कह रही हूं। कह रही हूं···' रासू के कलेजे के बिलकुल करीब आकर शारदा ने कहा, 'सौत की जलन की कह रही हूं। तब क्या ऐसी माया करोगे ? थोड़े ही यह कहोगे कि अहा, उसे सौत का बड़ा खौफ है।'

जितना संभव था, रासू नि:शब्द हंस पड़ा था। हंसकर बोला था—'अचानक दिन का सपना देखने लगी क्या ? सौत की जलन तुम्हें किसने दी ?'

'दी नहीं है। देने में क्या देर लगती है ?'

'बहुत ! मुझे वैसी दो-चार बीवियां ठीक नहीं लगतीं। ज़रूरत भी नहीं है।'

शारदा तो भी जिरह से बाज नहीं आयी—'और मैं बूढ़ी हो जाऊंगी, तब ? तब तो जरूरत होगी ?'

रासू को बड़ा कौतुक लग रहा था। उसने फिर हंसकर कह दिया—'देखता हूं, हवा से ही लड़ रही हो। अरे, तुम बूढ़ी हो जाओगी और मैं जवान ही रहूंगा ?'

'अरे भई, मर्द क्या सहज ही बूढ़े होते हैं ? इसके सिवा ससुरजी के तुम बड़े लड़के हो। देखने में सुन्दर हो। इतने पैसे वाले हो, जाने कितने अच्छे-अच्छे रिश्ते आएंगे, उस समय क्या मेरी बात याद रहेगी !'

और आवेग से एकाएक रो पड़ी थी शारदा।

लाचारी बिलकुल करीब खींचकर लाड़-प्यार करके स्त्री को फुसलाना पड़ा। कहना पड़ा, 'तो क्या यों ही कहा मैंने, हवा से लड़ाई। सौत कहा है, कोई ठिकाना नहीं और रोने बैठ गई। यह सब खौफ मत रखो।'

और भी बहुत-बहुत बातों के बाद पतिव्रता शारदा ने पति को आश्वासन दिया, 'इसका यह मतलब नहीं कि मैं तुम से यह वादा करा लेती हूं कि मेरे मरने के बाद ब्याह नहीं कर सकोगे। मेरे मरने के बाद तुम भी तुम एक क्यों, चाहे सौ शादियां कर लेना, मगर मेरे जीते-जी नहीं !'

'नहीं करूंगा ! नहीं करूंगा ! नहीं करूंगा !'—तीन सत्य किया रासू ने !

और महज कल रात को।

और आज वही रासू माथे पर मौर पहने केले के नीचे खड़ा है, अभी-अभी जिस गृहिणी ने परिछन किया, उसने कहा, 'कौडी देकर खरीदा, डोरी से बांधा, हाथ में दिया माकू, एक बार वे करो तो बापू !'

एक आदमी को कितनी बार खरीदा जा सकता है ?

बंधे हुए को फिर किस प्रकार से बांधा जाता है ?

हाय भगवान, रासू को ऐसी विडबना में डालकर क्या सुख मिला तुम्हें ?

अहा, रासू ठीक आज ही अगर घर पर नहीं रहा होता ? बीमार नानी को देखने के लिए बीच-बीच में गांव छोड़कर दूसरे गांव को भी तो जाता है वह। आज ही गया होता कहीं। और बुढ़िया नानी उसे आज वहीं रोक लेती।

ऐन इसी मौके पर नाते-रिश्ते का कोई मर जाता और अशौच हो जाता ! यदि रासू को भी इसी दुल्हे जैसा कोई कठिन रोग हो जाता !

वैसा कुछ हो गया होता तो ब्याह तो नहीं होता न !

बेटी के लिए मुसीबत में पड़े भले आदमी की बात उसके मन के कोने में भी नहीं आती ! भाड़ में जाएं ये, मर जाएं—रासू पर यह क्या आफत आयी !

यह यदि चाचा रामकाली के बदले उसके बाप कुंजविहारी होते ! बाबूजी

यदि कहते, 'भलेमानुष पर बड़ी आफत आ पड़ी है रासू, आगा-पीछा करने का समय नही है। उठ, चल।' तो भी शायद रासू ज़रा देर के लिए सिर खुजाता।

मगर यह तो ठहरे मंझले चाचा! जिनके हुक्म पर कोई बात ही नही चल सकती।

बहुत-से 'यदि' के बाद आखिर हताश रासू ने यह भी सोचा, और कुछ न सही, गर्मी के कारण पिछली रात यदि रासू बाहर सोने गया होता! तब भी तो उसे वचनबद्ध नही होना पड़ता।

इसके बाद क्या अब कभी किसी भी बात के लिए रासू पर विश्वास कर सकेगी शारदा? उसे यह यकीन आएगा कि इस मामले मे शारदा की तरह रासू भी निरुपाय है? इसमे उसका कोई हाथ नही था? न:, विश्वास नही करेगी शारदा! कहेगी, समझ गई, समझ गई! मर्दों की माया! मर्दों का तीन सत्य!

लेकिन कभी बात भी करेगी वह? शायद हो कि जीवन में रासू से कभी बात ही न करे। दु:ख से, अभिमान से, घृणा से—हठात् रासू के मन की आखों में विशाल चटर्जी पोखरे के काकचक्षु पानी का दृश्य तिर आया।

घृणा से आज ही रात तो कुछ कर नही बैठेगी शारदा?

कलेजे को चीर-चीरकर कोई जैसे नमक छिडक रहा था। अब शायद रासू चुपचाप रह नही सकेगा, शायद ज़ोर-जोर से चीख पड़ेगा।

न:, रासू चीख नही उठा। लेकिन उसकी सूरत देखकर लड़कीवालों की तरफ का कोई पूछ बैठा, 'तबीयत खराब लग रही है क्या?'

दुलहे की फिर तबीयत खराब!

लक्ष्मीकांत ने उस हितैषी बने दुर्मुख की तरफ एक बार भवें सिकोड़कर देखा। उसके बाद गभीर स्वर से आदेश दिया—'कौन है रे, ज़रा पंखा तो ले आ, नए जमाई बाबू को ज़रा ज़ोर-ज़ोर से हवा तो कर दे!

ज़ोर-ज़ोर की हवा से रासू की शकल की हालत सचमुच ही कुछ सुधरी। और न ही सुधरी तो क्या, अब तक तो शादी हो-हुवा गई। वर-वधू को 'लक्ष्मीघर' से प्रणाम करा कर लोग-बाग कोहबर में ले जा रहे थे—पावों पर लोटे से पानी उलीच-उलीचकर।

वहा फिर तो उसी बार की तरह उपद्रव होगा? शारदा के मैके की उन औरतों के वाक्य और वाचालता की याद से आज भी रासू के जी मे कंपन शुरू हो जाता है।

फिर उसे भयानक एक स्थिति के आमने-सामने खड़ा होना पड़ रहा है।

बिलकुल असहाय! बिलकुल निहत्था।

दार्शनिक की नाई अपना दु:ख-कष्ट भूलकर रासू ने विराट एक दार्शनिक

सत्य का आविष्कार कर लिया।

आदमी भी क्या अजीब निर्बोध जीव है!

इस कुरूप कदर्यता को स्वेच्छा से जीवन मे बार-बार ले आता है। बार-बार अपने को फूटी कौडी पर बेचता है।

दूसरे दिन सवेरे यहा 'बहूछत्र' आका जा रहा था। खुशी के ब्याह जैसा बहुत ठीक से, बहुत बहार के साथ न सही, नियम का पालन तो बरकरार रखना है?

और इतने बड़े आगन मे जैसे-तैसे भी आलपना का नाम करने के लिए सेर-सवा सेर से कम चावल भिगोने से काम नही चलेगा।

सो सवा ही सेर चावल रामकाली की चाची नंदरानी ने भिगो दिया था। रामकाली की अपनी चाची नहीं, नाते की। दुनिया के जितने भी नियम हैं, रीत-कर्म है, उन सब कामों की जिम्मेदारी नंदरानी और कुज की बहू पर रहती है। क्योकि यही दो जनें अखड अहिवाती है। कुज की बहू के तो सात-सात बेटी-बेटे बड़े ही आनंद से टिके हुए है।

नंदरानी के अवश्य दो ही तीन है।

खैर! ब्याह के मामले में नियम-पालन के सारे काम जब नंदरानी के ही जिम्मे हैं, तो इसी मे उसका अतिक्रम क्यों हो? लिहाजा रामू के इस ब्याह को मन ही मन जितना ही नकारती रहें वह, बहूछत्र के लिए उन्होंने सवा सेर ही अरवा चावल भिगो दिया था।

दूध-अलता का बहुत बड़ा-सा पत्थर रखकर उसी को केन्द्र बनाकर चारों ओर फूल, लता, आकती जा रही थी नंदरानी—पूरा होने मे अभी भी कुछ देर थी कि चरवाहा छोरा पसीने से लथपथ दौड़ता हुआ आया और आंगन के दरवाज़े पर खड़ा होकर आकर्ण विस्तृत हंसी हंसता हुआ बोला, 'दुलहा-दुलहिन आ गई! मैंने वहा तालाब के बांध से देखा और खबर करने के लिए दौड़ता आया।'

'आ तो गए—' नंदरानी ज़रा आफत में फंसी-सी इधर-उधर ताककर ज़रा ऊंचे गले बोल उठी—'दीदी, ओ दीदी, वर-वधू आ धमके सुन रही हूं···'

'वर-वधू! आ पहुंचे!'

दीनतारिणी तरकारी कूट रही थी। छोड़कर दौड़ी आयी—'अभी ही आ गए! रामकाली को जल्दी भी इतनी!'

'प्रदीप पड़ने के पहले ही ले आए शायद!'

गरचे जेठ के लड़के हैं, तो भी धन में, मान में और इससे भी ज्यादा कि उम्र में बड़े हैं। इसलिए रामकाली के लिए नंदरानी आदरसूचक वाक्य का

ही व्यवहार करती हैं। अभी भी किया।

प्रदोष का सुन दीनतारिणी ने मन को स्थिर करके कहा—'हो सकता है। तो तुम लोगों के नेग-वेग का सब तैयार है ?'

नंदरानी और जल्दी-जल्दी हाथ का काम निबटाते हुए बोलीं—'तैयार तो एक प्रकार से सब है। लेकिन दूध को उफनाना जो होगा—यह अब कौन करेगा अभी ?'

दूध ! ठीक तो !

उफनाना है।

नई बहू आते ही उफनाते दूध को देखती है तो घर में सुख छलकता रहता है।

उद्विग्न होकर दीनतारिणी ने पूछा, 'बड़ी बहूरानी कहां गई ?'

'बड़ी बहूरानी ! वह तो रसोई मे है। झटपट ढेरों पका-चुकाकर भी तो रखना है। आकर बहू नजर डालेगी।'

बड़ी बहूरानी यानी रासू की मां ! नंदरानी उसे यही कहती हैं। क्योंकि नंदरानी रासू की मा की हमउम्र है जरूर, पर मान मे बड़ी, नाते में चचिया सास, इसीलिए बहूरानी कहती है।

जो भी हो, कुज की बहू रसोई मे है।

लिहाजा दूध उफनाने के लिए और कोई हो। उधर नई जोड़ी आ चली।

दीनतारिणी ने मन की आंखों से चारों ओर निहार लिया, और कौन है ? अखंड अहिवाती। पति की पहली।

दूसरी-तीसरी पत्नी से तो पुण्यकर्म नहीं किया जा सकता।

कौन है ?

हाय राम, सोचना क्या है ?

शारदा ही तो है।

'तो फिर उसी को बुलाया जाय। घर के कोने में अकेली ही मन मारे बैठी है। काम-काज में फिर भी कुछ अनमनी होगी। और फिर नई किसी की खोज का वक्त भी कहां है ?

सत्य तीर के वेग से अंगना पार कर रही थी। दीनतारिणी ने उसे ही पुकारा—'ऐ सत्ती, धिंगी अवतार ! जा तो, जरा बड़ी बहू को तो बुला ला। जल्दी ! वर-वधू प्रायः आ पहुंचे। दूध उफनाना है।'

'भौजी को ! बड़े भैया की बहू को बुला दू ?' सत्य ने दोनों हथेली उलटकर कहा—'वह अब बहू में थोड़े ही है। सुबह से ही जमीन पर औंधी पड़ी रो-रोकर मर रही है।'

'रो-रोकर मर रही है ?' दीनतारिणी खीजभरे स्वर में बोलीं—'मर ही रही

हैं एकबारगी ? क्यों, इतना मरने का क्या हो गया ? हाय मां, शुभ दिन में यह कैसा कुलच्छन कांड ! जा, जल्दी बुला ला ।'

सत्य ने इधर-उधर ताककर कहा, 'कौन तो बुलाने जाए बाबा ! तुमने तो कह दिया, रोने का क्या हुआ है ? मैं कहती हूं, यह यदि तुम पर गुज़रता ? सौत आ रही है, रोएगी नहीं, खुशी से हाथ उठाकर नाचेगी ? हुं ! खैर, कहां क्या है, बताओ ! मैं ही दूध उफनाए देती हू ।'

'तू ! तू दूध उबालेगी ?'

'क्यों ? उबाला हो तो ?' सत्य ने उत्साह के साथ कहा, 'फुआ-दादी ने उस बार खुती की दीदी के ब्याह मे जो कहा, सत्य का साल पूरा हो गया, अब वह अहिवाती डाली मे हाथ दे सकती है ।'

दीनतारिणी ने संदिग्ध सुर मे कहा, 'साल पूरा होने से ही हो गया न ! घर बसाने से पहले···'

'मैं नही जानती, बाबा ! अपना संदेह रखो । लो, मैं लगाती हूं हाथ !'

इतना कहकर सत्य ने बरामदे के पास दो ईंटों के बने चूल्हे पर रखे ढक्कन ढंके बर्तन के नीचे फूकना शुरू कर दिया ।

गोयठे की आग धुक्-धुक् जल रही थी । फूककर दो-चार नारियल के पत्ते डाल देने से ही लहक उठेगी । और सुघड़ नंदरानी ने नारियल के पत्ते भी लाकर वहा रख दिए थे ।

सत्य का सब काम ही ताबड़तोड होता है ।

उसकी फूक के ज़ोर से वर-वधू के आने के पहले ही दूध उफनाने लगा । उफनाया, धुआ उठाकर छलक पड़ा ।

दीनतारिणी हां-हा कर उठी—'रे-रे, ज़रा रुक-थमकर—नई बहू अंदर आते ही जिसमें देख पाए ।'

बात पूरी होने के पहले ही बाहर के प्रागण मे शंख बज उठा । गर्ज कि नई बहू का शुभागमन हो गया ।

मोक्षदा हाथ में शंख लिए बाहर खड़ी थीं । आज, पूर्णिमा । विधवाओं की तरफ रसोई का झमेला नहीं । किसी समय आम-कटहल, फल-मिठाई खा लेने से ही काम चल जाएगा । सो आज मोक्षदा वगैरह की छुट्टी ।

छुट्टी ही जब है, तो मोक्षदा दौड़-धूप क्यों न करें ? जलपान के पहले नहाना तो पड़ेगा ही ।

इसलिए अगुआ होकर मोक्षदा ही बाहर खड़ी थी । खड़ी थी हाथ मे शंख लिए ।

शुभकर्मों मे विधवाओं का दखल नहीं होता, इसी एक काम का उन्हें अधिकार है—समाज या समाजपतियों ने यही इतना-सा नहीं छीन लिया—

क्षमा-घृणा से छोड दिया है। शंख और उलूध्वनि !

रासू के दूसरे अभियान की वापसी में मोक्षदा उसी अधिकार का सम्यक् सद्व्यवहार कर रही थी।

दीनतारिणी हड़बडाकर जाते-जाते चौंककर बोली—'अरे, हाथ को वैसे फूक क्या रही है, सत्ती ? जला लिया क्या ?'

सत्य ने झट सत्य छिपाकर कहा, 'जला क्यों लूंगी—हुं: ।'

'तो फिर हाथ को फूक क्यों रही है ?'

'यों ही।'

'जाने दे ! अब फिर से चूल्हे को फूक ! फिर दूध उफनाए।' सो उफनाया। बहू लछमी होगी। उस बार बल्कि···'

बात पूरी होने के पहले ही रामकाली की गभीर आवाज गूजी, 'तुम लोगों का वह बरण-बरण झटपट कर-करा लो, छोटी फूआ ! प्रदोष काल को ज्यादा देर नही है।'

बार-बार शंख की आवाज में रामकाली की आवाज भी दब गई। वर-वधू अंदर आगन मे आए। उनके पीछे-पीछे तमाम मुहल्ले की घूघट वाली स्त्रिया।

यह ब्याह जैसे और जिस परिस्थिति मे हुआ हो चाहे, 'बहू-भात'[1] का यज्ञ तो करना ही होगा। मौज-मजे के लिए नही, समाज की जानकारी के लिए। अचानक एक दिन लक्ष्मीकात बनर्जी की पोती चटर्जी परिवार की हवेली में दाखिल हो गई, चिड़िया-चुनमुन को भी पता नही चला, यह तो कोई काम की बात नहीं हुई। उसका यह प्रवेश वैध है, इस बात का एक पक्का दस्तावेज तो चाहिए।

दस्तावेज भी क्या, लिखत-पढ़त में कुछ नही, सही-सबूत भी नही, लोगों की जानकारी ही दस्तावेज। सो जानकारी के उस दस्तावेज के लिए गाव-समाज को विनय से बुलाकर उत्तम फलाहार कराने के सिवाय और क्या उपाय है ?

इसके अलावा बनर्जी परिवार की लड़की चटर्जी परिवार मे आयी इसको भी तो स्वीकृति देनी होगी। बहू-भात के आयोजन मे बहू के हाथों भात-परोसा कर जात-कुटुम्ब से यह स्वीकृति लेना।

इसलिए ब्याह मे दावत किए बिना नही चलने का। पहले से कुछ किया-कराया न था, चट मगनी पट ब्याह, इसलिए भोज की तैयारी में भी हड़बड़ी ! रामकाली को फरमाबरदारों की कमी नही। चारों तरफ आदमी भेज दिए।

१. नई बहू के आने पर जो दावत दी जाती है।

इस बीच रामकाली ने बेटी का हाथ उठाकर देखा। सिहर उठे।

'बात क्या है ? यह कैसे हो गया ?'

'कैसे हो गया, पूछो, उसी से पूछो। बिटिया के गुण की इतनी तो कहती हू, सुनते ही तो नही हो। लेकिन मैं तुमसे यह कहे देती हूं रामकाली, इसी लड़की से तुम्हारे कपाल में दु.ख है।'

बात यह नई नही, बहुत-बहुत बार कही जा चुकी है। सो रामकाली इससे खास विचलित हुए, ऐसा नही। लेकिन ऊपर से गुरुजनो को मानकर चलने की शिक्षा उन्हें है, इसलिए उन्होंने विचलित होने का भाव दिखाया—'न, इस लड़की को लेकर'''। फिर क्या कर लिया ? यह इतना बड़ा फोला कैसे पड़ा ?'

'दूध उफनाया जा रहा था जी ! कल जिस वक्त रासू बहू को लेकर आया, ये पत्ते जलाकर दूध उफनाने गई थी। और यह भी पूछू, इत्ती बड़ी-बुड्ढी-सी लड़की, इतने-से काम मे हाथ ही कैसे जला लिया ?'

रामकाली ने बेटी के हाथ को गौर से देखा और गंभीर होकर बेटी के लिए ही कहा, 'आग का काम तुम करने ही क्यों गई ? और क्या कोई आदमी नही था ?'

सत्य ने गरदन झुकाकर कहा, 'ज्यादा जलन नही है, बाबूजी !'

'जलन की बात नही हो रही है, होती भी तो उसे ठंडी करने की बहुत-सी दवाएं हैं। मैं पूछता हूं, तुम आग मे हाथ देने गई क्यों ?'

अब सत्य ने गरदन उठाई। उठाकर अचानक अपने खास लहजे से तड़बड़ाकर बोल उठी, 'मैंने कुछ शौक से आग में थोड़े ही हाथ डाला है बाबूजी, बड़ी बहू का मुह देखकर ही ऐसा किया। अहा, बेचारी ! एक तो सौत-काटे की जलन, उस पर दूध उफनाने का हुकुम ! आखिर आदमी ही है न !'

सत्य के इस साफ जवाब से रामकाली ही नहीं, मोक्षदा भी हैरान रह गई। बाप रे ! कैसी सर्वनाशी लड़की है ! ऐसे दबंग बाप के मुह पर ऐसा करारा जवाब ! गाल पर हाथ रखकर अवाक् हो गयी मोक्षदा। बात रामकाली ने ही की। दोनों भवों पर बल डालकर बोले, 'यह सौत-काटा क्या चीज़ होती है ?'

'क्या चीज होती है, यह अब तुम अपनी बेटी से ही सीखो, रामकाली !' मोक्षदा ने सत्यवती के सामने ही तीखे व्यग्य के साथ कहा—'हम लोगों ने इतनी उमर में जो बातें नही सीखी, बित्ताभर की इस छोरी ने यह सीखा है। बातों की टोकरी !'

सत्य ऐसी उलटी-पुलटी बातों से बेहद चिढ़ती है। क्यों बाबा, जब जो चाहे, वही क्यों कहोगी ? अभी-अभी तो उसे इत्ती बड़ी-बूढ़ी-सी कहा और अब बित्ताभर की छोटी ! मनमानी !

रामकाली ने एक बार अपनी फुआ की तरफ ताक लिया और जलद गंभीर गले से बेटी से फिर पूछा, 'कहा, मेरी बात का जवाब नही दिया ? बताया नही कि सौत-काटा क्या होता है और उसकी जलन ही क्या चीज होती है ?'

क्या होती है, यह क्या खाक जानती है सत्यवती। लेकिन यह चीज बहुत दुःख देनेवाली और हृदय-विदारक है, यह शायद वह जनम से पहले से जानती है। इसलिए मुंह को बहुत ही करुण करके बोली, 'सौत का मतलब ही तो काटा है, बाबूजी ! और काटा है, तो जलन भी होगी। बड़ी बहू के जी मे तो तुमने वही जलन जला दी···'

'रुको !'···डांट उठे रामकाली। विचलित हो गए वे। वास्तव मे विचलित हो उठे। इसलिए नही कि बिटिया का भविष्य क्या होगा, विचलित हुए सहसा उसके मन की मलिनता का परिचय पाकर।

यह क्या ?

ऐसी तो धारणा नहीं थी उनकी, यह तो उनके हिसाब मे नही था। यह कैसे हो गया ? सत्यवती की बहुत-बहुत निंदा उनके कानों आती है, उन्हें वे खास नही लगाते। नही लगाते हैं बेटी के स्वभाव मे एक निर्मल तेज देखकर। सत्य के हृदय को हिंसा-द्वेष नही छू गया है, उनके खाते मे यही जमा था—ऐसी ईर्ष्या की नीच बातें इसने कहा से सीख ली। इसे बढने नही देना है। शासन करना होगा।

इसीलिए वे और भी बाघ-जैसा गरजकर बोले, 'सौत ऐसी भयंकर कैसे हो गई ? आकर वह तुम्हारी बडी बहू को मार-धर रही है !'

पिता की इस बाघ-घुड़की से सत्य की आंखो मे आसू छलक पडे, पर आसानी से हार नही मानती वह। रोने की दीनता ज़ाहिर हो पड़ेगी, इस डर से गरदन झुकाकर भारी गले से बोली, 'हाथ से न मारे, भात से तो मार रही है ! बडी बहू अकेली मालकिन थी, अचानक नई बहू उड़कर आयी और जुड बैठी—'

आह, छि-छि-छि !

रामकाली सिहरे। सन्न रह गए। शकल देखने से ऐसा लगा, मानो सत्यवती ने उनके जतन से आके हुए एक चित्र को फाड़-फूडकर फेंक दिया।

इसी फाक मे मोक्षदा ने एक हाथ और लिया —'सुन लो ! सुन लो बेटी की बात का ढंग ! यों ही क्या मैं इसे बातो की भटचारज कहती हूं। बुढ़िया औरतों जैसी बात और बच्चो जैसी शरारत। बातों की चोट से हर वक्त हैरान किए देती है।'

रामकाली ने फुआ की बातों पर कान न देकर तीखे खीजे स्वर मे कहा, 'इस तरह की ओछी बातें कहा सीखी ? छि-छि-छि ! मारे शर्म के मेरा सिर

झुका जा रहा है ! उड़कर आयी और जुड़कर बैठी का क्या मतलब है ? एक घर में दो बहनें नही रहती ? सौत को कांटा के बजाय बहन नही माना जा सकता ?'

पिता की इतनी मलामत के बाद सत्यवती की कोशिशें बेशक बेकार गई। एक ही आंसू की असंख्य बूंदे आखों से गाल पर, गाल से ज़मीन पर चू पड़ी। गिरती ही रहीं, सत्य ने हाथ से उन्हें पोंछा नही।

रामकाली फिर एक बार विचलित हो पड़े। सत्यवती की आखों में आसू ! यह जैसे एक अभूतपूर्व दृश्य हो। लगता है, मलामत कुछ ज्यादा हो गई।

दवा में मात्रा का बढना रामकाली की नजर में शोचनीय अपव्यय है। याद आया, बिटिया के हाथ का फोला कम कष्टकर नही है। तुरत उपाय करना चाहिए। इसीलिए जरा नर्म गले से बोले, 'ऐसी नीच बातें फिर मत बोलना। मन मे भी मत लाना। दुनिया में भाई-बहन, ननद-देवर, देवरानी-जेठानी रहती है, वैसे ही सौत भी रहती है, समझी ? ला, हाथ दिखा तो।'

अपने उमडते हृदय को दात पर दात रखे सम्हालने की कोशिश करते हुए सत्यवती ने हाथ बढ़ा दिया।

मोक्षदा समझ गई, बादल उड़ गए। रामकाली का लड़की को शासन करना हो गया! छि-छि-छि ! खड़े रहने की इच्छा नही हुई। बोली—'जाने दो, शासन-सजा हो गई न। अब बैठे-बैठे बेटी को लाड़ करो। तुमने खूब दिखाया !'

मोक्षदा रंगमंच से विदा हो गई।

सत्यवती को फिर थोड़ा-सा साहस मिला। पिता के धिक्कार से उसका कलेजा भी तो फटा जा रहा था। लेकिन अपना दोष कहा है, यही तो समझ नही पाती सत्यवती। सबको प्यार करके रहना ही यदि धरम है तो 'सेंजुति' व्रत क्यों करना पड़ता है ?

मन की चिंता सत्य के मुंह से जाहिर हो पड़ी—'बाबूजी, अगर यही ठीक है, तो *सेंजुति व्रत क्यों करना पड़ता है ? फुआ-दादी ने तो इस बार से* मुझे, फंतु को, पुन्नु को भी कराना शुरू कराया है।

खीज के बदले इस बार रामकाली को अचरज हुआ। 'सेंजुति' व्रत के बारे में अवश्य उन्हें पूरी जानकारी नहीं है। लेकिन जो भी हो, कोई भी व्रत जो मानवता-विरोधी हो सकता है, इसकी धारणा वे नही कर सकते। दवा के हाथ को घर के कोने में रखे घड़े के पानी से धोते हुए बोले, 'इसका व्रत से क्या वास्ता ?'

'कौन-सा वास्ता नही है, यही कहो न !' आखों का पानी सूखने के

पहले ही सत्य के गले के शब्द सूखे खट्-खट् हो गए—'सॅंजुति व्रत के सारे ही मतर क्या सौत-काटा दूर करने के नहीं हैं ?'

रामकाली जरा देर चुप रहे।

जाने कहा तो आशा की किरण देख पा रहे थे वे। हूं ! ऐसी ही कोई गड़-बड़ वात लड़की की खोपडी मे घुस गई है। नहीं तो सत्य के मुह में ऐसी वात !

वहुत-से काम पड़े थे।

फिर भी रामकाली ने विचारा, अच्छे उपदेश से वेटी के हृदय के वगीचे से इस सौत-काटे को उखाड फेकना होगा। वोले, 'अच्छा ! कौन-सा है वह मंतर ?'

'मंतर कोई एक थोड़ ही है, वावूजी !' सत्यवती ने वडे उत्साह से कहा, 'ढेरों मतर हे। खाक याद भी है सव ? सोच-सोचकर वताती हूं, ठहरो। पहले तो आलपना आकना आता है। फूल, लत्तर का नकशा वनाकर उसके किनारे, कोने में एक-एक गिरस्ती के सारे सामान आकना—कलछुल, छोलनी, वर्तन-भाडा—सव। फिर एक-एक को छूकर मतर। जैसे—

हाता हाता हाता,
खा सौतन का माथा !

फिर 'खोरा' पर हाथ रखकर—

खोरा खोरा खोरा,
सौत की मा को पकड़ ले जाए
तीन मरद गोरा।

फिर 'हंसिए' को पकड़कर—

हंसिया हंसिया हंसिया,
सौत के सराध का,
शाक सव काट लिया।

और,

हाडी, हाडी, हाड़ी,
जनम-जनम की मैं अहिवाती,
सौतन विधवा राड़ी।

'चुप्-चुप् !'

रामकाली ने गंभीर स्वर से कहा, 'यह सव तुम लोगों के व्रत का मंतर है ?'

यह सव व्रत के मंत्र होने योग्य नहीं है, यह सत्य मानो सत्य के वोध-जगत् में सहसा ही उस क्षण दमक गया। उसने उत्साह के वजाय धीमे से कहा, 'और भी तो कितना है !'

'और भी है ? अच्छा ! कहो तो सुनें और क्या-क्या है ? ज़रा देखूं तो सही कि किस तरह से तुम लोगो के दिमाग़ को चबाया जा रहा है। और भी मालूम है ?'

'हां।' सत्य ने गरदन को एक ओर झुकाकर कहा, 'और है—

ढेकी ढेंकी ढेकी,
सौत मरे नीचे देखू मैं
ऊपर बैठी बैठी।

उसके बाद—

पीपल काट बनाएं घर,
सौत काटकर अलता कर।
मैंना मैंना मैंना,
सौतन जिसमें होय ना।

उसके बाद मुट्ठीभर दूब लेकर कहना पड़ता है—

घास मुट्ठी घास मुट्ठी
सौत काटकर कर दे कुट्टी।'

'रहने दो ! बहुत हुआ। अब नही कहना होगा।'

रामकाली ने हाथ हिलाकर रोका, 'इन गालियो को तुम लोग मंतर कहती हो ?'

'हम ही कहते है, बाबूजी ?' अपने पडित बाप की ऐसी अज्ञता देख सत्य आसमान से गिर पड़ी। आखों को गोल-गोल करके कहा, 'सारी दुनिया में सभी कहते हैं। सौत अगर बहन जैसी होती, तो इतना मंतर क्यों रचा जाता ? बहन की बुराई के लिए भी कोई व्रत करता है भला ! बात असल यह है कि मर्द लोग तो सौत की हकीकत नही समझते, इसी से···' सत्य ने थूक घोंट लिया, क्योंकि मर्दों के लिए आगे का जो वाक्य जबान पर आ रहा था, वह पिता के लिए उचित होगा या नही, समझ नही पायी, इसलिए दुविधा मे पड़ गई।

रामकाली बोले, 'सो हो ! तुम लोग अब यह व्रत मत करो।'

मत करो !

व्रत मत करो !

सत्य के माथे गाज गिरी।

यह कैसा हुक्म ! अब उपाय ?

एक ओर पिता की आज्ञा। दूसरी ओर व्रत से पतित होना। व्रत से पतित होना मानो जीते-जी नर्क। पिता की आज्ञा का पालन न करना कितना बड़ा पाप है, यह जाना न होते हुए भी इसमें सत्य निस्सदेह थी कि उसके पापी को भी नरक के आसपास तक जाना ही पड़ेगा।

बड़ी देर तक दोनों ही चुप रहे।

उसके बाद सत्य ने धीरे-धीरे बात उठायी, 'शुरू किए व्रत को छोड़ देने से नर्क में जाना पड़ेगा।'

'नही। नही जाना पड़ेगा। यह सब व्रत करने से ही नर्क मे जाना पड़ता है।'

'तो फिर फुआ दादी से यही कहूंगी।'

'क्या कहोगी ?'

'यही कि सेंजुति व्रत करने को तुमने मना किया है।'

'रहने दो ! इतनी जल्दी तुम्हे कुछ कहने की ज़रूरत नही। जो कहना होगा, मैं ही कहूगा। तुम अभी जाओ। सावधान, हाथ कही रगड़ न जाए।'

सत्यवती की हालत बहुत कुछ वैसी ही थी—'न ययौ न तस्थौ'। बाबूजी ने जाने का हुक्म दिया, लेकिन सत्य के मन मे सवालों का समंदर उमड़ रहा था। उस समंदर की लहरो का किसके पांवो पछाड़ खाने से कोई उपाय होगा—सिवा बाबूजी के ?

'बाबूजी !'

'क्या है ? फिर बाबूजी क्या ?'

'यह बात अगर गलत है, सौत अगर अच्छी चीज़ है तो बड़ी बहू को इतनी तकलीफ क्यो हो रही है ?'

'बड़ी बहू ? रासू की बहू को ? तकलीफ हो रही है ? उसने तुमसे कहा है कि तकलीफ हो रही है ?'

रामकाली की आवाज़ में फिर डाट की झलक आयी।

मगर सत्यवती बाज न आयी।

सत्य धिक्कार से दबती है, डाट से नही। इसलिए जुबान मे तेजी लाकर मोक्षदा के शब्दों मे बातों की भटचारज जैसी ही तड़बड़ करके बोल पड़ी—'कहने वह क्यों जाए ! सब कुछ क्या ज़बान खोलकर कहना पड़ता है ? शकल से नही समझ मे आता ? रोते-रोते आखें सूज गई है, सोने-सा वैसा दमकता रंग काला पड गया है। परसों से मुह में एक बूद पानी तक नही डाला है। लोक-लाज से यह कहती जरूर है कि पेट दुख रहा है, उसी से भूख नहीं है, उसी से रो रही हू, लेकिन समझ सभी रहे है। घास का भात आखिर कौन खाता है, कहो ? मरे को मारे शाहमदार, तिस पर आज नई बहू के हाथ का धागा खुलेगा। कोई कहती है, बड़ी बहू को दूसरे कमरे में भेजकर उसी में नेग-नियम होगा। कोई कहती है—अहा, छोड़ दो। बड़ी बहू ने उस घर की सावी फुआ को क्या तो कहा है, इतने सदेह का क्या है, चटर्जी पोखरे मे काफी जगह है, मेरे लिए वहीं जगह होगी।'

'गजब !'

रामकाली ने सिर थाम लिया।

'कौन कह सकता है, बहू वैसी कोई दुर्मति नहीं कर बैठेगी ? यह भी तो बेहद शर्मनाक होगा। कहो, एक भले आदमी को विपदा से उबारने की खुशी मनाओगी कि भीतर-भीतर यह दांव-पेंच।'''क्यों, त्रिभुवन में क्या और किसी के सौत नहीं होती है ?'

'हो चुका ! ऐसे-ऐसे व्रत-त्योहार करा-कराके· बचपन से ही लड़कियों के परकाल को स्वच्छ कर दिया गया है न !'

औरतों की जात ही बुराई की जड़ है।

घर की लक्ष्मी कहकर उनके प्रति सौजन्य दिखाने से क्या होगा—एक-एक स्त्री महा अलक्ष्मी है।

नहीं तो यह रासू की बहू, उम्र ही क्या है, लेकिन उसकी इतनी बड़ी-बड़ी बात ! डूब मरने का संकल्प ! छिः !

'बड़ी बहू ने ऐसा कहा है ?' रामकाली ने स्याह चेहरा लिए कहा।

'सात्री फुआ तो कह रही थी।'

पिता का चेहरा देखकर अब सत्य को जरा डर-सा लगा। लेकिन डरने से तो नहीं चलेगा। पिता को सचेतन करना, उसका भी तो कर्तव्य है।

बाबूजी को इतनी अकल है और इतना भी नहीं समझते कि दूसरी शादी कर आने से स्त्रियों की छाती टूक-टूक हो जाती है ! छाती ही न फटती तो तीनों युग में बदनाम होकर भी कैकेयी ने राम को वनवास क्यों दिया ? कथा-वाचक जी से ही तो सुना है।

राजा की रानी थी, तो भी मन में इतना ज़हर ! और बड़ी बहू तो बेचारी निरी भली है। मन के दु.ख से ही उसने मरना चाहा है।

सत्य के जी को इतनी चोट लगने का और भी एक कारण है—'बड़ी बहू को दिलासे के दो शब्द कहने का भी मुह नहीं है। मुह नहीं है—इसलिए कि इस हृदयविदारक नाटक के नायक स्वयं सत्यवती के ही पिता है। इंगित से, इशारे से, घर-बाहर सभी तो रामकाली को दूस रहे है।

दूसने की बात भी है। बच्चे की मा का गौरव ही और है। बड़ी बहू बच्चे की मां न होती तो बात भी थी। रोते-रोते यदि उसकी छाती का दूध सूख जाए तो बच्चा बचेगा कैसे ? पिता को इधर चिंता चल रही थी कि बहू को सीधी राह लाने की कौन-सी तरकीब है ? गावभर के लोगों को न्योत रखा है, रात बीती कि यज्ञ—और बड़ी बहू सचमुच ही यदि ऐसा कुछ कर बैठे ! बहुत सोचने के बाद गला झाड़कर बोले, 'यह सब बचपने की बात है ! मेरी ओर से, तुम जाकर बड़ी बहूरानी से कहो, बचपना छोड़ दें। कहो जाकर कि बाबूजी ने कहा है, जी ठीक करने की सोचने से ही जी ठीक किया जा

सकता है। कहो जाकर कि उठें, काम-काज करें, अच्छी तरह से खाएं-पिएं, मन की भूल जाती रहेगी।'

पिता की अज्ञता से सत्य फिर एक बार कातर हुई। लेकिन कातर होकर चुप ही न हो रही। जरा तान्छिन्न भाव से बोली, 'यही अगर होता बाबूजी, तब तो धरती स्वर्ग हो जाती। रोगी की शकल देखकर तुम ऊपर से ही कह दे सकते हो, उसके शरीर में कहां क्या हो रहा है। क्या मनुष्य का मुह देखकर नहीं समझ सकते कि उसके प्राणों के भीतर क्या हो रहा है? तो चलो, एक बार अपनी आंखों देख लो।'

पता नहीं क्यों, एकाएक रामकाली के बदन के रोंगटे खड़े हो गए। चुप हो गए। बड़ी देर के बाद हाथ हिलाकर बेटी को चले जाने का इशारा किया।

अब चले जाने के सिवाय और क्या चारा था? सिर झुकाकर सत्य धीरे-धीरे वहां से चली गई।

लेकिन अब की रामकाली के ही पुकारने की बारी—'अच्छा, सुन जा!'

गरदन पलटकर सत्यवती ने ताका।

'सुनो! बहूरानी से तुम्हें कुछ कहने की जरूरत नहीं। तुम सिर्फ—यानी, यानी तुम्हें एक काम बता रहा हूं…'

रामकाली आगा-पीछा करने लगे।

सत्यवती अवाक् हो गई।

न:, और चाहे जो हो, पिता को ऐसा आगे-पीछा करते उसने कभी नहीं देखा।

लेकिन ऐसी परिस्थिति में भी कब पड़े हैं वे?

सत्यवती ने सच ही क्या उन्हें सचेतन कर दिया? इसी से रामकाली ऐसे अस्त-व्यस्त और विचलित हो गए?

'मुझे क्या करने को कह रहे थे, बाबूजी?'

'ओ हां, कह रहा था, तुम जरा बड़ी बहू के पास-पास ही रहना, जिसमें वह पोखरे की ओर नहीं जा सके।'

सत्यवती जरा देर स्तब्ध रही। शायद उसने बाप के इस आदेश को समझने की कोशिश की। उसके बाद बहुत संभव है कि समझकर ही नम्र स्वर में कहा, 'समझी, बड़ी बहू को आंखों-आंखों में रखकर पहरा देने को कह रहे हो।'

'पहरा!'

रामकाली मानो भीतर ही भीतर मर गए।

उनके आदेश की यही व्याख्या है!

आजिजी दिखाकर बोले, 'पहरे का क्या मतलब? पास-पास रहना, खेलना-घूमना, जिससे उनका मन ठीक रहे…'

सत्यवती ने निश्वास छोड़कर कहा, 'हुई वही एक ही बात ! कहावत है—

जिसका नाम चावल भूना, वही कहाती मूढ़ी,
जिसके माथे पके केश हों, नाम उसी का बूढ़ी।

लेकिन बाबूजी, मान लीजिए पहरा ही दिया, लेकिन कै दिन, कै रात ? आत्म-हत्या करने की कोई अगर प्रतिज्ञा कर ले तो उसे रोकने की मजाल है किसी की ? चटर्जी-पोखरे का पानी ही तो नही है केवल, धतूरा है, कुचिला है, कनेर के बीए है···'

'चुप्-चुप् !'

गरम नि.श्वास का दाह छिडकते हुए रामकाली बोल उठे—'चुप रहो ! तुम्हारी संझली दादी ठीक ही कहती हैं, लगता है। इतनी बातें तुमने सीखीं कहां से ? जाओ, तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा, जाओ।'

१०

जाओ कहने से आदमी को भगाया जा सकता है, चिंता को नहीं भगाया जा सकता। भगाया नहीं जा सकता मानसिक द्वंद्व को। सत्यवती को तो 'जाओ' कहकर कमरे से हटा दिया उन्होंने, पर सहसा उद्वेलित हुए इस चिंता को मन से नही निकाल पा रहे थे, हटा नहीं पा रहे थे उस द्वंद्व को।

तो क्या मैंने ठीक नही किया ?

तो क्या गलती की ?

चिंता का यह द्वंद्व ही रामकाली को भगाए चल रहा था, घर से चंडी-मंडप, चंडीमंडप से बाहर के प्रागण मे, प्रागण से एकबारगी जाने क्यों चटर्जी पोखरे के किनारे। पोखरे के किनारे-किनारे चहलकदमी करने लगे वे।

लंबा-चौड़ा शरीर सामने की तरफ को ज़रा झुका, हाथ दोनों पीठ की तरफ जुड़े, चाल मे धीमापन। रामकाली का यह ढंग लोगो का लगभग अजाना है। कभी ही किसी कठिन रोग के रोगी के जीने-मरने की हालत में चिंतित रामकाली इस तरह से पायचारी करते है। रामकाली आयुर्वेद की किताबें पढ-कर दवा का चुनाव नही किया करते, ऐसे ही टहलते-टहलते मन ही मन सोचा करते है। शायद हो कि पोथियों के पन्ने मुखस्थ है, इसलिए उन्हें पलटे बिना भी काम चल जाता है।

लेकिन वह तो दैवात् कभी।

दवा चुनने मे कविराज चटर्जी को सोचने के लिए ज्यादा समय नहीं लेना पडता। रोगी की शकल देखते ही पल मे रोग और उसके दूर करने का उपाय,

दोनों एक साथ ही उनकी अनुभूति की खिड़की पर आ खड़े होते है। इसीलिए उनकी ऐसी चिंतामग्न मूर्ति शायद ही कभी नज़र आती हो। ऋजु लंबा शरीर, सखुए के पेड़-सा तना और तेजवान, दोनों हाथ छाती पर आड़े-आड़े रखे, चौड़ा कपाल, नुकीली नाक और बंद होंठों पर की जरा टेढ़ी रेखा में आत्म-विश्वास की छाप। यही शक्ल रामकाली की चीह्नी-जानी शक्ल है। आज उसका व्यतिक्रम हुआ है। उसके चेहरे की रेखा मे आत्म-जिज्ञासा का तीखापन उभर आया है।

तो क्या गलती की ?

तो क्या ठीक नही किया ? और विचार कर लेना उचित था ? लेकिन उसका समय कहा था ?

उन्होने बार-बार सोचने की कोशिश की—बुद्धिभ्रष्ट तो नही हो गया हूं मैं ? इसीलिए एक नादान बच्ची की असंलग्न बातों को इतना महत्त्व देकर विचलित हो रहा हूं ? इतना विचलित होने का क्या है ? सच तो है, त्रिभुवन मे क्या सौत और किसी के नही होती ? अनगिनती तो हो रही है। बल्कि यही अंगुलियों पर गिना जा सकता है बिना सौत का स्वामी-सुख कितनी लड़कियों को नसीब होता है। लेकिन यह बात जम नही रही थी। कोशिश से लायी गई युक्ति दिल की लहरो के झकोरो मे टिक नही रही थी। रत्तीभर की एक बच्ची की बात को किसी भी प्रकार से उड़ा नही पा रहे थे रामकाली।

रामकाली का चरित्र बहुतेरे गुणो के समावेश से उज्ज्वल है, पुरुषों के लिए आदर्श है, तो भी लगता है, उस चरित्र की चुनाई मे शायद ज़रा खोट है। मनुष्य को मनुष्य की मर्यादा देना जानते है वे, जानते हैं बड़ों का आदर-सम्मान करना, लेकिन 'स्त्रीजात' के प्रति वैसा संभ्रमबोध, मूल्यबोध नही है।

जिस जाति की भूमिका सिर्फ रसोई करने, बच्चों को पीटने, टोले का चक्कर काटने, परनिंदा करने, झगडा और असभ्य गाली-गलौज करने की है, उसके प्रति छिपी एक अवज्ञा के सिवाय और कुछ नहीं आता है रामकाली को। आचार-आचरण मे अवश्य पकड़ में नही आता, शायद हो कि आप अपने निकट पकड़ में नहीं आता, पर वह अवज्ञा झूठ नही है। लेकिन बहरहाल इत्ती छोटी-सी एक लड़की मानो बीच-बीच में उन्हें चिंतित किए देती है, विचलित किए देती है, इस प्रश्न को उठाए देती है कि औरतों के बारे मे और कुछ विचार-शील होना उचित है कि नही।

आसमान मे सांझ नही आयी, लेकिन ताड़-नारियल की पात से घिरे पोखरे की गोद मे सांझ की छाया उतर आयी। उस लगभग अंधेरी राह में चहलकदमी करते-करते एकाएक रामकाली की निगाहें गिद्ध-जैसी पैनी हो

आयी। कौन ? घाट की सीढ़ियों के नीचे वैसे वह कौन बैठी है ? अब तक तो नही थी ? कब आयी ? आयी भी किस ओर से ? और ऐसी भरी साझ में अकेली आयी ही क्यों ? ऐसे समय घाट-बाट में इस तरह से अकेली कोई शायद ही आती है, अवश्य मोक्षदा को छोड़कर। लेकिन दूर से ठीक पहचान न सकने के बावजूद वह मोक्षदा नहीं है, यह ठीक ही समझ सके रामकाली।

तो कौन ?

एक अजीब भय से उनके कलेजे के भीतर सिर-सिर कर उठा। रामकाली के लिए यह अनुभूति बिलकुल नयी थी।

अंधेरा तेजी से गाढ़ा होता आ रहा था, नजर को और तेज करने का भी कोई नतीजा नही निकल रहा था, और इससे और करीब जाकर गौर करने जैसा असंगत कार्य भी रामकाली के लिए संभव नही। लेकिन एकबारगी टाला भी कैसे जा सकता है ? संदेह गहरा हो रहा था। यह और कोई नहीं, बेशक रासू की वहू है।

लेकिन सत्य ने किया क्या ? सत्यवती ने ? पहरा देने के निर्देश का उसने पालन कहा किया ?

लगता है, खासी वड़ी-सी कलसी उसके साथ है।

जो तैरना जानते हैं, उनके लिए कलसी पानी में डूब मरने का बहुत बड़ा सहारा है क्या तो। और छोटी कोई लड़की यदि उस कलसी को गले मे बाध···

चिन्ता की धारा दुश्चिन्ता के उसी पत्थर को घेरकर घूमने लगी। यह हरगिज खयाल नही आने लगा कि अचानक पानी की जरूरत आ पड़ने से भी कोई कलसी लेकर पोखरे को आ सकती है।

किन्तु यह ठीक है कि पानी भरने की कोई गरज उसमें नही दिखाई दे रही। कलसी के किनारे को थामकर बैठे रहने को क्या गरज कह सकते है ? न, यह पानी के लिए कोई नही आयी है, यह निश्चय ही रासू की वहू है। मरने की ही नीयत से इस साझ को अकेली घाट पर आयी है, पर तो भी झटपट अंत नही कर पा रही है, अंतिम बार के लिए धरती के रूप, रस, गंध, स्पर्श को देख लेना चाहती है।

सिर्फ यही ?

ताककर नि श्वास छोड़ती हुई क्या यह नहीं सोच रही है कि किसके लिए उसे यह शोभा, संपद, सुख से वंचित होना पड़ रहा है ?

कि रामकाली की आखों मे जलन होने लगी।

इस जलन को रामकाली नही चीन्हते हैं, यह अनुभूति बिलकुल नयी है, बिलकुल आकस्मिक।

यों खड़े-खड़े देखते रहने से तो नहीं चलेगा, तुरन्त कोई उपाय करना होगा। रोकना पड़ेगा इसे। लेकिन उपाय क्या है रोकने का? औरत के घाट पर उतरकर हाथ पकड़ करके उसे उठा तो नहीं ला सकते! सदुपदेश देकर उसे इस सत्यानाशी संकल्प से लौटा तो नहीं ला सकते! उसे पुकारे भी क्या कहकर? किस नाम से? रामकाली ससुर जो है!

यहां से जाकर किसी स्त्री को बुला लाने की बात नहीं जच रही थी। कहीं इसी बीच···

अरे रे, वह स्थिर चित्र चचल हो उठा!

कलसी को पानी मे डुबाकर वह पानी काटने लगी। उनकी गिद्ध-दृष्टि छुरी की तरह तीखी हो उठी, अपने अनजाने ही रामकाली औरतों के घाट की ओर बढ़े, संकट की ऐसी घड़ी मे न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, नियम-अनियम नहीं माना जाता। और ज़रा भी आगा-पीछा करने से शायद वह अमानवीय घटना घट जाएगी।

तेजी से बढ़कर रामकाली घाट के पास जा खड़े हुए, प्राय. आर्तनाद-सा कर उठे—'कौन? इस सांझ को घाट पर कौन?'

भयभीत होकर रामकाली देखने लगे, उनकी इस चीख का क्या नतीजा निकला। कपड़े की वह जो सादी-सी निशानी अब तक नजर आ रही थी, इस आकस्मिक पुकार से क्या वह गायब हो गई? जो भी दुविधा थी, वह भी जाती रही। वही तो पानी मे पैर डुबाए बैठी है, जिन्दगी और मौत मे एक लमहे की दूरी—बस एक डुबकी। उसके बाद ही तो उसके सारे दुःखों का अंत हो जाएगा, सारी ज्वाला की शांति! यही तो उसके हाथों मे सारे भय को जीतने की शक्ति है। फिर वह रामकाली के शासन से क्यों डरने लगी?

सफेद कपड़ा अभी भी नजर आ रहा है, हिल-सा रहा है। रुंधे कलेजे से इंतजार करते रहे रामकाली। विमूढ़ की इस भूमिका को निवाहने के सिवाय इस समय और करने का है क्या? जब तक वास्तव मे मरने का प्रश्न नहीं आता, तब तक बचाने की भूमिका कैसे आए? पानी मे गिरने से पहले पानी से निकालने का कहां उपाय है?

डर चाहे जितना गए हों रामकाली, लेकिन इतना सुध-बुध नहीं खो बैठे हैं कि वह मरने जा रही है, यह सोचकर घाट पर बैठी उस स्त्री को हाथ पकड़-कर हिड़-हिड करके खींच लाएं।

तो क्या करे? वह सफ़ेद रग अभी भी निश्चित नहीं हुआ है, अभी भी कुछ किया जा सकता है।

एकाएक जोश मे आए रामकाली, एकाएक ही जैसे अपने को फिर से पा लिया। अजीब है! नाहक ही डर क्यों रहे हैं वे? अभी ही जरा पुकार दें तो

हल्के के दस-बीस लोग दौड़े आएंगे। फिर सोचने की क्या पड़ी है ? अपने पर से आस्था क्यों खो रहे है ?

उन्होने आवाज दी।

आवाज भी वैसी ही। मौन की राह पर कदम बढाई स्त्री भी घबरा उठे। बादल की गरज जैसी आवाज़ और आदेश के ढंग से ही हांक दी—'जो भी हो, पानी से निकल आओ। मैं कह रहा हूं, बाहर निकल आओ। सांझ गए घाट पर रहने की जरूरत नही है।' मैं पर उन्होंने खास जोर दिया।

न, हिसाब में उनसे भूल नही हुई।

काम बना। इस भारी गले के आदेश से काम बना। कलसी भरकर वह स्त्री गले तक घूंघट काढ़कर झटपट निकल आयी। सफेद रग की गतिविधि पर गौर करके रामकाली ने समझा, घाट की सीढ़ियों से वह ऊपर को आ रही है।

रामकाली ने फिर एक वार सोचा, 'वगल से निकल जाएं या कि इस मूर्ख स्त्री को सदुपदेश दें ?'

ससुर-पतोहू के नाते तो वात करने की वात ही नही उठती, चिकित्सक के नाते कुछ छूट जरूर है। घर की वेटी-पतोहू की तवीयत-नवीयत खराव होने से मोक्षदा या दीनतारिणी उन्हें बुला ले जाती है और परोक्ष से ही सही, बहुत वार उन लोगों के माध्यम से रोगिणी से वात करनी पड़ती है उन्हे। जैसे ठडा न लगाने या कुपथ्य न करने का निदेश। वैसा कुछ चिन्ताजनक हुए विना रोगी को देखने का प्रश्न ही नही उठता, लक्षण सुनकर ही दवा वता देते है।

नियम को एकबारगी तोड़ा नही उन्होने, लेकिन थोडा-सा तोड़ा। वगल से गुजरने के वदले खखारकर वोल उठे, 'ऐसे समय घाट पर अकेली क्यो ? अव इस तरह से मत आइएगा। मैं मना करता हूं।' मैं पर फिर जोर डाला रामकाली ने।

सामने की वह स्त्री काठ बन गई-सी। रामकाली के सामने होकर चली जाय, ऐसी क्षमता होने की वात भी न थी।

रामकाली ने अपनी वात खत्म की, 'घर मे शुभ काम हो रहा है, मन को ठीक रखना चाहिए। ऐसा तो होता ही रहता है।'

और वे तेजी से चले गए।

रामकाली के चले जाने के वाद भी काठ की वह पुतली और भी कुछ देर तक बुत-सी खड़ी रही। कौन-सी घटना घट गई, मानो यह समझ ही नहीं सकी। क्या हुआ ? यह सभव कैसे हुआ ?

'ऐसा तो होता ही रहता है' का मतलव क्या ?

तो क्या वे सब-कुछ जान गए है ? जानते हुए भी माफ कर गए ? अपने दिमाग को ठंडा रखकर मन को ठीक रखने का उपदेश दे गए। तो क्या वे

वास्तव में देवता हैं ? देवता सोचकर भी लेकिन कंपकपी नही गई शंकरी की।

हां, शंकरी !

रासू की वहू शारदा नही, काशीश्वरी के नाती की विधवा वहू शंकरी। सदा मैंके मे ही रहने वाली काशीश्वरी के एक लड़की थी, वह भी असमय में ही गुज़र गई थी। मां-मरे नाती को कलेजे से लगाकर एक साल की उम्र से अठारह साल का किया और बडे शौक से एक सुदरी लड़की से उसका व्याह कराया काशीश्वरी ने। लेकिन ऐसी राक्षसी निकली वहू कि साल नही लगा, गौना नही हुआ। अपने मैंके मे ही अव तक थी। लेकिन ऐसा नसीव कि मा-वाप को भी हड़प वैठी। चाचा था, यही उस दिन आकर इसे चटर्जी परिवार के इस सदाव्रत में रख गया। दे भी न जाता तो करता क्या ? केवल खाना-कपडा ही तो जुटाना न था, हर वक्त आखों-आखों मे कौन रखे ? ससुराल में रहेगी तो फिर भी दवाव मे रहेगी। और, नसीव जिसका वुरा हो, उसके लिए ससुराल मे झाडू लगाकर भी मुट्ठीभर दाने पर रहना मान का रहना है। वाप-चाचा की रोटी अपमान की रोटी है।

यही सव समझा-वुझाकर वही जो यहा रख गया है उसका चाचा सो रख ही गया है। साल गुजरा, कोई पता नही। गोकि शकरी को यहा चाल-चलन के लिए उठते-वैठते वात सुननी पडती है। उन्नीस साल की यह आग की अगीठी, अव तक वाप के घर रही—इसका एतवार क्या ? विधवा का आचार-आचरण ही तो ठीक से नही सीखा है। नही तो व्राह्मण की विधवा भला इतना भी नही जाने कि रात को भुने चावल के साथ खीरा खाना हो तो अलग वर्तन में लेना चाहिए। एक वर्तन मे लेने से फलाहार होता है ! यहां तक कि काट-काटकर भी नही खाना चाहिए, उसके टुकडो को अलग से मुह मे फेंक देना चाहिए। सो नही, खूवसूरत वला जो एक दिन दोनो को साथ ही लेकर खाने वैठी थी। गनीमत कि मोक्षदा की नजर पड गई, जभी तो जात-धरम वचा !

एक नही, कदम-कदम पर शकरी का अनाचार पकड़ा जाता। और हर पल ऊपर महल में संदेह गाढा होता कि इसका रीत-चरित्तर ठीक भी है कि नही।

मगर रामकाली के इतना सव जानने की वात नही। कव कौन-सी अवीरा चटर्जी परिवार मे शामिल हुई, इसे याद रखने की फुर्सत कहा ? इसलिए उन्होंने रासू की वहू के लिए ही सोचा किया। और पोखरे के ऊचे वांध पर से यह भी ठीक से भापा नही जा सका कि उस सफेद कपडे के किनारे रंग की हलकी भी कोई रेखा है या नही।

लेकिन नहीं, शारदा मरने नही आयी। पिता के हुक्म के वाद से ही सत्यवती नेउसे आंखों-आखों रखना शुरू कर दिया। और पहरा न भी दिया जाए, तो

मरना इतना आसान नही। 'मर जाऊंगी', यह कहा है, इसीलिए अभी-अभी आयी सौत के हाथ पति-पुत्र दोनों को सौंपकर पोखरे मे पनाह ले लेगी, ऐसा नहीं। दूसरे को जला-जला कर खाने के लिए उसे जलन लिए ही जीना होगा।

मरने गई थी शंकरी।

मरने गई थी, तो भी मर नहीं पा रही थी।

बैठी-बैठी सोच रही थी, 'मरने की दशा जब हो गई, तो मरने के सिवा और कोई रास्ता नहीं। लेकिन कौन-सी मौत ठीक है ? इस रूप-रस-गंध-स्पर्श वाली मधुमय धरती से सदा के लिए उठ जाना या समाज-संस्कार, संभ्रम-सभ्यता, मान-मर्यादा के राज्य से सदा के लिए चल देना ?'

दूसरी मौत हर पल जाने किस दुर्निवार खिचाव से शंकरी को खीचे लिए जा रही थी ! पर शंकरी को पता तो है, वहां अनंत नर्क है। जभी तो पृथ्वी-विनती की करुणाभरी दृष्टि से भोर के सूरज और साझ के माधुर्य मे ताक रही है, उसी से विदाई लेने के लिए आयी थी वह !

लेकिन विदा होते कहा बना ?

मामा जी के दुर्लंघ्य आदेश से ही केवल ? घाट की सीढ़ियो ने क्या उसे अटूट बंधन से बाध नही रखा ?

तो क्या शंकरी की मौत विधाता नही चाहते ? जभी देवता की नाई मृत्यु के पथ को रोककर वे आ खड़े हुए ?

ऐसा भी आया उसके जी में, मामाजी ही तो थे ? या कि किसी देवता का छल था ? कितना तो सुनने में आता है कि ठाकुर-देवता आदमी के रूप में आकर भूल सुधार जाते है, अभय दे जाते है।

घर लौटकर शंकरी अगर जान पाए कि मामाजी अभी कहा है तो उसका संदेह दूर हो। सोचते-सोचते क्रमशः शंकरी को यही धारणा हुई कि खोज लेने पर निश्चय ही यह पता चलेगा कि मामाजी अभी इस गाव में ही नही है, रोगी देखने के लिए आन गाव गए हैं। जरूर यह किसी देवता का छल था। नहीं तो वैसी साझ को मामाजी औरतों के घाट के पास घूमेंगे ही क्यो ?

और उनकी वह हांक ?

वह आवाज भी क्या मामाजी जैसी थी ?

इन मामाजी को देखने से पुण्य होता है।

ये बड़े मामाजी जैसे नहीं है। बड़े मामाजी को देखने से श्रद्धा-भक्ति भाग जाती है। लेकिन इस छद्मवेश के बारे मे निस्संदेह होने का उपाय क्या है ? कहां औरतों की हवेली और कहा पुरुषों का महल ? चटर्जियों के सौ सदस्यों के इस परिवार में स्त्रियां अपने पति का ही ठीक से पता नहीं पाती हैं, तो दूसरी ! दोनों की जीवन-यात्रा की धारा विपरीतमुखी है। पुरुषों की कर्म-

धारा की शकल स्त्रियों की अजानी है, उस तरफ झांकने की भी उन्हें हिम्मत नहीं, ठीक इसी तरह महिलाओं के कर्मकांड पर उपेक्षा की नज़र डालने की भी पुरुषों को फ़ुर्सत नही।

एक ही जगह रहते हुए भी दोनों दो आसमान के सितारे हैं।

फिर भी शंकरी के जी में आने लगा, 'किसी तरह से यह पता नही लगाया जा सकता कि मामाजी हैं या नही ? हैं तो कैसे ? अभी-अभी कहीं से लौटे है या बड़ी देर से बैठे हैं ?'

काश, उनसे बात की जा सकती ! तब शायद भगवान से मिलने की शंकरी की आशा पूरी होती। शंकरी भगवान से उनकी तुलना न करे, तो क्या करे ? इतनी क्षमा और किस आदमी में संभव है ? इतनी करुणा और किसके प्राणों में है ? शंकरी की सारी बातें जानने के बाद तीनों जगत में कोई ऐसा है, जो इतनी सहानुभूति के साथ उससे बातें करता। न, लोग तो उसकी दुर्गत करके गांव से निकाल बाहर करते उसे। पीछे-पीछे तालियां बजाते हुए कहते, 'छिः-छिः ! चुल्लू भर पानी मे डूब जा ! तू हिन्दू की बेटी है न ! ब्राह्मण घर की विधवा !'

लेकिन हा, एकाएक शंकरी के सारे बदन में रोएं खड़े हो गए, 'मामाजी को पता कैसे चला ? किसने कहा ? जानता कौन है ? खैर, और बातें कहीं से किसी प्रकार जान भी गए हों शायद, यह कैसे जाना कि शंकरी इस भरी सांझ में यहां डूब मरने के लिए आयी है ?'

आज ही तो, कुछ घड़ी पहले उसने मरने की ठानी थी। बहुत-बहुत सोचने के बाद, बहुत उसासें लेकर, आसू से ज़मीन को भिगो-भिगोकर सोचा, ब्याह का व्यस्त घर, सारे कामों में उलझी हैं, कौन कहां क्या कर रहा है, किसी को पता नहीं होगा। आज ही ठीक समय है। कल तो भोज-भात है। घर मे आए-गयों की भीड़ होगी। कौन जाने, किस बहाने कौन शंकरी के चाल-चलन, रीत-करम की निंदा करे ! शोर हो जाएगा।

न-न, मरना ही है तो आज ही सबसे अच्छा मौका है। यही सब छः-पाच की चिंता का भार लिए शंकरी घाट पर आयी थी, जिंदगी के सारे बोझ को उतार देने के लिए। लेकिन···फिर उसके रोंगटे खड़े हो गए—विधाता ने मना कर दिया।

मौत के दरवाज़े से जीवन के राज्य मे लौटा लाए।

तो फिर दुविधा किस बात की ?

शंकरी है तो विधवा, पर उसका लाया हुआ पानी निरामिष घर मे नहीं चलता। अनाचारिणी है वह, शरीर उसका अदीक्षित है। इसीसे पानीभरे घड़े को उसने पिछले दालान मे रख दिया, बच्चों के पीने के काम आएगा।

घड़ा रखने की जो आवाज हुई, उसे सुनकर जाने कहां से आ पहुंची सत्यवती। आते ही इधर-उधर ताककर धीमे-धीमे कहा—'कटवा की बहू, तुम्हारे नाम ढिंढोरा पिट गया!' घर में बहुएं बहुत-सी हैं, लिहाजा उनके नैहर के नाम से अमुक और फलां बहू कहना पड़ता है। और फिर शंकरी हाल-फिलहाल आयी है, पर्यायक्रम से मंझली-संझली नामकरण उसका नहीं हुआ है।

शंकरी की छाती ज़ोरों से धड़क उठी।

कैसा ढिंढोरा?

तो क्या सारी कलई खुल गयी?

घर के कोने में माटी का दीया जल रहा था। उसके प्रकाश में चेहरे का रंग-ढंग नहीं देखा जा सका। सिर्फ़ आवाज सुनी गई—कांपती-सी भर्राई-भर्राई।

'काहे का ढिंढोरा, ननदजी?'

'लक्ष्मीघर में दीया-बाती की आज तुम्हारी बारी थी न?' सत्य के गले में अचरज और सहानुभूति थी।

'लक्ष्मीघर मे दीया-बाती की बारी?'

बस, यही!

शंकरी के सीने पर का पत्थर उतर गया। हलकी हुई छाती।

यह जितना ही बड़ा दोष हो, इस दोष की जितनी ही बड़ी सजा हो, वह सिर झुकाकर सह लेगी।

हा, इस दर्द के धिक्कार से उसकी आखो मे आंसू आ गए थे।

गले को ज़रा और धीमा करके सत्य ने कहा, 'हा, यह भी कह दू, कटवा की बहू, इतनी सांझ गए तुम्हे घाट पर रहने की जरूरत भी क्या थी? सांप-बिच्छू है, आड़-ओट मे बुरे लोग है...'

शंकरी ने हिम्मत बाधकर कहा, 'नानीजी बहुत नाराज हो रही थी न?'

'नाराज? नाराज होती तो क्या था! तुम्हारा बखान हो रहा था!' हाथ-मुंह चमकाकर सत्यवती ने कहा, 'सच भी तो, तुम्हारे कलेजे का इतना पाट ही क्यो है, कटवा की बहू? साझ गए घाट पर युग-युगांतर बिताना क्या है? और साझ की दीया-बाती की बारी भी आज ही थी! दादिया तो तुम्हें काट डालना चाह रही थी।'

'तुम लोग मुझे काट ही डालो न भाई...' शंकरी ने व्यग्र स्वर में कहा, 'तुम लोग भी जी जाओ और मेरी भी मनोकामना पूरी हो।'

सत्य ने भवे नचाकर गाल पर हाथ रखकर कहा, 'हाय राम! तुम्हारी फिर मनोकामना कैसी! तुम्हारे बोल भी बड़ी बहू जैसे क्यों? बड़ी बहू मुझसे कह रही थी, मुझे थोड़ा-सा जहर ला दो सत्य, मैं जहर खा लू, तुम्हारे भैया को

कलाई का धागा खुलने से पहले ही मेरी मौत हो जाए, वह दृश्य देखना न पड़े।'

सच बात यह है, शारदा से शंकरी की अभी तक वैसी घनिष्ठता नहीं हुई है। एक तो उम्र का व्यवधान, और फिर शारदा पति-सुहागिन, पुत्रवती। शंकरी कूड़ा फेंकने का सूप ! एक बात और, दोनों के इलाके जुदा-जुदा ! शंकरी को विधवा-महल में रहना पड़ता है, सबका हुक्म बजाने के लिए। शकरी सधवा-महल की। खाना-पीना-सोना—सब में आकाश-पाताल का अंतर।

लेकिन फिलहाल शारदा बहुत हद तक उतर आयी है, अब शंकरी भी उस पर दया कर सकती है। वही करती भी है वह। साफ स्वर में कहती है, 'ऐसा कह सकती है बेचारी।'

'मैं कहती हूं, वह तो कहे चाहे, मगर तुम्हे क्या हो गया ? तुम्हें अचानक कौन-सी जलन लहक आयी ?'

'मेरा खोटा नसीब ही तो सदा की जलन है बहन !'

सत्य ने हाथ नचाकर कहा, 'अहा, नसीब तो तुम्हारा कुछ आज नही जला है। दादी वगैरह तो यही कह रही थी, पति को तो जाने किस युग मे भूल से मार चुकी है, तो यह सदा मन का उचाटन कैसा ? किस बात की फिकर करती रहती हो रात-दिन ?'

'मौत की !' दालान की दीवार पर पीठ टेककर बैठते हुए शंकरी ने कहा, 'उसके सिवाय मुझे दूसरी चिन्ता नही है।'

'अच्छा है !' सत्य फिर दोनों हाथ मटकाकर बात को खत्म करती हुई पायल बजाती हुई चल देती है—'हर स्त्री की ज़बान पर एक ही बात— मरूंगी, मर रही हूं, मर जाऊं तो जी जाऊं ! अच्छा झमेला है यह तो !'

शंकरी ने इस बात का जवाब नहीं दिया। वह बैठी हाफती रही। आंधी आए, वज्रपात हो, यहीं बैठे-बैठे सब झेलेगी, जाकर आंधी के सामने आने की जुर्रत अब नही है।

और, बैठे रहते-रहते ही आंधी आयी।

सिर्फ आंधी ही नहीं, पानी और बिजली भी उसके साथ।

शंकरी आ गई, यह सुनकर काशीश्वरी और मोक्षदा खोज लेने आयीं।

पीछे-पीछे दर्शक की भूमिका में भुवनेश्वरी—रामकाली की स्त्री।

कसूर उसका था लक्ष्मीघर में दीया-बाती नहीं देने का, लेकिन सजा की आशंका से सारा शरीर कंटकित हो उठने के साथ-साथ शंकरी के मन के पट में जो तसवीर उभर आयी, वह लक्ष्मी का घट या गृह-देवता का पट न थी, अपने जिस कसूर की सजा की आशंका ने शंकरी के तन-मन को शिथिल कर दिया, उस अपराध से इस घर का, यहां तक कि इस गांव का भी कोई ताल्लुक नहीं।

अपराध की जगह थी, शंकरी के नैहर का आम का बगीचा! समय बदन झिमझिम करानेवाली दोपहर का।

फागुन आए की झिरझिर और रह-रहकर झोंकों में उठनेवाली बयार। और गुठली हुए आमों वाले पेड़ उस हवा में जैसे पागलपने का खेल खेलने में मशगूल। थोड़े-बहुत पेड़ लेकिन पीछे पड़ गए थे, उनमें का मंजर नहीं झरा था, टिकोले नहीं लगे थे। पत्तों की फांको में मंजर का समारोह!

सूनी दोपहरी में वहां शंकरी और नगेन!

नगेन के हाथ में शंकरी का हाथ!

हलके-फुलके नहीं, नगेन ने वज्र-कठोर दृढ़ता से पकड़ रखा था। भाग न जाए शंकरी! जब तक नगेन अपनी बात कह नहीं लेगा, शंकरी को छुटकारा नहीं।

दिनों से बहुतेरी छोटी-बड़ी बातों, इंगित-इशारों के दूत द्वारा शंकरी को नगेन ने अपनी बात बतायी है, बतायी है करुण दृष्टि द्वारा, चोर-हंसी के सौगात से। आज शायद वह उसका किनारा ही किए लेना चाहता है।

किंतु क्या नगेन उसे यहां जबर्दस्ती खींच लाया था? मुंह में कपड़ा ठूंसकर, गोदी में उठाकर?

नहीं तो!

उस बेसहारा लड़के की इतनी हिम्मत कहां? मौसी के यहां के दानों पर तो पला है!

शंकरी की चाची ही नगेन की मौसी है।

मां मरे बहन-बेटे को मौसी ने अपने बाल-बच्चों के साथ ही पाला है। जिस गिरस्ती में शंकरी भी बड़ी हुई है।

बीच में एक ही बात हुई केवल, उसका ब्याह।

लेकिन वह भी कै रोज! अष्टमंगला के ही दिन तो उसका अन्त हो गया।

एक ही घर में रहे दोनों। भाई-बहन की तरह। लेकिन अजीब है, उनके मन भाई-बहन जैसे क्यों नहीं तैयार हुए?

छुटपन से शंकरी के अपने चचेरे भाई सबों ने क्यों उसका झोंटा पकड़ा

किया, पान से चूना गिरा तो बिगड़ा किए और क्यों नगेन ने उस दुःख-कष्ट में स्नेह का प्रलेप लगाया, जुल्म करने वालों की लिहाड़ी ली !

दुनिया में क्या से क्या होता है, यह शंकरी की जान से बाहर है। उसके बोध की दुनिया बड़ी सीमित है। नहीं तो अठारह साल की एक विधवा के लिए भरी दोपहरी मे आम के बगीचे में किसी नौजवान से बात करना कैसा गर्हित काम है, यह बोध एक अठारह साल की लड़की को होना उचित था।

लेकिन सच ही क्या यह बोध नही था शंकरी को ? चाची के चौबीसों घंटे दांत पीसते रहने से वह बोध नही आया ? बगीचे मे क्या वह निडर और निश्चित होकर आयी थी ?

नहीं, अबोध होते हुए भी इतनी अबोध नही है शंकरी। कलेजे में डर का घोंसला लिए-लिए ही आयी थी। सवेरे जब से नगेन ने यह दरख्वास्त दी थी, तभी से उसकी छाती के अंदर ढेंकी कूटी जाने लगी थी। काम-काज में भूल-चूक होती रही। तो भी आयी।

तो भी गनीमत कहिए, आज कंधे पर रसोई का भार नही था। कल ससुराल चली जाएगी, जनमभर के लिए ही शायद, इसी ममता से चाची ने आज उसे रसोई की ज़िम्मेदारी से बरी कर दिया था। और जब शंकरी ने बड़े ही विनीत भाव से, निरी गिड़गिड़ाहट के साथ पूछा, 'ज़रा बकुल फूल के यहा से हो आऊं, चाची !' तो वह ना न कह सकी।

बगीचे मे आते ही इस बहाने की सुनकर हंस उठा था नगेन। उसने कहा, "बड़ो से झूठ बोलकर आयी है, यह सोचकर इतनी गमगीन क्यों हो रही है तू ? मान ले, मैं भी तेरा एक 'बकुल फूल' ही हूं।'

लेकिन अब नगेन के होंठों पर हंसी नही है, अब उसका भाव ही दूसरा है। कैसा रूखा और उद्‌भ्रांत जैसा। अब वज्रमूठ से शंकरी का हाथ थामे किसी और ही दुनिया में खींच ले जाना चाहता है।

: 'भागकर बहुत दूर के किसी गाव में चले चलें न ? वहां हमें कौन पहचानेगा ? कहेंगे, हम दोनों पति-पत्नी हैं, आग से हमारे घर-द्वार, खेत-खलिहान सब जल गए है, इसी से अपना मुल्क छोड़कर चले आए हैं !'

'ऐसे पाप की बात कहने से जीभ जो गल गिरेगी, नगेन-दा। नर्क मे भी हमें जगह नही मिलेगी।' शंकरी ने कहा, पर इस बात मे कहीं कोई ज़ोर नहीं झलका। पाप की आशंका से पहले से ही क्या शंकरी की जीभ शिथिल हो आयी ?

'पाप किस बात का ? तेरी वह शादी भी कोई शादी है ? तूने पति का घर भी बसाया है ? हम दोनों जन्म-जन्मातर से पति-पत्नी हैं, समझी ? इसी-

लिए वह कहां का आ गया पति टिक नहीं सका। नहीं तो अब तक तू कहां होती, मैं कहां होता ! दुहाई है, तू अपने मन को मजबूत कर, शंकरी !'

'यह बात सुनने से भी तो अनंत नर्क होगा, नगेन-दा !'

'वही यदि हो,' नगेन ने उग्रमूर्ति होकर कहा—'यदि नर्क ही में जाना पड़े, तो तुझे अकेले ही तो नहीं जाना पड़ेगा। मुझे भी जाना होगा। तेरे लिए मुझे वह कष्ट भी कबूल। दुनिया के और सारे लोग जाएं स्वर्ग, मैं और तू—नर्क में ही रहेंगे। फिर भी तो यह जनम अच्छा कटेगा।'

'यही क्या वाजिब बात हुई ? नहीं नगेन-दा, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे छोड़ दो। इस हालत में हमें कोई देख ले तो घर में मेरे लिए जगह नहीं होगी।'

'अच्छा ही तो होगा !' उसके हाथ को छोड देने के बदले नगेन ने और कस लिया, शायद उसे कुछ करीब भी खींच लिया था। कहा, 'घर से निकाल देने से हम लोगों के लिए अच्छा ही होगा। कलंक-कथा फैलेगी तो ससुराल वाले भी तुझे नहीं स्वीकारेंगे, वैसे में हम दोनों का निकल जाना सहज हो जाएगा। शाप का वरदान हो जाएगा।'

'नहीं-नहीं, नगेन-दा, हाथ छोड़ दो। तुम्हारे मन में इतना कुछ है, यह जानती तो हरगिज नहीं आती। तुमने कहा था, एक बात है...'

नगेन ने जो कभी नहीं किया, वही कर बैठा। गरम होकर बोला, 'इतना बन मत। जानती तो हरगिज नहीं आती ! तेरे साथ मेरी ऐसी भागवत-कथा क्या हो सकती है, बता तो ! मैं कहता हूं, तू मेरे साथ भाग चल।'

जान में नहीं, अजानते जबान से निकल पड़ा—'कहां ?'

नगेन ने बड़े उत्साह के साथ कहा, 'जहां भी हो। ब...हुत दूर, किसी गांव में। वहा सिर्फ तू और मैं—बड़े सुख से रहेंगे। मिट्टी का छोटा-सा एक घर, साग-सब्जी का छोटा-सा खेत, एक इत्ता-सा पोखरा, इससे ज्यादा हमें चाहिए क्या, बता ? इतने का बन्दोबस्त मैं कर लूंगा। पेट में थोड़ी-सी विद्या तो है, कुछ न बन पड़े तो एक पाठशाला खोलूंगा। इसमें किसी का कोई नुकसान नहीं है, शंकरी !'

छाती के अंदर जो ढेंकी कूटी जा रही थी, वह बंद होकर जाने किस कांपते हुए सुख से शंकरी का कलेजा डोल नहीं उठा ? दोनों आंखे पानी से भर नहीं आयीं क्या ? नए फागुन के उस रह-रहकर झिर-झिर बहती और रह-रहकर झोंकों में आती हवा में उसका शरीर कैसा तो अवश नहीं हो आया ? जी में आया नहीं कि सच हो तो, इसमें किसी का क्या नुकसान है ? ससुराल को उसने आखों से देखा तक नहीं, एक दिन को भी बसी नहीं। उन्हें चीन्हती नहीं, जानती नहीं कि उसे नहीं पाने से किसे क्या दुःख-सुख होगा, किसे क्या

हानि-लाभ होगा ! चाचा वगैरह अगर यह खबर कर दें कि शंकरी नाम की जो एक लड़की थी, जो कविराज घर की भगिन-पतोहू थी, वह एकाएक हैजे से मर गयी, तो कविराजजी के यहां के लोग कितना रोएंगी ?

और चाचा-चाची ?

मर गई—यह खबर उड़ाकर समाज से पार नहीं पाएंगे।

न, ज्यादा देर तक यह चिंता मन में न रही। हवा अचानक बंद हो गई। बड़ी घुटन-सी हो आयी। शंकरी की चेतना लौटी। बोल उठी, 'हिंदू घर की विधवा को निकल जाने की सलाह देने में शर्म नही आती है तुम्हें ? तुम मेरे भाई-से हो न ?'

'नहीं, हरगिज नही !' नगेन गरज उठा—'भाई-जैसा कभी नही। इस बात को तू भी भली प्रकार से जानती है, मैं भी जानता हूं। मैं सदा तुझे स्त्री-सा देखता आया हूं। जान-सुनकर नाहक ही वाक्-चातुरी क्यों कर रही है ? मुझे वचन दे कि आधी रात को पिछले दरवाजे से निकलकर तू यहां आकर खड़ी रहेगी—मैं पहले से ही यहीं रहूंगा। उसके बाद भागकर यहा से निकल जाएंगे तो फिर कौन पकड़ सकेगा ? मौसी-मौसा खोज थोड़े ही पाएगे ? मुक्का खाकर, मुक्का चोरी करके बैठे रह जाना पड़ेगा।'

'ओ नगेन-दा, मेरे कलेजे के अंदर कैसा तो कर रहा है —छोड़ दो मुझे। मुझसे न बनेगा।'

'बनना ही होगा।' नगेन ने अकुलाए स्वर में कहा—'जब तक तू हां नहीं करेगी, तो तेरा हाथ नही छोड़ने का।'

'शोर मचाकर मैं भीड जमा करूंगी।' कमजोर गले से शंकरी ने कहा, 'कहूंगी, मुझे बगीचे मे अकेली पाकर···'

नगेन बेपरवाह बोला—'कर शोर ! बुला लोगों को !'

'बल्कि तुम मुझे मार डालो, नगेन-दा।'

'मैं और क्या मारूं तुझे ? सबने मिलकर मार ही तो डाला है। झाड़ू-लात खाकर बाप के ही घर दो मुट्ठी अन्न नहीं जुट रहा था, तिस पर अब ससुराल। मरे को मुंगरी की मार। मैं ही बल्कि तुझे बचाना चाहता हूं। आदर से, जतन से, माथे की मणि बनाकर रखना चाहता हूं।'

'मुझे तुम्हारा आदर-जतन नहीं चाहिए।' इस बार शंकरी का गला कुछ सख्त सुना—'झाड़ू-लात ही मेरे लिए ठीक है।'

'अच्छा, झाड़ू-लात ही ठीक है ?' जी-जान देकर नगेन एक भयंकर काम कर बैठा।

आवेग से प्रेमालिंगन नही, शंकरी को उसने जकड़ लिया। जकड़कर बोला, 'ठीक है। वही जिसमें ठीक से खाती रहे, इसी का खास बंदोबस्त किए देता हूं।

तुझे दाग देता हूं और इसके बाद तेरी ससुराल में जाकर अफवाह उड़ा दूंगा, 'वह मेरे साथ बुरा···'

नगेन के हाथों से शंकरी ने कैसे जो अपने को छुड़ाया था, कैसे जो घाट में बिलकुल नहाकर घर लौटी और कहा, 'बकुल फूल के यहा जाना न हो सका, जाते-जाते एक झूठी हांडी से छू गई, इसलिए नहाकर घर लौटना पड़ा—और कुवेर को नहाकर सिर दु.ख रहा है'—यह बताकर कैसे जो लेटे-लेटे दिन बिताया, यह सब ठीक से याद नही आता है उसे।

सिर्फ इतना ही याद है कि उसकी जबर्दस्त रुलाई से चाचा तक ने ममता-सने स्वर से दिलासा दिया था—'रोती क्यो है? लड़कियों को तो ससुराल जाना ही पड़ता है। ससुराल ही तुम्हारी सदा की जगह है। और फिर कविराज जी बड़े भले आदमी है, घर मे खाने-पहनने का कोई कष्ट नही है—अच्छी रहोगी, सुख से रहोगी।'

शंकरी तो भी और अकुलाकर रोयी थी। लाचार चाची को भी कहना पड़ा था, 'फिर आना। पर्व-त्योहार में आना। हम क्या तुझे परायी किए दे रहे हैं?'

साल बीत गया, चाची ने अपना वचन नही रखा। ले जाना तो दूर, कभी खोज भी नही ली। तब से उस गाव की रत्तीभर भी खबर शंकरी को नही मिली। सदा आशंकित ही रही है कि कोई कह रहा है, नगेन नाम का एक छोरा शंकरी के नाम से क्या सब कह रहा है।

रास्ता चलते पेड़ो के पत्ते हिलने से सिहर उठती है शंकरी, बांसों की सर्-सर् आवाज से ठिठक जाती है।

लेकिन?

वह डर क्या डर ही है! सिर्फ़ डर?

उसके साथ एक भयंकर आशा भी क्या जुड़ी हुई नही है?

सदा क्या यह जी में नही आता कि किसी बसवारी मे या कि पोखरे के पास वह सत्यानाशी आदमी मिले तो अब वह घर ही न लौटे?···

कल उसने सुना, 'इस यज्ञ मे चाचा के यहा से लोग न्योते में आएंगे।' कल से ही वह मरी हुई-सी है।

चाचा या चचेरे भाई लोग आकर जानें क्या कहें।

नगेन क्या सब कहता फिरा है?

नगेन क्या अभी वही है?

जिन्दा है वह?

हो सकता है, पता हो जाने के बाद सबने उसे मार डाला हो।

उस दिन शंकरी बगीचे में क्यों गई थी ? और जो आदमी उसे गलत रास्ते ले जाना चाह रहा था, आज भी वह हज़ारों डोरे डालकर क्यों उसके मन को खींच रहा है ?

मरने गई, फिर भी मर क्यों नहीं सकी शंकरी ?

दुनिया में शंकरी नाम की एक स्त्री यदि न रहे तो दुनिया का क्या आता-जाता है। कलंकित मन लेकर वह ठाकुरघर का काम-काज करती है, तुलसी चौरे पर दीया जलाती है। इस महापाप का फल···

कि सोचने में बाधा पड़ी।

काशीश्वरी आ खड़ी हुईं। ज़ोर से पुकारा—'नत-बहू !'

१२

भय ! भय !

सत्य के लिए इतने बड़े भय का परिचय शायद यही पहला है।

कटवा की बहू की बड़ी लानत-मलामत होगी, इसकी आशंका तो उसने की थी, लेकिन यह क्या ? फटकारने की यह कैसी भाषा है ! जीवन में सत्य ने बहुत तरह की बातें सुनी है, बहुत-बहुत बाते सीखी हैं, लेकिन ये सब शब्द तो नहीं सुने।

'असती' के माने क्या है ? 'उपपति' किसे कहते हैं ? 'कुलबोरन' से क्या मतलब निकलता है ?

सो वह दूर से ही हां किए शंकरी और काशीश्वरी की तरफ ताकती रही।

और कोई कुछ नहीं कह रही थी, सभी चुप थी, यहां तक कि मोक्षदा तक कैसी स्तब्ध हो गई थी—अकेली काशीश्वरी ही जारी रखे हुए थी, दबे लेकिन तीखे गले से।

शंकरी को चबा जाने से भी शायद उनका गुस्सा नहीं जाएगा, ऐसी-ऐसी अदा।

मोक्षदा और तरह की हैं, काशीश्वरी और तरह की। मोक्षदा का स्वास्थ्य खूब है, बेहद ताकत, बेहिसाब वाक्पटुता। लेकिन काशीश्वरी वैसी नहीं हैं। शोक-ताप से वह कुछ बेबस-सी हो गई हैं, और वह सदा की मुहदब्बू हैं। वैसी कोई चरम अवस्था होने से ही उनकी ज़बान खुलती है। दबी लेकिन तेज़।

फिर भी आज की जैसी बातें काशीश्वरी के मुह से कब निकली है ? और घृणा से जर्जर ऐसा चेहरा ही कब देखा गया है उनका ?

कौन गया था कटवा ?

कौन क्या सुन आया है वहा से ? बार-बार शंकरी के बाप के यहां का ही जिक्र क्यों उठ रहा है ? वहां से शायद इस न्योते पर कोई नहीं आ रहे हैं, शंकरी से कोई संपर्क नही रखना चाहते। वे शंकरी के चूंकि मां-बाप नही हैं, चाचा-चाची हैं, इसीलिए ऐसी लड़की के टुकडे-टुकड़े करके गंगा में वहा नहीं दिया।

और भी कितनी-कितनी बातें। कैसा-कैसा लहजा।

शंकरी को गले में रस्सी लगाकर मरने की सलाह दी जा रही थी। दी जा रही थी पोखरे में डूब मरने की राय। पापिन शंकरी के पाप-परस से ही साल लौटते न लौटते काशीश्वरी का एकमात्र नाती मर गया, आज के राय-विचार में यह बात भी साबित हुई जा रही थी।

देर तक सुनते-सुनते अंत तक इतना समझ पायी सत्य कि यज्ञ का न्योता देने के लिए नाईन और राखो कटवा गए थे। वही शंकरी की चाची ने नाईन से शंकरी की जो मुह में आयी, वही शिकायत की।

सो इस वात में शुवहा नही कि शंकरी वहा कोई वहुत गर्हित काम करके आयी है। लक्ष्मीघर में दीया जलाने में देर होने या साझ मे देर तक घाट पर बैठे रहने से वह ज्यादा गर्हित है, यह साफ समझ में आता है।

लेकिन शंकरी के अपराध से उसकी चाची के बहन-बेटे का क्या सम्बन्ध है ? शंकरी के लिए वह क्यों घर छोड़कर चला गया ?

यहीं सत्य को सब गोल-माल लग रहा है !

पहेली हो जैसे !

इसीलिए दुनिया भर का अर्थ देने वाले, जीवन मे न जाने ये शब्द सत्य के कलेजे को कैसा हिम-हिम किए दे रहे थे ! भय हो रहा था। सत्य ने जीवन में जो अनुभूति जानी नही, आज उसी अनुभूति ने उसके सारे साहस को मानो गूगा कर दिया।

गृहिणियां किसी को डांट-डपट रही हों और सत्य उसमें फोड़न नहीं डाल रही हो, सत्य की जान में यह घटना यही पहली है। अपराधी की तरफदारी करना ही सत्य का स्वभाव है। अपराधी चाहे जिस श्रेणी का हो।

एक बार का जिक्र है, बर्तन मांजने वाली बागदी-बहू साझ को वर्तन धोने गई थी, घाट से लौटते वक्त ढेर में से कोई कटोरा खो आयी थी। बहुत संभव है, कटोरा पानी मे डूब गया था, लेकिन बागदी-बहू को चोरनी ठहराती हुई शिवजाया और दीनतारिणी ने भला-बुरा कहने में कुछ बाकी नही रखा। मोक्षदा ने हुक्म दिया—खैर, तूने लिया नही है तो रातभर पोखरे को टटोलकर कटोरे को खोज निकाल।

वह बेचारी जितना ही जोर-जोर से रोए, गृहिणियां उसे और उतना ही कसकर दबाएं। उन्होंने यह कहना भी न छोड़ा कि चोरी करने के लिए ही यह बेर करके बर्तन भाजने जाती है। उस बार उस बेचारी को सत्य ने ही तो बचाया था।

उसने कहा, 'चल बागदी बहू, तेरे साथ-साथ मैं भी खोजूं। मैं तैरना खूब जानती हूं, तैरती हुई इस पार-उस पार कटोरे को खोजूंगी।'

'तू खोजेगी, मतलब ?'

सब उस पर डपट उठीं। और सबको चौंकाती हुई सत्य ने उदास होकर कहा था, 'खोजना तो पड़ेगा ही। तुम सबके पाप का पराच्छित मुझी को करना पडेगा, जबकि भगवान ने मुझे तुम्हारे घर की लड़की बनाकर भेजा है ! जिनके घर मे पाच संदूक बर्तन है, वे लोग अगर दाल खाने वाले मामूली कटोरे के लिए एक आदमी की जान लेने को तैयार है तो किसी को तो उसका प्रतिकार करना ही पड़ेगा।'

सभी हक्की-बक्की रह गई थी। और शायद एक मामूली कटोरे के लिए अपनी तुच्छता की झलक वही पहली बार उनकी समझ मे आयी थी।

'फिर क्या बात है, पाच संदूक बर्तन जब है, तो बर्तनों को लुटा दे। तेरे बाप के बहुत पैसा है !' इतना कहकर कैसी ढीली पड़ी-सी मैदान से पीठ दिखाकर खिसक पड़ी थीं वे।

उस दिन गले मे अंचरा डालकर बागदी बहू ने सत्य को प्रणाम किया था। इस तरह से सत्य ने बहुत बार बहुतो को विपद से बचाया है। परन्तु आज उसके मुह से शब्द नही फूट रहा है।

एक अंधेरे जंगल के बदन छमछम् कराने वाले रहस्य ने सत्य को मूक कर दिया है।

लानत-मलामत का यह अध्याय कब खत्म हुआ, गृहिणिया कब अपने-अपने काम मे चली गईं, कटवा वाली बहू उसके बाद कहां चली गई, इन बातो की फिर कोई खबर ही नही रख पायी वह—जाने कब धीरे-धीरे जाकर शारदा के कमरे के फर्श पर चांदनी रंग की आठ हाथ वाली साडी का आचल बिछाकर सो गई थी, जहां शारदा भी गोद के बच्चे को गोदी के पास लिए उसी ढंग से सोयी थी।

शारदा ने कहा, 'अरी, सो पड़ी सत्य ननदजी !'

'हा, सोयी !' सत्य जवाब से कतरा गई।

शारदा ने और एक नि.श्वास छोड़कर कहा, 'कटवा की बहू इतनी गालियां क्यों सुन रही थी, ननदजी ?'

सत्य ने कहा, 'मैं नही जानती।'

सत्य के लिए ऐसा मुख्तसर भाषण प्रायः असंभव ही है, लेकिन शारदा के जी में भी सुख नही था जरा भी, इसलिए उसने भी बात नही बढ़ाई। किसी वक़्त बच्चे के साथ सो गई।

लेकिन सत्य की आखों में नीद नही आना चाह रही थी। भय की वह अनुभूति उसे छोड़ना ही नही चाह रही थी।

रह-रहकर कलेजा कैसा तो ठडा और सूना-सूना लग रहा था। वे अजाने शब्द भाड़ में जाएं चाहे, लेकिन एक नए डर ने जो दिल में बसेरा बांध लिया।

सचमुच ही अगर कटवा की बहू···

फांसी लगाने का तरीका क्या है और उसका अंजाम ही क्या होता है, सत्य ठीक जानती नही, लेकिन दूसरे की आशंका से बार-बार रोंगटे खड़े हो आते थे उसके। यदि वही हो ?

कहीं कल यज्ञ की मछली के लिए मछुआरे पोखरे में जाल डालकर मछली के साथ एक और चीज़ निकाले !

बहुत बड़ी रोहू मछली फंसी है, यह सोच मारे खुशी के मछुआरे जाल खीचकर अगर देखे कि मछली नही···

सत्य की छाती मे ढेंकी कूटने जैसी आवाज़ होने लगी। कितनों को पहरा दे वह ?

शारदा के लिए ही तो बाप के हुक्म से मुसीबत मे है वह, अब कटवा की बहू भी मन पर सवार हो गई। किसे छोड़ किसे देखेगी वह ?

गाली-गलौज के समय कटवा की बहू का चेहरा कैसा दीख रहा था !

सत्य ने क्या देखा नही ?

देखा था, लेकिन दालान के एक कोने मे एक दीया टिम-टिम जल रहा था, उससे कितनी रोशनी आती बरामदे पर ?

फिर इधर अन्हरिया पाख ! 'शुक्कर' होने से फिर भी आगन में, बगीचे में चलने में आराम है। अंधेरे में तो साझ हुई कि गया !

मनुष्य से बात, बिना आंख-मुख देखे ही !

नः, शकरी का चेहरा सत्य देख नही पायी।

इसी से समझ नही पा रही है कि उन अजीबोगरीब लफ़्ज़ों के मानी शंकरी समझ भी सकी कि नही।

तो क्या शारदा से एक बार चुप-चुप करके पूछे ? जितना भी हो चाहे, शारदा सत्य से उमर में दुगुनी बड़ी है, बच्चे की मां है, कितना पहले ब्याह हुआ है उसका— हो सकता है, उसे उन आड़े-टेढ़े शब्दों का मतलब मालूम हो !

लेकिन पूछूं-पूछूं करते हुए भी अंत तक नही पूछ सकी। मुंह पर जैसे किसी ने ताला जड़ दिया।

कटवा की वहू से खूब जो घनिष्ठता थी सत्य की, सो नही। एक तो वह साल भर ही हुआ, आयी है, नवागंतुक होकर, फिर वह निरामिष रसोई की तरफ की है। खाना-पीना साथ नही होता। हा, भेंट-मुलाकात हो जाती है, उसी मे बातचीत। वह भी शंकरी ज्यादा मिलनसार नही है। सदा ही अनमनी-सी, सो···

आज भी तो वह शकरी को सांझ बिता देने के अपराध के बारे में जताने आयी थी, वह भी निहायत एक जीव पर जितनी ममता होनी चाहिए, उससे ज्यादा कुछ नही था। लेकिन अभी जैसे माया से सत्य का मन भरा जा रहा है। लगता है, जाने कितना रो रही है बेचारी! दुनिया में उसके ऐसा कोई भी नही जो उसे दिलासा दे।

विधवा होने का कितना कष्ट है!

सत्य की भी तो शादी हुई है। किसी दूल्हे से ही हुई है। वह दूल्हा कही अचानक मर जाय तो सत्य भी तो विधवा होगी?

और यही अगर हो, तो सत्य की भी तो सभी इसी तरह से मलामत करेंगे?

मगर यही कैसे कहा जा सकता है?

फुआ-दादी भी तो विधवा है!

विधवा और कई जने है। उन्ही के डर से लोग सकपकाए रहते है।

उन्हे देखकर लगता है, वही दुनिया के दड-मुड के मालिक हैं।

तो? वे बड़ी है, इसलिए? ये भी बड़ी होने पर वैसी हो सकेंगी?

न, यह सब ठीक से समझ नही पाती है सत्य।

सिर्फ़ उम्र से ही सब विचार होता है, ऐसा तो नही। उसके पिता से तो इलाके के सभी डरते है। कहा, बड़े चाचा से डरते हैं क्या? उलटे बड़े चाचा ही तो बाबूजी के डर से सोठ हुए रहते है। वही क्यों, संझले दादाजी वगैरह? कौन नही डरते? वे लोग तो कुछ औरत नहीं है।

उम्र कुछ नही है। छोटा-बड़ा भी कुछ नही।

तो फिर डर का डेरा कहा है?

सोचते-सोचते कोई किनारा नही पाती सत्य! फिर भी सोचती है, 'किसने जो उसे डर का डेरा खोजने की नौकरी दी है, कौन जाने?'

बहुत रात हुए भुवनेश्वरी उसे बुलाने आयी—'ऐ सत्ती, बिना खाए-पिए सो रही है, उठ!'

सत्य ने करवट ली। नींद का वहाना बनाकर बताया, भूख नही है।

भुवनेश्वरी डाट उठी—'भूख क्यों नहीं है! उठ, जा! रात को उपवास किए नही रहना चाहिए। कैसे तो कहते है, रात उपवासी हाथी भी काबू हो

जाता है। बड़ी बहूरानी, तुम भी उठो तो बिटिया। दिनभर बिना खाए-पिए हो। अब ऐसे न पड़ी रहो। इससे पति-पूत का अमंगल होता है।'

भुवनेश्वरी के गले की आवाज़ मिलते ही शारदा हड़बड़ाकर उठ बैठी थी। दुनिया से चल देने की ज़बर्दस्त ख्वाहिश करके जमीन पर पड़ गयी थी, लेकिन चाची-सास को देखकर अदब न करे, यह कैसे हो सकता है! इसी से उठ बैठी थी। पति-पूत का अमंगल होगा, इसलिए मन से भी हड़बड़ा गई।

भुवनेश्वरी बोली, 'मैं तुम्हारे बच्चे को देखती हूं, लो, उठो। सत्य को लेकर खाने चली जाओ। तुम्हारी सास रसोई अगोरे बैठी है। इस बेला जाल डलवा-कर एक बहुत बड़ी मछली मंगवाई गयी थी, ये-वे कहीं आ जाएं। दीदी ने मछली और आम की ऐसी एक खटाई तरकारी बनाई है कि बस! जाओ, देखो।'

भुवनेश्वरी बहुत-सी बातें कह गई, पर सत्य के कानों नहीं पहुंची। 'जाल डलवाकर एक बहुत बड़ी मछली'—इतना सुनते ही उसके मन की आखों में जाल मे फंसी एक और भी चीज़ पसर आयी! जिसे खींचकर धड़ाम से पोखरे के किनारे डाल दिया गया है, और जिसे चाद-सूरज के भी देखने की बात नहीं, उसी मुखड़े को हजारों लोग देख रहे है!

लेकिन उस मुखड़े पर जो दो आंखे रखी हुई है, वे कुछ देख भी रही है? जीवन मे अब कुछ देखेंगी भी?

वह झट उठ बैठी। पूछा, 'मां, कटवा की बहू कहा है?'

'और कहां होगी?' झंकार करके बोली भुवनेश्वरी—'कथरी ओढ़े पड़ी है। उससे क्या लेना-देना तुझे! तू खाने जा रही है, खाने जा!'

'नहीं खाऊंगी! भूख नहीं है।' कहकर फिर लेट गयी सत्य।

लेकिन उधर रोहू मछली और आम की तरकारी अलग असर कर रही थी। एक तो सोलह साल की वैसी तगड़ी सेहत, तिस पर दिनभर बच्चा छाती का दूध खींचता है।

सौत-काटा की पीड़ा भी जैसे ठंडी हो आयी।

तो भी! ज़ोर की इच्छा के बावजूद मन मे बाधा आयी?

दिनभर भूखी पड़ी रही और उस भूखे चेहरे मे पति से एक बार भी भेंट नहीं हुई। कौन जाने रात को भी होगी या नहीं! नई बहू की तो आज 'कालरात्रि' है। इसलिए पुरानी बहू को आज प्रधानता मिले तो मिल भी सकती है! मज़े मे एक थाली मछली-भात ठूसकर मान कैसे करेगी? सो शारदा ची-चीं करके बोल उठी—'अभी-अभी पेट का दर्द कुछ कम हुआ है...'

'सो हो! खाने से ही कम हो जाएगा।' भुवनेश्वरी ने नर्म गले से कहा, 'तुम बुलाकर ले जाओ तो शायद सत्य थोड़ा-सा खाए।'

अपनी सास से कुछ कहा नहीं जा सकता। गले तक घूंघट खींच लिया

उसने ! चाची-सास से ही जो थोड़ा-बहुत कहा जा सकता है। लेकिन चाची-सास के नर्म सुर ने ही शारदा की आखों में पानी ला दिया। लाचारी रासू को भूखा मुंह दिखाने के सकल्प को छोड़ना पड़ा। सत्य को झिझोड़कर शारदा ने कहा, 'चलो ननदजी, जो बने, खा लेना।'

सत्य उठ बैठी।

जम्हाई ली। खीजकर बोली, 'बाबा, एकात में दो घड़ी चुप पड़ा रहना भी जो नसीब हो ! चलो।'

शारदा के जाते ही भुवनेश्वरी एक असम साहसिक काम कर बैठीं। सोये बच्चे को कथरी में लपेटकर उसे गोद में उठाकर वह चुपचाप कमरे से निकल गयी। जाकर रासू की मां से कहा, 'ज़रा बड़े लड़के को तो बुला ला। कहना, बहुत जरूरी काम है।'

बड़ा लडका यानी रासू !

रासू की मां ने इधर-उधर देखकर फुसफुसाकर कहा, 'मैं देख आयी हूं, चंडीमंडप में सोया है।'

'सोया है तो है। तू मेरा नाम लेकर बुला ला।'

दरवाजे के पास पहुचते ही मा की पुकार से सत्यवती को ठिठक जाना पड़ा। और, जाने किस एक आशा की आशंका से चौककर ही शारदा का कलेजा सदियो के जलकुभी-भरे पोखरे के पानी-सा ठंडा और थिर हो गया।

जैसी कि आदत है, भुवनेश्वरी ने वैसे नाम लेकर बेटी को नही पुकारा, जल्दीबाजी में लेकिन दबे गले से कहा, 'ऐ, तू इधर आ।'

तू यानी सत्य !

दबे गले से खास करके सत्य को ही हटा देने का क्या मतलब है ? मतलब है। ऐसी बुलाहट का एक ही मतलब होता है। और वह मतलब सत्य चाहे न ताड़ सके, शारदा ताड़ गई। जभी तो उसकी छाती हिम-हिम हो गई। जभी तो छाती आशा की आशंका से चौंक उठी !

शारदा जानती है, उसको याद है।

छुटपन में जब शारदा नि.शंक मन से अपनी तुरत की ब्याही चाची के साथ सोने की ज़िद करती थी, तो ठीक ऐसे ही दबे गले से उसकी मा भी उसे पुकारती थी—'इधर आ, ऐ।' शारदा फिर भी ज़िद करती। अब याद आने पर कैसी हंसी आती है।

सत्यवती ठिठक गई। कहा, 'बड़ी बहू अकेली ही सोएगी क्या ? खूब तो अकल है तुम लोगों की !'

हंसी रोककर भुवनेश्वरी ने कहा, 'रुक भी ! तुझे सबकी अकल नहीं खोजते फिरना है। अकेली क्यों सोने लगी, इतना बड़ा बच्चा है बड़ी बहू के, वह कुछ कम है क्या ?'

'नही जानती बाबा, तुम सबकी कभी कुछ, कभी कुछ मति। रतीभर का बच्चा, गला दबाओ तो दूध निकल आए, वह अपनी मां को पहरा देगा ?'

'तू आती है कि नहीं ?'

'आयी बाबा, आयी। सब्र नही, सब जैसे घोड़े की ही पीठ पर सवार हैं। लो, चलो ! एक मन की दुखिया इस अंधेरी पुरी में अकेली ही पड़ी रहे, यही जब तुम लोगों की इच्छा है, तो वही हो। तुम लोग धरम-कथा जो किस मुंह से कहती हो, वही नही समझती।'

आठ हाथ वाली साड़ी के तीनेक हाथ हिस्से को काम में लाकर, बाकी हिस्से की पोटली-सी बनाए कांख में रखती हुई वह मां के पीछे-पीछे अनिच्छा की मंथर गति से चली। सचमुच आज उसकी इच्छा थी शारदा के पास सोने की। एक तो उसके प्रति सहानुभूति से, दूसरे उसे आशा थी, लेटे-लेटे गपशप करते हुए अगर उन भयंकर शब्दों के अर्थों का उद्धार कर सके !

शब्द वे अच्छे नही हैं और बड़ों से पूछने पर उत्तर नही मिलेगा, बल्कि डांट ही पड़ सकती है, सत्यवती यह समझती थी, फिर भी एक बेरोक कुतूहल भीतर से उमग रहा था। उन शब्दों के अर्थ जानने पर मानो बहुत से रहस्य के तालों की कुंजी मिल जाएगी।

लेकिन मा ने सब गुड़-गोबर कर दिया !

यह कोई नई बात भी न थी। जन्म से ही सत्य देखती आयी है, बड़ों का काम ही है बच्चों की इच्छा का गुड़-गोबर कर देना।

घर की सभी बड़ी लड़कियों के सोने की व्यवस्था दीनतारिणी के कमरे में है। कमरा बहुत बड़ा है, इसलिए भी और इसलिए भी कि बड़ी-बड़ी लड़किया यहां-वहां बिखरी रहें, यह नियम नही है। उन बड़ी लड़कियो में नौ साल की सत्यवती ही सबसे बड़ी है—उसका ब्याह भी हो चुका है, इसलिए दल की नेता वही है। पुन्नू, राजू, नेड़ी, टेंपी, पूंटी, राखाली सभी उसे ऊपरवाले का सम्मान देते हैं।

आज सत्य का बड़ी देर तक इंतजार करके वे सब सो पड़े थे। सत्य ने आकर देखा बिलकुल सोयी नगरी ! जैसा चाहा, हाथ-पैर छितराए सब सो रहे हैं। जगह खास नही है। इसी में उन्हें हटा-हटूकर जगह बना लेनी पड़ेगी।

सत्य ने आजिज़ी से कहा, 'एक रोज और कही सो जाने से कौन-सा महाभारत अशुद्ध हो जाता, यह मां मंगल चंडी ही जानें।'''ले, हट तो, ऐ पूंटी, अपनी टांग समेट ले तो।'

कहना नही होगा, नींद-विभोर पूटी के कानों वह आवाज नही पहुंची और वाक्यवल के वजाय सत्य को वाहुवल की शरण लेनी पड़ी। पूटी का पैर और राखाली का हाथ हटाकर थोड़ी-सी जगह बनाकर वह लेट गई। दीनतारिणी तव तक आयी नही थी। उन्हे आने मे देर होती है। विधवा-महल का रात का खाना, भुना चावल और तिल के लड्डू को बूढे दात से पार करने मे वक़्त लगता है।

दादीजी का विस्तार ठीक है या नहीं, सत्यवती ने एक वार देख लिया। हां, है थोड़ी-सी जगह। विछौना भी क्या, पूरे कमरे की एक दरी पर मोटी-मोटी के कथरी, और उसी के सिरहाने की तरफ दीवार से लगा यहा से वहा तक लंवा तकिया।

एक ही साथ जिसमे इतने-इतने माथे रखे जा सकें, इसीलिए तकिए की ऐसी अभिनव व्यवस्था! एक-एक तकिया लंवाई में शायद चार-चार हाथ। वजन में आध-आध मन! जो उन पर सिर रखकर सोती है, वे उन्हे एक इच भी खिसका नही सकती। अपने तकिए को मन-मुताविक सिर के नीचे रखने का सुख उन्हे नही मालूम।

ये तकिए आकार में बड़े होने की वजह से ही भारी नही हैं, रुई भी उनमे पुरानी है। चीज़ चाहे जितनी सस्ती हो और प्राचुर्य चाहे जितना ही हो, अप-व्यय की वात कोई सोच भी नही सकते। इसलिए मालिको के तकिए जब फट जाते है और नए बनते है तो उस पुरानी रुई और फटे खरुओ को घर के नावालिगों के काम मे लाया जाता है।

घर-घर यही व्यवस्था होती है। कच्चे वच्चो के सिवाय घर के ओछे सामानो की सद्गति किनसे हो सकती है? तो भी तो कविराज के घर की अवस्था अच्छी है। सालाना वृत्ति पर धोवी है। नियमित रूप से धो देते हैं। धो देते हैं यानी फीच-सुखाकर तह करके पहुचा देते है। कपड़ा फीचने वाले पोखरे मे फीचकर गीले कपडों का गट्ठर पिछवाडे के पोखरे की सीढी पर रख देते हैं। उसके वाद तो मोक्षदा है। अच्छे पोखरे के पानी से शुद्ध करके गीले कपडो के उस गट्ठर को धूप में फैलाकर सुखाने का जिम्मा उनका है। उसके वाद वहू-वेटिया—शिवजाया के वेटे की वहुएं, कुंज की वहू, भुवनेश्वरी—वाद वाली ड्यूटी इन सब पर आ पड़ती है।

वार-वार विछौने का खोल खोलना और फिर पहनाना, यह काम कम झमेले का नही। लेकिन धोवी और घर के इतजामकारों पर रामकाली का कड़ा हुक्म है, महीने मे कम-से-कम दो वार सफाई जरूर हो।

आज ही शायद सब फीचे गए हैं। क्षार और सज्जी की वू आ रही थी। सत्यवती नाक पर कपड़ा रख लेती थी। ये वू उसे बड़ी बुरी लगती है। लेटी-

लेटी सोचने लगी, 'इस बदबू को छोड़कर कपड़े धोए नही जा सकते ?' यही सोचते-सोचते वह दूसरी सोच में जा पहुंची।

वड़ी बहू तो अकेली ही सोयी। कही आधी रात को उठकर डूबने के लिए चली जाए ? वह तो चली ही जाएगी, सत्य बाबूजी को क्या जवाब देगी ? उसके बाद रात बीतने पर तो घर सगे-सम्बन्धियो से खचाखच भर जाएगा और उसमें बडी बहू के डूब मरने की घटना ! अच्छी मुसीबत आयी !

न, निश्चित नही रहा जा सकता। रात ज्यादा हो जाने पर जब घर में सूना-सन्नाटा हो जाएगा, तो चुपचाप उठकर बड़ी बहू को देख आना होगा। सबसे अच्छा होगा, बाहर से कमरे की सांकल चढा देना। आखिर कितनी बार देखने जाया जाएगा ? जाने कब जाकर बड़ी बहू यह सर्वनाश कर बैठे !

सांकल ऊंची है। सत्यवती का वहा हाथ नही पहुंचता। किस चीज़ पर चढ़कर चढ़ाई जाए, यही सोचने लगी वह।

धड़कता कलेजा लिए शारदा कमरे में दाखिल हुई। वह भुवनेश्वरी से यह भी नहीं पूछ सकी कि जब वह खाने गयी थी, बच्चे ने जगकर उन्हे तंग तो नही किया। भुवनेश्वरी खुद ही बोली, 'जाकर एकबारगी सो ही जाओ बहूरानी चुपचाप। बच्चा अभी-अभी सोया है, जग न जाए। सिरहाने कजरौटी रखकर सुला आयी हूं।'

रासू को बुलवाकर कमरे में भेज देने के बाद से ही भुवनेश्वरी को चैन न था। क्या पता, अंधेरे में पहचान न पाकर 'कौन-कौन' करके चिल्ला उठे शारदा !

इधर रासू से भी कहते नही बना कि दीए को बुझा मत देना। सोने के कमरे में लड़के को भेजकर बात करने में मा को ही लाज आती है। और यह तो जेठ का लड़का है ! और शारदा से ही यह साफ-साफ कैसे कहा जा सकता है, 'ओ बहू, तुम्हारे लिए कमरे मे माणिक मंगाकर रखा है !' नही कहा जा सकता है, इसीलिए नन्हे बच्चे का बहाना।

थोड़ा-सा कारण और भी नही था क्या ? कौतुक की साध ? सास का नाता हुआ तो क्या, आखिर तो स्त्री है ! और भारी-भरकम रामकाली की घरनी होते हुए भी भुवनेश्वरी अंदर से कही जरा कोमल, जरा हरी रह गई है।

यह माणिक की उपमा भुवनेश्वरी के ही मन में आयी। रोज का यह आदमी ही जो आज शारदा के लिए कीमती हो उठा है, यह बात समझने का माद्दा भुवनेश्वरी में है। देखा जाए, वह पति को कितनी दूर तक मुट्ठी में कर सकती है ! अवश्य, कोई भरोसा नही है, मर्द का मन, नई बहू के बड़े होते-

होते शारदा भी कौन तीन बच्चे की मा नहीं बन बैठेगी! वैसे में क्या रासू नए फूल के पराग को छोड़कर···

सोचते-सोचते भुवनेश्वरी चौंक उठी। मन ही मन नाक-कान मला। रासू आखिर बेटे जैसा ही है न! उसके बारे में ये सब बातें कैसे सोच रही है वह! संपर्क की मान-मर्यादा फिर कैसे रहे?

इसलिए उन लोगों के बारे में सोचना ज़ोर-ज़बर्दस्ती छोड़कर भुवनेश्वरी रसोई की तरफ चली गयी। अब उन सबकी जमात के खाने की बारी थी। लेकिन आज खा-पीकर सोना नही है, कल के भोज की तरकारियां कूटनी हैं। बड़े घर की बहू हैं, इसलिए आराम करने का तो हुक्म नहीं है न! बहू आखिर बहू है। बल्कि रासू की मा यदि दो घड़ी हाथ-पांव समेटकर बैठे तो कोई कुछ नहीं कहेगा। लेकिन बहुओं का ऐसा रवैया अक्षम्य है।

खटने का भी कोई गम नही बशर्ते कि ननद-भाभियों का दल ही हो। फिर तो हाथ के साथ गपशप भी चल सकती है। लेकिन इसकी तो गुंजाइश नहीं, पहरे के लिए एक गृहिणी ज़रूर रहेगी।

देखना तो पड़ेगा कि बहुएं घर फोड़ने की मंत्रणा कर रही हैं या नहीं। इसी बड़े कर्तव्य के नाते बेचारी शिवजाया को मरते-मरते भी बेटा-बहू के घर के पीछे के रोशनदान के पास कान लगाकर बैठे रहना पड़ता है।

शारदा के कमरे मे अवश्य वैसा रोशनदान नही। अच्छी-सी खिड़की है। घर में जो सबसे अच्छा कमरा है, वही शारदा का है।

बर्दवान से मिस्त्री मगवाकर बहुत खर्च करके रामकाली ने जब दखिन-वारी आगन में यह पक्का बनवाया था, तो सबने सोचा था, यह रामकाली ने अपने लिए बनवाया है। मिस्त्री का काम समाप्त हो जाने पर इसीलिए दीन-तारिणी ने भी कहा था, 'तो नए घर में जाने के लिए कोई अच्छी तिथि दिखा, रामकाली!'

रामकाली ने हंसते हुए कहा था, 'देखता हूं, तुम्हारा तो पेड़ पर चढ़ते न चढ़ते एक 'धौद' वाला हाल। पहले उस घर में जाने वाले को आने दो!'

दीनतारिणी ने अवाक् होकर कहा था, 'कौन आएगा? किस की बात कह रहा है तू?'

'घर की लक्ष्मी की ही कह रहा हूं, मां!' रामकाली ने भरसक मा के मन की ताड़ ली थी, इसीलिए मां की धारणा के पेड़ की जड़ पर ही कुल्हाड़ी चलाते हुए बड़े शात भाव से अपनी बात पूरी की थी—'क्यों, तुमने सुना नही, रासू के ब्याह की बात चल रही है?'

'रासू! रासू की बहू आकर नये घर को दखल करेगी?'

दीनतारिणी की सौत के बेटे के बेटे की बहू! दीनतारिणी अपने को और

नही जब्त कर सकीं, खिजलाकर बोलीं, 'मूर्ख की तरह बात न करो रामकाली, वह सबसे अच्छा कमरा तुम रासू को दोगे ?'

रामकाली फिर हसे नही, गंभीर स्वर से बोले, 'देने-दिलाने की कोई बात नही है मा, जिसका जो वाजिब पावना है, वह पाएगा।'

दीनतारिणी तो भी बेटे के गुस्से की आशंका की परवाह न करके मन के क्रोध को जाहिर किए बिना न रह सकीं। बोलीं—'तुम चोटी का पसीना एड़ी तक बहाकर कमा रहे हो, हीरा जैसा जीरा लाकर तुमने नवाबी पसंद का घर बनवाया, वह घर कुज के बहू-बेटे किस न्याय से पाएंगे ?'

रामकाली ने मा को साफ धिक्कारा नहीं बल्कि और भी शांत गले से कहा, 'जिस न्याय से आदमी जंगली जानवर-जैसा नगा न रहकर कमर में कपड़ा लपेटता है, मां! खैर, इसे जाने दो। जेठे का श्रेष्ठ हिस्सा होता है, यह नियम तो तुम जानती हो। रासू इस घर का ज्येष्ठ लड़का है।'

दु.ख से, अपमान से दीनतारिणी की आंखो मे आसू आ गये थे, इसलिए आखिरी तर्क करके बोलीं—'मंझली बहू के मन की ओर भी तो देखना चाहिए! लाख हो, वह अभी भी कच्ची है। जब से यह कमरा शुरू हुआ, तब से उसे एक आशा तो लगी थी!'

रामकाली अबकी और जरा हंसे—'तुम्हारी बहू को अगर ऐसी ओछी आशा हुई ही हो, तो उस आशा पर राख पड़ना ही उचित है, मा!'

दीनतारिणी ने आचल से आखे पोंछी थी। मंझली बहू की उम्मीद पर पानी फिरने की वजह से ही नहीं, अपनी आशा पर पानी फिरने से। कुंज जनमभर हाथ झुलाते फिरता है और घर के सबसे अच्छे हिस्से का भागी होता है, यह क्या सदा सहा जा सकता है ? दीनतारिणी को यह उम्मीद थी कि कम से कम इस घर के मामले मे कुज और उसकी बहू का मुह छोटा होगा। उसी उम्मीद पर पानी फिर गया। इसी से वह रोकर बोलीं—'राख पड़ना ही उचित है ?'

'और क्या! भविष्य मे फिर ऐसी बेहया आशा नहीं होगी।'

इसके बाद दीनतारिणी ने चुपचाप ताकते हुए देखा, चंदननगर से बढ़ई आकर उस कमरे में दाखिल हुआ। हां, जोड़ा पलंग बनाने के लिए कमरे के अंदर ही बनाना पड़ता है। बाहर से लाकर घर मे जोड़ देने का तरीका उस समय नहीं चला था।

खुशनुमा काम किया हुआ पलंग।

उसके लिए चंदननगर के मिस्त्री को डेढ़ेक महीना खिलाना पड़ा था। खाकर, मजदूरी लेकर और एक जोड़ी नई धोती की बख्शीश अदा करके बढ़ई लोग चले गए। उसके बाद ही रासू का ब्याह हुआ। नए पलंग पर फूल-

सौंपा हुई !

उसी पलंग को छोड़कर आज दिनभर शारदा माटी पर पड़ी थी। अभी भी चाची-सास के कहे मुताबिक चुपचाप कमरे में दाखिल होकर हुड़का बन्द करके बच्चे की खोज लिए बिना ही वह लेट गयी। जमीन पर ही।

अदर जाते ही बिना ताके भी शारदा भाप गयी थी कि उसकी आशा की आशंका झूठ नहीं थी। गंध ने, अनुमान ने, दिल की धड़कन ने यह बता दिया उसे कि तुम्हारे सात राजा का धन कमरे में है।

यह मानो फिर नए ब्याह का नया वर! गौने के बाद पहली रात को जब पांच हमजोलियों ने मिलकर शारदा को घर में ठेल दिया और बाहर से जंजीर चढ़ाकर सब भाग गयीं, तो शारदा का कलेजा ऐसे ही धड़क रहा था। फिर भी तो उस समय महज़ बारह साल की थी वह! अब सोलह की है। षोडशी का हृदय तो आलोड़न से और भी उत्ताल होगा!

घर में जो अपराधी था, उसकी भी हालत शारदा से कुछ अच्छी नहीं थी। उसकी भी छाती में हथौड़ी पीटी जा रही थी। रामू को यह आशा नहीं थी कि जीवन में वह फिर कभी शारदा के आमने-सामने खड़ा हो सकेगा। तमाम दिन वह यही सोचता रहा कि उसके जीवन की सारी हँसी-खुशियों की कब्र हो गयी।

मंझली चाची ने उसे अंदर क्यों बुलवा भेजा, वह यह भी नहीं समझ सका था। सोचा था, फिर किसी नेग-वेग के चक्कर में पड़ना पड़ेगा। लेकिन आकर जो देखा, वह अभिनव ही था।

शारदा क्या तो रसोई मे व्यस्त है और भुवनेश्वरी को भी बड़ा काम है, इसलिए रामू को सोए मुन्ने की निगरानी करनी होगी!

और कुछ नहीं, सिर्फ कमरे में रहना!

बेवकूफ रामू ने तब भी कोई शुबहा नहीं किया। इस प्रस्ताव से वह जरा हैरान रह गया था। इतने-इतने लोगों के होते क्या तो बच्चा अगोरने के लिए रामू को बाहर से बुलवाया गया? अचरज नहीं तो क्या है? जो रामू की मां उसे बुलाने गयी थी, वही तो अगोर सकती थी! करती भी तो है बराबर। मगर, तो भी वह कुछ बोल नहीं सका। न प्रतिवाद किया, न प्रश्न। नई बहू के लिए जितनी शर्म, उतनी ही शर्म तो नए बच्चे के बारे मे भी होती है!

सो रामू गुड़-मुड़ करके कमरे मे चला गया। अंदर जाते ही कलेजे में सदेह की हथौड़ी पिटने लगी। फट् से दीए को बुताकर वह बैठा-बैठा सोचने लगा। टप्-टप् करके आसू की दो बूंदें टपक पड़ीं रामू की आखों से। मर्द है? सो हो, आदमी तो है!

धड़फड़ाकर उठ बैठी शारदा। एक मजबूत जकड़ से अपने को छुड़ा लेने की कोशिश करती हुई रुंधे कंठ से बोली—'अब क्यों? अब किसलिए?'

और कुछ नही बोल सकी। दोनों आंखों ने विश्वासघातकता की। दिनभर वह प्रतिज्ञा करती रही थी, अगर कभी इस बेदर्दी से मुलाकात हो तो रोएगी नही, मुंह मलीन नही करेगी। जैसे कितना पराया हो, ऐसी उदासीन रहेगी। लेकिन परिस्थिति ने सब गोलमाल कर दिया।

दो-चार बूंद क्या?

एकबारगी सावन की धारा!

इसे कैसे रोके शारदा! कौन-से बाध से बाधे?

'बड़ी बहू!'

इन दो शब्दों में कितना निहोरा, कितनी मिन्नत!

लेकिन उस करुण विनती भरी पुकार पर ही कौन जवाब दे?

'बड़ी, मेरा क्या कसूर है? मुझ पर विरूप क्यों होती हो? समझ नहीं रही हो, मेरा भी कलेजा टूक-टूक हुआ जाता है।'

सावन की धार से बाढ आयी।

'रहने भी दो, इन भुलाने की बातों का काम नही। मर्दों के मन में भी माया!'

'मेरा सिर खाओ, बड़ी, यकीन करो, तुम्हारी ही तरह जल-जलकर खाक हो रहा हूं मैं। तुम जो मुझे विश्वासघाती समझ रही हो, यह दु:ख मैं कैसे झेलूगा?'

'झेलने की जरूरत क्या है?' रुलाई रोककर कठोर होने की कोशिश करती हुई शारदा बोली—'कल तुम्हारी फूल-शैया है। नया मौज! आज ऐसे दु:ख-कष्ट की गाथा गाने की क्या पड़ी है?'

'बड़ी, तुम्ही कहो, क्या करने से तुम्हें मुझ पर यक़ीन होगा?' जोरों की वह जकड़ मानो पीस डालना चाह रही हो शारदा को, अब कैसे कठिन हो शारदा? फिर भी आखिरी कोशिश की उसने—'मेरे विश्वास-अविश्वास से क्या आता-जाता है तुम्हारा? बच्चे की मा इस बुढ़िया को छोड़कर अब नयी-नवेली···'

'बड़ी, तुम अगर ऐसा व्यवहार करोगी तो खुदकुशी करने के सिवाय मेरे लिए कोई चारा नही रहेगा, मैं कहे देता हूं।' रामू को भी कठिन होना आता है, सो उसने बंधन ढीला करके कहा, 'लो, चलता हूं मैं मंझले चाचा के दवाखाने में। वहा पेहुंअन का ताजा विष है। कहा है, मुझे मालूम है। इसके बाद विधवा हो जाओ तो मुझे दोष मत देना।'

विधवा !

शारदा की छाती थर-थर काप उठी। बल्कि सौ सौत के साथ घर करेगी वह ! विधवा होने जैसा दूसरा अभिशाप और क्या है ? मगर अभी इस वक्त कहा क्या जाय ?

'तो मैं चला ! जन्मभर की यही आखिरी भेंट !' कहकर रासू दरवाजे की ओर बढ़ा। उम्मीद हो रही थी कि अब शारदा सिर की कसम देगी। लेकिन शारदा अडिग।

'सोचा था, उसे सदा के लिए छोड़कर ही रहूंगा, तुम जैसी मेरी प्राणेश्वरी हो, वैसी ही प्राणेश्वरी रहोगी।' अपने आप ही बोलकर रासू ने दरवाजे के हुड़के में हाथ लगाया—'लेकिन तुम पति की हत्यारी बनकर आप अपने पैरों कुल्हाड़ी मार रही हो, बड़ी !'

हुड़के को खोलकर रासू ने बगल में रखा।

अब की शारदा बोली, 'लेकिन यह क्या बोलना। प्रेम-पागल अबला बाला की यही भाषा है ?'

रुंधे गले से बोली, 'घर की स्त्री से जात्रा-गान की तरह रुआसे सुर में क्यों बोल रहे हो ? हुड़का खोलकर निकल जाने में ही शायद मर्दानगी होगी ? तुम्हें गेहुंअन का विष है और मुझे क्या रस्सी-घड़ा नहीं है ?'

'तुम्हारा प्राण पत्थर का बना है, बड़ी ! मंझले चाचा जब मुझे गले में गमछा डालकर खींचते हुए ले गए, तब तुम उनके सामने जाकर नहीं कह सकी कि मेरे भी रस्सी-घड़ा है ! खैर, ठीक है, मैं सबको दिखाए देता हूं कि भला आदमी रासू क्या कर सकता है !'

वीर-रस का यह पार्ट अदा करके रासू ने किवाड़ को पकड़कर खींचा। लेकिन खींचते ही यह बात समझ में आ गई कि बाहर से साकल लगी है। यह काम किसने किया ?

'बाहर से बंद है !'

एक विपन्न स्वर घर में धीरे से बिखर गया।

बंद !

शारदा का भी इतनी देर का मौन भंग हुआ—विस्मय से, भय से।

'वही तो !' रासू के गले में विकलता—उपाय ? यदि सुबह तक बंद ही रहे ? क्या होगा बड़ी ?

कि एक अजीब घटना घट गई।

एकबारगी अनसोची, अप्रत्याशित ! शायद हो कि शारदा खुद भी घड़ीभर पहले इसकी कल्पना नहीं कर सकती। सोच नहीं सकती कि रुलाई से रुंधा हुआ उसका कंठ अचानक ऐसी कौतुक-लीला की हंसी हंस उठेगा। वह हंसी

थी तो दबी-सी, पर रहस्य से उच्छ्वसित।

ऐसा ही स्वभाव लेकिन है शारदा का—बहुत बड़े दु:ख के समय भी हंस पड़ना। लेकिन आज की तो बात ही जुदा है। आज उसके मरने-जीने की समस्या है। फिर भी पता नही क्यो वह हंस पड़ी। बोल उठी, 'होगा क्या, लाचार बाबूसाहब को अब पराई स्त्री के साथ रात बितानी होगी।'

रासू चौंक उठा। ठिठक गया। 'तो क्या अब तक छल कर रही थी शारदा? सौत होने की वैसी चोट नही लगी है उसे? यह हंसी, यह बात तो बदस्तूर प्रश्रय की है।'

खैर! दरवाज़े के लिए बाद मे भी सिर खपाने से चलेगा, अभी इधर का मोर्चा सम्हाल लिया जाए!

खुला हुआ हुड़का फिर दरवाज़े मे लगा।

ठुकराए हुए पलंग के बिस्तर को फिर से उष्णता का स्पर्श मिला।

नही, इतनी आसानी से नही झुकेगी शारदा। पति को वह सत्यबद्ध करा लेगी।

'छोड़ो, मुझे मत छुओ! पहले मां सिंहवाहिनी के नाम से शपथ करो, मेरे जीते-जी तुम छोटकी को नही छुओगे।

रासू का कलेजा कांप उठा।

जानमारू शपथ है। डरते हुए बोला, 'सिंहवाहिनी के नाम से कसम खाना क्या अच्छा है, बड़ी?'

'मन में पाप हो तो अच्छा नही है। एक मन, एक प्राण हो तो क्या डर?'

'तो भी, ठाकुर-देवता की बात!'

'ठीक तो है, मैं कोई जबर्दस्ती तो नहीं करती। मुझे नही छुओ!'

'हाय मां सिंहवाहिनी, ऐसी कठिन विपद मे तुम्हारे गांव का और कोई कभी पड़ा है?'

एक तरफ अपराध-बोध के भार से पीड़ित और नयी आशा से उद्वेलित व्याकुल हृदय और दूसरी ओर न झुकने वाली पाषाणी।

तो क्या यह हंसी ही छल है?

वही होगा, नही तो मज़े में बच्चे के पास सोने की तैयारी क्यो कर रही है शारदा?

'बड़ी!'

'क्यों तंग कर रहे हो?' शारदा को पक्का भरोसा था। दरवाज़े के बाहर तो सांकल लगी है। रंज होकर निकल भागने का उपाय नही है रासू को!

कौन हैं वह देवी, जिन्होंने रासू को शारदा के पास इस तरह से क़ैद कर दिया है ! स्वयं मां सिंहवाहिनी ही तो नही ?

'तो, दया नही होगी तुम्हारी ?'

'पति हो, गुरुजन हो—मेरी दया की बात क्यों कर रहे हो ? स्त्री ही तो खरीदी हुई लौंडिया होती है ।'

'अच्छा लो, खाता हूं कसम ! हो गया न ?'

'कहा खायी ?'

'मन ही मन !'

'मन ही मन । हुं ! मन की बात वन में जाती है । बोलकर खाओ !'

'अच्छा-अच्छा, बोलता ही हूं, तुम्हारे सिवा और किसी को नही छुऊंगा—सिंहवाहिनी साक्षी ।'

'मेरे सिवा नही, मेरे जीते-जी…'

इतनी कृपा की शारदा ने !

'वही हुआ । कौन पहले, कौन पीछे जाएगा, कहा जा सकता है क्या ?'

'मेरी जनमपत्री मे है, मैं सधवा मरूंगी ।' शारदा आत्मगौरव की हंसी हंसी ।… लेकिन याद रहे, मा सिंहवाहिनी साक्षी है ।'

'रहेगी याद, रहेगी ।'

लेकिन सच ही क्या याद था ?

अंत तक क्या रासू मा सिंहवाहिनी की मर्यादा रख सका था ? पुरुष ऐसा कर सकता है भला ?

रासू जैसा रीढ-रहित पुरुष ?

फिर भी झूठी शपथ की दलदल पर ही तो घर बसाना पड़ता है स्त्रियों को ?

१३

पनीर के बड़े बन रहे थे। चादनी के नीचे काठ के बड़े-बड़े चूल्हों पर सवेरे से ही जुट पड़े थे कारीगर लोग । लकड़ी के बड़े-बड़े बर्तनों मे पहले बुंदिया का पहाड़ लगाकर रख दिया गया । अब पनीर के बड़े ! काफी तादाद में बनाए बिना भी नही चलेगा । भर-भर पेट खिलाने के बाद छेना । और फिर कुल दो ही तरह की तो मिठाई ।

जल्दी का यज्ञ, इससे ज्यादा मुमकिन नही हुआ। या यह भी ठीक कहना

नहीं, मोटा-मोटी बात भर है। रामकाली अगर चाहते तो एक ही दिन में कटवा या गुप्तीपाड़ा से उस्ताद हलवाइयों को बुलवाकर पांच-सात प्रकार की मिठाइयां बनवा लेना भी उनके लिए संभव था। लेकिन उन्होंने जरूरत नहीं समझी।

रानू की पहली शादी में बड़ी धूम हुई थी। गांव में आज तक भी उसकी कहानी खत्म नहीं हुई। मिठाई बनाने वाले कारीगर नाटोर से, कृष्णनगर से, मुड़ागाछा से आए थे। रसगुल्ले, खीरमोहन, मोतीचूर, पनीर की जलेबी, खाजा, इमरती आदि-आदि बारह-तेरह तरह की मिठाइयां बनी थीं। और मछली? उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। भर-भर कटोरा देने के बाद भी बार-बार परोसी गई। फिर व्यंजन बावन प्रकार के। नहीं तो फिर धूम क्या? पंद्रह दिनों तक भोज की धूम चलती रही।

वह और बात थी। उस ब्याह से इस ब्याह की तुलना नहीं की जा सकती। और कोई होता, तो भोज ही नहीं करता। निहायत रामकाली चटर्जी का घर है, इसलिए यह तैयारी। परिमाण में प्रचुर ही हो रहा है, सिर्फ प्रकार मिठाई का दो है। *रसोई के प्रकार बहुत। रसोई अभी शुरू नहीं हुई है। बगल के चलिए* में बंदोबस्त हो रहा है। रसोइए नहाने गए हैं।

रसोइया बुलाकर रसोई की प्रथा गांव में रामकाली ने ही शुरू की है। उन्होंने मुर्शिदाबाद इलाके में ऐसा देखा था। नहीं तो यहां तो काम-काज में गांव की ब्राह्मण स्त्रियां ही पकाती-चुकाती थीं। बदस्तूर एक आदर-सम्मान की बात है। रसोई में जिनका नाम-गाम है, उन्हीं स्त्रियों को खुशामद करके बुलाया जाता। रसोई में बैठने से पहले नए कपड़े का जोड़ा, सधवा ब्राह्मणी हो तो आलता-सिंदूर—यह सब दे-दिवाकर तब रसोई में भेजा जाता।

फिर भी इस रसोई पर्व से बहुत गदापर्व मूसलपर्व हो जाता है। गांव में खोट खोजने वालों की एक जो जमात है, यज्ञ देखकर वही दक्षयज्ञ की तैयारी की ताक में रहते हैं। रामकाली ऐसे झमेले में नहीं पड़ते। पैसा फेंका, कारीगर बुलाया, काम कराया, बस। जिन्हें रसोइए के हाथ का खाना मंजूर नहीं, वे *विधवाओं की रसोई में पधारें। मछली नहीं मिलेगी।*

निरे निष्ठापरायण कुछ बूढ़ों के अलावा ना-हां करके रामकाली के यहां के भोज में सभी शामिल हो जाते हैं। उस्ताद कारीगरों का हाथ, रामकाली की दरियादिली और उनके प्रति सबका अदब—इन तीन शक्तियों के आकर्षण से प्रायः सभी लोग नर्म पड़ जाते हैं। इलाके में पैसा और किसी के पास नहीं है, सो नहीं, लेकिन ऐसा खुला हाथ, ऐसी दरियादिली!

गाय के खांटी घी में तली मिठाई की खुशबू से घर ही नहीं, सारी बस्ती महकने लगी। अभिभावकों को अपने-अपने बच्चों को घर में रोककर

रखना कठिन हो रहा है।

पैरों में चांदी का बुदका वाला खड़ाऊं, बदन पर बनियान, पहनावे में नेत्रकोणा का थान। मुस्तैदी से चारो तरफ निगरानी करते फिर रहे हैं राम-काली। केवल मिठाई की तरफ जड़ गाड़कर बैठे रहने का भार दिया है बड़े भाई कुंजकाली को। उससे ज्यादा बड़े दायित्व का काम कुंज को नहीं सौंपा जा सकता।

ग्वाले दही की बहंगी लिए आए। रामकाली हिसाब ले रहे थे कि कितना मन दही वे दे रहे हैं कि हठात् नेडू आकर खड़ा हो गया। रामकाली ख़याल भी नहीं करते, लेकिन वह बिलकुल बदन से सटकर खड़ा था। मतलब कि कुछ कहना है। ग्वालों पर नज़र रखते हुए ही रामकाली ने एक बार उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, 'क्या बात है रे, नेडू ?'

नेडू ने डरते हुए इधर-उधर देखा और धीरे से कहा, 'अंदर बुला रही है।'

'अंदर बुला रही है ? किसे ?'

'आपको !'

रामकाली ने त्योरी पर बल देकर कहा, 'इस समय मुझे बुला रही है ? ऐसी पागल कौन हुई ?' खास ध्यान न देकर रामकाली ग्वालों की तरफ ही मुखातिब हुए—'ऐं ! कह क्या रहा है, तुप्टु ? पांच मन से ज्यादा दही नहीं दे सकेगा ! लेकिन मेरा क्या होगा ? तूने भरोसा दिया···'

तुप्टु ने सिर खुजाकर कहा, 'जी, भरोसा तो दिया था, लेकिन गौ-माताओं ने तो मुझे हताश कर दिया। कल रात तो मैं सोया ही नहीं। ग्वालों के घर-घर घूमा। लेकिन सब का ले-देकर इतना ही हुआ।'

'इतना ही हुआ, सो तो समझा, लेकिन मेरा क्या होगा, सो बता। खड़े-खड़े अपमानित होने को कहता है ?'

'अपमान !' तुप्टु वीर विक्रम से बोल उठा—'गरदन पर बीस माथा किसे है कविराज ठाकुर कि आपका अपमान करे ?'

'माथा इस गांव में एक-एक को बीस-बीस है, समझा !' कहकर राम-काली हंसे। और ठीक ऐन वक्त पर फिर नेडू ने महीन गले से आवाज़ दी, 'मंझले चाचा !'

'अरे, इस छोरे ने तो अच्छी आफत मचाई ! किसने तुझे भेजा, बता तो ?'

'फुआ-दादी ने।'

रामकाली ने आजिज़ आकर कहा, 'सो मैं समझ गया, नहीं तो किसे इतनी···' शायद 'किसे इतनी अकल' कहने जा रहे थे, ज़ब्त कर गए। बच्चों के सामने बड़ों के प्रति ताच्छिल्य की असतर्कता आ रही थी, इसके लिए आप

अपने ऊपर खीजे।

असतर्कता सम्हालकर बोले, 'जाकर कह दो, इस समय बहुत काम है। अंदर जब जाऊंगा, तो जो कहना होगा, कहूंगी।'

'आप यही कहेंगे, फुआ-दादी यह जानती थीं, इसलिए मुझसे कहा···' नेड़ू ने थूक घोंटकर कहा—'कहा, जाकर कहना बड़ी फुआ-दादी को उलटियां हो रही है, जिएंगी कि नहीं—आना ज़रूरी है।'

रामकाली की भंवें और सिकुड़ गईं। फुआ की उलटी की सुनकर नहीं, स्त्रियों की विवेकहीन धृष्टता से। काशीश्वरी को कुछ हुआ नहीं है, यह तो तय है, तो भी परेशान करने के लिए यह बुला भेजना। शायद हो कि आयी हुई कुटुंबियों को लेकर कोई समस्या उठ खड़ी हुई हो, उसी के बीच-बचाव के लिए हो रामकाली की बुलाहट। लेकिन उसका यही वक्त है?

सात टोले का न्योता, एक दिन में भोज की व्यवस्था, माथेपर पहाड़ लिए घूम रहे हैं रामकाली, और तब क्या तो यह औरतपना!

उससे भी बुरी बात, छोटे लड़के को झूठ की तालीम देकर भेजना। लेकिन जो गुर्सैल हैं मोक्षदा कि नेड़ू को लौटा देने से ज़रूर आप ही आ पड़ेंगी और पांच जने के सामने ही बकझक शुरू कर देंगी। 'पैसे के घमंड से धरती को सिकोरा मत समझ रामकाली, गुरुजन के नाते ज़रा खयाल कर।'

इसी एक को रामकाली पार नहीं पा सके। पार पा सकते, यदि बड़ों के प्रति अदब का बोध नहीं होता। गुरुजन होने के नाते ही मोक्षदा ने रामकाली को काबू कर रखा है।

लेकिन काबू क्या वे केवल गुरुजन से ही हुए हैं?

और एक से बीच-बीच में काबू नहीं हो जाते हैं क्या? वह तो निरी लघुजन है! हां। मन ही मन उन्हें स्वीकार करना पड़ा। सत्यवती से उन्हें हार माननी पड़ती है। लेकिन उससे क्या आजिज़ी आती है?

'मंझले चाचा!' यह कमबख्त भी कम नहीं। रामकाली की सिकुड़ी हुई भवें देखकर भी भाग नहीं गया। बोला—'फुआ-दादी ने आपको चुपचाप बुला ले जाने को कहा। बड़ी आफत है!'

अरे, इसने तो अजीब मुश्किल में डाला!

'आफत तो देखता हूं, मेरी ही है!' कहकर रामकाली ने पुकारा, 'तुन्दु, दही सब अंदर दालान में रख दो। और ज़रा तलाश करो, किसी के यहां दस-पांच सेर मिल सकेगा या नहीं!'

'मिलने से तो मैं खुद ही···' सिर खुजाकर तुन्दु ज़रा हिमाकत कर बैठा—'जी, पांच मन हो क्या कम है? यह तो बड़े का पहला ब्याह नहीं है···'

भंवें तरेरकर ही रामकाली मुसकराए। बोले, 'बात तूने ग्वाले के बच्चे

जैसी ही कही है। पहला व्याह नहीं है तो कुटुंबों को खिलाने बैठाकर अधपेट ही खिलाऊंगा ? खैर ! तू इन सबको उठाकर रख। मैं आता हू।'

नेड़ू के साथ बीच के विराट आगन को पार करके रामकाली अंदर गए बीच के इसी आगन में धान के गोले हैं, सालभर के जलावन का ढेर, मोरियों में धान के बीज।

दिग्विजयी की नाईं नेडू जाकर काशीश्वरी के दरवाजे पर खड़ा हुआ, क्योंकि रामकाली को बुला लाने का जिम्मा और किसी ने नहीं लेना चाहा। सत्य तक ने साफ जवाब दे दिया—'अभी-अभी तो देखा कि फुआ-दादी पोखरे से नहाकर आयी, और अभी ही ऐसी क्या बीमारी हो गई कि बाबूजी को काम की भीड़ से बुला लाऊं ? उसका दिमाग अभी सही है ? अजवायन की गोली तो है, वही खा ली न।'

'तू यहा से भाग, हरामजादी !' मोक्षदा ने डाट बताई।

किंतु नेड़ू वगैरह को तो गृहिणियों के कमरे में जाने का हुक्म नहीं है, इसलिए 'दादीजी' कहकर खड़ा हो गया। नीचा दरवाजा। खड़ाऊं खोलकर सिर झुकाए रामकाली अदर गए। और सारा एहसान भूलकर 'तू यहा से भाग हरामजादा !' कहकर मोक्षदा ने नेड़ू को भगाया।

रामकाली ने देखा, थान के आचल से मुंह ढाके काशीश्वरी माटी पर पड़ी है। यह फिर क्या ? बेशक कोई मान-अपमान की बात। खीज आयी। तो भी शात भाव से ही बोले, 'बात क्या है ?'

'बात बहुत उत्तम है...' दबे गले से इतना ज्ञानदान करके मोक्षदा ने और भी फुसफुसाकर कहा, 'दरवाजा भिड़काकर तब सुनना होगा।'

रामकाली ने एक बार बाहर की तरफ ताका। मोक्षदा के इस तरफ को छोड़कर सारा घर लोगों से खचाखच भरा था और इसमें बंद कमरे में गुप्त मंत्रणा ! गंभीर गले से बोले—'किवाड़ छोड़ो, क्या कहना है सो कहो।'

लेकिन कहने को और कुछ है क्या ?

कहने का मुह भी है ?

मगर इतनी बड़ी बात रामकाली को बताए बिना भी दो मूर्ख औरतें क्या करेंगी ? हिताहित ज्ञान कुछ रह भी गया है ? मोक्षदा और काशीश्वरी। काशीश्वरी की ही तो नत-पतोहू है शंकरी।

यह खौफनाक खबर अभी तक पाच कानों में नहीं पहुंची है। अभी भी लोग गिरस्ती के कामों में डूब-डूब कर रही हैं, लेकिन अनमनी भी कब तक रहेंगी सब ? फिर ! एक कान से दूसरे कान और देखते-देखते पांच सौ कान। फूस

के घर में आग लगना और किसी विधवा की कलंक-कहानी प्रकट हो जाना एक ही है। वह एक से दूसरे छप्पर को और वह एक मुंह से दूसरे मुह में। वह दईमारी डूबने का और दिन नहीं पा सकी।

यदि पानी में डूबी है तो वह बल्कि ठीक है, लेकिन नाव ही ले डूबी हो किसी के साथ तो?

काशीश्वरी का ऐसा ही ख्याल है। इसीलिए वह मुह ढाके पड़ी है। मन ही मन वह महसूस कर रही है कि इस मुहजली को उसके चाचा-चाची ने अपने यहां क्यों नहीं रखा, यहां क्यों पटक गई। हाय-हाय, नाईन की बात से कल ही तो काशीश्वरी ने कुछ-कुछ भांपा था, इस कुलबोरन को कमरे में ताला बंद करके क्यों नहीं रखा? कुटुंबों के पास सफाई देनी होती तो कहती, हठात् दिमाग कुछ खराब हो गया है, इसलिए काम-काज के घर में खुला रखने का साहस नहीं हुआ।

मोक्षदा ने लेकिन डूबने की आशंका ही की। 'रात में कब जो उठकर यह करतूत कर बैठी, पता नहीं। सुबह भी सोचती रही, नहाने या और कहीं गई होगी। खैर हुए तो माथे पर गाज ही गिरी! मेरा निश्चित विश्वास है, दई-मारी बड़े पोखरे में ही जाकर डूबी है। जाल डलवाने से...'

'नहीं!' रामकाली ने गंभीर गले से कहा—'जाल नहीं डाला जाएगा!'

'जाल नहीं डाला जाएगा!' यंत्रचालित-सी बोल गयी मोक्षदा।

'नहीं! इतने-इतने लोगों का खाना मैं नष्ट नहीं होने दूंगा।'

अपने स्वभाव के विरुद्ध मोक्षदा नम्र होकर बोली—'लेकिन एक की जिंदगी से यज्ञ ही बड़ा है तुम्हारे लिए!'

'मेरे ही लिए नहीं, कोई भी बुद्धिमान आदमी यही कहेगा।' रामकाली कमरे में चहलकदमी करते हुए बोले, 'कहती हो कि सुबह से ही उसे नहीं देखा। तो यह समझना होगा कि यह काम रात को ही हुआ होगा। ऐसे में क्या समझती हो, जाल डालने से वह जिंदगी जिंदा निकलेगी?'

ठीक उत्तर नहीं खोज पाकर मोक्षदा चुप रहीं। काशीश्वरी दबे गले से फफककर रो पड़ीं।

'बस भी करो। लोगों के खा-पी लेने से पहले जिसमें चू भी न हो। यदि डूबकर ही मरी है, तो जब तक लाश ऊपर तैर नहीं आती, उसे पानी के नीचे ही रहने दो। डूबी है, तो लाश को ऊपर आना ही पड़ेगा। नदी नहीं कि बह जाएगी। लेकिन...' चहलकदमी बंद करके रामकाली काशीश्वरी के खूब करीब गए, झुककर दबे किंतु गंभीर गले से बोले—'कहीं डूबी न हो तो नाहक जाल डलवाने से समाज के सामने क्या हालत होगी, सोच सकती हो? बहू-बेटी को जब सम्हालकर रखने की जुर्रत नहीं है, तो अपनी जीभ को ही सम्हालकर

रखो।'

काशीश्वरी रो पड़ीं—'रामकाली, तुम मुझे जहर लाकर दो बेटे, मैं यह मुंह अब किसी को नही दिखा सकूंगी।'

'बचपना न करो।' धीमे से डांट उठे रामकाली—'विपद की घड़ी में मति को थिर रखो। मुझे सोचने का वक्त दो। मैं तो यही सोचकर हैरान हो रहा हूं, कहती हो, तुम लोगो के साथ सोती थी, और तुम दो-दो जने, कुछ खबर न रही!'

'हमे मौत की नींद आयी थी, बेटे···!' काशीश्वरी फिर रो उठी।

'तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं फुआ, शोर-गुल मत मचाओ। नही तो लोगो से यह कह दो, उसके चाचा की तबीयत खराब है, यह खबर पाकर उसे उसके बाप के घर भेज दिया गया है।'

'लोग आखिर घास के दाने तो नही खाते, रामकाली!' मोक्षदा अपने रंग में लौट आयी—'कलमुही ने कल दोपहर रात तक लोगों के साथ तरकारिया कूटी है···'

'अजीब है!' फिर चहलकदमी करते हुए बोल उठे रामकाली—'ऐसा हुआ क्यों, कारण कुछ समझ में आया?'

काशीश्वरी ने मुह पर के कपड़े को और ज़ोर से दबाकर कहा, 'मेरी समझ मे आया है, रामकाली! उसकी मति-गति ठीक नही थी। उतनी उम्र तक चाचा के घर रही, मा-बाप थे नही कि अच्छी शिक्षा दें। बैठे-बैठे जहन्नुम मे जाने की बुद्धि ही बढ़ती रही। मेरा ख़याल है, वह डूबी नही, हम सबके चेहरे पर उसने कालिख ही पोती है!'

नीचा-सा कमरा। अंधेरा-सा! खिड़की है कि नही है, तो भी रामकाली का टुक-टुक गोरा चेहरा और कितना टुक-टुक हो उठा, यह मोक्षदा ने देखा। निहारते हुए लगा, उस चेहरे से ताप निकल रहा है। बेपरवाह मोक्षदा भी डर गयी। क्या कहने जा रही थीं, रुक गयी।

ऐन इसी वक्त दरवाज़े पर जैसे कासे की खनक हुई।—'दादीजी, कटवा की बहू गयी कहा? पान लगाने के लिए उसकी पुकार हुं। और तुम दोनों बहनें ही इस दोपहर को सोने के कमरे में क्या बतिया रही हो? नहा-धोकर फिर सोने के कमरे में घुस पड़ी! फिर एक बार नहाने का इरादा है? सो अपनी मुराद तुम लोग पूरी करो, भाभी को भेज दो।'

अंदर जाने की इजाज़त नही है, इसलिए बाहर खड़ी ही बातों की झड़ी लगा दी सत्यवती ने। कयास भी न था कि अंदर उसका बाप भी हो सकता है।

ऊंची नींव का घर, बच्चों के लिए भीतर तक देख सकना संभव नही।

मोक्षदा बिना कुछ बोले दरवाज़े के पास जा खड़ी हुई।

यानी अंदर ही है। सत्य आजिजी से बोल उठी—'क्यों, मुह में बोली क्यों नही हैं? कटवा की बहू कहा हैं, यह तो बताओगी? घाट से लेकर कई चौहद्दिया ढूढ आयी।'

अचानक मोक्षदा खिसक गयी और उसी खाली जगह में रामकाली की मूर्ति दिखायी पड़ी।

'बाबूजी!'

सत्य को बिजली छू गई।

बाबूजी यहां है और सत्य ने जबान को बेलगाम छोड़ दिया है! छि:-छि:! मगर बाबूजी यहा क्यो? तो जरूर कटवा की बहू को कुछ हो-हवा गया है। छि:! इधर यह हाल है और सत्य उसे पान लगाने की ताकीद करने आयी है! कहेंगे क्या बाबूजी! यही साबित होगा कि सत्य को घर की कोई खोज-खबर नहीं रहती।

मन ही मन जीभ काटकर खड़ी हो गयी बेचारी। मन की चंचलता मिटाने के लिए आज साड़ी की कोर को चबाने की गुजाइश नही थी, क्योंकि आज उत्सव के नाते विवाह के वक्त की एक कीमती बालूचर साड़ी पहने हुए थी।

रामकाली ने गरदन घुमाकर धीरे-धीरे उन दोनों बहनों से कहा, 'जैसे करती रही हो, आकर अपना-अपना काम करो। खामखाह कमरे के अंदर बैठे रहने की दरकार नही है।' रामकाली निकल आए। निकलकर बेटी को एक सहज परिहास की बात कह गए—'अरे, आज तो बड़ी बनी-संवरी हो।'

बात ग़लत भी न थी। बालूचर साड़ी ही नही, बेटी को आज भुवनेश्वरी ने एड़ी-चोटी गहनों से भी सजाया था। सत्य को ब्याह के समय गहने भी तो कम नही हुए है, पहनती कब है वह? बाप की बात से सत्य ने लजीली हंसी हंसकर सिर झुका लिया। रामकाली अपने पुराने प्रसंग पर आ गए—'कटवा की बहूरानी को कौन बुला रहा है?'

बाप की बात से नही, उनके गले की आवाज से सत्य सकपका गयी। बेबस-बेबस नजर से देखती हुई बोली—'वही, वे···जो ढेरों पान पसारकर लगाने के लिए बैठी हैं!'

'उन लोगों से कह दो, कटवा की बहू आज पान नही लगा सकेगी।' रामकाली ने भी एकाएक जैसे बेबसी-सी महसूस की। झट बोल उठे, 'अच्छा, रहने दो। तुम्हें अब उधर नहीं जाना, जो लोग पान लगा रहे हैं, लगाएं।'

बात करते-करते रामकाली धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे—घर के पीछे की तरफ जो ढेंकी घर है, इच्छा से उसी तरफ! सत्य ने यह खयाल नहीं किया, मुह सुखाकर पूछा, 'कटवा की बहू की तबीयत क्या ज्यादा खराब है, बाबूजी?'

'तबीयत खराब ? किसने कहा ?' चौंककर रामकाली ने अपने को सम्हाल लिया। कहा—'सुनो, उनको नाहक ही पुकारा-बुकारा मत करो। उनकी तबीयत नही खराब है, एकाएक वह खोजे मिल नही रही है।'

ताज्जुब है, रामकाली ने यह बात क्यों कही ?

जरा ही देर पहले तक भी तो उन्होने यही तय किया था कि यह खबर किसी के सामने जाहिर नही होने देंगे ? शायद हो कि और कोई होती तो नहीं कहते वे। भुवनेश्वरी भी आकर पूछती तो 'उसे पुकारो-बुकारो मत' कहकर ही रह जाते, लेकिन सत्य की उन चमकती, विश्वासभरी बडी-बड़ी आंखों के सामने हकीकत को छिपाना उनके लिए कठिन हो गया। और रामकाली के चिंतित चेहरे की तरफ ताककर यह लगा कि वे उस नौ साल की लड़की को अपनी सोच का हिस्सा देने की पनाह खोज रहे है।

लेकिन इतने मे तो सत्य का 'हो चुका !'

'खोजे नही मिल रही है ?'

जीती-जागती एक औरत को ढूढे नहीं पाया जा रहा है ?

मर्द सूरत नही कि कही चल दे। औरत को ढूढकर नही पाने का मतलब ही हुआ, बड़े तालाब का काक चक्षु पानी। सो वह चौंककर बोली—'ढूढे नहीं मिल रही है ? हाय रे मेरा नसीब, इसी डर से तो बड़ी बहू के दरवाज़े की मैंने रातभर साकल चढाकर रखी और कटवा की बहू यह कर बैठी ! हे भगवान, मैंने दोनो के दरवाज़े की साकल क्यों नही चढाई ?'

'बड़ी बहू के दरवाजे पर साकल लगा दी थी !' चमत्कृत होकर रामकाली ने पूछा।

सत्य ने दमककर कहा—'बिना लगाए निश्चिन्त होकर सो सकती थी भला ! छोटी चौकी पर और एक छोटी चौकी—कितना कुछ करके तो सांकल तक हाथ पहुचा। सवेरे मा से कह-सुनकर खुलवा दी है। हाय-हाय, अगर कटवा की बहू को भी...' इतना कहकर ही सत्य ने सुर बदल दिया, करुण रस के बदले वीर रस ले आयी—'जाने दो ! मरकर जुड़ा गई बेचारी ! एक दिन बेचारी को घाट से आने मे देर हो गयी, लक्ष्मीघर मे दीया-बाती देने में देर हो गई, उसके लिए कितनी लानत-मलामत ! कैसे-कैसे वाक्य सुने ! एक आदमी, उस पर दस की ताड़ना। बड़ी फुआ-दादी कुछ आसान हैं क्या ? गाली दे-देकर पेट ही नहीं भर रहा था। उस लानत-मलामत से तो पत्थर की मूरत भी पानी मे कूद पड़े !'

रामकाली को जैसे रहस्य का सूत्र मिलने लगा। पूछा—'यह बकझक कब हुई ?'

'कल ही तो ! लेकिन बहू की भी गलती थी। पानी लाने गयी है तो लेकर

चली आ। सांझ गए घाट में बैठे रहने की क्या ज़रूरत ! लेकिन इनकी ओर से भी लघुपाप का गुरुदंड ! विधवा बेचारी के जी में सुख भी है ? रह ही गई दो घड़ी घाट पर तो इतना गाली-गलौज ! इस गरमी में बेर कहा है, सारे पेड़ तो झंखाड़ हो रहे है, फिर भी कहा—घाट जाने के बहाने बेर खाने गयी थी—और भी जाने क्या-क्या ! मैं उनका माने ही नही जानती, बाबूजी !'

रहस्य साफ हो आया।

कल शाम को रामकाली ने घाट पर जिस नारी मूर्ति को देखा था, वह शारदा नहीं, शंकरी ही थी। आत्महत्या करने के लिए ही गयी थी।

पहली कोशिश मे कारगर नही हुई, इसीलिए दुबारा ! धोखा एक ही बात का हो रहा है, बकझक वाली घटना तो उसके बाद की है।

काशीश्वरी ने भी यही संदेह किया है।

रामकाली ने एक भयानक पीड़ा का अनुभव किया। पीड़ा का अनुभव शंकरी की आत्महत्या के लिए नही, चटर्जी कुल की इज्जत के लिए नही, अपनी खामी को सोचकर हुआ। ज्यादा सतर्क रहना चाहिए था, बहुत सावधान। एक मामूली-सी औरत ने मानो उनकी क्षमता की तुच्छता पर व्यंग्य किया !

उसकी इस धृष्टता को माफ नही किया जा सकता। कि लगा, सत्य पीछे रह गयी। गरदन घुमाकर देखा और ठिठक गए। एक जगह खड़ी होकर सत्य चुपचाप रो रही थी।

रामकाली पीछे आए। कहा, 'तुम्हे रोने की जरूरत नही।'

'बाबूजी !'···अब चुप-चुप नही, सत्य जोर से रो पड़ी—'सारा कसूर मेरा है। कटवा की बहू तो रात-दिन कहा करती थी, मर जाऊं तो जी जाऊं। मैंने अगर तुमसे पहले कहा होता, तो कोई उपाय होता। मैंने सोचा था, औरतें तो मरने की बात बात-बात मे करती है ! लेकिन कटवा की बहू ने करके दिखा दिया ! बेचारी मा नही, बाप नहीं, पति-पूत नही, गाली सुन-सुनकर ही मर गयी !'

सत्य की रुलाई ज्यादा छलक पड़ी।

रामकाली को क्या काठ मार गया ? नही तो उनकी शक्ल एकाएक इतनी बदल क्यो गयी ? जिन त्योरियों पर बल देकर एक तुच्छ लड़की की ओर ताका था, वह ग़ायब क्यों हो गई ? उनकी चिंता-धारा क्या सहसा धक्का खाकर अर्रा-कर टूट गिरी ?

'रोना बंद करो !' कहकर वे बाहर की तरफ चले गए—जहा एक छोटी-सी चौकी पर बैठकर कुज उधर को मुह किए गरम-गरम छेना की मिठाई खा रहे थे।

बोले, 'भैया, मुझे जरा बाहर जाना पड़ रहा है। देखना, अतिथियों के सम्मान में कोई त्रुटि न हो।'

'मैं···ऐं···।' कुज के गले में मिठाई लग गयी।

'हां, तुम ! तुम क्यो नहीं ? तुम बड़े हो।'

रामकाली को जाना है। मछेरो से कहेगे, पोखरे मे और एक बार जाल डालना है ! घर मे धूम है, सदेह की कोई गुजाइश नही। लोग सोचेंगे, मछली कम पड रही होगी।

लेकिन रामकाली को लग रहा था, यह फिजूल होगा। काशीश्वरी की नत-बहू आप नही डूबी है, हम सबने ही डुबा दिया है !

तो क्या रामकाली को निर्देश चाहिए ? अपने ऊपर से आस्था जाती रही ? नही तो जिस जीव को महज जीव समझकर उस पर धृष्टता के लिए खीज रहे थे, उसे अब दूसरी निगाह से क्यों देख रहे है ? क्यों सोच रहे हैं कि उसका भी कुछ पावना था इस संसार में ? रामकाली को इसीलिए परामर्शदाता की जरूरत महसूस हो रही है।

१४

'अरे भैया, जरा कदम बढ़ाकर चलो, जल्दी है।'

पालकी से मुह निकालकर रामकाली ने और एक बार ताकीद की। दोपहर तक पहुंच नही सके, तो विद्यारत्न से भेंट नही होगी। सवेरे की संध्या करके वे गंगा नहाने को चल देते है। गंगा उनके यहा से कम से कम तीन कोस है। आना-जाना छः कोस—इतनी दूरी तय करके वे फिर से ठाकुरघर मे घर के देवता को भोग देने के लिए दाखिल हो जाते हैं। उसके बाद प्रसाद-भोजन, विश्राम—बीच के इस समय में विद्यारत्न किसी से मुलाकात नहीं करते हैं। इसलिए उनसे मुलाकात करनी हो तो या तो गंगा नहाकर लौटते ही या फिर तीसरे पहर।

लेकिन रामकाली को तीसरे पहर तक इंतजार का समय कहां—बड़ी सख्त जरूरत है।

जिंदगी मे जब भी किसी उलझन को सुलझाने की जरूरत पड़ती है, रामकाली विद्यारत्न के यहा हाजिर हो जाते हैं।

हा, वैसी जरूरत जीवन में कभी ही आयी है।

एक बार वही निवारण चौधरी की मा की गंगा-यात्रा के समय आयी थी। तिरानवे साल की बुढ़िया, होश रहते हुए ही गंगा-यात्रा को गई थी। यह

निर्देश रामकाली ने ही दिया था। लेकिन बुढ़िया ने तो मानो रामकाली की सूझ की हंसी उड़ाई और पाच दिनो तक गगातट की हवा खाकर फिर से चंगी हो गयी। चंगी हो गयी तो लगी ज़िद करने, मुझे घर ले चलो! तन में ताकत है, उम्र के नाते मन नासमझ हो गया है। निवारण चौधरी दौड़े-दौड़े रामकाली के पास आए, अब क्या किया जाए?

उसी से रामकाली मुश्किल में पड़ गए थे।

गंगा-यात्री को लौटाकर घर ले जाया जाय, तो बड़ा अमंगल होगा। घर के अन्दर तो उसे ले ही नही जाया जा सकता! बहुत तो उसे ढेंकी-घर में या गोशाला मे रखा जा सकता है। पर ऐसा लगा, निवारण चौधरी को यह भी मंजूर नही। बाल-बच्चों का घर, सबका अमंगल हो, यह नही चाहते थे वह! डर से जी कांप रहा था। इसीलिए कविराजजी से राय मागी थी।

रामकाली विद्यारत्न के पास गए थे। पूछा था, 'जी, शास्त्र बड़ा है कि मां की मर्यादा?'

आज भी वैसी ही एक समस्या लेकर जा रहे थे।

खैर, अभी तो जल्दी पहुंचने की समस्या थी। बीच मे एक गांव—देवीपुर। उसके बाद विद्यारत्न का घर।

पालकी से मुंह निकालकर कहारों को फिर ताकीद करने जा रहे थे कि रुक गए। छोड़ो! इतना घबराने की क्या है। पहुंचा तो देंगे ही ये।

घबराने से नफ़रत करते है रामकाली! तो भी मन ही मन यह अस्वीकार करने से लाभ नही कि आज ज़रा विचलित हुए है वे! जाने कहा तो हार गए है वे, उसी की सूक्ष्म ज्वाला मन को बेचैन कर रही थी।

लेकिन इसमें हार की ग्लानि क्यों? एक बुद्धिहीन लड़की यदि ऐसा कुछ कर ही बैठी है, तो उसमें रामकाली की हार क्यों?

घोड़े पर आए होते तो अब तक पहुच गए होते। लेकिन किसी गुरुजन के सामने भरसक घोड़े पर नही चढ़ते है वे। इसीलिए पालकी से ही चले। चले भी ज़रा चुपचाप ही। मछुओं को जाल डालने का तकाजा कर दिया। मछली कुछ ज्यादा भी हो जाए, तो कोई हर्ज नहीं। खाने की चीज़ बेकार नही जाती। मछुए काम करते रहें। वे नही हैं, यह जान लेंगे, तो ढिलाई करेंगे।

आजकल क्या किसी पर भरोसा किया जा सकता है?

चाचा है। संझले चाचा। उन्हे किसी काम का जिम्मा देना आफ़त है। क्योंकि उनके खयाल से चीख़-पुकार, डाट-डपट ही मर्द का असली गुण है। और वे सदा यह जताने के लिए भी तत्पर रहते है कि उम्र हुई तो क्या, उनका पौरुष रत्तीभर भी कम नहीं हुआ है।

और कुछ ?

उसकी बात भी कहने ही योग्य है !

जहां मिठाई बन रही है, वहां मुह में छेने की मिठाई से उनका फूला हुआ मुह नजर मे एक बार नाच गया। उस समय तो देखकर खीज हुई थी, अब हठात् मन में ममतामिली अनुकंपा आ गई।

जो आदमी लुका-छिपाकर अपने बेटे के व्याह में होने वाले भोज की मिठाई खाने बैठता है, उस पर अनुकंपा के सिवा हृदय की और कौन-सी भाववृत्ति जाग सकती है ?

ये गुस्सा के लायक है ?

अजीब है। यह रामू भी अपने बाप जैसा ही निकम्मा है ! उसके भविष्य की सोचने से आशा की कोई किरण नही नजर आती।

इनकी बातों की चिंता नही करते है रामकाली, लेकिन कभी-कभी सत्य उन्हें चिंतित किए देती है। सत्य के निरे सरल मुख से निकले हुए भयानक प्रश्न ही चिंतित नही करते उन्हें, उसका भविष्य भी चिंतित करता है।

रामकाली पालकी से उतरे।

विद्यारत्न के माटी के घर से कुछ दूर ही। यही सभ्यता है। गुरुजनों के प्रति आदर-भाव। गुरुजन के सामने पालकी से उतरना अविनय है।

माटी का घर, दालान, बरामदा—बरामदे के नीचे टट्टी का घिरा चित्र-जैसा सुन्दर बगीचा फूलों का। बगीचा विद्यारत्न के अपने हाथ का लगाया हुआ है। घेरा भी अपने ही हाथ का। टगर, गेंदा, चीरामीरा, बेला, मल्लिका, अड़हुल, कनेर, संध्यामणि—तरह-तरह के पेड़। सालों-भर फूलों का समारोह। बेड़े के किनारे तुलसी की क्यारी। गंगा नहाने जाने से पहले बगीचे की देखभाल विद्यारत्न की एक आदत है। पावों में खड़ाऊं, पहनावे में अपने हाथ के काते सूत की धोती और चादर—पीतल के झारे से पेड़ो मे पानी डाल रहे थे—धूप में रामकाली की छाया पड़ते ही उन्होंने नजर उठाकर देखा।

वे झट-झट बोल नही पड़े, अचानक आने की कैफ़ियत भी नही पूछी। रामकाली का प्रणाम करना हो चुका, तो उनके माथे पर हाथ रखकर बोले, 'आओ, दीर्घायु हो !'

शांत सौम्य मुखड़ा। सांवले-से, छोटे क़द के। सिर के बाल सफेद। लेकिन चेहरे पर झुर्रियों का नाम नही। सहज ही यकीन नहीं होता कि उनकी उम्र अस्सी को छू रही है। उनके झकमकाते दांतों की पांत की स्वच्छ हंसी भी यह यक़ीन नही करने देती।

बरामदे पर दो-तीन छोटी-छोटी चौकियां। पास ही सीढ़ी पर लोटे में

पानी। पैर धोकर बरामदे की चौकी पर बैठे रामकाली, विनम्र हंसी हंसकर बोले, 'आपके तो आह्निक का समय हो गया!'

'हां, समय तो हुआ।' विद्यारत्न ने मुसकराकर कहा,'कहना है कुछ ?'

रामकाली ने इधर-उधर कुछ नहीं किया, सिर उठाकर बोले, 'जी, आज फिर एक प्रश्न लेकर दरबार में हाजिर हुआ हूं। मुझे कृपा करके यह बता दीजिए, आदमी बड़ा है कि वंश-मर्यादा का अहंकार बड़ा है ?'

ठीक इसी समय एक छोटी-सी लड़की किसी दूसरे से नहीं अपने ही मन से ठीक ऐसा ही प्रश्न पूछ रही थी—'अच्छा, यह भी कहूं, आदमी बड़ा है कि तुम लोगों का गुस्सा ?'

ताज्जुब है, एक आदमी खो गया और मालकिनें सत्या पर ही आखें रंगा रही है, 'खबरदार, होंठ मत हिलाना। किसी को कानों-कान भी खबर हुई तो तुम लोगों का हाड़-मास जुदा-जुदा कर दूंगी।'

'अच्छा बाबा, तुम्हारी ही जिद रहे, गुस्से को धो-धोकर पीओ।'

उधर विद्यारत्न रामकाली से कह रहे थे, 'समय के समंदर में एक आदमी का जीवन-मरण, सुख-दुःख कुछ भी नहीं है, रामकाली! बुलबुला! कुल छोड़ने वाली बहू को खोजने की जरूरत नहीं है।'

'लेकिन समाज को तो जवाब देना पड़ेगा।'

'जो सत्य है, साहस के साथ वही कहो, सत्य को साफ कहना चाहिए। यही धर्म है। उस कुरास्ते गई बहू को तो तुम अब अपना नहीं रहे हो। समझ लो, वह मर गयी।'

'लेकिन पंडितजी, मैं यह सोच भी नहीं पा रहा हूं कि लोग मेरे घर की बात पर आलोचनाएं करे।'

'तुम्हारे बदन में किसी बुरे रोग का होना असंभव नहीं है, वह अगर हो, तो क्या करोगे तुम ? ईश्वर के विधान को मानना ही पड़ेगा। इसके सिवाय यह भी कि ऐसे कुछ की जरूरत भी रही हो। शायद हो कि तुम्हारे मन में कहीं अहंकार माया का...'

'अहंकार! जी, 'मैं' के प्रति मर्यादा की सचेतनता क्या भूल है ?'

'यही तो बड़ी उलझन की बात है, रामकाली! आत्ममर्यादा का ज्ञान और अहंकार, दोनों जुड़वा भाई जैसे है, एक-से है। बड़ी ही बारीक दृष्टि से इन दोनों का भेद समझ में आता है। और फिर तुम ब्राह्मण हो। रजोगुण तुम्हारे लिए नहीं है। लेकिन आज तुम्हारा मन बड़ा चंचल है, तुम बहुत व्यस्त भी हो, सो आज यह सब आलोचना रहने दो।'

रामकाली ने सिर झुकाकर ज़मीन ताकते हुए ज़रा देर कुछ सोचा, उसके बाद सिर उठाकर दृढ़ स्वर से बोले, 'ठीक है। आपकी आज्ञा सिर-आंखों उठाता हूं।'

उन्होने विद्यारत्न के चरणों की धूल ली और पालकी पर आ बैठे। लौटते हुए कहारो को जल्दी की ताकीद की याद न रही। विद्यारत्न की एक बात से उन्हें बडी ठेस लगी। उन्होने कहा, 'तुम ब्राह्मण हो, रजोगुण तुम्हारे लिए नही है।'

लेकिन यही सत्य है क्या ?

ब्राह्मणों में तेज नही होगा ? होगी केवल रजोगुणरहित बुझी-बुझी-सी शाति ?

लौटे तो देखा, घर लोगों से खचाखच भर गया है। निमंत्रित व्यक्ति प्रायः आ पहुंचे है। रसोई भी तैयार है। केवल रामकाली के नही रहने के कारण ठीक से लोगों को बैठा नही पा रहे हैं लोग, गप-शप कर रहे है।

ठीक इसी वक्त दूर से चीन्ही हुई पालकी के कहारों की हुम्-हुम् आवाज सुनाई पड़ी। आशा से सभी अधीर हो उठे—आ गए, आ गए! सबने यही सोच लिया था कि किसी रोगी की हालत नाज़ुक होगी, इसीलिए लाचारी रामकाली को जाना पड़ा है। कुंज ने भी लोगो से यही कह रखा था।

अंदर महल में शंकरी के बारे में कानाफूसी शुरू हो गई थी, बाहर महल लेकिन बिलकुल निश्चिंत था।

रामकाली के आते ही अतिथि अभ्यागतो मे जो बड़े थे, वे आगे बढ आए—'कौन बीमार है, रामकाली ? किस बस्ती में ? किसी ने पालकी को देवीपुर की ओर जाते देखा था। वही किसी को…'

'जी, नहीं। मै मरीज़ देखने नही गया था।' रामकाली ने भीड़-भरे अठचलिए की तरफ एक बार निगाह दौड़ा ली, फिर ज़रा रुककर बोले—'मैं और ही एक ज़रूरत से गया था, जिसकी बात मैं अभी आप लोगों से बताऊंगा। गरचे अभी आप लोगों ने खाया नही है, भूखे है, मेरी बात सुनकर आप लोग क्या सोचेंगे, मैं यह भी ठीक-ठीक समझ नही पा रहा हूं, फिर भी भोजन आदि के पहले वह बात बता देना मैं उचित समझता हूं। आप लोग मुझे उसकी अनुमति दीजिए।'

रामकाली का भारी कंठस्वर मौन खड़े लोगों के बीच गम्-गम् कर उठा। किसी अनजानी आशंका से बहुतों के कलेजे कांप उठे।

कुंज पीछे हटकर ज़मीन पर जा बैठे। रासू भीड़ के बिलकुल पीछे था, वह चाचा के तमतमाए चेहरे की ओर हा किए ताकने लगा। लोग-बाग समझ

नहीं पा रहे थे, बात आखिर क्या है ? खाने की चीजों को कोई छूत लग गयी ? लेकिन वहीं कैसे कहा जाए ? रामकाली के अचानक ही यहां से चल देने का प्रश्न भी तो है।

तो क्या रामकाली के किसी अपने आदमी का देहात हो गया, जिसके लिए वे बाहर चले गए थे ? लेकिन रामकाली क्या ऐसे अर्वाचीन हैं कि इस भोज की घड़ी में उस बात को जाहिर कर देंगे ? कानों से मौत की खबर सुने बिना तो अशौच नहीं होता। रामकाली अगर चुपचाप रह जाते तो यहां के बने भोजन अशौचान्न नहीं होते न ? ऐसे मौके पर तो लाश को छिपाकर लोग वक्त निकाल लेते हैं।

तो ?

लोग यह भूल गए थे कि रामकाली ने कहने की इजाजत मांगी थी। रामकाली ने फिर उस बात की याद दिलायी—'तो आप लोग मुझे अनुमति दे रहे हैं ?'

'क्यों नहीं ? तुम्हें जो कहना है, कहो।'

'सुन लीजिए, पिछली रात मेरे परिवार की एक विधवा बहू घर से निकल गयी है···'

'एँ ! एँ ! एँ !'

अचानक एक भयानक आंधी-सी आयी। बैसाख का जोरों से आने वाला यहा-वहा इखरा-बिखरा तूफान नहीं, गोया एक जंगल की रुंधी सांस गों-गों कर उठी। वह सास इकट्ठे लोगों के चोट खाए विस्मय की समवेत आवाज थी।

अपने इन भूखे निमंत्रित अतिथियों के लिए रामकाली यही वज्र इतनी देर से तैयार कर रहे थे ?

आवाज की उस भयंकर आंधी में रामकाली के अंतिम शब्द दब गए थे, वे फिर गम्-गम् कर उठे—

'अब आप लोग यह तय करें कि इस अपराध में मुझे त्याग करेंगे या नहीं करेंगे ?'

रामकाली मानो मंच पर खड़े होकर भाषण दे रहे हों, ऐसी धीर और स्थिर थी उनकी मूर्ति !

रामकाली को त्याग करना !

सभव है ?

संभव भी हो सकता है। समाज की बात ठहरी।

निवारण चौधरी के मामा विपिन लाहिड़ी क़द के बड़े नाटे—उन्होंने एक छोटी-सी चौकी खींच ली और उस पर खड़े होकर बात को चबाते हुए बोले, 'त्याग करने न करने की बात तो फिर होगी। लेकिन आज तो ऐसे में हम लोगों

का यहां खाना नहीं हो सकता।'

रामकाली ने हाथ जोड़कर शांत गंभीर गले से कहा, 'मैं किसी को इस अनुरोध से लाचार नहीं करना चाहता। लेकिन हां, इतना कह दूं कि मैं उस मतिभ्रष्टा औरत को मरा हुआ ही मानता हूं। मनुष्य के समाज से उसकी मृत्यु हो गयी। भोजन के पहले यह बात बताने का मुझे आखिरी दु:ख है, लेकिन मेरे विवेक ने इसी को कर्तव्य समझा।'

विपिन लाहिड़ी ने मन ही मन मुंह दूसा—'पहले ही बताना कर्तव्य समझा, हाय रे मेरे युधिष्ठिर! यज्ञ का खाना बर्बाद किया। भला होगा, तेरा भला होगा!'

विपिन लाहिड़ी की आंखों में आंसू आ-जा रहे थे। फिर भी बोले, 'मेरे खयाल में तुम्हें अभी यह खबर छिपाकर ही रखनी थी, रामकाली!'

'पहले मैंने भी यही सोचा था।' रामकाली ने फिर एक बार सब के मुंह की तरफ ताक लिया—'लेकिन फिर यही ठीक समझा। मेरे इतने बड़े कलंक के बावजूद आप लोग अगर मुझे न छोड़े तो इसे मैं अपना परम भाग्य ही मानूंगा। और यदि छोड़ो तो यह दंड सिर झुकाकर स्वीकार करूंगा।'

अब की वह आंधी नहीं, गुंजन-सा हुआ।

वह गुंजन धीरे-धीरे स्पष्ट हो उठा—'इसमें लेकिन तुम्हारा क्या कलंक है?'

'है क्यों नहीं? अपने अंत:पुर में उसकी मैं रक्षा नहीं कर सका, मेरी यह असमर्थता ही मेरा कलंक है। मेरा अपराध है। मैं इसके लिए आपसे क्षमा नहीं मांगूंगा। इस अपराध की क्षमा नहीं है। सिर्फ आप सबके स्नेह-प्यार के आगे मैं हाथ बांधकर यह प्रार्थना करता हूं कि इसके बाद आप लोग मुझे इसकी जो भी सजा देंगे, मैं स्वीकार करूंगा, केवल आज दया करके आप लोग भोजन कीजिए।'

फिर एक बार आंधी-सी उठी।

असंतोष की? या उल्लास की?

शायद उल्लास की ही। चौकी पर खड़े नाटे विपिन लाहिड़ी की आवाज ही सिर्फ सुनने में आयी, 'अच्छा, आजभर के लिए तुम्हारी प्रार्थना मानने का ही हम निश्चय करते हैं।'

रामकाली धीरे-धीरे वहां से चले गए।

सिर ऊंचा ही किए।

१५

सवेरे नेड़ू को हाथ की लिखावट का अभ्यास करना होता है। पूरब के आंगन की धूप जब तक अमरूद के पेड के ठीक नीचे न आ जाए, तब तक उसे यह काम करते ही रहना पड़ेगा, यही उसे कहा गया है। ऋतु बदलने के हिसाब से सीमा का कुछ फर्क आता है, बहरहाल वही अमरूद के नीचे तक।

अवश्य, और एक निर्देश है।

वह है, ताड के पत्ते और दवात-कलम लेकर बैठने के समय और अभ्यास के बाद उन्हे उठाकर रखते वक्त भक्ति से मा सरस्वती को प्रणाम करना। प्रणाम और प्रार्थना का मंत्र भी बताया गया है।

देवी की प्रसन्नता-लाभ के लिए विद्या-अर्जन से ज्यादा आस्था नेड़ू को प्रार्थना पर ही है। लिहाजा 'शब्दबोध' के पन्नो को वह जल्दी ही बन्द किए देता है। उसका ज्यादा वक्त स्तुति में ही जाता है। आखें बद किए हुए भी तिरछी नजर को चालाकी से अमरूद के पेड़ की ओर टिकाए ताड़ के पत्ते की 'पोथी को कपाल से लगाए वह मत्र पढ़ रहा था—

> त्वं त्वं देवी शुभ्र वर्णे,
> रत्न सुशोभित कुडल कर्णे।
> कठे लवित गज मोती हार,
> वर दो देवी, करूं पुकार।
> जाग गले में वाणी जाग,
> जब तक जीवन, कही न भाग।

लेकिन देवी-वंदना के समय नेड़ू बात देव की सोच रहा था—सूर्यदेव की।

लेकिन ताज्जुब है! निर्दयी सूरज देवता को हृदय से मामा कहने के बावजूद भानजे के प्रति कोई ममता उनकी नही देख पाता है नेड़ू। अमरूद के पेड़ के नीचे आने की जैसे उन्हे कोई गरज ही नही। गोकि उनकी ज़रा भी कृपादृष्टि हो, तो दृष्टिमात्र से नेड़ू की आज की यंत्रणा तो यहीं खत्म हो जाए। आखिर एक ही मंत्र को बार-बार कहां तक दुहराए वह?

तो भी नेड़ू कपाल से कलम और ताड़ के पत्ते को नही हटाता, उसी ढंग से लगाए ही रहता है।

'उंह, खूब तो विद्या हो रही है। अहा, बलि जाऊं, भक्ति कितनी है?' सत्यवती की पैनी आवाज़ गूज उठी।

नेड़ू का कलेजा काप उठा।

उफ़, जैसी लड़की है न यह! और जिरह इतना करती है! फिर भी

बाहर से वह सत्य को स्वीकृति नही देता। उसी तरह से आंखें बंद किए विड़-विड़ करता रह जाता है।

सत्यवती ही-ही हंसी। एक ठोकर-सी लगाकर बोली, 'उंह, खूब तो आंखें बंद कर ली हैं। अब तक क्या कर रहा था ? आंखें पिटपिटाना और अमरूद की ओर नजर !'

'सत्य !' नेड़ू ने ताड़ के पत्ते और कलम को कपाल से हटाकर जतन से चौकी पर रख दिया और बड़ी खीज के साथ कहा—'नमस्कार के समय गड़बड़ क्यों कर रही है ?'

'नमस्कार तो तू सवेरे से ही कर रहा है। एक पहर बेला हो आयी, अभी तक नमस्कार ही चल रहा है। मैंने देखा ही नही जैसे।'

'एंह, तूने देखा है !' नेड़ू ने आगन की तरफ नजर दौड़ाई। लगता है, अब सूरज मामा सदय हुए हैं, अमरूद के ठीक नीचे उन्होंने दया-दृष्टि डाली है। उसे बल मिला। दमकते गले से बोला, 'हुं:, तब से इतना अभ्यास किया !'

'ला, देखू तो कितना किया !' और सत्य ने एक बात कर दी। अपने हाथ को सिर मे पोंछा, झट मां सरस्वती को प्रणाम किया और नेड़ू ने ताड़पत्ते के जिस गुच्छे को अभी-अभी रखा था, उसे खीच दिया।

'ऐ-ऐ, यह क्या हो रहा है ?' सिहरकर नेड़ू ने बड़े ही भयभीत स्वर मे कहा, 'तूने ताड़ के पत्ते को हाथ लगा दिया ?'

'लगा दिया तो क्या हुआ !' सत्य ने निर्भीक स्वर में कहा—'मैंने तो मा सरस्वती को प्रणाम करके हाथ लगाया है।'

'बस, प्रणाम करने से सब हो गया ? तू लड़की है न ? लड़की ताड़ के इस पत्ते मे हाथ लगाए तो क्या होता है, मालूम नही है ?'

तब तक सत्य ने नेड़ू के सवेरे के सारे किए-कराये को देखना शुरू कर दिया था। कहना फिजूल है, एक ही पन्ना सिर्फ स्याही से कलंकित हुआ था, बाकी सब-के-सब बेदाग, अकलंक थे।

'बडा तो कह रहे थे, बहुत अभ्यास किया है ! कहा है ? दवात में शायद स्याही के बदले पानी भर लिया है ? इसी से हरूफ़ नजर नही आते !'

सत्य के व्यग्य का ढग बड़ा तीखा था, बोलने के साथ-साथ वह आखो की पुतली को भरसक करीब ले आयी थी, चेहरे पर कौतुक की चमक।

इतना सहना बड़ा कठिन है।

नेड़ू ने झटका देकर अपनी संपत्ति छीन ली और बिगड़कर बोला—'अच्छा, रहने दे। मुझे विद्या न होगी तो तेरा क्या ! अपना क्या होता है, सो देख। मैं जाकर सबसे कहे देता हूं, तूने ताड़ के पत्ते को हाथ लगाया है !'

दूसरा कोई तो 'सब से कह देने' के डर से ही सकपका जाता है और समझौता

करने लग जाता है। लेकिन सत्य समझौते को तैयार नहीं। सो भीतर चाहे जो भी हो, बाहर से वह अपने को ज़रा भी विचलित नहीं दिखाती, उसी जोर के साथ बोली—'कह देगा तो कह देगा। सब कोई मेरा क्या कर लेंगे ? फांसी चढ़ा देंगे ?'

'चढ़ाते है कि नही, देख लेना। चालाकी नही चलेगी।'

'क्यों, लड़किया ताड़ के पत्ते को हाथ लगाए तो क्या होता है ? कलकत्ते में तो कितनी ही लड़कियां लिखती-पढती है।'

'हां, किसने तो कहा, लिखती-पढती हैं ! लिखे-पढ़े तो अंधी हो जाती हैं !'

'हरगिज नहीं ! झूठ है ! खूब तो जानता है तू ! जो पढती-लिखती है, सब-की-सब अंधी हो जाती है। हुं. !'

कलकत्ता नाम के अदेखे उस देश मे, जहा का नाम कभी-कभार ही सुनने में आता है, वहां वास्तव मे कोई स्त्री लिखती-पढ़ती है या नही और लिखती-पढ़ती है तो अपनी आंखें बरकरार रख सकती है या नही, इस सम्बन्ध मे नेड़ू को ठीक-ठीक कुछ मालूम नही। तो भी अपनी बात को सही बनाने की वह जी-जान से कोशिश करता है—'अभी अंधी न हों, अगले जनम में होंगी।'

'अगले जनम में ! ही-ही-ही। उनके अगले जनम को तू देख आया है। क्यों ? मैं तुझसे कह देती हूं नेड़ू, वह सब-कुछ नही होता-हवाता। विद्या तो अच्छी चीज है, विद्या से कभी पाप होता है भला !'

पढ़ने-लिखने के मामले मे अकल न खुले चाहे, कूटतर्क में नेड़ू उस्ताद है। उसने एक अचूक युक्ति लगायी—'नारायण की पूजा भी तो अच्छा काम है, मगर करती हैं लड़किया ? छू तो नही सकती। भगवान ने कह दिया है, अच्छे काम लड़के करेंगे, बुरे लड़किया, समझी ?'

'हां, भगवान ने तेरा कान पकड़कर बताया है !' सत्य झनककर बोली, 'भगवान ऐसी कानी नजर के नहीं हैं। यह सब-कुछ लड़कों ने ही गढ़ा है।'

विवाद धीमे-धीमे नही हो रहा था। आवाज से खिंचकर पुन्नू आ गयी और कौतूहल से पूछा, 'मर्दों ने क्या गढ़ा है रे ?'

सत्य ने झट गंभीर-सी होकर कहा, 'कुछ नहीं। शास्तर की बात हो रही है।'

शास्तर !

पुन्नू को थाह नही मिली।

वह सोचने लगी, यहा एकाएक शास्तर की चर्चा कैसे शुरू हो गयी ? मौका पाकर नेड़ू ने उसी 'कह दूंगा' वाले सुर में कहा, 'सत्य की हिम्मत की कहूं, पुन्नू फुआ ? उसने ताड़ के पत्ते को हाथ लगाया है और कहती है, लगाया है तो क्या हुआ ?'

'ताड़ के पत्ते को हाथ लगाया !'

यह दूसरी एक आकस्मिकता। ताड़ का पत्ता कैसा, इस बात को पुण्यवती ठीक-ठीक समझ नही सकी।

'ताड का पत्ता क्या रे ?' सत्य की ओर ताककर उसने पूछा।

उसे अवाक् करती हुई हंस उठी सत्य ! दीवाल में ठुकी कील पर से एक पंखे को उतारकर कहा—'यह रे यह ! अब देख, मेरे हाथ में कीडा पडा भी ?'

नेड़ू ने आखें गुरेरकर कहा, 'मा सरस्वती से मजाक कर रही है तू ?'

हर बार, हर बात मे सत्य जीत जाती है, नेड़ू हार जाता है। उसकी मज्जा मे जो पौरुष-बोध है, उसे काफी चोट लगती है। आज सत्य को दबाने का एक बहाना मिल जाने से उसकी खुशी का अंत नही। इसलिए मुट्ठी की उस ताकत को लापरवाही से यों ही खर्च करने को वह तैयार न था। उसे भुनाकर स्वाद लेते हुए खाना चाह रहा था।

अबकी सत्य हसी नही। खीजी। अपनी अभ्यस्त भगिमा से, भवों को सिकोडकर बोली, 'भोंदू जैसी बात मत कर, नेड़ू। मज़ाक मैं मां सरस्वती से कर रही हू कि तुझ से ? ताड के पत्ते को हाथ लगाया कि क्या तूफान मचा रहा है तू—लगता है, धरती-सरग पताल को चला गया ! अजी ज़नाब, ताड़ के पत्ते को सिर्फ़ हाथ लगाना क्या, मैं लिख भी सकती हू !'

'लिख भी सकती है !'

एक साथ ही नारी और पुरुष दोनो ही के गले से ये शब्द निकले, जैसे उन्हें सांप ने काटा हो। पुन्नू और नेड़ू दोनो ही अवाक् हो गए।

लेकिन निष्ठुर सत्य ने उनके दुखाए मन पर ही और चोट करते हुए कहा—'बेशक लिख सकती हूं, देख ले !'

सत्य ने उसी ताड़ के पत्तो मे से एक को खीच लिया। दवात में कलम को डुबाकर झट लिख दिया—'कर, फल, जल।' लिखकर उसने अदृश्य के प्रति प्रणाम किया और कहा, 'और भी बहुत लिख सकती हू !'

अवाक् हुई दशा कटने मे कुछ वक्त लगा। पुन्नू से ज्यादा चकित नेड़ू ही हुआ था। जिस कठिन काम को करने में उसे पसीना छूट जाता है, सत्य उसे इस आसानी से कर लेती है।

तो क्या मा सरस्वती ने कालिदास की तरह ही उस पर करामात कर दी !

नेड़ू सत्य के लिखे उन कई शब्दो को अवाक् होकर देखता रहा। और पुन्नू ताड़ के पत्ते से कुछ अलग होकर झुकी हुई-सी आखे फाड़कर बोली—'कहा सीखा रे, सत्य ? किसने सिखाया ?'

'सिखाने की किसे गरज़ पड़ी है। मैंने आप ही सीखा है, देख-देखकर।'

'आप ही सीखा है ? देख-देखकर !'

'और नहीं तो क्या ?'

'दवात-कलम कहा मिली ?'

'दवात-कलम कौन तो देता है !' झोक में सत्य ने अपना राज खोल दिया। बोली, 'बरगद के पत्ते का दोना बनाकर उसमें एक चीज के रस की स्याही बना ली।'

हैरान हुए दो जीवो ने धीमे से पूछा—'और पत्ता, कलम ?'

'देख, ऐसी 'हां' की हुई-सी बात मत कर, हा। अरे, दुनियाभर के ताड के पेड़ों को क्या किसी ने संदूक मे बंद कर रखा है, कि ढूढे से कही सरपत नही मिलती ?' सत्य ने पुरखिन-जैसा मुह बनाकर कहा।

पुन्नू ने अब समझा। उसने भी बुजुर्ग की तरह गाल पर हाथ रखकर कहा, 'ओ, छिप-छिपकर लिखा करती है ! धन्य है तू। किसी को खबर तक नही होने दी। कब लिखती है ?'

सत्य ने रहस्य की हंसी से मुंह को रंजित करके कहा, 'जब तुम लोग कोई नही रहती हो !'

पुन्नू ने ज़रा चिंतित-से स्वर में कहा, 'लेकिन सत्य, लिखती तो है, देखकर खुशी भी होती है, लेकिन लाख है, है तो स्त्री ही। इससे तुझे पाप नहीं लगेगा ?'

'क्यो, पाप क्यों लगेगा ?' सत्य अचानक उद्दीप्त तेज के साथ बोल उठी, 'औरतें रात-दिन झगड़ा-लड़ाई जो किया करती है, गाली-गलौज करती है, उससे पाप नहीं होता, विद्या सीखने से पाप होगा ? मैं पूछती हूं, खुद मा सरस्वती क्या स्त्री नही है ? सभी शास्त्रो से बड़ा शास्तर है चार वेद। वे वेद क्या मा सरस्वती के हाथ में नही रहते है ?'

नेड़ू की तो बोलती बंद।

. ऐसी एक अकाट्य युक्ति के सामने जैसे उसकी आखों के आगे दृष्टि का एक बहुत बड़ा फाटक खुल गया।

'सच ही तो, मां सरस्वती तो खुद ही स्त्री है !'

इतना बड़ा स्पष्ट सत्य आज तक उसकी नज़र से बाहर कैसे था ? और सबकी भूली हुई इस स्पष्ट बात को सत्यवती ने ही कैसे जान लिया ?

'चल, घाट चले, पुन्नू !'

बातचीत के सिलसिले को यही खत्म करके सत्यवती उठ खड़ी हुई—और देर की तो खाने की बुलाहट होने लगेगी, ठीक से नहाना ही न होगा।

बात गलत नही। पानी में उतर जाने पर इच्छा ही नही मिटती उनकी। तैरते-तैरते हाफ नही उठने तक उनका ठीक से नहाना नहीं होता।

'चल !' कहकर पुन्नू खड़ी हो गयी। लेकिन नेड़ू से आखों ही आंखों कुछ

इशारा हो गया।

कोई बुरी भावना नही थी—पोल खोल देने वाली बात भी न थी। सत्य के जौहर की सुनाकर सबको चौंका देने का ही खयाल था।

सत्य आखिर उन्हीं में से एक है न !

उसकी महिमा तो उन्ही सब की महिमा है।

लेकिन अच्छे अभिप्राय का फल क्या सदा मीठा होता है ? नही होता।

नेड़ू ने इस सत्य का उद्घाटन जो किया तो यह सत्य फिर एक बार प्रमाणित हो गया।

अंदर महल में हलचल-सी मच गयी।

छिपे तौर पर बेटी को रामकाली के प्रश्रय देने की आलोचना होने लगी और जाहिरा सत्य के साहस पर छिः-छिः होने लगी।

सोच क्या रही है वह, ससुराल नही जाना है ?

'नही जाना है।' तीखे स्वर से शिवजाया बोली—'ससुरों को पता चल जाएगा तो वहीं से ऐसी बहू को प्रणाम करेंगे वे।'

मोक्षदा ने कहा, 'हरामजादी ने जब जटा पर पद्य लिखा था, मुझे तभी शुबहा हुआ था। अब समझी !'

रासू की मा कभी किसी बात मे नही रहती—कामों का पहाड़ उठाए ही दिन काटती है। लेकिन आज के इस अपराध का आविष्कारक क्या तो खुद उसी का बेटा है, इसलिए बोलने का कुछ दावा महसूस करती है वह।

धीरे-धीरे बोली—'एक तो घर की एक बहू ने जो नहीं सो करके घरभर के मुह मे कालिख पोत, सबों की निगाह मे नीचा दिखाया, और घर की लड़किया भी अगर मनमानी करती रहे···'

रासू की मा ने बात पूरी नही की, केवल इशारे से यही बताया कि पातक दोनों समान ही हैं।

भुवनेश्वरी काठ की मारी-सी ताकती रही।

अकेली काशीश्वरी ही चुप थीं। उन्हें कहने का मुह नही था।

आलोचना की गर्मी जब ज़रा ठंडी पड़ी तो दीनतारिणी ने लगभग निहोरा के सुर में कहा, 'जाने भी दो बाबा, इस पर ज्यादा बातचीत की जरूरत नहीं, संझली ननदजी। कहावत है, बात कानो से चलती है। किस सूत्र से यह कुटुंबों के कानों जा पहुचे और इसी से कौन-सी विपत्ति आ जाए, कौन जाने। एक तो···'

एक अकल्पित संभावना-सी छोड़कर दीनतारिणी ने बात खत्म की। काशीश्वरी के सामने उन्होंने शंकरी की बात नही उठाई।

मगर मोक्षदा फिर भी भविष्यवाणी करने से वाज नही आयी—'सो तुम जितनी ही सावधान होओ वड़ी वहू, मै यह अभी ही कहे देती हूं, इस लडकी के नसीव में अशेष दु:ख है। हम-तुम न हो तो आज छिपा-पचा लेगे, लेकिन उसके साथ जो गिरस्ती करेंगे, उन्हें क्या इसकी करतूतें मालूम होने से रहेंगी ? और हो भी क्यों नही, वाप डांट-फटकार नही करे तो लड़के-लड़कियां रास्ते पर आती है ?'

अकूल में कूल पाकर दीनतारिणी ने मुरझाई-सी होकर कहा, 'खैर, तुम रामकाली को समझाकर कहना।'

'वख्शो, वड़ी वहू ! मै अपनी और हेठी नही कराना चाहती। मैं तो उन्हें कहने जाऊं और वे जनाव लड़की पर डाट-डपट की तो छोड़ो, उसे और प्रश्रय ही देंगे।'

लाचार कोई किनारा न पाकर दीनतारिणी ने भुवनेश्वरी की ही तरफ ताककर कहा, 'रामकाली का मन-मिजाज जव ज़रा ठंडा रहे, तो तुम भी तो कह सकती हो, मंझली वहू। लड़की तुम्हारी सचमुच ही स्वेच्छाचारिणी हो रही है। उसे आखिर पराए घर तो भेजना है।'

भुवनेश्वरी ने अवश्य इस वात का जवाव नही दिया। देना संभव भी नहीं था उसके लिए। गरचे उसकी वेटी का व्याह हो चुका है, फिर भी गुरुजनों के सामने पति का जिक्र ही तो शर्मनाक है। भुवनेश्वरी रामकाली से वात करती है, सास ने शर्म की ऐसी वात लोगों के सामने कही भी कैसे ! छि:-छि: !

लाज के प्रतिकार का और कोई उपाय न देख भुवनेश्वरी ने घूंघट को और ज़रा खीचकर सिर झुका लिया।

भुवनेश्वरी सिर ऊंचा भी कव कर सकती है।

पति से डर जो वहुत लगता है।

लेकिन लड़की के भविष्य की सोच वड़ी चिंता होती है। सव यही कहती हैं हरदम—'यह लड़की ससुराल में नही वस सकेगी।'

मुजरिम एक ही, विचारक भी एक ही, सिर्फ कटघरा और अभियोग करने वाला अलग।

लेकिन मुजरिम को भुवनेश्वरी ने पहले ही हाजिर नही किया। उसे डांट-डपटकर रोक रखा और वड़े-वड़े कौशल से, वड़ी दुस्साहसिक चेष्टा से दिन में ही एक वार पति से मिलने का मौका उसने ढूढ निकाला। दोपहर मे रामकाली जव आराम कर रहे थे, तो वह घूंघट काढ़कर नज़दीक मे आकर खड़ी हुई।

रामकाली ज़रा ताज्जुव में पड़कर वोले, 'कुछ कहना है ?'

पति के स्नेह-कोमल स्वर से उसकी आंखों में आंसू आ गए। वह जवाव

नहीं दे पायी । सिर्फ घूंघट को थोड़ा-सा सरका दिया ।

'क्या बात है ?' रामकाली ने कौतुक से पूछा—'मायके जाने की इच्छा हो रही है ?'

'नहीं !' रुंधे गले से भुवनेश्वरी सिर हिलाकर बोली, 'सत्य की कह रही हूं !'

'सत्य की ? क्यों ?' रामकाली जरा मुसकराए, 'फिर कौन-सा महा अपराध कर बैठी वह ?'

'हर घड़ी कर ही तो रही है !' मान के आवेग से उसकी बातों में ज़ोर आया—'तुम तो हंसकर ही टाल देते हो, बात मुझे सुननी पड़ती है ।'

'फिजूल की बातों को लेना नहीं चाहिए, मंझली !'

'फिज़ूल की ?' बिटिया ने किया क्या है, वह सुनो तो···'

'क्या किया है ?'

'लिखा है !'

'लिखा है ? क्या लिखा है ?'

'सो नहीं जानती मैं । नेड़ू के ताड़ के पत्ते में क्या सब तो लिखा है । और ढिठाई के साथ यह भी कहा है, और भी बहुत कुछ लिख सकती है । हिम्मत देखो, बगीचे से ताड़ का पत्ता चुनकर, सरपत लाकर जाने काहे की स्याही बनाकर लिखना सीख रही है ।'

रामकाली चमत्कृत हुए बिना न रह सके । बोले, 'अच्छा ! तो गुरुजी नेड़ू ही है क्या ?'

'नेड़ू ? नेड़ू ने तो शायद यह कहा है कि सात जनम कोशिश करके भी वह वैसा हरूफ नहीं लिख सकेगा ।'

'अच्छा ! उसे एक बार बुलाओ तो ।'

मुजरिम बगल के कमरे में ही थी, आंखें तरेरकर भुवनेश्वरी उसे वहां बिठला आयी थी ।

भुवनेश्वरी को यह भरोसा नहीं था कि वह पति को ज्यादा दुश्चिंतित कर सकी । इसलिए वैसी कड़ी सजा सत्य को मिलेगी भी ? और मामूली सजा से कुछ होने-हवाने का नहीं, क्योंकि सत्य बिलकुल अड़ी हुई है । सो पति को जरा उभाड़ने की गरज से बोली—'खूब डांट-फटकार देना । उसने सिर्फ हिमाकत ही नहीं की, अंट-शंट बकवास भी कर रही है । कहती है, कलकत्ते में आजकल बहुतेरी लड़कियां लिख-पढ़ रही हैं, उनकी आंखें तो अंधी नहीं हो रही हैं, विद्या की सरस्वती तो स्वयं स्त्री हैं, यह सब तर्क ! बेटी को जरा ठीक से डांट देना समझे ?'

अब की ओर भुवनेश्वरी के गले से विनती का भाव फूट पड़ा ।

जाकर बेटी को बगल के कमरे से इशारे से बुलाया । पति के सामने तो गला नहीं खोल सकती ।

सत्य आयी । सिर झुकाए खड़ी हो गयी ।

कठघरे मे खड़े होने का यही तरीका है उसका । जवाब देने के समय सिर उठाती है ।

भुवनेश्वरी को उम्मीद थी कि रामकाली कुछ तो डाट-डपट करेंगे । लेकिन उन्होने उसे निराश कर दिया । निर्विकार की नाई सहज-भाव से कहा, 'सुना तुमने लिखना सीखा है ?'

सत्यवती का चेहरा अवश्य कुछ फीका-सा पड़ा ।

'क्या लिखा है, देखू ?'

अस्फुट स्वर में सत्य ने जो जवाब दिया, उसका मतलब यह कि कमूर के बाद उस कमूर के चिह्न के बारे में उसे कोई पता नहीं । वह नेड़ू जानता है ।

'अच्छा, ठीक है । फिर से लिख सकती हो ?'

सत्यवती ने नजर उठाकर देखा ।

बाप की आखों में रुद्ररोष का चिह्न तो नहीं है ? लगता है, उतने नाराज नही हुए है । उसने हामी भरी ।

'अच्छा, लिखो तो !'

हाथ बढ़ाकर चौकी के पास रखी दवात-कलम और कागज को खीचकर रामकाली ने कहा, 'लिखो ! जो सीखा है, लिखो ।'

हाय राम ! यह तो हित का विपरीत हो गया ।

डाट तो भाड़ में गई, उलटे बेटी को कागज-कलम दे रहे हैं ।

भुवनेश्वरी रोये कि धड़कन रोके नाटक के अंतिम दृश्य की प्रतीक्षा करे ?

यह भी हो सकता है कि वह नेड़ू के कहे को जांच रहे हों ।

लेकिन दईमारी लड़की तो खुद कबूल भी कर रही है !

इस बीच गरदन झुकाकर सत्य ने दो-तीन शब्द लिख भी लिए । ज्यादा दबाकर लिखने की वजह से ताड़ के पत्ते में थोड़ी-बहुत खरोंच आएी, लेकिन लिखना हुआ ।

रामकाली ने उसे उलट-पलटकर देखा और कोई राय न देकर शांत भाव से कहा, 'कलकत्ते में बहुतेरी लड़किया लिख-पढ़ रही हैं, यह बात तुमसे किसने कही ?'

'छोटी मामी ने !'

'अच्छा ! उन्हें कहा से···अरे हां, वे तो कलकत्ता की हैं ! है न ?'

यह प्रश्न भुवनेश्वरी से था । लेकिन भुवनेश्वरी तो उनकी बड़ी लड़की के

सामने गला खोलकर बोल नहीं सकती—गरदन टेढ़ी करके हामी भरी।

'वे लिखना-पढना जानती है ? तुम्हारी मामी ?'

'थोड़ा-बहुत जानती है। ज्यादा सीखने का मौका कहां मिला बेचारी को ! यही कह रही थी, एक मेम ने देशी स्कूल खोला है, एक साहब ने विलायती स्कूल जारी किया है। कलकत्ता की औरतें अब मूर्ख नहीं रहेंगी।'

'लड़कियों के लिखने-पढ़ने से लाभ क्या है ? वे क्या मुंशी-गुमाश्ता बनेंगी ?' रामकाली ने हंसते हुए बेटी से पूछा।

अब सत्यवती के गर्म होने की बारी थी।

वह सब कुछ बर्दाश्त कर सकती है, व्यंग्य नही सह सकती।

बोली—'मुशी-गुमाश्ता क्यों बनने जाएंगी ? लिख-पढकर खुद रामायण, महाभारत, पुराण, और-और किताबें तो पढ सकेंगी ? कथावाचकजी कब कहा कथा कहेंगे, इसका तो इंतजार नही करना पड़ेगा।'

बेटी को थोडा और उखाड़ने की नीयत से रामकाली ने कहा—'औरतों को इतना वेद-पुराण जानने की जरूरत भी क्या है ?'

अबकी सत्यवती स्थान-पात्र सब भुला बैठी। अपना रूप धारण करके बोली, 'ज़रूरत की ही जब बात है तो औरतों के जन्म लेने की ही क्या ज़रूरत है ? यह तो कहो, बाबूजी !'

लड़की के इस दुस्साहस से भुवनेश्वरी का कलेजा धड़क उठा। इतने बड़े आदमी के मुह पर ऐसा जवाब !

उहूं, इस लड़की की हरगिज ससुराल में गुजर नही होगी। लेकिन भुवनेश्वरी को चौकाते हुए रामकाली सहसा हस उठे—ज़ोर से ही हंसे। उसके बाद बेटी की ओर देखते हुए बोले, 'तुम लिखना-पढ़ना चाहती हो ?'

'चाहती तो हू, मौका कहा मिलता है ?'

'यदि मौका मिले ?'

'तो मैं रात-दिन लिखा-पढ़ा करूंगी।'

'उतना नहीं करना होगा। नियमित रूप से कुछ देर पढ़ने से ही काम चल जाएगा। कल से दोपहर को इसी समय मेरे पास पढ़ा करना।'

'पढ़ा करना !' भुवनेश्वरी से बोले बिना नहीं रहा गया।

'हां, पढ़ेगी। सही स्याही और कलम से लिखा करेगी !'

'बाबूजी !'

सत्य के मुह से सिर्फ़ दो अक्षरों का यही शब्द निकला ! और भुवनेश्वरी की आखों से सावन जारी हो गया।

काव्य-पाठ की बैठक।

ऋतुरंग काव्य ! वर्षाखण्ड को समाप्त करके प्रकृति देवी ने अभी-अभी शरतखण्ड की जिल्द उलटी है, अंदर के श्लोकों का पढ़ना अभी बाकी है। कास के वनों में अभी भी सफेद चामर का बिजना नहीं डोला है। सिर्फ़ सुबह की हवा में अकारण पुलक का कंपन जागा है, आकाश की नीलिमा में आईने की स्वच्छता आयी है, चिड़ियों की बोली मे उमंग का तीखापन है। अनंतकाल से देवी एक ही काव्य को दुहराती आयी हैं, अंतिम पंक्ति के बाद फिर पहली पंक्ति—फिर भी वह काव्य पुराना नहीं पड़ा, पुराना नही पड़ता। अनंतकाल के मनुष्य के लिए वह आशा की वाणी, प्रत्याशा का स्वप्न, उत्साह का सुर ढोए लिए आता है।

'बंगाल के गांव-गांव में उत्साह का ज्वार जागा है। प्रतीक्षा का उत्साह।'

'मां दुर्गा का आगमन हो रहा है।'

'मा अपने मैके जा रही है। कैलास से मर्त्यलोक में।' यह कोई कहानी नही, बंगाल के मन के विश्वास की बात है। साल के शुरू में मा माता और कन्या के रूप का समन्वय करके माटी की मा की गोद में आती है, आकर सुख-दु:ख की बाते करती हैं, विदाई की घड़ी में आंसू बहाती है—ये बातें क्या अविश्वास करने की है ? देवता के साथ आत्मीयता का नाता जोड़कर, देवता को घर का सदस्य बनाकर ही तो बंगाली की गिरस्ती है। इसीलिए तो बंगालिनें शिव का ब्याह रचाती हैं, इतु-मनसा[१] को सधौरी देती हैं, भादू को लाड़ करती है और पार्वती को ससुराल भेजते हुए आखों से सावन-भादों बरसाती है। और सब तो फिर भी देवी-देवता है, उमा तो बिलकुल घर की लड़की है। महिमा में उनके हजार नाम हो सकते हैं, पर असली नाम तो यह उमा ही है। मजीरे की खन-खन में शरतकाल आते ही वैष्णव भिखारी इस बात की याद दिला दिया करते हैं—

'आओ मां उमा शशि,
निरखे मुख शशि,
दिवानिशि है इसी आशा में।'

शायद हो कि बस्ती के किसी एक ही सौभाग्यशाली के घर कन्यारूपी जगन्माता का पदार्पण होगा, लेकिन गाव के घर-घर अतर्वीणा में आगमनी का सुर बज रहा है।

---

१. इतु—लक्ष्मी का एक रूप। मनसा—सांपों की देवी।

इस बार क्वार के आरंभ में ही पूजा है, इसलिए भादों के आते ही तैयारी की धूम पड़ गयी। गिरस्ती के रोजमर्रा के कामों के अलावा हर कुछ ही इसी महीनेभर के अंदर कर-करा लेना है। पूजा के दिनों तो कोई 'मूढ़ी' नहीं भूजेंगी, चूड़ा नही कूटेगी, मिट्टी के घर की दीवारें नही लीपेगी। यहा तक कि दीए की बातिया, सुपारी काटना, नारियल की काठियां छीलना—देवीपक्ष के पहले ही सब कर लेना पड़ेगा। फिर कोजागरी के बाद कथरी सीना और पुरानी यादों की जुगाली।

भादों में दुर्गापूजा की तैयारी ही नहीं, घर की औरतो को वर्षा के बाद बहुतेरे काम आ पडते हैं। सीलभरे बिस्तर-कपड़े, संदूक मे भरे ऊनी कपडे, चादर, भंडार मे रखी सालभर की बरी-तिलौरी, मसाले, अचार, दाल—सब-कुछ को भादो की धूप में सुखाना। यह कुछ कम काम है!

भुवनेश्वरी के मा नही, भौजाइयां ही गिरस्ती की मालकिनें है, कई दिनों से दोपहरभर इसी कर्मकांड में परेशान है वे। आज लड्डुओं पर जुटी हैं। मूग, नारियल के लड्डुए हांड़ी भरकर रख दें तो महीनाभर के लिए निश्चित। पूजा के दिनों बच्चों की पत्तल पर अच्छा-वच्छा कुछ देना भी चाहिए। भुवनेश्वरी की बड़ी भाभी निमाननी जल्दी-जल्दी नारियल कूट रही थी और छोटी भाभी सुकुमारी जोते में मूग दल रही थी कि दरवाजे की सिकडी झनकी।

निमाननी ने दबी जबान से कहा, 'लो, काम के वक्त अब कौन आ गयी। छोटी, खोल दो दरवाजा।'

सुकुमारी का मनोभाव अवश्य अपनी जेठानी जैसा नही है—एक ही-सा काम करते-करते ज़रा बाहर की हवा लगाना उसे अच्छा लगता है। निमाननी को गपशप से वास्ता नहीं, मुंह सिए काम ही काम।

दरवाजा खोलते ही सुकुमारी उमंग से चीख उठी—'हाय मेरी मां, आज सूरज क्या पच्छिम में उगा है या कि जिसका मुंह कभी नही देखा, उसी का मुह देखकर जगी हूं?'

सुकुमारी की ऐसी बात से निमाननी का खीजा हुआ-सा चेहरा भी कौतूहल से सरस हो उठा। उसने गरदन बढ़ाकर कहा, 'कौन आयी है? ऐसी सरस बातें किससे हो रही हैं?'

'अरे, डूमर का फूल ननद जी आयी हैं!' और सुकुमारी उसके लिए पाव धोने का पानी लाने चली गयी। घूंघट हटाकर भुवनेश्वरी धूलभरे पाव लटका-कर बरामदे में बैठ गयी। भादों की तीखी धूप से उसका गोरा मुह टकटक लाल हो उठा था। घूंघट काढ़े हुए थी, इसलिए बालों की जड़ और गले में पसीना आ गया था।

ऐसी धूप मे भुवनेश्वरी का पैदल आना वास्तव मे सोचा ही नहीं जा

सकता। एक तो आना ही कम होता है। यदि कभी आना चाहती है तो रामकाली पालकी से भेज देते हैं। इसके लिए गरचे घर की और-और महिलाएं ताना-मेहना सुनाने से बाज नहीं आतीं, पड़ोस की हमजोली बहुएं बादशाह की बेगम कहती हैं, फिर भी रामकाली के हिसाब से चलना ही पड़ता है।

लेकिन आज क्या माजरा है?

पांव धोने का पानी और अंगोछा बढ़ाते हुए सुकुमारी एक झालरदार पंखा लिए ननद को झलने लगी।

निमाननी ने पूछा, 'किसके साथ आयी?'

किंतु भुवनेश्वरी ने इस बात का जवाब देने से पहले पूछा, 'पंखे में यह झालर किसने लगाया है, भाभी?'

'और किसने? छोटी ने!' निमाननी ने मुंह बिदकाकर कहा, 'जो रात-दिन गिरस्ती के सारे-कुछ में बहार ला रही है!'

सुकुमारी का मुह फीका पड़ गया। भुवनेश्वरी झट बोल उठी, 'बहार लाना तो अच्छा ही है। कैसा खासा लग रहा है!'

'लगे खासा!' निमाननी ने फिर एक बार मुंह बिदकाकर कहा, 'अभी तक गाय दुहाना तो सीखा नहीं, सूप नहीं फटक सकी। ढेंकी-घर में इनका जो मजा है, देखो तो समझो। न तो पाव चला सकती है, न हाथ। टोले-मुहल्ले से किसी की खुशामद करके काम कराना पड़ता है। असल कामों को भाड़ मे डालकर, भंडार के बर्तनों में चित्रकारी करके, छीके की डोरी मे कौड़ियां गूथकर, पंखे में झालर लगाकर गिरस्ती के स्वर्ग की सीढ़ी होगी!'

भुवनेश्वरी ने देखा, यह तो हित का विपरीत हो रहा है। इसी सिलसिले में निमाननी और कहा जा पहुंचे, कौन जाने। तब तो जिस काम के लिए आयी है, वही गुड़-गोबर हो जाएगा। आज तो उसे छोटी भाभी से ही काम है। भुवनेश्वरी तो भी एक गलत ही चाल चल पड़ी। चल इसलिए पड़ी कि नीचेवालों की निंदा-शिकायत करके ऊपरवालों को खुश रखने का जो चिरंतन कौशल है, वह कौशल उसे ठीक-ठीक नहीं आता। अपने घर में तो इसी डर से वह सहज में बात ही नही करती। घूघट और चुप्पी को ही सबसे बड़ा रक्षक समझती है। लेकिन यह तो उसके बाप का घर है, इसीलिए हिम्मत करके बोली, 'क्यों भई, मजे में तो दाल दल रही है, देखती हू। मूढ़ी भी भून लेती है। इतने बड़े शहर की लड़की है, और कितना कर सकती है?'

'बजा बात है!' निमाननी ने एक गरम नि:श्वास छोडते हुए कहा, 'शहर को कभी आखों नही देखा, उसकी हकीकत भी नहीं जानती। घर-गिरस्ती को ही जानती हूं और यह जानती हूं कि स्त्री यदि इसमे हारती है तो नाक कटती है शर्म से।'''बैठो, जरा गुड़ का शरबत बना लाऊं, धूप मे आयी हो।'

गर्मियों में घर में कुछ न हो, पानी में गुड घोलकर नीबू का रस मिलाकर पीने का रिवाज इधर है, निमाननी के दिमाग मे वही सहज तरीका आया। लेकिन सुकुमारी को इस गुड़ के शरवत से वड़ी वितृष्णा है। इसलिए ननद की खातिर वह जेठानी से कह वैठी, 'दीदी, डाव तो घर में है ! मिसरी-नारियल का डाव''

डाव है, निमाननी को याद नहीं था, लेकिन याद दिला देने से वह वहुत अप्रतिभ हो गयी। क्या पता, ननद ने कही यह न सोच लिया हो, जानकर ही डाव की वात भूली रही। यह छोटी वह देखने मे भली-भोली है तो क्या, भीतर से काइयां है। परंतु ऐसे मे निमाननी को गुस्सा पीकर हंसना ही पडा, 'लो, देखो, भाग्य से तूने याद दिलाई, छोटी। मेरा मन आजकल ऐसा ही भुलक्कड़ हो गया है, ननद जी ! तुम्हारे उनसे स्मरणशक्ति की कोई दवा खानी पड़ेगी। जा छोटी, दो डाव काटकर ले आ।'

'अहा, नाहक ही परेशान क्यों हो रही हो, भाभी ?' भुवनेश्वरी ने खामखा गला उतारकर कहा, 'मैं एक जरूरी काम से आयी हूं, तुरत लौट जाना है।'

'हाय राम, तुरत क्या लौटना ! ऐसा किस काम से आयी ? आयी किसके साथ और जाओगी ही किसके साथ ? अकेली ?'

'अकेली ?' भुवनेश्वरी हंस उठी—'वह अव इस ढांचे से नहीं होगा। आयी फुआ-सास के साथ। दरवाजे तक पहुचाकर गयी है, वापसी मे साथ ले जाएंगी। चुपचाप निकल आयी हूं। किसी को मालूम नही है।'

'मेहमान जी को ?' निमाननी मजाक की हंसी हसी।

मेहमान की वात उठते ही भुवनेश्वरी ने घूघट को जरा खीच लिया। कहा, 'वह तो रोगी को देखने कही और गए है। और नही तो इतना चौड़ा कलेजा है ! निहायत जरूरी पड़ गया, जभी आयी। फुआ-सास अपनी सहेली के यहां आ रही थीं। उनकी खुशामद की, उसी रास्ते से तो जाएंगी, फुआ जी ! यो इस वात मे भली है वेचारी, कोई शरण ले तो उसे अपनी छाती विछाकर जोगती है।'

'लेकिन काम क्या है ?'

अव भुवनेश्वरी सकपका गयी, निमाननी के सामने काम की वात वताना ठीक होगा या नही, अब यह ख़याल आया। दरअसल वह एक टुकड़ा कागज लेकर सुकुमारी के पास आयी है, जिस कागज की आड़ी-टेढी लकीरे एक दुर्बोध्य नजर से आज कई दिनो से उसकी ओर ताक रही हैं।

सत्यवती की लिखावट वाला कागज़ का एक टुकड़ा। उस कागज ने भुवनेश्वरी को सोच मे डाल दिया है। घर के एक कोने मे गरदन झुकाकर सत्यवती लिख रही थी, एकाएक शायद यह खवर मिली कि पूजा के दालान

में मूर्ति बनाने वाला आया है और वह नेड़ू, पुन्नू आदि के साथ दौड़ पड़ी, कागज को चौकी पर बिछी शीतलपाटी के नीचे छिपा गयी। कौतूहल से शीतलपाटी उठाकर भुवनेश्वरी ने यह देखना चाहा कि सत्य के अक्षर कैसे हैं, और वह दंग रह गयी, बड़े-बड़े हरूफों में पद्य जैसा यह क्या लिख रही थी वह ?

नकल कर रही थी ?

नकल करती होती तो सामने कोई किताब कहा खुली थी ? यह दईमारी लड़की खुद ही पयार लिख रही है क्या ? डर के मारे कलेजे का लहू बर्फ हो गया। किसे दिखाकर इस रहस्य का समाधान होगा ?

रामकाली से बड़ा डर लगता है।

रासू से कहो तो इस कान-उस कान होने का खतरा। इसके सिवा घर में दूसरे जो लोग लिखना-पढ़ना जानते है, वे जेठ या ससुर होते है। कोई उपाय नहीं समझ में आ रहा था। उसी सिलसिले में सुकुमारी की याद आयी।

सुकुमारी पढना जानती है।

उस क़ागज को खिसकाकर वह दो-तीन दिन से सुकुमारी के पास आने का मौका ढूढ रही थी। तिरछी नजर से उसने देखा भी कि सत्य शीतलपाटी को उलट-पलटकर खोज-ढूढ कर रही है और आखिर 'धत्तेरे की' कहकर लिखने बैठ गयी फिर से। उस कागज मे फिर किस रहस्य की लकीरें सत्य ने खीची, यह भुवनेश्वरी को मालूम नही। पूछो, तो सत्य बिगड़ खडी होता है। घर के लोगों के मारे एकात में घड़ीभर बैठने का उपाय भी नही, साफ शब्दो में यह कहते उसे हिचक नहीं।

इसलिए कागज़ के इस टुकड़े का भरोसा।

सिर गड़ाकर सत्य इतना क्या लिखती रहती है, यह जानने के लिए मा का मन नाना कारणो से व्याकुल होता है—व्याकुल होता है कौतूहल से, आशंका से।

सत्य को ससुराल जो जाना है !

काश, सत्य लड़की के बजाय भुवनेश्वरी का लड़का होती। बाप के ही योग्य होती। लेकिन भुवनेश्वरी के नसीब मे 'एक तरकारी, नमक से ज़हर'। एक सतान, वह भी लड़की।

'क्यो ननदजी, बोलती बंद !'

निमानन्नी अवाक् थी। आखिर इतनी कुठा कैसी ?

ननद कुछ ग़रीब नही, कि यह सोचे, भाभी कुछ उधार के लिए आयी है।

आखिर थूक घोटकर कहना ही पड़ा भुवनेश्वरी को—'छोटी के पास आयी

हूं। एक कागज़ पढ़वाना है।'

'कागज़!' निमाननी आसमान से गिर पड़ी—'कागज़ कैसा? कोई दस्तावेज़?'

'नहीं-नहीं, दस्तावेज़ कहा। वह सब कहां पाऊंगी मैं? यह···एक चिट्ठी-सा है।'

'चिट्ठी-सा!' वह कौन-सी चीज़? और उसे पढ़ाने के लिए घर भर में कोई मर्द-सूरत नहीं मिली कि सात टोला लांघकर एक औरत से पढ़ाने आयी हो? कोई गुप्त बात है, क्यों?'

सुकुमारी डाब काटने गयी थी। असहाय की नाईं भुवनेश्वरी ने एक बार इधर-उधर ताक लिया और एकाएक दुविधा को झाड़ फेंककर बोली, 'तुम भी कैसी बात करती हो बड़ी, गुप्त बात क्या होगी? सत्य का लिखा छोटा-सा कागज। सोचा, आठों पहर बैठी क्या लिखती रहती है, ज़रा जान तो लू। घर में किसी से कहो तो जहन्नुम में भेजेगा उसे!'

निमाननी को यह खबर लग चुकी थी कि सत्य लिख-पढ़ रही है। फिर भी अजान का भान किए बोली, 'कहती क्या हो ननदजी, सत्य भी क्या अपनी छोटी मामी जैसा लिख-पढ़ रही है? होते-होते हो क्या गया यह? मैं पूछती हूं, बेटी तुम्हारी टाई बांधे कचहरी जाएगी? आखिर सभी तो तुम्हारे भाई जैसे भले नहीं हैं, कि जो चाहो, चल जाए। उसके ससुर को पता लग जाए तो?'

'करूं भी तो क्या करूं बड़ी, अपने ननदोई को तो जानती ही हो कि कैसे ज़िद्दी हैं? बेटी ने कहा, पढ़ूंगी, तो पढ़ो! बेटी आकाश का चांद मांगे, तो वही तोड़ लाने को चल देंगे, ऐसे हैं! जभी तो सोचा, देखूं तो सही, बैठी-बैठी क्या लिखा करती है! बचपना है न!'

सुकुमारी पत्थर के एक बड़े-से कटोरे में डाब का पानी ले आयी।

'हाय राम, इतना? नहीं छोटी, इतना नहीं पी सकूंगी। तुम थोड़ा-सा ढाल लो।' भुवनेश्वरी ने कहा।

''अरे, पी भी लो, धूप में आयी हो।'

लाचारी सुकुमारी को थोड़ा-सा ढाल लेना पड़ा। इसी बीच माजरे को मामूली बनाने की युक्ति सोच ली भुवनेश्वरी ने। डाब के पानी में चुसकी लगाते हुए उसने झट बाएं हाथ की मुट्ठी से कागज़ के टुकड़े को बढ़ा दिया—'विद्यावती बहू, लो! ज़रा पढ़ो तो इसे! हम सब तो आंखें होते हुए भी अंधी हैं।'

'जनम-जनम हम अंधी ही रहे, बाबा···' निमाननी ज़हरीले स्वर से बोली, 'जिस जाति के दस हाथ के कपड़े में भी पिछुआ नहीं है, उसे कान-आंख फूटने

की ऐसी जरूरत ही क्या है ?' मुह से जो कहे, लेकिन उसे लगा, इस चीज में कही कोई रहस्य है।

कागज को उलट-पुलटकर सुकुमारी ने कहा, 'यह क्या है ?'

'क्या है, सो मैं क्यों कहूं ? तुम बताओ !' भुवनेश्वरी कौतुक की हंसी हंसी।

'त्रिपदी छंद में एक तो देवी की वंदना है। किसकी लिखी है ? हाथ की लिखावट तो बड़ी अच्छी है !'

'त्रिपदी छंद तो भुवनेश्वरी नही जानती, हां, देवी-वंदना का मतलब समझती है। इसलिए भुवनेश्वरी के कलेजे पर से एक बोझ उतर गया। यानी, चीज कोई अपराध की नही है।

'पढ़ो तो सुनें !'

जरा शंकित नजर से सुकुमारी ने जिठानी की तरफ ताका। निमाननी के सामने पढ़े ? जाने वह इसे किस रोशनी मे ले। लेकिन निमानती ने ही अभय दिया, 'लो, पढो ही। बहरे, काने, अंधे को थोड़ा ज्ञान दो।'

सो खांस-खूंसकर थोड़ा आगा-पीछा करके सुकुमारी पढ़ने लगी—

'आओ मां जननी, दुर्गे विनयनी
आओ आओ शिवजाया।
संतान के घर, आओ कृपा कर
महेश्वरी महामाया।
पूरा सालभर, सूना पड़ा घर
दुःख में डूबी पड़ी हूं।
रात और दिन कटे घड़ी गिन
देखती राह'''

'हाय राम, यह क्या ! अंत ही नही है !'—सुकुमारी ने अवाक् होकर कहा—'यह स्तोत्र कहां मिला, ननदजी ?'

'अरे, पूछो मत !' कुठा दवाने के लिए पंखे को उठाकर जोर-जोर से झलते हुए भुवनेश्वरी ने कहा, 'यह सत्य की करनी है। लिख रही थी बैठी कि सुना, मूर्ति गढ़ने वाला आया है, ढांचा बना रहा है, बस छोड़कर दौड़ी। मैंने उठा'''

'उसने इसे उतारा कहां से ?' सुकुमारी ने कौतुक से पूछा।

भुवनेश्वरी ने कहा, 'कही से उतारा है, यह तो नही लगता—उस जलमुंही ने बेशक इसे खुद ही लिखा है।'

'तुम्हारी बात ?' सुकुमारी ने अविश्वासभरे स्वर] मे कहा—'आप क्या बनाएगी भला ? इत्ती-सी लड़की, इन बातों का मतलब जानती है ?'

'नहीं जानती हूँ, यह कैसे कहूं। वह दईमारी छिप-छिपकर अपने बाप के कविराजी शास्तर तक पढ़ा करती है।'

'वह और बात है! बने न बने, लेकर बैठ जाती है। लेकिन छंद में, तुक मिलाकर कोई स्तोत्र बना लेना आसान बात है?'

छोटी बहू के संदेह से भुवनेश्वरी थोड़ा सकपकाई, लेकिन वह घिरी घटा निमाननी ने उड़ा दी, जो अब तक खुद ही चेहरे पर घटा घेरे ननद की तरफ ताके हुई थी। उसने हाथ चमकाकर कहा, 'इसमे ताज्जुब की कौन-सी बात है, छोटी? ननदजी को कष्ट होगा, इसलिए छिपा-छुपकर कहना। नहीं तो वह लड़की कुछ कम है क्या? जटा के नाम पर उसने बहुत दिन पहले पद्य नहीं बनाया था? हां, यह देवी-दुर्गा के नाम पर बनाया है! लेकिन चिंता की बात है। उसके बाप का दबदबा है। हम लोग मुंह मे ताला डाले है, लेकिन उसकी ससुरालवाले तो न मानेंगे! उन्हे···'

बात खत्म न हो पायी। खुले दरवाजे के सामने मोक्षदा की अस्त-व्यस्त मूर्ति दिखायी दी।··· 'मझली बहू, चलो, जल्दी चलो, वहा और एक मुसीबत आयी है।'

'मुसीबत!'

'कैसी मुसीबत!'

भुवनेश्वरी की बोलती बंद। हा किए ताकती रही। सुकुमारी ने तो पहले ही घूघट काढ लिया था। हा, निमाननी की बात जुदा है। इस घर में घरनी का पद है उसका। उसने आगे बढकर कहा, 'कौन-सी मुसीबत आयी?'

'मत पूछो। सहेली के यहा गयी थी। बैठी थी कि नही बैठी थी, वह चरवाहा छोरा बेतहाशा दौडता हुआ आया! बात क्या है? तो, जल्दी चलिए, सत्य की ससुराल से आदमी आया है। वह तो गनीमत कहो कि दीदी को बता गयी थी कि सहेली के घर जा रही हूं···'

न, मोक्षदा की बात पूरी नही हो पायी। भुवनेश्वरी जोर से रो पड़ी।

'हाय राम! रो क्यो रही हो, मंझली बहू? चलो-चलो, रुकने का समय नहीं है।'

'लेकिन जाए कौन?

भुवनेश्वरी के दोनों पाव ही नहीं, सारे लोमकूप तक अवश हो आए थे।

सत्य की ससुराल का आदमी!

लिहाजा इसमें संदेह क्या है कि सारी बातें मालूम हो चुकी हैं! नही तो बिना कोई सूचना दिए ससुराल से किसी के अचानक आ पड़ने का मतलब क्या हो सकता है? घर के भेदिए किसी विभीषण ने जाकर लगा दिया है! अब? अब क्या होगा, भुवनेश्वरी सोच नही पायी। रोने की मात्रा को और बढ़ाकर

बोली, 'फुआजी, मुझे मारकर यहीं छोड़ जाइए आप। घर तक नहीं जा सकूंगी मैं।'

मोक्षदा ने शरीर को प्राय: उधर घुमाकर परेशान-सी होकर कहा, 'अहा, घबरा क्यों रही हो, मंझली बहू ? अभी क्या घबराने का समय है ? तुरत न चल सको, थोड़ा सम्हलकर भाभी के साथ आ जाना। पाव तो मेरे भी काप रहे हैं, क्या पता, क्या खबर है। मगर जो भी हो, कर्तव्य तो नहीं छोड़ा जा सकता है ! खैर, मैं बढती हूं।'

और मोक्षदा तेज़ी से चली जाती है।

निमाननी के साथ भुवनेश्वरी जब पिछले दरवाज़े से घर के अंदर दाखिल हुई, तो घर में सन्नाटे का आलम।

गोया इसी वक्त किसी ने कोई शोक-संवाद भेजा हो !

निमाननी ने फुसफुसाकर पूछा—'घर ऐसा थमथम क्यों कर रहा है, ननदजी? कुछ अच्छा तो नहीं लग रहा है। और इस कमबख्त मन की फितरत ही बुरा सोचने की है ! कोई बुरी खबर तो नहीं है जमाई की ?'

अधमरी भुवनेश्वरी को लगभग चौदह आना किस्म मारकर निमाननी ने आगन में कदम रखकर इधर-उधर ताका।

दालान में कौन सब जाने चुपचाप बैठी थीं। घूंघट काढ़े शायद शारदा घूम-फिर रही थी। छोटे बच्चों का पता न था।

'आओ, ननदजी, आओ। नियति का किया तो सहना ही पड़ेगा। चलो, देखें कि किसे क्या हुआ है ?'

निमाननी खुद समझ सके या नहीं, यदि उसके अवचेतन मन की एक तसवीर ली जा सकती तो वहा एक प्रत्याशा की झांकी मिलती। जमाई के कुछ होने से ही मानो वह प्रत्याशा पूरी हो। ननदोई के दबदबे ने मन की उस गहराई में एक अनबुझ जलन जला रखी है, वह जलन भी ऐसा कुछ होने से थोड़ा शीतल हो।

भुवनेश्वरी को लेकिन चौकठ पार होने की हिम्मत नहीं हो रही थी। वहीं सीढ़ी पर वह बैठ पड़ी। कहा, 'मुझे साहस नहीं हो रहा है बड़ी, तुम्हीं जाकर देखो।'

'सुन लो बात ! अजी, तुम यों बैठ रहोगी तो कैसे चलेगा ? कलेजे पर भीम की गदा का भी प्रहार हो, तो सहना ही होगा !' निमाननी की आवाज़ सहानुभूति से कोमल हो आयी। 'चलो, मैं तुम्हें लिए चलती हूं।'

डर चाहे जितना ही ज़ोरों का हो, भय का आकर्षण तो उससे भी ज्यादा ज़ोरदार था ! सो भुवनेश्वरी उठ खड़ी हुई। धीरे-धीरे वह बरामदे में गयी

और दालान के कोने की तरफ की एक खिड़की से झांका।

लेकिन हुआ क्या है !

भला-बुरा जैसा तो कुछ दिखाई नही देता है ! सत्य की ससुराल से जो औरत आयी है, वह मोटी-ताज़ी है और बिल्कुल ठीक ही दीखती है।

कोई दाई होगी या नाईन। इसके सिवा और कौन आएगी ? जो भी हो, बहरहाल उसका स्वागत-सत्कार रानी जैसा हो रहा था। उसे जलपान करने को बैठाया गया था, और चारो ओर से उसे घेरकर दीनतारिणी, मोक्षदा, शिवजाया, चाची और आश्रिता-प्रतिपालिताओं का झुंड बैठा था।

सबके चेहरे पर भक्ति-विनम्रता का भाव।

और सबके सिरमौर-सी जो थी, उसके चेहरे पर गर्व की महिमा चमक रही थी। उसके सामने था ऊंचे किनारे का एक पत्थर का कटोरा, उसके बीच में मंदिर के शिखर-सा बना चूड़े का ढेर, बगल में पत्थर के दूसरे कटोरे में दही और पास ही केले के पत्ते पर एक चूर केला, चारेक गंडा-मंडा, कुछ बताशे, नारियल के लड्डू, बेसन के लड्डू, चंद्रपुली आदि का एक खासा संभार !

गर्ज कि घर में जितने प्रकार की मिठाइया थीं, सब देकर सत्य की ससुराल की नाईन को संतुष्ट करने की कोशिश की जा रही थी।

हा, नाईन ही थी।

दीनतारिणी की बात से मालूम हुआ। बड़ी खुशामद से वह कह रही थी—'नाईन-समधिन, थोडा-सा चूड़ा और दें। और समधिन ही क्यो कहू ? हिसाब से तो लड़की होती हो, लड़की ही कहूं। थोड़ा-सा चूड़ा दही मे मिलाकर और खा लो बिटिया, होगा भी कितना दही में भीगकर ? जाने किस सुबह की निकली हो। धूप मे आख-मुंह सूखकर सोंठ हो गया है।'

विह्वलता से ही शायद, भुवनेश्वरी खिड़की के सामने से हटना भूल गई थी। वह उस देवीमूर्ति और उसके सामने धरे नैवेद्य को अपलक आंखों देख रही थी। इसी बीच पीछे किसी के गले की आवाज से चौककर उसने पलटकर देखा—शारदा थी।

'यहां क्यो खडी है, मंझली चाची ?'

'यो ही ! अंदर जाने को पाव नहीं उठ रहे है। अच्छा, वह आयी किस लिए है, बड़ी बहूरानी ?

'और किसलिए ?' शारदा ने धीमे और उदास स्वर में कहा, 'बहुत बड़े मतलब से आयी है। उन लोगो ने विदाई के लिए कहलवाया है। क्वार का महीना शुरू होते ही विदा करा ले जाएगे।'

'क्वार शुरू होते ही ? कह क्या रही हो ? यही कै दिनों के बाद ?'

'कह तो रही है। पोथी-पत्तर दिखाकर बिल्कुल दिन-बिन ठीक कराके

ही कहलाया है ।'

भुवनेश्वरी ज़रा देर चुप रही। उसके जी को चीरते हुए एक सवाल उठा—'सत्य को पता चल गया है ?'

'नहीं चला है भला !'

'क्या कर रही है वह ?'

'सो तो नहीं मालूम, चाचीजी। डर के मारे घर में जा घुसी है शायद !'

'मैं यहां नहीं थी, यह बात किसी को मालूम हुई है क्या ?'

अबकी शारदा ने सचाई को छिपाया। कहा, 'पता नहीं, चाचीजी ! शायद किसी को नहीं मालूम है। इसी झमेले में सब परेशान हैं।'

सच्ची बात नहीं कही जा सकती !

क्योंकि ग़ैरहाज़िर आदमी के बारे में जिस तरह की बातें होती हैं, उसे हू-ब-हू वैसे ही कह देने से वह चुगली और फूट डालने जैसी होती हैं।

'परेशान रहे हों, तभी छुटकारा !' भुवनेश्वरी ने लंबी सांस के साथ कहा, 'लेकिन हठात् यह कैसी आफत आयी, बहूरानी ?'

बहूरानी कुछ कहे, इससे पहले ही नाईन की तेज़-तर्रार आवाज़ गूंज उठी, 'लड़की के पिता घर पर नहीं हैं, इस बहाने राय देने में आनाकानी क्यों कर रही है ? मैं कुछ आज ही तो ले नहीं जा रही हूं। इस महीने के बाकी के दिन यहां रहकर मुझे ले जाने को कहा गया है।'

१७

संसार के सारे विस्मय को क्या एक ही प्रश्न में ज़ाहिर किया जा सकता है ? उसी एक प्रश्न से संसार की सबसे अधिक असहनीय धृष्टता को धिक्कारा जा सकता है ?

और किसी के लिए संभव है या नहीं, नहीं जानती, लेकिन देखा गया कि कम से कम एक आदमी के लिए यह संभव हुआ है।

बारुईपुर की बनर्जी गृहिणी के महज़ एक ही सवाल में संसार के सारे विस्मय और सारे धिक्कार ध्वनित हो उठे—'नहीं भेजा ?'

'नहीं !'

थकी-मांदी नाईन सिर्फ एक ही शब्द बोलकर फैलकर बैठ गई।

पहली बड़ी लहर के बाद दूसरी छोटी लहर।

'तू हारकर लौट आयी ?'

अबकी धिक्कार और अचरज की बारी नाईन की थी। 'सुनिए भला,

उनकी लड़की है, उन्होने भेजा नही, मैं क्या घर से ज़बर्दस्ती खीचकर ले आती ?'

अव बनर्जी गृहिणी खुद ही पाव फैलाकर बैठी—दोनों भवों को एक जगह जोड़ने की कोशिश करती हुई बोली—'बहाना क्या बनाया ?'

'लो, बहाना क्या बनाते, साफ सुना दिया, अभी नही भेजेंगे ।' आचल की कोर से नाईन ने पान की डिबिया निकाली ।

'अभी मुह मे पान मत डाल, बीस बार थूकने को उठेगी ! पहले मेरी बातो का जवाब दे ले । मैं पूछती हूं, बहाना-वजह कुछ नही, सीधे कहा, नही भेजेंगे ?'

'अभी नही भेजेंगे ।'

'तो फिर कब भेजेंगे ? मेरे श्राद्ध के समय ? मैं तो सोच ही नही पा रही हूं, इतना बड़ा कलेजा मां-बाप का ? चांद-सूरज अभी भी उग रहे है या वह क्रम टूट गया है ? यह सोचकर उन्हें खौफ नही हुआ, हम अगर उनकी वेटी को छोड़ दे ?'

मना न मानकर नाईन ने पान-तम्बाखू मुह में डाल लिया । बोली, 'खौफ ! हुं ! एक क्यों, एक सौ लड़कियों को अन्न-वस्तर देकर घर मे रखने की जुर्रत उन्हें है ! अलबत संपन्न है ।'

'खूब ठूंस-ठूसकर खिलाया है न !' बनर्जी-घरनी ने ज़बर्दस्त गुस्से को परिहास का जामा पहनाकर महफिल में उतारा—जभी समधियाने की धन-दौलत से आंखे चौंधिया गयी ! मैं पूछती हूं, घर मे दाना-पानी होने से ही क्या बेटी की ससुराल के आश्रय को मिटाया जाता है ! इतनी हिमाकत के बाद अब मैं उनकी लडकी को अपने यहा लाऊंगी ?'

'खाने-पीने का उलाहना मत दो बाम्हन-भौजी, तुम लोगों के आशीर्वाद से वैसा खाना-पीना इस नाईन को बहुत नसीब होता है । लेकिन मैं यह कहूंगी, हां, नज़र है उन्हें । सिर्फ पैसा से नही होता, नज़र होनी चाहिए ।'

बात अर्थपूर्ण थी । और वह अर्थ बनर्जी-घरनी के मन मे सुई-सा चुभा । फिर भी उन्होंने अपने को ज़ब्त करके कहा, 'नज़र का कौन-सा परिचय दिया, सुनूं ज़रा । तुझे बीस भरी का चंद्रहार बनवा दिया कि पचीस भरी की कमर-धनी ?'

'मजाक उड़ाने की बात नही, ग़लत कहने से कैसे चलेगा ? एक जोड़ा फरासडागा साड़ी, एक धोती और नकद पाच रुपए—कुटुंब के यहां के आदमी को कौन देता है ?'

'देता क्यों नही है ? जो लड़की को विदा नहीं करना चाहते, वे घूस देकर इसी तरह मुंह बंद करना चाहते हैं । नही-तो तू उन्हें खरी-खोटी न सुनाकर यहा

उनकी बड़ाई के गीत गाती होती ! तुझ पर मुझे भरोसा था। तेरी जैसी तर्रार जबान इलाके में और किसी की नहीं और तूने ही मुझे डुबाया ! बाघिन थी, भीगी बिल्ली बनकर लौटी ?'

'नाहक की तकरार करती हो बाम्हन-भौजी, लड़की के बाप ने खुद अलग खड़े होकर अपनी मा से कहा, 'मां, सत्य की ससुराल की नाईन से कह दो, ब्याह के समय यह बात हुई थी कि बिटिया का कुमारी-काल पूरा होने से पहले उसे ससुराल नही भेजा जाएगा। शायद हो कि वे इस बात को भूल गए है, मैं नहीं भूला हूं। समय आने पर बेशक जाएगी।'

ब्याह के समय की शर्त की बात से बनर्जी-घरनी उछल उठीं —'क्या कहा, ब्याह के वक्त के शर्त-सबूत की बात उठाई। बात तो जानें ऐसी कितनी होती हैं, कहते है, लाख बात पूरे बिना ब्याह नहीं होता—मैं पूछती हूं, उनकी सेवा में किसी ने कोई शर्तनामा लिखा था ? मेरी बहू है, मैं अगर मंगाना चाहूं ! खैर, मैं भी देखती हूं, कितनी हिमाकत है उन्हें, कितना तेज है। अन्न-वस्तर देने से ही यदि सब कुछ होता, तो कोई भी अपनी बेटी का ब्याह रचाकर उसे पर-गोतर को नही कर देता। समझी ? ले, सुन ले, अगले ही महीने मैं अपने बेटे की शादी कराऊंगी।'

नाईन नमक-हराम नही है। बहुत खा आयी है, बहुत ले आयी है। सो जरा खीजी-सी बोली, 'सो अपनी बात आप सब आप समझिए—समधीजी ने मालिक के नाम खत दिया है, रख लो।'

'तूने तो अवाक् कर दिया री, इन कै दिनों मे तुझ पर जादू किया कि टोना किया। तू घरभेदिया विभीषण हो गई ! उन्ही की तरफदारी कर रही है। ला, कहा है खत ?'

'यह रहा !' नाईन गमछे की पोटली खोलने लगी।

बनर्जी-घरनी की तत्परता भी कम नहीं, उन्होंने भी अपनी बाज की नजर फौरन पोटली पर डाली—'देखूं तो, धनी कुटुंब ने क्या दिया है।'

फटे कपड़े की पोटली खोलकर उसमें से एक मुड़ा-मुड़ा कागज निकालकर बाहर रखते हुए नाईन ने मिली हुई चीजें दिखायीं—'यह धोती, यह साड़ी का जोड़ा, यह गमछा और…'

'अरे, नया लोटा, नयी थाली भी दी है ! मैंने क्या यों ही कहा कि घूस दिया है !'

'खातिर भी की। घरभर की स्त्रियां परेशान, सिर पर रखें कि आंखों उठा लें। आप चाहे जो कहिए, नातेदार आपको बहुत अच्छे मिले हैं। वैसे नातेदार से झगड़ा-लड़ाई करके आप पछताएंगी। लेकिन हा, इतना मैं कहूंगी, बहू आपकी कुछ वाचाल है।'

'वाचाल !' गृहिणी जैसे अचानक पत्थर बन गयी। 'वाचाल ! और अब तक यही नहीं बता रही थी तू। बाप का चाल-चलन तो मालूम ही है, पैसे की गरमी से मदान्ध है, बेटी को लाड़ देकर सिर चढ़ा रक्खा है और क्या ! मगर मैं भी हूं, एलोकेशी, मुंहज़ोर बहू को कैसे रखना होता है, यह मैं जानती हूं।'

'सो नहीं जानती हैं भला ! एक और की बेटी को घर में किस हाल में रक्खा है, यह सबको मालूम है। मगर इस बहू को आप दुरुस्त कब करेंगी, आप तो बेटे का फिर से व्याह करने जा रही हैं ?'

नाईन की इस बात से बनर्जी-गृहिणी थोड़ा डरी। यह जैसी ज़बानदराज़ है, टोलेभर मे ढोल पीटती फिरेगी, हाट में हांड़ी फोड़ देगी ! लोग जब सुनेंगे कि विदाई के लिए भेजा था, धनी समधी ने बेटी को नहीं भेजा तो सिर नीचा होने मे बाकी क्या रहेगा ? नाईन को खिजाना ठीक नहीं हुआ। उसे कोई भी नहीं खिजाता। खिजाने की हिम्मत ही कोई नहीं करता। घर-घर का हाल जानती है। वक्त-बेवक्त उसकी मदद के बिना चलता भी नहीं। जैसी तेज़ है, वैसी ही विश्वासी भी। और ज़बान की उतनी ही ज़ोरावर। मर्द की हिम्मत और ताकत। बहू-बेटी की ससुराल-नैहर आने-जाने का वही सहारा है। यह होश आया, सो फिर एक बार दांत निपोरकर उन्होंने कहा, 'फिर क्या है, जा, तमाम मे यह बात फैला दे कि मैं फिर से बेटे का व्याह कर रही हूं ! मरण ! तू ही बता, गुस्से से सर पर खून सवार हो जाता है कि नहीं ? खैर ! विस्तार से सब बता तो तूने क्या कहा, वे लोग क्या बोले, बहू···'

'सातों कांड रामायण सुनाने की अभी मुझे फुरसत नहीं है, बाम्हन-भौजी, दो दिन दो रात पैरों पर बीती, बदन जैसे टूट रहा है। अभी मैं घर जाती हूं।'

'घर क्यों जा रही है,' गृहिणी निष्प्रभ होकर बोली, 'न हो तो यहीं दो मुट्ठी···'

'न बाबा, रहने भी दीजिए। कहावत है, भाई का भात, भौजी का हाथ !' पहले घर जाकर दो घड़ी सुस्ता लू, फिर देखा जाएगा।'

एलोकेशी को और नर्म होना पड़ा, और खुशामद करनी पड़ी—'अरी, माथे में विषबाण बींधकर तो रख दिया, निकाल दे। उस लड़की ने क्या कहा, सो तो बता। तू उसकी ससुराल से गयी थी, तेरे सामने क्या ज़बानदराजी की ?'

'की और क्या, पेड़ पर चढ़ी ? सो नहीं, मैंने देखा, हाथ-मुंह नचा-नचाकर दादियों से बहुत बक-बक कर रही थी। घर की बड़ी-बूढ़िया कह रही थीं, सत्य की ससुरालवालों को नाराज़ करना ठीक नहीं, वे तुम्हारे समधी की बेवकूफी की निंदा कर रही थीं कि देखा, अंदर से वह झास झाड़ रही है—बाबू जी की बात पर बात ! उनसे तुम सबकी अकल ज्यादा है ? व्याह के समय जब यह तय हो गया था कि बारह साल की उमर हुए बिना विदा नहीं

कराएंगे, तो फिर लिवा ले जाने के लिए भेजा किस कानून से है ! यही सब।'

बनर्जी-घरनी के बात फूटे, वह क्षमता तब तक जाती रही थी। अपनी बहू की बातचीत के ढंग की खबर पाकर वह शक्ति ही नही रह गयी।

वह कुछ देर तक तो गाल पर हाथ रखे काठ की मारी-सी रहीं। फिर निःश्वास छोड़कर बोली, 'मैं बेटे का फिर से ब्याह कराऊंगी, इस पर तो तूने मेरी अच्छी लिहाड़ी ली, लेकिन अब तू ही बता, ऐसी बहू के साथ गिरस्ती की जा सकती है ? मैंने तो अपने बाप के जनम मे भी ऐसा नही सुना कि ससुराल जाने की बात पर नयी बहू ऐसी टिप्पणी देती है !'

'बाप की इकलौती है न ! जरा लाड़ली है, लेकिन यह दोष रहेगा थोड़े ही। खुद ही चला जाएगा। कैसे तो कहते है न, हल्दी सिल से, चोट मुक्के से और बहू ससुराल जाने से ठिकाने आती है।'

'क्या पता, मेरी तो मारे डर के सिट्टी-पिट्टी गुम हो रही है। बुढ़ापे में बेटे की बहू के हाथ से क्या दुर्दशा लिखी है, नही जानती ! दूसरा ब्याह भी कहां से कराऊंगी ? तेरे बाम्हन-दादा तो समधी की सम्पत्ति पर नजर गड़ाए हुए हैं। कहते है, बाप की अकेली लड़की, बाप ने आख मूंदी नही कि सब-कुछ बेटी-दामाद का।'

इस बार नाईन ने गाल पर हाथ रखा—'सुनिए ज़रा बात। उतना बड़ा परिवार, चांद के टुकड़ों जैसे वैसे-वैसे भतीजे हैं। उन्हे नहीं मिलेगा ? हिस्सा-बखरा भी तो नही हुआ है।'

'यह मैं नही जानती, वे कहा करते है, वही सुनती हूं। कहते है, ज़रा उसे आख तो बंद करने दो।'

'किसकी आखें पहले बंद होती है, कौन किसकी जायदाद भोगता है, यह कौन कह सकता है, बाम्हन-भौजी। तुम्हारे समधी का रूप तो सोने के गौरांग-सा है, अभी भी उनका ब्याह कराया जा सकता है। खैर, आप अपनी समझो। मैं चलती हूं। खत दे देना।'

नाईन जाने को तैयार हुई कि खड़ाऊं की खट्-खट् से मकान-मालिक के आने की सूचना हुई।—'अरे नाईन ! आ गई तू ?' कहते-कहते बनर्जी अंदर आ गए।

'आती नहीं तो आखिर कुटुंब के यहां का अन्न कब तक ध्वंस करती ? लेकिन हां, उन लोगों ने और दस दिन रह जाने को बहुतेरा कहा····'

'मगर तू गई किसलिए थी ? बहू कहा है ?'

'नही भेजा !'

घरनी के गले से गाज की आवाज़ हुई।

'नही भेजा !'

फिर एक बार यह साबित हुआ कि एक ही प्रश्न में संसार का सारा विस्मय प्रकट करना संभव है।

बेटे को भोजन पर बिठाकर एलोकेशी ने बात उठाई। नाईन की छिड़की हुई चिंगारियों को पचाते हुए बैंगन के रंग-सी हो उठी थी वह, इसीलिए भोजन की थाली बेटे के सामने रखकर दीये की बाती को जरा उकसाकर वह फैलकर जब बैठ गयी, तो मा का वह खौफ़नाक चेहरा देखकर नवकुमार का कलेजा काप उठा।

नवकुमार की उम्र अठारह-उन्नीस साल की होते हुए भी वह मा के पास दूधपीता बच्चा-सा है। और उसके मन की दुनिया मे मा और यमराज समान हैं। मा जब जबान चलाती हैं, तो नवकुमार के हाथ-पाव पेट मे समा जाते हैं। चिंगारिया चाहे जिसके लिए भी छूटती हों, नवकुमार काप उठता है।

आज का गाली-गलौज नवकुमार की ससुराल के लिए ही था, सो बेचारे का खाना न हो सका। भय और लज्जा से गरदन नीची होते-होते प्रायः थाली से जा मिली।

नाईन उसकी ससुराल गयी है, जब से यह सुना था, नवकुमार के मन में एक पुलक की हलचल थी, इधर-उधर से वह सुन रहा था कि मां ने बहू को लाने के लिए भेजा है।

कैसी है वह बहू, क्या नाम है उसका, देखने में कैसी है—इन लज्जाकर विचारों को वह अपने मन से निकाल नही पा रहा था। शयन में, स्वप्न में एक मुख-छवि धुधली-धुधली-सी छाया डालती हुई यहां-वहां एलोकेशी के पास घूघट काढे घूम रही थी।

सोने के कमरे मे? घूघट उघाड़े?

बाप रे! ऐसी दुस्साहसिक कल्पना की हिम्मत नही थी नवकुमार को। उस चिंता के आस-पास पहुंचते ही उसकी छाती धड़क उठती। और मा के पास खड़े होने से तो बात ही नहीं, उसे धोखा होता है, तालाब के पारदर्शी पानी की तरह ही वह उसके मन को देख रही है।

न, सोने के कमरे के इलाके मे या अपने अगल-बगल स्त्री की मौजूदगी की वह सोच नही सकता, सोचता सिर्फ मां के ही आस-पास की अवस्था है।

नाईन का यह अभियान कामयाब नहीं होगा, ऐसा वह स्वप्न में भी नही सोच सकता था, इसलिए ये कई दिन रोज ही वह सांझ के बाद भवतोष मास्टर से अंग्रेजी पढ़कर लौटने के बाद पायल की मृदुल रुनझुन सुनने के लिए उत्कर्ण रहता था!

• किंतु कहां ?

नाईन कै दिनों की कहकर गयी है, नवकुमार के लिए यह जानने को बात न थी, फिर भी पूजा से पहले तो जरूर ही। और पूजा के साथ मन के एक और उत्सव को जोड़कर हर पल विह्वल हो रहा था वह।

पूजा आ रही है।

वहू आ रही है।

पूजा का तो पता है, लेकिन वह वहू जाने कैसी है।

शादी उसकी हुई थी, पंद्रह साल पार करके। यह उम्र इतने अज्ञान की तो नहीं, फिर भी शर्मीले स्वभाव के नवकुमार ने ब्याह के किसी नेग-नियम के समय भी कनखियों से ताककर वहू को एक नजर देख लेने की कोशिश नहीं की। अभी यदि कोई उस लड़की के वदले किसी दूसरी को भेज दे तो पहचानने की जुर्रत न होगी।

और तो और, लाख करके भी अपनी स्त्री का नाम भी याद नहीं कर पा रहा है। ब्याह के समय जव कन्यादान हो रहा था, तो वह नाम कई वार वोला भी गया था, लेकिन तब किसने सोचा था, उस नाम को याद रखने की जिम्मेदारी उसकी है। उस समय तो वह वार-वार पसीने-पसीने हो रहा था।

उस पसीने की याद है, नाम की नहीं।

एक तो वह दूलहा वना था, तिसपर ससुर का वह दमकता हुआ चेहरा, गभीर गला, भारी-भरकम स्वभाव। उससे भी भय वढ़ा था।

कोहवर का और जाने कितने प्रकार का भय !

वह भय अभी भी शायद कुछ-कुछ है।

लेकिन वहू शब्द कितना मीठा ! भय में भी रोमांच !

कई दिनों की इंतजारी के वाद एलोकेशी ने जो समाचार सुनाया, उसकी छाती धक् से रह गयी। और लमहे में उस ब्याह की रात जैसा ही पसीना छूट गया।

एलोकेशी ने कहा—'नाईन लौट आयी, सुना तुमने ?'

वाघिन-सी वैठी थी वरामदे पर। वेटा जरा हाथ-मुह धो ले, इतने के लिए भी नहीं रुक सकी वह। खबर वता वैठी। अंधेरे में ही कह दिया, दीया भी उठाकर नहीं लायी !

नवकुमार के लिए यह सवाद और ही अर्थ ले आया था, इसीलिए उसके मन में विह्वलता आयी। मा के मन की मौजूदा हालत को वह ताड़ न सका। उनके स्वर की भीषणता को भी वह नहीं भाप सका। इसीलिए अजाने एक मुख

से वह सिहर उठा।

मगर कितनी देर के लिए ?

जरा ही देर में वह निष्ठुर सत्य ज़ाहिर हो गया।

जाने-माने अपने समधी के लिए नीच, चमार आदि शोभन विशेषणों का उपयोग करती हुई बोली—'लड़की को नही भेजा !'

लड़की को नही भेजा !

यह कैसी अजीब बात !

लड़की को नही भेजना भी संभव है, यह बात तो एक बार के लिए भी उसके मन मे नही आयी।

लेकिन इस बात पर नवकुमार कहे भी क्या ! और एलोकेशी ने भी जवाब की प्रत्याशा से यह बात नही कही थी।

कुछ देर तक वह समधी की पैसे की गरमी और नाईन को घूस देकर अपनी ओर कर लेने की बात करती रहीं। आखिर को उन्होंने यह ईजाद किया कि लड़का तब से उसी तरह आगन मे खड़ा है।

मां का स्नेह जागा। बोली, 'यों खडा रहकर अब क्या करेगा, हाथ-मुंह धो !' और फिर ऊंचे स्वर से आवाज दी, 'खाना तैयार हो गया सौदी ?'

रसोई से आवाज आयी, 'हां मामी, हो गया।'

'चल, मुह धो ले, मैं भात परोसती हूं।' इतना कहकर वह रसोई की तरफ चली गयी। नवकुमार ने कोट उतारकर दीवार की खूंटी पर टाग दिया। धीरे-धीरे पिछवाड़े के पोखरे की तरफ चला गया।

अचानक मन कैसा तो सूना-सूना और शिथिल-सा लगने लगा। जो थी नही, जिसका स्वाद कभी नसीब नही हुआ, ऐसी चीज़ के खो जाने से भी ऐसा सूनापन लगता है ? सब सूना-सूना ?

लेकिन अभी क्या हुआ था !

असली बात तो ऐलोकेशी ने उसे पत्तल पर विठाकर दीये की वाती को उकसाते हुए उठायी।

वह शक्ल देखकर नवकुमार की छाती धड़क उठी।

बोली—'मैं तुमसे यह कहे देती हूं, तुम्हारे बाप से अंतिम एक चिट्ठी मैं लिखवाऊंगी, उसपर भी यदि उन्होंने नहीं भेजा तो अगले अगहन में ही मैं तुम्हारा ब्याह कर दूगी।'

फिर ब्याह !

मा क्या आज कलेजा धड़काकर ही बेटे को मार डालेगी ?

फिर ब्याह !

यानी फिर उसके साथ वही ढहू-नाच, फिर किसी के यहा जाकर कन्यादान,

फिर वही कोहबर, वही कान-नाक का मला जाना, वही पसीना-पसीना होना !

गरदन नवकुमार की थाली से सट जाने लगी ! मुंह से बोली भी नही फूटी, मुंह में कौर भी नही धंसा ।

कटु उक्तियां बंद करके एलोकेशी ने पूछा, 'खा कहा रहा है ?'

'खा तो रहा हूं !' इतनी देर के बाद उसने धीमे से एक बात कही और बात की सचाई के लिए किसी प्रकार से एक कौर मुह में ठूस लिया ।

अब रंगमंच पर सौदा यानी सौदामिनी का आविर्भाव हुआ । वह भाप उठती हुई गरम भात लिए आकर अवाक्-सी होकर बोली, 'हाय राम, यह क्या ! भात जहा का तहां पडा है । अब तक कर क्या रहा था रे नोबू ?'

'खा तो रहा हूं !' उसने पिछली बात और पिछले काम को एक बार दुहराया ।

'थोड़ा-सा और दूं ?'

'नहीं-नहीं ! अब नहीं !' हाथ हिलाते हुए नवकुमार ने कहा ।

'भूख नहीं है ?'

नवकुमार ने फिर कहा, 'खा तो रहा हूं !'

लेकिन आखों से आसू उमड़ा आ रहा था ।

'भूख रहेगी भी अब कैसे !' एलोकेशी बोल उठीं—'ससुर की निंदा जो कर दी ! आजकल का लडका है न ! लेकिन मैं तुम से फिर कहती हूं नोबा, तुम्हारे घमंडी ससुर की नाक मैंने जमीन में नही रगड़वायी तो मेरा नाम नहीं। बाप-बाप करके लड़की को अपने कंधे उठाकर नाक रगड़ते हुए आए तो ठीक, नही तो तुम्हें फिर से ब्याह-मंडप में खड़ा होना पड़ेगा ।'

'ले, सुन', सौदा हंस उठी—'अब मुंह लटकाए रहने की कोई बात नही । दिलासा मिल गया । उठा, बड़ा-बड़ा कौर खा । बहू नहीं आयी, इस गम में नोबू ने इतनी अच्छी बनी पोठिया भी न खायी, देखा न, भाभी !'

'हर वक्त मजाक मत किया कर, सौदा ।' एलोकेशी ने खीजकर कहा—'चौबीसो घंटे हसी-मजाक तुझे अच्छा भी लगता है ! जी में इतनी उमंग काहे को जो है, यह भी तो नही समझती !'

बात सच ही है ।

उमंग होने की बात सौदा के लिए है नहीं ।

फिर भी आती है उमंग ।

तो भी वह हंसी-ठट्ठा करती है । ही-ही करके हंसती है । लेकिन हंसी आती कैसे है, यह क्या सौदा ही खाक जानती है ।

शायद हो कि संसार मे यही महज उसके वश में है, इसीलिए वह ले आती

है। वदनसीवी को अंगूठा दिखाकर वह ही-ही करके हंसती फिरती है—हंसती है छाती पर पड़े पत्थर को हटाने के लिए।

आठों पहर उस पत्थर को छाती मे ही ढोना पड़ता, तो ऐसी राक्षस जैसी तंदुरुस्ती के लिए वह खटती फिर सकती थी भला !

वस्ती के सभी तो उसके भाग्य को धिक्कारते हैं, सभी तो जानते है कि उसे उसका पति नही ले जाता। नाहक ही, महज ख़याल से ही सौदा को सौदा के पति ने छोड़ दिया है। स्वभाव-चरित्र तो वहुतों का खराब होता है, लेकिन घरवाली को कै जने छोड़ देते है ?

सौदा के मा नही है, वाप नही है। शुरू से मामा के ही घर पली है। मामा कोशिश करके दो-तीन वार उसे उसकी ससुराल पहुचा आया था, मगर यह वदनसीव लड़की हरगिज अपना आसन दखल नही कर सकी। दुर्व्यवहार के मारे भागने की राह नही रही !

तव से यही मामा के ही यहां है।

दूसरा उपाय भी क्या ?

मामा के यहा है, दोनो शाम चूल्हा फूकती है, जूता-चंडी सभी करती है और मामी की वकझक झेलती है।

फिर भी वह हंसती है।

वलिहारी !

'वलिहारी !' मामी कहती है। टोले के सभी कहते है। सुनते-सुनते नवकुमार की भी ऐसी धारणा वन गई है कि हसी सौदा-दी के लिए गर्हित है। इसीलिए हंसी-मजाक में वह कभी भी खुले जी से साथ नही दे पाता। आज की तो वात ही जुदा है ! आज के मज़ाक का पात्र तो नवकुमार खुद ही है।

'दूध भी लाएगी कि खड़ी-खड़ी ठट्ठा ही करती रहेगी ?' एलोकेशी ने डांटकर कहा।

लड़के के पास थाली रख देने के सिवाय एलोकेशी तिनका भी नही हिलाती। दूसरी वार यदि किसी चीज की ज़रूरत पड़ती है, तो सौदी-सौदी की पुकार। वहुत वड़ी सुविधा है कि सौदा विधवा है। नहीं तो रात को आमिष रसोई का भार उसे नही दिया जा सकता। लिहाज़ा कोई दुविधा की वला नही। सरल पोठिया की तरकारी सौदा खुद भी तो खाएगी ! सो, वनाए, पकाए।

घर के मालिक नीलावर वनर्जी की आयु चाहे जो हो, रात का भात खाना उन्होंने वहुत पहले से ही छोड़ रखा है। घर की गाय के डेढ़ सेर दूध को औटाकर आधा सेर वनाया जाता है, ऊपर मोटी मलाई पड़ी होती है, उसी में

घर का भुना थोड़ा-सा लावा और आठेक मनोहरा[1] मिलाकर नीलांबर रात का भोजन करते हैं।

यह भोजन वह संध्या-आह्निक के बाद ही कर लेते हैं। नोबू मास्टर के यहा से पढ़कर लौटता है, उसके पहले ही। उसके बाद जब वह घूम-फिरकर लौटते हैं तो नोबू की आधी रात बीत चुकी होती है। इसलिए इस वेला बाप-बेटे की भेंट ही नही होती है। लड़के को एक अजीब सनक सवार हुई है, अंगरेजी सीखने की। उस म्लेच्छ भाषा के सीखने से कौन-सा चतुर्वर्ग हासिल होगा, क्या जाने। लेकिन स्नेहशील पिता ने खास रुकावट भी नहीं डाली। कहा, 'ख्वाहिश हुई है तो पढ ले!'

इस अनर्थ की असल जड़ तो वह भवतोष विश्वास है। कलकत्ता से अंगरेजी सीखकर हजरत ने गाव में स्कूल खोला है। सवेरे-शाम दो वक्त पढ़ाई चलती है। गांव के लड़कों को उकसाने में उस्ताद! कानों मे मंतर पढ़ता है, अंगरेजी सीखे बिना तरक्की नही होती। अंगरेजी सीखकर कोई कलकत्ता जा पहुंचे तो साहब के दफ्तर में मोटी तनख्वाह की नौकरी रखी हुई है। सो लोग उसके स्कूल को दौड रहे है। चालाकों का सरताज भवतोष कलकत्ता से फर्स्ट बुक, सेकंड बुक, जाने कितनी भारी-भारी किताबें ले आया है, उन्ही से पढ़ाकर लोगों को विद्या का दिग्गज बना रहा है।

ब्राह्मण के लड़के शूद्र से विद्या हासिल करने जा रहे है! कलजुग के पूरा होने में अब बाकी ही क्या रह गया?

फिर भी नीलांबर ने बेटे पर रोक नहीं लगाई। कलजुग की चाल पर ही चल रहे है। सिर्फ जो पहनकर वह म्लेच्छ भाषा को सीखने जाता है, वे कपडे-कुरते उतार देने पड़ते है, उन्हे पहनकर कुछ छूता-छापता नही है, उन्हे उतारकर गगाजल का स्पर्श करता है, बस इतना ही।

नवकुमार को खिलाकर मामी-भानजी के खाने की बारी। वे कुछ भात परोसकर पीढा लेकर तो खाने बैठती नही, जो भी बर्तन मिले, उन्ही मे जमीन पर बैठकर खा लिया! सो, इस समय गपशप मजे में चलती है। भानजी को बात-बात पर डांटने के बावजूद बिना उसके भी एलोकेशी का नही चलता। बोलने की संगी और है भी कौन?

खाने के बाद रसोईघर धोने का काम सौदामिनी का!

घर को धो-धवाकर रसोई की लकड़ी सम्हाल, चकमकी को ठीक करके, काम किये हुए कपड़े फीचकर तब कही सोने को जाती है सौदा। सोने के लिए उसके नाम पर एक कमरा है जरूर, बिस्तर भी है, लेकिन उस कमरे और उस

---

१. एक तरह की मिठाई।

बिछावन पर सोने का मौक़ा ही कितना मिलता है उसे ? जब तक नीलाम्बर लौट नहीं आते, एलोकेशी के पास रहना पड़ता है उसे। एलोकेशी को भूत का बेहद डर है।

नीलांबर आते है तो उन्हें पानी चाहिए या नही, तम्बाखू चाहिए कि नहीं, यह सब पूछताछ करके तब सौदा को छुट्टी मिलती है। यह छुट्टी प्रायः आधी रात बीत जाने के बाद ही मिलती है।

हां, बाकी रात सौदा की रखवाली कौन करे, यह सवाल ही नही उठता। सौदा तो सौदा है। उससे कभी अगर पूछ बैठो तो वह बेशक हंसती हुई कहेगी, 'मेरी रखवाली भूत ही करता है। पता नही है, मैं भूतनी हूं !'

फिर भी सौदा मामी को प्यार करती है, मामा की आदर-कदर करती है, नवकुमार को अपनी जान-सा मानती है।

अपने बत्तीस वर्ष के इस जीवन में प्यार, भक्ति और स्नेह करने के लिए उसने दूसरे और किसको पाया है ?

अहले सुबह ही नींद खुल गई।

कारण कुछ याद नही, फिर भी नवकुमार को लगा, कलेजे पर कोई पत्थर सवार है ! जैसे किसी मौके से किसी ने कोई पहाड़ ही उठाकर कलेजे पर रख दिया ! रात में सोते हुए भी गोया किसी आतंक का ही सपना था !

खुली खिडकी की ओर टकटकी लगाए कुछ देर बैठने के बाद ही सब याद आ गया। मा की शपथ की याद आयी। याद आते ही हाथ-पाव ढीले हो आए।

धीरे-धीरे उठा। धोती के आंचल को बदन पर रखकर कमरे से निकला। सुबह की तरफ सर्दी-सी पड़ने लगी है। और, शरत की सुबह की यह सिर-सिर हवा ही तो मन को जाने कहां उड़ा लिए जाती है।

बाहर आकर देखा, सौदामिनी आंगन में झाड़ू-बुहारू कर रही है। उसके करीब जाकर पूछा, 'मा नही जगी है, सौदा-दी !'

'मामी !' सुबह-सुबह ही हंसते-हंसते लोट-पोट हो गयी सौदामिनी।—'मामी ऐसे वक्त कब-कब उठती है ? प्रभात-देवता से जो मामी का विरोध है।'

झटाझट झाड़ू चलाते हुए सौदा ने कहा, 'जरा खिसक जा नोबू, धूल पड़ेगी।'

'लगने दे !' कहकर बल्कि वह और नजदीक ही खिसक आया और आते ही हठात् जैसे जाड़े के दिनों पानी में कूद पड़ा हो, इस ढंग से बोल उठा—'सौदा-दी, तुम मा से कह देना, मुझसे वह सब नहीं होगा-हवाएगा।'

सौदा का बुहारना बंद हो गया। आंखें गोल-गोल करके उसने कहा, 'क्या कह दूंगी मामी से ? क्या नही होगा-हुवाएगा ?'

'वही सब ! अपने ही कानों तो कल सुना, फिर पूछ क्या रही हो ?'

'न। तूने तो मुझे अथाह पानी मे डाल दिया, नोबू ! कल दिनभर तो जाने कितना क्या सुनती रही, कौन-सी बात तेरे मन मे गड़ी हुई है, मै कैसे जानू ?'

'आः, बड़ी आफ़त मे डाला तो ! अरे, नाईन-फुआ की बात पर मा ने बिगडकर जो कहा, तुम्हे याद नही है ?'

'हाय राम, तो वही कह न। फिर से तेरा ब्याह कराएगी, यही न ?' सौदा फिर ही-ही करके हंसी—'इसी फिकर से रात को नीद नही आयी, क्यो ? यानी—ठाकुरघर में कौन ? तो मैंने केला नही खाया। यह हाल ! मामी कहीं अपनी कही भूल जाएं, इसलिए मुझसे नही होगा, मैं नही करूंगा—यह कहकर उन्हें याद दिलाने आया है ?'

'सौदा-दी, ठीक न होगा, कहे देता हूं। मैं तुम्हें साफ कहे रखता हूं, मुझसे वह सब नही होगा। फिर से वही कनैठी-वनैठी'''बाप रे !'

सौदा फिर से अपने काम मे जुट गयी—'तो यह मुझ से क्या कह रहा है ? मामी से कह !'

'मैं ? मैं मां से कहूंगा ?'

'क्यों, क्यों नहीं कहेगा ? बड़ा हो गया, हिम्मत नहीं पड़ रही है ?'

'मा के सामने हिम्मत ? हुंः। सुनो, तुमसे कहकर मैं छुटकारा पा गया। अब जो भी करना हो, तुम करो।'

सौदामिनी ने हाथ रोककर कहा, 'ठीक है। मैं कह दूंगी मामी से कि अपने नोबू को पहली बीवी के लिए बड़ा दर्द है, उसे छोड़कर वह दूसरी जगह ब्याह नही करेगा !'

'ठीक नही होगा, सौदा-दी ! मैं पूछता हू, फिर से वैसे भुतखेल की ज़रूरत भी क्या है ? किसी ने अपनी बेटी को न ही भेजा तो क्या, पराई लड़की के बिना दुनिया नही चलती है क्या ?'

'कहां चलती है ?' हाथ-मुह नचाकर सौदामिनी ने कहा—'चलती होती तो आदि-अंतकाल से लोग ये भुतखेल नही करते होते। समझा ? अब वही पराई लड़की ही संसार की सबसे बड़ी दौलत हो जाएगी।'

'खाक होगी !' खामखा ही बोल बैठा नवकुमार—'कहां, जीजाजी के तो नही हुआ ?'

सौदा का उच्छ्वास कम हो आया। ज़रा गम्भीर होकर बोली—'मेरी छोड़। मेरे जैसा राखभरा नसीब बड़े से बड़े दुश्मन का भी न हो !'

सौदा के इस भावातर से नवकुमार जरा सकपकाकर बोला—'मैंने कुछ सोचकर नही कहा है, दीदी ! लेकिन मैंने जो कहा, तुम्हें मेरी रक्षक होना होगा।'

'खैर, कहूंगी मामी से। नसीब में झाड़ू की दो-चार मार लिखी है।'

सौदा ने झूठ नहीं कहा। एलोकेशी वही करती है।

लेकिन नसीब का झाड़ू दीखता नही है, यही जो बात है। शब्द अदृश्य है। लेकिन एलोकेशी जब बातो के पटाखे छोड़ती हैं, तो लगता है, मुह से आग जैसी दृश्यवस्तु ही निकल रही है कोई !

साग चुनते वक्त सौदामिनी ने बात उठायी। कहा, 'मामी, आप तो कहती है, अगर उन्होंने फौरन बेटी की विदाई नही की, तो आप बेटे का फिर से ब्याह करा देगी। मगर लड़का ही तो तुनक बैठा है !'

'क्या ? क्या कहा ?'

पलक मारते अग्निकाड हो गया।

सौदा को न भूतो न भविष्यति गाली-गलौज करके एलोकेशी ने घोषणा की, 'मेरा ही खा-पहनकर जो मेरा ही घर फोड़ने की कोशिश की ताक में रहेगी, उसे मैं झाड़ू मार-मारकर निकाल बाहर करूंगी, यह मैं कहे देती हूं, सौदा ! कान फूककर मेरे बेटे को पराया किया चाहती है दईमारी। मामा को आह्निक करके उठने दो, मजा चखाती हूं।'

सौदा ने प्रतिवाद भी नही किया, सफाई भी नही दी, यह भी नही पूछा कि मेरा कसूर कौन-सा है। बल्कि उसकी शकल देखकर यह लगा कि मामी के वाक्यबाणो का निशाना और कोई है।

नीलाबर आह्निक करके बाहर निकले। तांबे के पात्र से सूर्य को अर्घ्य देकर पात्र को माटी पर उलटकर रखा और फिर एक बार सूर्य को प्रणाम करके मुड़े ही थे कि एलोकेशी ने दूध पिलाकर साप पालने की नजीर देते हुए पति को सब-कुछ बताते हुए कहा, 'तुम अगर इसी वक्त चिट्ठी लिखकर न भेजो तो मेरा सिर खाओ।'

नीलाबर अहाहा कर उठे। 'इसमें कसम और गाली-गलौज का क्या है ?' चिट्ठी लिख लेता हूं। भेजूं किसे, यह सोच रहा हूं। नाईन तो···'

'गांव में उसके सिवा दूसरा आदमी नहीं है। उस बार राखाल तो गया था। राखाल जाएगा ? उतनी दूर और अकेला ! यही सोच रहा हूं।'

'नही तो गोविंद आचारी के बेटे गोपना को भेजो। गांजे का पैसा देने से वह तैयार हो जाएगा।'

'गोपना को कुटुंब के यहां भेजें ? क्या कहते क्या कह आएगा।'

'कह आने दो न !' एलोकेशी ने वीर दर्प से कहा, 'उस गजेड़ी की खरी-खोटी से अगर मरदूद को होश आए ! फिर मैं देखती हूं कि लाड़ली बिटिया को लिए वह कैसे बैठा रह सकता है। गोपना को यह भी कह देना, आस-पास में कोई अच्छी कुलीन लड़की है या नहीं, पता करता आएगा। नाक के सामने ही हो तो अच्छा।'

नीलाबर ने ज्यादा बात नही बढ़ाई। लिखने बैठ गए। और बहुत-बहुत मुसविदा के बाद खत का एक ढाचा भी तैयार कर लिया।

उसमें विस्तार से यही बताया गया कि रामकाली अगर अपनी पहली ही जिद पर अड़े रहेंगे, तो उनके नसीब मे बहुत दु ख लिखा है। ये बेटे की दूसरी शादी तो कर ही देंगे, और भी जो करेंगे, वह धीरे-धीरे जाहिर होगा। बदस्तूर धमकीभरी चिट्ठी।

चिट्ठी के भाव और भाषा से एलोकेशी संतुष्ट हुई। नीलांबर अब उसे भेजने की कोशिश में लगे। लेकिन मन में यह चिंता थी, सत्यवती रामकाली की इकलौती है ! ज्यादा खींच-तान से डोरी टूट न जाए !

नवकुमार को इतनी बातों का कुछ भी मालूम नहीं। वह स्कूल में था।

बेला हो जाने पर जब लौटा, तो सीधे सौदा के ही पास जाकर खड़ा हुआ—'सौदा-दी, तेल।'

सौदा ने तेल लाकर देते हुए कहा, 'देख लिया न, मैंने कहा था, काम नहीं बनेगा, सिर्फ मेरे नसीब में झाड़ू है। वही हुआ। तेरे ससुर का मृत्यु-बाण तैयार है, अब तक भेजा भी जा चुका होगा। यों शायद दो दिन देर भी हो सकती थी, पर तेरी नकार से मामी बस झटपट पर पड़ गयीं।'

तलहथी पर डाला तेल उंगलियों की फाक से चू गया—बेचारा नवकुमार टुकुर-टुकुर ताकता रहा।

उसकी वह सूरत देखकर सौदा दयार्द्र होकर बोली—'जाने दे, इसके लिए तू जी छोटा न कर। जरूरत हो तो फिर एक बार सेहरा बाध लेना। कष्ट ही कितना है उसमे ! तुझे तो एक बहू मिलने से मतलब। लेकिन लगता है, अबकी तुम्हारे ससुर नर्म पड़ेंगे। जितना भी हो, आखिर लड़की के बाप हैं।'

नवकुमार अचानक एक बेसिर-पैर की और अवातर बात बोल उठा—'साहब लोग एक ही शादी करते हैं, कई शादिया हरगिज नही करते।'

बस, अब कहां जाए !

सौदा की हंसी का बाध टूटा। 'अच्छा ! ऐसा होता है। ओ, समझ गयी, इसी से साहबों की किताब पढ़-पढ़कर तेरे दिमाग मे भी वही अकल आयी है। मगर यह तो बता नोबू, साहब लोग अगर एक से ज्यादा शादी नहीं करते तो

वाकी लड़कियों की क्या दशा होती है ? विधाता ने जव दुनिया वनायी थी, तो एक-एक लड़का और डेढ-डेढ कोरी के हिसाव से लड़कियां वनाई थी—यह तो मालूम है तुझे ? तो फिर वता ! वाकी लड़कियों की गति कौन करेगा, यदि एक से ज्यादा व्याह नही करते ।'

'सव अजीवोगरीव वाते !' मा के नही रहने पर नवकुमार खासे ज़ोर से ही वोलता है—'दुनियाभर मे डेढ कोरी के हिसाव से ही लड़के होते हैं...'

नवकुमार के मुह की मुंह में ही रह गई—रंगस्थल में एलोकेशी दिखायी दीं—'नोवा, मैं पूछती हूं, नहाने जाना है कि नही ? जैसे ही दोनों मिले कि हसी-मजाक। हां री सौदी, तुझसे भी पूछती हूं, यह क्या तेरा हमउमर है ? रात-दिन कान फूकती रहती है ! ठहर, घर में वहू आने दे—चूल्हा-चक्की सम्हालने वाली एक आ जाए तो तुझे झाड़ू मारकर निकालती हूं ।'

मा के सामने नवकुमार सिर्फ आखों की भूमिका करता है । जभी सौदा दी के इस अपमान से तड़प उठने के वावजूद उसके मुह से वात नहीं फूटी । किंतु अचरज की वात तो यह कि सौदा के चेहरे की रेखाओं में भाव की विलक्षणता नही फूटी । वह पहले जैसी ही मुसकराती रही । आख के इशारे से जताया—'नहाने जा, मामी विगड उठी हैं ।'

हथेली का सारा तेल चू गया था । सिर्फ हथेली को ही माथे में रगड़ते हुए नोवू सीधे तालाव की ओर चला गया । आज अव पिछवाड़े के पोखरे में जाने को जी नहीं चाह रहा था ।

जाते-जाते एकाएक एक ही दिन के देखे अपने उस ससुर पर उसे वड़ा गुस्सा आ गया । कुछ भी तो वखेड़ा नही होता, अगर उन्होंने वेटी को भेज दिया होता !

छाती पर भार ही नही था, काटा भी चुभ रहा था जैसे । दुर् !

१८

तुप्दु ग्वाला परिवार-सहित आकर छाती पीट रहा था और चीख रहा था । उसकी स्त्री यहां से वहा इस कदर तड़पकर लोट रही थी कि पानी में गिरे कि आग में ।

वटुरी हुई भीड़ हाय-हाय कर रही थी और कव किसने कहां ऐसी घटना देखी है, इसी की आलोचना से हवा को गुजा रही थी ।

क्वार की धूप में सर्दी-गर्मी होने की वात नहीं, लेकिन समय वहुत वड़ा । खरी दोपहरी ! पानी में भिगोए थोड़े-से भात को पेट मे भर लेने के वाद ही

अंगल-जंगल में घूमना। औरतें तो लड़कों को रोक नहीं सकतीं।

तुप्दु ग्वाला का पोता। उम्र के लिहाज से नेड़ू कंपनी की जमात का एक सदस्य। क्वार में खेतों में रसभरी ईखें! इसीलिए लड़कों का दोपहर का खेल है ईख चुराना। औजार कहने को लोहे का एक धारवाला पत्तर। खेत से काट लेने के बाद तो दांत है ही!

दांत से लाठी जैसी लंबी-लंबी ईखें चबाकर लड़के रस का मजा ले रहे थे। एकाएक रघु को क्या हो गया? बूढ़े बरगद तले, जहां सभी बैठे थे, वहीं धूल-गर्द पर पड़ गया वह, जैसे नशे में हो।

लड़कों ने पहले इसका खयाल नहीं किया। कल फिर कब धावा बोला जाएगा, इसी के सोच-विचार में मशगूल थे। देखा तब, जबकि वे उठने लगे।

'क्यों रे रघू, तू तो मजे में सो रहा है!' एक ने ही-ही हंसते हुए उसे ठेलकर कहा। लेकिन दूसरे ही क्षण उसका हंसता हुआ चेहरा सूख गया। रघू का बदन काठ जैसा सख्त हो गया था, उसके होंठों के कोने में फेन!

ऐ, रघू को क्या हो गया, देख तो।'

'हुआ और क्या?' लापरवाह लड़कों ने रघू के बदन पर हाथ रखकर पहले तो हंसी का फव्वारा छोड़ा—जरा इसकी चालाकी देख ले, कैसे मटका मार कर पड़ा है। अबे ऐ रघू, बदन पर चींटे छोड़ दूंगा, कहे देता हूं।'

बदन पर चींटे ही नहीं, कान में पानी डाला, पांव में चिकोटी काटी, सारा कुछ कर-कराके उसकी नींद नहीं तुड़ा सके तो उन्हें बेहद डर लगा। समझ लिया कि उसकी नींद टूटने की नहीं, यह नींद मौत की है। नहीं तो उसका वह वैसा बसंती रंग ऐसा बैंगनी क्यों हो जाएगा?

'चल, भाग चलें।' एक ने कहा।

'भाग चलें?' नेड़ू ने नकारा।

'भाग नहीं चलें तो क्या हम भी रघू के साथ यमराज के घर की यात्रा करें? घर के बड़े लोग देख लेंगे तो हमें जिंदा भी छोड़ेंगे?'

'बिलकुल ठीक कहा, तुप्दु का दादा दूध की बेहंगी से सिर फोड़ देगा।'

'वाह, इसमें हमारा कौन-सा कसूर है, हमने मार डाला है क्या?'

'यह भला कौन मानेगा! कहेगा, तुम सबके साथ खेल रहा था, तुम्हीं लोगों ने कुछ किया होगा। चल-चल, कोई देख-वेख लेगा।'

नेड़ू ने बिगड़कर कहा, 'खूब कही! आखिर रघू हमारा दोस्त है न! उसे स्यार-कुत्ते नोंच-नोंचकर खाएं और हम भाग चलें!'

रघू दोस्त है, यह बात सबके मन में काम कर रही थी, लेकिन उससे ज्यादा काम कर रहा था डर। लिहाजा एक वास्तववादी और ईश्वरवादी लड़के ने कहा, 'भगवान ने उसके नसीब में जो लिखा है, वही होगा, उसे कौन मेट

सकता है ? हमारी मजाल क्या है !'

'और जब रघू की मा कहेगी—बेटे, रघू तो तुम्हीं लोगों के साथ खेलने गया था, वह तो घर नही आया। वह कहां गया, बेटे ? तब क्या जवाब देगा ?'

'तो कह देंगे, आज वह हम लोगों के साथ नही गया था।'

'झूठ कह देगा ?'

'आखिर करेंगे क्या, आड़े पड़कर नारायण भी झूठ बोलते है।'

'हा, बोलते है ! तुझसे कहा है !' नेड़ू ने तीखे स्वर से कहा, 'तुम लोग रखवाली करो, मैं जाकर देखता हूं, मंझले चाचा हैं या नही।'

'अब मंझले चाचा ! उसे यमराज ने दबोच लिया रे, नेड़ू।'

'उससे मंझले चाचा नही डरते। जटा भैया की बीवी तो मर गयी थी, उसको नही बचाया ? कितनो को तो बचाते हैं। मैं गया नही कि आया। लेकिन दुर्भाग्य से अगर भेंट न हो, तब तो रघू की कोई आशा नही।'

लाचारी रघु के वास्तवतावादी मित्र 'स.पलायति' वाली नीति छोड़कर रघू को पहरा देने के लिए तैयार हो गए। ममता क्या उन्हें ही नही हो रही थी ? लेकिन करें तो क्या ?

उसके बाद आग की लपट की तरह ही संवाद ने यहां से वहां, इस घर से उस घर फैलकर इतने-इतने लोगों को बूढे बरगद के नीचे इकट्ठा किया।

उसके बाद सोच-विचार।

सर्दी-गर्मी ?

शरत काल मे ?

'क्यों नही। शरत काल की धूप ही तो जहर के समान होती है। गणेश तेली की साली का लड़का उस बार ठीक इसी तरह से···'

'और जीवन सुनार का भतीजा ?'

'नेपाल की भानजी भी तो···'

'अरे बाबा, वह यह नही है, वह और ही घटना···'

'मेरे फूफा-ससुर के यहां भी किसका बूढ़ा बाप घाट से लौटते वक्त···'

अचानक सागर-कलरव स्तब्ध हो गया।

'कविराजजी आ रहे हैं।'

घर पर नहीं थे, कहां से जाने लौटे और उलटे पावों पालकी से ही बरगद-तले पहुचे।

पड़े हुए लड़के की तरफ ताकते ही रामकाली चौंक उठे। पूछा, 'ऐसा किस समय से हुआ है ?'

नेड़ू ने डरते-डरते सारी घटना बताई। रामकाली झुके। उस लड़के की कलाई पकड़कर नब्ज देखी। निःश्वास छोड़कर उन्होंने पूछा, 'किसके खेत की ईख खायी थी?'

और सारे लड़के तो पहुंच से परे थे, नेड़ू ही सरकारी गवाह—सो लाचार उसने कहा, 'जी···बसाकों के खेत की।'

'किसी चीज ने काटा, ऐसा कहकर चीखा नहीं था?'

'नहीं तो।' नेड़ू अवाक्। सारी भीड़ एक आदमी के मुंह की ओर ताकती हुई चित्रलिखी-सी हो गयी। यहां तक कि तुण्डु भी स्तब्ध। हां किए ताक रहा था। शायद हो कि उम्मीद की किसी दुबली किरण से कुछ भरोसा हुआ।

कठोर नियति की तरह रामकाली ने उच्चारण किया—'सर्दी-गर्मी नहीं, सांप का विष है।'

'साप का विष!'

सभी एक साथ चीख उठे—'कहां? कहां काटा?'

रामकाली बोले, 'काटा कहीं नहीं है। यह तो इसके साथी ही कह रहे हैं। ईख खाने के साथ देह में विष गया है। थोड़ी देर पहले यदि मालूम होता तो कोशिश कर देखता। अब कोई उपाय नहीं है।'

'कविराजजी!' तुण्डु उनके पैरों पर पछाड़ खाकर गिरा—'दुनिया में आप सबको जीवन दे रहे हैं कविराजजी, और मेरे पोते के लिए कह रहे हैं, कोई उपाय नहीं है।'

अपने कपाल पर दाएं हाथ को रखकर रामकाली ने कहा—'मेरा भाग्य!'

'आपके पैरों पड़ती हूं, कोई दवा दीजिए।' तुण्डु की स्त्री आकर उनके पैरों पर गिर पड़ी।

रामकाली ने कोई जवाब नहीं दिया। लक्ष्यहीन दृष्टि से जनता की तरफ ताकते रहे।

'लेकिन साप का विष ईख के साथ कैसे आया?'

तुण्डु जैसे निरीह आदमी का इतना बड़ा शत्रु कौन हो सकता है, जो उसके वंश के एकमात्र चिराग को भी बुझा देगा?

किसी ने भीड़ में से पूछा, 'कविराजजी, आप साप का विष बता रहे हैं? तुण्डु का इतना बड़ा दुश्मन कौन है?'

एक व्यंग्य-तीखी हंसी के साथ रामकाली ने कहा, 'क्यों, ईश्वर! भगवान से बढ़कर मनुष्य का परम शत्रु और कौन है?'

लेकिन इतना संक्षिप्त भाषण समझे कौन?

विस्तार से जाने बिना लोग छोड़ें भी क्यों? 'सांप का विष', बस इतना ही फतवा जारी करने से चुपचाप प्रश्नों के विष से दहते जो रहेंगे लोग।

रामकाली को बताना ही पड़"'. साप ने काटा नही तो उसका ज़हर कैसे आया.?'

उत्तर से रामकाली ने सब की बोलती बंद करदी। ताज्जुब है !

ईख के खेत में सांप का विल था। ऐसा रहता ही है। जिस ईख की जड़ में विप की थैली थी, छोटे ने वही ईख खायी।

'यह क्या कह रहे है, कविराजजी ?'

'जो हकीकत है, वही कह रहा हूं।' हथेली की पीठ से रामकाली ने कपाल का पसीना पोंछा। गंभीर स्वर मे बोले—'नियति के ऊपर किसी का वश नही, आयु कोई नही दे सकता। ऐन वक्त पर पता होता तो जहर का असर मिटाने की कोशिश करता।'

सांप के विप की बात सुनकर कोई उत्साही आदमी हाड़ी-टोले से विंदा ओझा को बुला लाया।

विंदा ने धीरे-धीरे सिर हिलाया। यानी वही एक बात—'अब कोई उपाय नही है।'

लेकिन मरे को जिला चाहे न सके, जिंदे को तो मार सकता है विंदा ! जनता ने जोर डाला, 'विंदा सर्वनाश के मूल उस जन्तु को मंतर के जोर से मार दे !'

शायद हो कि लोगों की इस इच्छा मे दूसरी भी एक इच्छा छिपी हो। रामकाली कविराज के रूप मे देवता है, कोई शक नही, उनका कहा ठीक होता है, पर ऐसी कौतूहलभरी बात का निवटारा होना भी तो जरूरी है।

लोग विंदा को तकाजे करने लगे।

फीकी हंसी हंसकर रामकाली ने कहा, 'जाच देखना चाहते हो ?'

'राम-राम, यह क्या कह रहे हैं आप !'

'मैं जो कह रहा हूं, ग़लत नही कह रहा हूं भाइयो ! कोई कुछ कह दे और उस पर यक़ीन कर लिया जाए, यह भी कोई बात नही। लेकिन इस बेचारे लड़के की उचित व्यवस्था न करके···'

विंदा ने सर हिलाकर कहा, 'जी, जब विपहटी के बेटे ने नही काटा है, तो मुझे कुछ नही करना। स्वाभाविक मौत का जैसा होता है, वैसा ही करना होगा।'

'देख तो रहे हो, जहर से सारा शरीर नीला पड़ गया है !'

'देख तो रहा हूं सरकार ! असली गेंहुअन के काटने से जैसा होता है, हू-ब-हू वही लच्छन ! फिर भी जो नियम है।'

'तो फिर तुम लोग नाहक ही भीड़ न लगाकर काम मे जुट जाओ !' धीरे स्वर मे रामकाली बोले ! गोया रघु की ओर वे और ताक नही पा रहे हैं। परन्तु अभी काम मे जुटने कौन जाए ?

इस जोश ने लोगों को बेताब कर दिया था। सबने बिंदा को घेरकर चिल्लाना शुरू कर दिया, 'कौड़ी उड़ा! उड़ा कौड़ी! कम्बख्त सुड़-सुड़ करके तुम्हारे पिटारे में आ जाए। उसके बाद तो तू है और है तेरा जहरमहुरा! पटक के मार डाल!'

'तुम लोग ऐसा बचपना क्यों कर रहे हो? सांप मिल ही जाएगा, इसका क्या ठिकाना!'

'नही मिलेगा? मतलव? आप जब कह रहे है···'

'जहर तो बेशक है—लेकिन ईख का खेत महज मेरा अनुमान है। इसलिए कि कहते हैं ये, उससे पहले पानी-वानी कुछ नहीं पिया। लेकिन अभी अगर तुम लोग बिंदा की करामात के पीछे पड़ जाओगे तो···'

रामकाली को चाहे जो जितनी भय-भक्ति करता हो, आज की यह उत्तेजना उससे छलक पड़ी है। ईख की जड़ के पास सांप का बिल है और उस ईख को खाकर ग्वाला का हट्टा-कट्टा लड़का एक ही पल मे मर जाएगा? यदि यह सच है, तो नजरों के सामने इसकी कसौटी हो जानी चाहिए।

साप के बिल का पता चले बिना कोई हिलने का रवादार नही।

लिहाजा सब-कुछ जहा का तहां रह गया, रघु के संस्कार का किसी ने ख्याल भी नही किया। बिंदा ओझा साप पकड़ मंगाने का मंतर जोर-जोर से पढ़ने लगा।

रामकाली चुपचाप खड़े थे। शायद हो कि अखीर तक खड़े ही रहते, या कि बीच ही में कभी चले जाते, लेकिन अचानक संझले चाचा आ गए। दबे गले से आवाज दी—'रामकाली!'

गाव के और-और लोगो की तरह कुछ देर पहले संझले चाचा भी यहां से खोज-खबर लेकर लौट गए थे। फिर क्या सोचकर लौटे?

न, बात बताने को तैयार नही थे, वह!

लेकिन काम बहुत जरूरी है।

रामकाली को घर जाना होगा।

रामकाली ने दुबारा कुछ नही पूछा। धीरे-धीरे बूढ़े बरगद के नीचे से खिसक आए।

सोचा, 'मौत की वजह नहीं बतायी जाती, वही अच्छा था। मौत आखिर मौत ही है! मृत्यु का कारण बता पाने से ही क्या तुष्टु अपने पोते को फिर से पा जाएगा?'

'नही! फिर भी मौत के कारण के लिए दिमाग खपाया करते हैं लोग। मरे व्यक्ति के मारने वाले को फांसी दिलाने के लिए जीना-मरना एक करके लड़ते है।'

आकाश और पाताल ! पहाड़ और समंदर !

किस परिवेश से किस परिवेश में ।

घटना जो भी हो चाहे, रामकाली के अंत.पुर में भी लगभग शोक का ही दृश्य ! दीनतारिणी आंखें पोंछ रही है, आंखे पोंछ रही हैं काशीश्वरी, भुवनेश्वरी मूर्छित-सी एक ओर पड़ी है, मोक्षदा डपटती चल रही हैं और संझली चाची, कुज की बहू, आश्रिता अनुगता आदि सभी स्त्रिया दबी जबान से रामकाली की ज़िद, तेज़ और अदूरदर्शिता को कोस रही हैं ।

सिर्फ़ शारदा वहां नही थी । वह सत्य की ससुराल से आए हुए आदमी के खान-पान के इंतज़ाम में व्यस्त थी ।

तुष्टु के पोते वाली घटना से आज सारी बस्ती मे उथल-पुथल थी, लेकिन बाहर के ऐसे किसी मामले में इस घर की अंत:पुरिकाओं को झाकने की इजाजत नही थी । अवश्य मोक्षदा को छोडकर ।

मोक्षदा एक बार देखकर नहा आयी है । अब नही जाएगी । जाकर करेंगी भी क्या ?

सत्य के ससुर की चिट्ठी कुजविहारी ने पढ़ दी है । उसके बाद से ही घर में शोक का यह तूफान उठा है ।

सत्य के सास-ससुर यदि अपने बेटे का फिर से ब्याह कराएं तो लड़की की मौत से वह कम क्या है ? पराई बहू-बेटी को उदारता का उपदेश दिया जा सकता है, उसमे सौतिया डाह की झलक पाने से उसकी निंदा की जा सकती है, लेकिन घर की लड़की की बात अलग है ।

दिनभर के थके-मादे और तुष्टु के पोते की उस शोचनीय दशा से दु.खी मन लिए घर आते ही रामकाली ने यह सुना ।

तेज़-तीखी दोनों आखों के तारो में आग क दा अंगारे जल उठे । लगा, उबल पड़ेंगे, धीरज खोकर चीख उठेंगे । लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया । सिर्फ़ भारी भयानक स्वर से पूछा, 'चिट्ठी लेकर आया कौन है ?'

मोक्षदा के सिवाय इस समय उनके सामने जाने की हिम्मत किसे थी ? वही गयी । कहा, 'उनके यहां के एक अचारजी का लड़का ले आया है । गोपेन अचारजी या क्या तो बोला ।'

'कहां है वह ? चंडीमंडप मे ?'

'नही ! खाने बैठा है ।'

'ठीक है ! खा चुके तो उसे मेरे पास भेज देना । मैं चंडीमंडप में रहता हूं ।'

मोक्षदा दहल गयी । कहा, 'मगर तुमने भी तो आज नहाया-खाया नही है ।'

'जाने दो ! वेला झुक आयी ! संध्यान्हिक के बाद ही जो होगा !'

'आदमी वह ज़रा बिगड़ा मिज़ाज है। समझ-बूझकर बात करना।'

रामकाली ने त्योरी पर बल देकर कहा—'आदमी वह क्या है ?'

मैंने कहा, 'बिगड़ा मिज़ाज।'

मोक्षदा को हैरानी में डालते हुए हंस पड़े रामकाली—'तो क्या हुआ ? मैं तो बिगड़ा मिज़ाज नहीं हूं ?'

रामकाली ने कहा ठीक ही था।

उन्होंने दिल-दिमाग को खूब ठंडा ही रखा था। ज़रूरत से ज्यादा ही। गोपेन से समधियाने का कुशल-क्षेम पूछकर हंसते हुए कहा—'मैंने सुना, समधीजी के बेटे का ब्याह है ? उनसे कहना, सुनकर बड़ी खुशी हुई। न्योता आएगा तो जैसा चाहिए लौकिकता भेजूंगा।'

गंजेड़ी गोपेन कटु बोलने की तो दूर, बोलना ही भूल गया। हां किए ताकता रह गया।

'खाना-पीना हो चुका ?'

'जी हां !'

'आज रात तो अब नहीं लौट रहे हो न ?'

'जी नहीं !'

'ठीक है ? सवेरे नाश्ता-वास्ता करके जाना !'

'जी, यानी बिटिया को नहीं भेज रहे हैं ?'

'बिटिया ? किसकी बिटिया ? कहां भेजने को कहते हो ?'

गोपेन ने अबकी थोड़ी-सी हिम्मत बटोरी—'जी, जी, आपकी बिटिया के सिवाय आपको मैं और किसकी बात कह सकता हूं ? तो आप उसे नहीं भेजेंगे ?'

'अरे भैया, भेजूं कहां, यह तो कहो ? भले घर की लड़की भले आदमी के ही घर में जा सकती है, जहां-तहां तो नहीं जा सकती ?'

गोपेन का सूखा चेहरा बिदक गया। 'खैर, तो वैसा ही लिख दीजिए।'

'चिट्ठी लिखनी होगी ? यह छोटी-सी बात तुम कह नहीं सकोगे ?'

'जी नहीं ! मैं गजेड़ी-नशाखोर ठहरा, मेरी बात का विश्वास करें न करें। जब आया हूं, तो पक्का कागज ही ले जाऊंगा !'

'हूं।' ज़रा देर भंवे सिकोड़कर चुप रहे रामकाली। उसके बाद बोले—'खैर ! लिख रखूंगा ! सवेरे जाते वक्त ले लेना !'

सांझ हो चुकी थी। तो भी वे धीरे-धीरे निकल पड़े।

घर से ज़रा ही दूर बढ़ने के बाद वे ठिठक गए।

वह तेजी से आ कौन रही है ? सत्यवती है न ?

'अरे, तू ? अकेली यहां ?'

'अकेली नहीं बाबूजी, नेड़ू आया था। वह अभी लौटा नहीं।'

'आयी क्यों थी ?'

'यह क्यों पूछ रहे है ? रघु को अंतिम बार के लिए देखने आयी थी।'

'यों आकर अच्छा नहीं किया ! संझली दादी को साथ ले आती !'

'उनका तो आठ बार नहाना हो चुका है। अब आती भला।'

'खैर ! घर जाओ !'

'जा रही हूं ! बाबूजी···'

'क्यों, कुछ कहना है ?'

'कहती हूं—कहीं से चिट्ठी लेकर कोई आया है न ?'

बेटी के मुह से यह प्रसंग सुनकर रामकाली अवाक् हुए। फिर सोचा, यह तो सदा की बेपरवाह है। ससुराल जाने के डर से बाप के पास दरखास्त करने आयी है ! स्नेह से बोले, 'हां, आया तो है ! तेरी ससुराल से ! तो ?'

'मैं कह रही थी···' बोलते हुए सत्यवती को झिझक ? आश्चर्य !

रामकाली मन ही मन हंसे। लड़कियों के लिए ससुराल शब्द ही ऐसा है। बोले, 'कहो, क्या कहना है ?'

'अभी रहने दीजिए ! आप लौटकर आइए ! सम्हालकर कहने की बात है ! रघु की लाश देखने के बाद से मन रो रहा है। घर जाकर ज़रा सुस्ता लू।'

'अच्छा !' रामकाली चले गए।

ऐसी अबोध लड़की ! इसे अभी ससुराल भेजा जा सकता है ? असम्भव !

मिल गया ! मिल गया !

बहुतेरे कण्ठों की एक उल्लास ध्वनि कविराजजी के घर की ओर तैरती आयी—कविराजजी, मिल गया !

क्या मिल गया ? इतना उल्लास काहे का ? किस परम प्राप्ति से आदमी ऐसा उन्मत्त हो जा सकता है ? रामकाली चंडीमंडप के बरामदे से उतरे। तो क्या तुप्टु के पूर्वजन्म के पुण्य से रघु की जान ही मिल गयी ? कलजुग में भी भगवान कान से सुन पाते है ?

रघु क्या केवल बेहोश हो गया था ?

मृत्यु के आस-पास अचेतनता की जो गहरी परत है, वहीं डूबा हुआ था ? जटा की बहू की तरह ! रामकाली के निर्णय में भूल हुई ! वही हो ! हे ईश्वर, एक बार के लिए तुम रामकाली के घमंड को चूर करो, एक बार के लिए यह

साबित कर दो कि रामकाली का निर्णय गलत है !

नः ! कलजुग में भगवान गूगा है, बहरा है, ठूंठा है। उसे रामकाली का घमंड चूर करने से भी गरज नही। उन लोगों को रघु की जान वापस नही मिली, मिला उसका प्राण लेने वाला। ओझा के मंतर के जोर से सांप आकर फनभरे मुह से लोट पड़ा है।

ओझा ने उस साप को रखना चाहा था। बड़ी निहोरा-विनती की थी—ऐसा असली साप शायद ही मिलता है ! लेकिन लोगों के गुस्से का शिकार होने से वह उसे नही बचा सका। मारे लाठी के लोगों ने उसे चीरकर चपटा कर दिया।

बास की लाठी की नोक पर उसी सांप को लटकाए वे लोग रामकाली की जय-जयकार करने आए थे। काला-कलूटा ओझा भी अपनी गुठलीभरा शरीर लिए बख्शीश की उम्मीद से आ रहा था। रामकाली क्या मोटा इनाम नही देंगे ! ओझा की सफलता रामकाली की भी सफलता है !

उमंग से चीखते वे लोग जैसे बर्बरता के प्रतीक थे। घृणा और धिक्कार से रामकाली का मन विषाक्त हो उठा। हाथ उठाकर उन्हें रुकने का इशारा करते हुए बोले, 'हुआ क्या है ? इतनी स्फूर्ति किस बात की ? रघु जी गया ?'

'जी उठेगा !' एक ने बड़े उत्साह के साथ कहा—'भगवान की भी क्या मजाल, उसे जिलाए ! एक बारगी कालनागिन का विष ! मगर आपकी शिक्षा धन्य है, कविराजजी ! काटा नही है, सिर्फ...'

'ठहरो !' डपट उठे रामकाली—'इसके लिए इतनी हलचल क्यों ? एक लड़का अभी तक मरा पड़ा है...!'

अचानक एक प्रबल आवेग से रामकाली का गला रुंध आया, जैसा कि उन्हें होता नही है। रघु की यह शोचनीय मृत्यु उन्हें बड़ी लगी। बार-बार यह लग रहा था कि समय पर हाथ में आता, तो वह बच जाता।

सोचना चाहा, नियति अमोघ है, आयु निश्चित है—ऐसा सोचना मूर्खता है, फिर भी ऐसा सोचने से अपने को रोक नहीं पाते। विष दूर करने-वाली दवाओं के नाम और चेहरे उन्हें धक्का दे रहे थे।

'जी सरकार, जिसे मां विषहटी उठा लेती हैं, उसका कोई क्या कर सकता है ? लेकिन आपने अपना कमाल जरूर दिखाया।' ओझा ने कहा—'परन्तु मुझे भी मुह से खून उबलाकर खटना पड़ा है। दईमारी आना क्या चाह रही थी ? चरम मतर पढ़कर तब...'

'ठीक है ! सुनकर खुशी हुई ! अब जाकर उसकी सद्‌गति करो !' सांप को मारने से शास्त्रीय आचार से उसकी सद्‌गति का नियम है—रामकाली ने

इसीलिए ऐसा कहा। उसके बाद फिर गाढ़े स्वर में बोले—'और उस अभागे के भी संस्कार का इंतज़ाम करो! अकेले तुष्टु पर ही छोड़कर निश्चित मत हो जाओ।'

जनता का उत्साह कुछ मंद पड़ा। यह क्या हुआ? ऐसी उम्मीद करके तो नहीं आए थे वे! सोचा था, सांप निकला, रामकाली ज़रूर खिल पड़ेंगे। क्योंकि यह उनकी जय-पताका है। कविराजजी पर असीम विश्वास होते हुए भी बहुतों में एक संदेह झांक गया था।

रामकाली ने बात भी तो असंभव ही कही थी। असंभव भी संभव होता है, इस बात को साप के सिवा साबित कौन करता? लेकिन रामकाली जैसे निर्विकार!

लोग थोड़ा मायूस हुए।

'वह इंतज़ाम हो रहा है, कविराजजी! अब तक शायद बास काटे जा चुके होंगे। लेकिन बात है, साप का काटा—लाश को तो पानी में बहाना पड़ेगा।'

रामकाली ने कहा, 'नहीं! साप ने नही काटा है। बदस्तूर लाश को फूंकने की ही व्यवस्था करो। इतना हो-हल्ला मत करो।'

कंधे पर बास उठाकर चले गए वे लोग। उनके पीछे गांव के लड़के-लड़किया, इतर-भद्र। उनकी ओर देखते हुए रामकाली के जी मे आया—'ये ही लोग हमारे आत्मीय है! हमारे पड़ोसी! जंगली संतालों से ये ऐसे क्या उन्नत हैं? मौक़ा मिलते ही तो उसी जंगलीपने मे रंग जाना चाहते हैं। मृत्यु की जो थोडी-सी श्रद्धा करनी होती है, उस श्रद्धा का लक्षण जो मौन है, इसकी भी तो थोड़ी-सी समझ इन्हें नही है।'

'मालिक मेरी बख्शीश!'

'बख्शीश!' भंवों की तीव्रता से ललाट पर रेखा खीचते हुए रामकाली ने कहा—'बख्शीश किस बात की?'

'जी...'

मैंने कहा, 'बख्शीश काहे की? लड़के को बचाया?'

'जी, मरे को कौन जिला सकता है?'

'हां! यह मैं जानता हू। सिर्फ यही नहीं समझ पा रहा हूं कि बख्शीश का हक तुम्हें कैसे हुआ?'

'ठीक है, बख्शीश न सही, मज़ूरी तो देंगे सरकार!'

'मज़ूरी वे लोग देंगे, जो तुम्हें बुलाकर लाए हैं। मैंने तुम्हें नही बुलाया।'

'इतने लोगों मे मैं किसे पकड़ूं हुज़ूर?' ओझा ने कहा—'न देंगे तो चला जाऊंगा! ग़रीब आदमी हूं!।'

बनियान के जेब से दो रुपए निकालकर उसे देते हुए रामकाली और भी

गहरे स्वर में बोले, 'सिर्फ मजूरी ही तो नहीं—एक सांप की कीमत ! वैसा कीमती साप चला गया तुम्हारा !'

बूढ़े ओझा ने विह्वल दृष्टि से ताकते हुए कहा—'यह क्या कह रहे है हुजूर ?'

'जो कह रहा हूं, ठीक ही समझ रहे हो ।···जाओ ।'

'जी···'

'तुम्हारे पिटारे में कै साप थे ?' उस पर अपलक आखें रोपकर रामकाली ने आहिस्ते से कहा ।

उस नजर के सामने बूढे ओझा का कलेजा काप उठा । रुआसा-सा होकर बोला, 'हुजूर, आप अंतरजामी हैं···'

'मान रहे हो ! खैर ! जाओ ! डरने की बात नहीं ।'

रुपया और निर्भयता— दोनों ही मिला उसे, सो वह खड़ा नहीं रहा । क्या पता, अग्निमुख-देवता कहीं पलट जाएं !

रामकाली एक अजीब नजर से ताकते रहे । सांप के बारे में संदेह हुआ था, लेकिन यह नहीं सोचा था कि वह इस आसानी से कबूल कर लेगा । एक ही बात मे सिकुड़कर केंचुआ हो जाएगा ।

एक उदास पीड़ा से जी भारी हो उठा । शरीर का रोग मिटाना तो चिकित्सक के हाथ है, लेकिन मन का रोग कौन दूर करेगा ? कुसंस्कार, अज्ञता, मूर्खता और उसके साथ सोलहो आना कुटिल बुद्धि । गजब !

अंधेरा हो गया । आह्निक का समय बीत चला, तो भी बरामदे की छोटी-सी चौकी पर बैठे रहे रामकाली । पावों में खड़ाऊं नही, दोनों पैर चौकी पर । अंधेरे में खड़ाऊं की चादी की घुंडी चकचक कर रही थी ।

'बाबूजी !'

अयाचित इस पुकार से चौंक उठे ।

'सत्य ! तुम यहां ? ओ, आह्निक का समय बीत गया है, इसी की याद दिलाने आयी हो । जाता हू बिटिया ! तुम अदर जाओ ।'

'मैं वह बात नही कहने आयी हूं !'

'तो ?'

'कह रही थी···' प्राय: आखिरदम-सी होकर बोल गयी—'बारुईपुर से जो आदमी आया है, उसे हां ही कर दीजिए न !'

'बारुईपुर के !' रामकाली ने अवाक् होकर कहा—'हां कर दू ? क्या हां कर दू ?'

'आप तो समझ ही रहे हैं । बेहया-सी जबान खोलकर मैं क्या कहूं ?'

अधेरे में रामकाली बेटी का मुह नहीं देख पा रहे थे, स्वर पकड़ पा रहे

थे, तो भी वास्तव मे समझ नहीं पा रहे थे, सत्य कहना क्या चाह रही है। बारुईपुर के आदमी के जाने के बारे में हां कहा चाह रही है क्या ? वह राय तो उन्होंने दे ही दी है। शायद हो कि घर की औरतें अभी उसे खींच ही तान रही हों।

भरोसा देते हुए बोले, 'डरो मत ! ससुराल तुम्हें अभी नही जाना होगा !'

सत्य समझ गयी, पिता ने उसका आशय नहीं समझा। समझने की बात भी नही। कौन लड़की है जो सत्य की तरह अपना गला आप ही काटना चाहती है ? लेकिन सात-पाच विचार कर सत्य जो यही चाहती है—बलि की काठी मे गला डाल देना चाहती है। फुआ-दादियों के दल ने जोर गले से ऐलान कर दिया, अहंकार से धरती को कटोरा देखता है रामकाली, बेटी का नसीब बिगाड़ दिया ! आखिर नातेदार हाड़-मांस के ही तो पुतले है, काठ के नही ! इतना अपमान सहकर बैठे रहेंगे ? वे बेटे का खामखा ब्याह कराएंगे और रामकाली लड़की को गले में बांधे बैठे रहेंगे। गले पड़ी बेटी यानी हाथ-पाव की बेड़ी।

सत्य ने सोच लिया है, बाप-मा के हाथ-पांव की बेड़ी बनकर रहना ठीक नही। उससे बाप मे सुमति उपजाना ही अच्छा है।

लेकिन पिता तो उसका मतलब ही नही समझ रहे है।

लिहाजा लाज का परदा नही रखा जा सका। सुबह जैसे चिरायता पीते है, उसी तरह आख-कान मूदकर बोल बैठी—'मैं उस डर से नही डर रही हूं बाबूजी, बल्कि ठीक उलटी बात कह रही हूं। आप मुझे भेजने को राजी हो जाइए, मेरे नसीब मे जो बदा होगा, होगा।'

रामकाली दंग रह गए।

लड़की के दुस्साहस का परिचय बहुत बार पा चुके है और उन दुस्साहसों को पचाया भी है। क्योंकि उनके मतलब को समझा। लेकिन यह क्या है ? खुद कहकर ससुराल जाना चाह रही है !

वयस्क भी नही है कि कहने का और अर्थ लगाएं।

गला उनका गंभीर हो गया, शायद कुछ रूखा भी—'तुम स्वेच्छा से ससुराल जाना चाह रही हो ?'

'जाना कुछ शौक से थोड़े ही चाह रही हूं ?' पिता के कंठस्वर की दृढ़ता ने सत्य की आखों में आसू ला दिया—'बहुत सोच-विचारकर चाह रही हूं। कुटुंब को नाराज करना आफत को ही तो न्योता देना है।'

रामकाली समझ गए, घर मे इसी तरह की बातों की खेती चल रही है। अबोध बच्ची तो सीखे ही गी। लेकिन, तो क्या इतनी अबोध है कि बाप के

सामने कौन-सी बात नही कहनी चाहिए, यह भी नही समझती।

कठिन स्वर में बोले, 'अपनी आफत की मैं आप ही सोचूंगा, तुम बच्ची हो, इन बातों में रहने-सोचने की तुम्हें ज़रूरत नही ! यह वाचालता है।'

लेकिन सत्य तो दबने वाली नही।

छोड़ भागना सत्य के टिप्पण में नही लिखा है। इसलिए मुरझा जाने के बावजूद जोरदार स्वर में बोली, 'सो तो मैं समझती हूं कि यह वाचालता है, निर्लज्जता है, मगर उपाय क्या है ? समस्या जो बडी है। इसके बाद जब मेरे लिए आपको भोगना पड़ेगा, तो मरकर भी आप शान्ति नही पाएंगे। सुना, वे लोग फिर से बेटे का ब्याह करेंगे। यह तो अपमान है। तुच्छ एक लडकी के लिए आपका सिर नीचा क्यों हो ?'

रामकाली को लगा, ज़ोर की डांट बताकर उसकी वाचालता को बंद कर दें, लेकिन उसी वक्त फिर उलटे ही भाव का धक्का लगा। इस लड़की के मन में है क्या ? इत्ती-सी लड़की, इतनी बातें सोचती ही क्यो है ? ऐसा दुर्जय साहस ही उसने कहा से बटोरा ?

अपने बाप से ससुराल जाने की बात कभी किसी लड़की ने दुनिया मे की है ? और फिर रामकाली जैसे बाप से, जिनसे उनकी मा दीनतारिणी भी सम्हलकर चलती है ? इसके सिवा ससुराल शब्द ही तो लड़कियों के लिए बाघ-भालू, भूत-चोर, सांप-खोप जैसा डरावना है। सत्य ने उस डर को भी किस निर्भय मंत्र से जीत लिया है ?

तय किया, उसे डाटकर चुप नही करेंगे, धीरज से अंत तक उसकी बात सुनेंगे। उसके मन की गति के वैचित्र्य को देखेंगे।

शात स्वर से बोले, 'लड़की तुच्छ होती है, यह बात तो तुम कभी नहीं कहती हो ?'

'परिस्थिति कहला रही है बाबूजी ! तुच्छ न होती तो झटपट उसे परगोत्र कर दिया जाता ? इकलौती हूं, तो भी तो घर मे नही रख सके। तो फिर नाहक ही माया में जकड़ने से क्या फायदा ? जब परगोत्र ही कर दिया, तो वश क्या रहा ? आज नही तो कल भेजना ही होगा। कह तो नही सकते है कि अपनी बेटी को नही भेजूगा। तो फिर ?'

'भेजने का एक समय है, नियम है। वह अभी तुम नही समझोगी। उसके लिए दिमाग क्यों खराब करती हो। अंदर जाओ !'

'अंदर तो जा रही हूं, लेकिन मन में उथल-पुथल जो मची हुई है। रघु की मौत ने आज मेरी आखें खोल दी है। जब ईश्वर के राज्य मे ही समय की पाबंदी नही है, नियम नही है, तो आदमी का क्या रहेगा ? आज मुझे पराए घर भेजने मे आपका कलेजा टूक-टूक हो रहा है, लेकिन अभी ही अगर

मौत आ खड़ी हो, उसके हाथों तो सौंप ही देना पड़ेगा ?' अचानक आंचल से उसने आंखें पोंछीं। उसके बाद भारी गले से बोली, 'वैसे में तो नहीं कह सकेंगे आप कि अभी समय नहीं हुआ है, नियम नही है। ससुराल और यमराज का घर जब समान ही है, तो आप मन मे खेद न कीजिए। भेज दीजिए। सोच लीजिए कि सत्य मर गयी।'

सत्य से और सख्त रहते न बना। अपनी काल्पनिक मृत्यु के शोक से ही रो पड़ी।

सन्न-से रामकाली रोती हुई बेटी की तरफ ताकते रहे। यह लड़की सिर्फ सुनी-सुनायी बोलियां उगला करती है या ऐसा ही सोचती है ?

जरा देर में चुप्पी तोड़कर वह बोले, 'जी टूटने की बात मै नही सोचता सत्य, तुमने बड़ों की तरह बोलना सीखा है, इसी से कहता हूं, तुम्हें भेजने से मेरा मान जाता रहेगा।'

सत्य ने गहरे दु.ख से हताश स्वर मे कहा, 'समझती हूं बाबूजी ! भला समझती नही हूं ? लेकिन यह तो महज उन्ही के सामने मान रहना और मान जाना है। गले में कपड़ा डालकर जिस दिन आपने उनके घर बेटी दी है, मान तो उसी दिन गया है। लेकिन वे लोग अगर आपकी बेटी को छोड़ दें, तब तो सारी दुनिया के सामने हेठी होगी ! आप दोनों तरफ की सोचें।'

रामकाली के मुह से अब बोली नहीं फूट रही थी, भापा जैसे स्तब्ध हो गयी हो। यह लड़की क्या वास्तव में बालिका नही, इसमे कोई शक्ति प्रकट होती है ? बुद्धि की शक्ति, वाक्य की शक्ति ?

'अच्छा तुम जाओ ! मैं सोच देखता हूं।'

'सोचिए ! जो भी हो, रातभर मे ही सोच लीजिए। वह कम्बख्त तो रात बीतते ही विदा होगा।'

'छिः बिटिया ! ससुराल के आदमी को क्या ऐसा कहना चाहिए ?'

'जानती हूं, नही कहना चाहिए, लेकिन जी जो जल गया है। कुटुब घर भेजने जैसा कोई योग्य आदमी भी नहीं मिला उन्हें ?'

रामकाली ने जरा पिघलकर कहा, 'तू तो मेरा सिर नीचा होने के डर से डर रही है, पर तेरे ससुर क्या तुझे त्यागे बिना छोड़ेंगे ? दो दिन के बाद ही तो वापस भेज देंगे। तेरे साथ कौन घर करेगा सत्य ? इतनी बात कौन सह सकेगा ?'

सत्य के गर्व ने साथ सिर ऊंचा करके कहा, 'उसके लिए आप निश्चिंत रहें बाबूजी, सत्य के चलते आप का सिर कभी नीचा नही होगा।'

गहरे स्नेह से रामकाली ने बेटी की पीठ पर हाथ रखा।

वह मानो समझ नहीं पाते कि यह लड़की क्या है ? रह-रहकर वह गोया

एक तीखे सवाल-सी सामने आकर खड़ी होती है। जो-जो बातें कहती है, सब समय सीखी हुई बातें कहकर उन्हें उड़ा देना कठिन है। वे बातें सोच में डाल देती है, डरा देती हैं। फिर भी रामकाली ने उसे समझा है, दुनिया समझेगी !

वह साधारण क्यों न हुई ?

पुन्नू जैसी ? घर की दूसरी लड़कियों जैसी ? या कि अपनी मां जैसी ? यही तो स्वाभाविक था, यही उचित होता। रामकाली उसके लिए निश्चिंत रहते। सुखी होते।

लेकिन ? सच ही क्या सुखी होते ? सत्य मामूली-सी होती, बुद्धू होती, मोथरी होती तो ? केवल स्नेह का वजन बढ़ाकर पलड़े को इतना भारी कर सकते ? सत्य एक कीमती चीज है, यह सोच सकते ? कहा—'अंदर जा बिटिया, अब आह्निक करूंगा।'

'जाती हूं !' और रामकाली की वह असाधारण लड़की सहसा एक हास्यकर साधारण-सी बात कह बैठी—'ज़रा अंदर दालान तक पहुंचा दीजिएगा ?'

'पहुंचा दू ? क्यों रे ?'

'रघू वाला दृश्य जो देखा है, तबसे बदन कैसा तो छम-छम कर रहा है। *अंगना में बड़ा अंधेरा है।*'

'हां-हा चल ! चल रहा हूं। खामखा क्यों जो गई वहां। जाकर अच्छा नहीं किया।'

अपनी बिटिया का यह डर देखकर रामकाली क्या कुछ आश्वस्त हुए ?

बड़े अंधेरे को पार करके सत्य एक बार ठिठक गयी। उसके बाद टप् से बोली, "सोचना भूल मत जाइएगा।'

'सोचना ? क्या सोचना ? ओ !' अनमने से सचेत हो गए रामकाली—"सोच लिया। भेज ही दूंगा तुम्हे।'

सत्य रुलाई से छलक आयी—'मुझपर नाराज हो गए बाबूजी ?

'नही ! नाराज़ नही हुआ हूं।'

'फिर से लिवा लाइएगा तो ?' रुलाई अदम्य हो उठी।

'यदि वे भेजें।' रामकाली ने निर्विकार की नाईं कहा।

'भेजेंगे नही, हुंः।' पल मे रुलाई रोककर दमक उठी सत्य—'आप उनका मान रख रहे हैं और वे आप का मान नहीं रखेंगे ? पीछे उन लोगों से अनबन हो, यही सोचकर कलेजा चौचीर होते हुए भी मैं जाना चाह रही हूं, वे इस बात को नही समझेंगे !'

रामकाली फिर एक बार दंग रह गए।

इतने छोटे-से दिमाग से इतना डूबकर यह सोचती कैसे है ? इसके बाद

उन्होंने हताशा का निःश्वास छोड़ा, 'काश, समझने की बात सभी समझते!'

लड़की के ब्याह के समय जामाता का रूप देख लिया जा सकता है, कुल देख लिया जा सकता है, अवस्था देख ली जा सकती है, लेकिन उसके सारे परिवार-परिजन की प्रकृति तो नही देखी जा सकती!

रामकाली ने बेटी को गौरीदान किया है।

लड़का खोजने के समय दीनतारिणी ने कहा था, तुम्हारे तो बस एक ही लड़की है, उसे पराए घर क्या देना? कोई सुन्दर-सा कुलीन लड़का ढूंढ़ लाओ। उसे घर जमाई रखना।

भुवनेश्वरी भी सास की आड़ में राय सुनने के लिए धड़कते दिल से बैठी थी, लेकिन रामकाली ने उनकी आशा पर पानी फेर दिया। बोले, 'घर जमाई? छिः-छिः-छिः।'

भय को ज़िद में बदलकर दीनतारिणी ने कहा, 'क्यों? लोग क्या ऐसा नही करते?'

'लोग तो जानें कितना क्या करते हैं।'

'लेकिन बहू के जो और बाल-बच्चा होगा, ऐसा लच्छन तो नही दीखता। जन्मपत्रो में भी एक ही संतान है। ऐसे में तुम्हारी ज़मीन-जायदाद तो जमाई को ही मिलेगी। शुरू से उसे गढ़-गढ़ाकर तैयार करने से…'

तीखे प्रतिवाद से रामकाली ने मां को चुप कर दिया था—'रासू के रहते, उसके भाइयों के रहते जगह-जायदाद जमाई की होगी, यह बात तुमने ज़बान पर कैसे लायी मा? छिः-छिः! सत्य अपने बाप के टुकड़ो पर क्यों पलेगी? ऐसा लड़का ढूंढूगा कि जमाई को ससुर की सम्पत्ति का लोभ न हो!'

और रामकाली ने अपनी वह बात रखी थी।

ऐसी जगह लड़की की शादी की कि उन लोगों को ससुर की सम्पत्ति पर लोभ करने की ज़रूरत नही।

उन्हे काफी कुछ है। वह भी बाप का एक ही लड़का है।

सुना, बाप थोड़ा कजूस है। उसका क्या किया जाए? सब-कुछ क्या निर्दोष होता है?

चांद के टुकड़े-सा जामाता!

परम कुलीन!

इससे ज़्यादा और क्या देखा जाता है?

लेकिन लोभ क्या आदमी ज़रूरत समझकर करता है? रामकाली ने स्वप्न मे भी क्या यह सोचा है कि उनके परम कुलीन समधीजी उनकी सम्पत्ति पर गिद्ध-दृष्टि लगाए बैठे हैं? ऐसा लोभ कि रामकाली का मर जाना ही उनके

लिए काम्य है।

उम्र में रामकाली से दस साल के बड़े हैं, तो भी उन्हें आशा है, वे सदा रहेंगे।

रामकाली को इन बातों का पता नही है।

सिर्फ़ इतना ही मालूम है कि जमाई पढ़-लिख रहा है। जानकर संतुष्ट हुए हैं।

म्लेच्छ विद्या को हेय मानें, रामकाली में ऐसा कुसंस्कार नही है। सीखे, अच्छा ही है। आजकल तो म्लेच्छों का ही राज है।

१९.

लक्ष्मीकांत बनर्जी चल बसे।

पुण्यवान पुरुष, नियम का शरीर, न भोगे न भोगाय, होशोहवास के साथ चल दिए। सवेरे भी जैसे करते थे, स्नान किया, फूल तोड़ा, पूजा की। पूजा पर से उठे तो बड़े लड़के को बुलाकर कहा, 'आज तुम लोग ज़रा सवेरे-सवेरे खाना-पीना कर लो! मेरी तबीयत ठीक नही लग रही है। लगता है, पुकार आ पहुची।'

बड़ा लड़का अकचकाकर ताकने लगा—शायद समझ भी नहीं पाया कि उनकी तबीयत खराब होने से इनके खाना-पीना कर लेने का कौन-सा सम्बन्ध है। और, इस पुकार का ही क्या मतलब है!

लड़के के उस सूधेपन से लक्ष्मीकांत हसे। हंसकर कहा, 'खा-पीकर दोनों भाई आकर मेरे पास बैठना! कुछ उपदेश दे जाऊंगा। अवश्य, उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है, जानता ही कितना हूं, दुनिया को देखा ही कितना है, फिर भी उम्र की अभिज्ञता है। बहूरानियों से जाकर कह दो, भोजन में प्रकार के पीछे जिसमें विलम्ब न करें।

बाप सिर्फ उन्ही के खाने की कह रहे हैं! और अपना?

बड़े बेटे ने रुंधे गले से कहा, 'आपका भोजन कब बनेगा?'

'लो, बेवकूफ लड़के, विचलित क्यों हो रहे हो? आज मेरी पूर्णिमा है। अन्न आज नही! थोड़ा-सा फलाहार कर लूगा, नारायण का प्रसाद! प्रसाद से चित्त की, देह की शुद्धि होती है।'

बड़ा लड़का छोटे के पास गया। जाकर टूट पड़ा। उसके बाद भीतर महल की स्त्रियों को पता चला। कुछ ही देर में सारे घर मे शोक की छाया उतर आयी। किसी ने अविश्वास नही किया, किसी ने इसे हास्यकर समझकर उड़ा-

नहीं दिया—इसे निश्चित और अमोघ समझकर सब मायूस हो गए।

यह संवाद देखते ही देखते तमाम फैल गया, क्योंकि आग कभी एक ही जगह सीमित नहीं रहती।

चारो ओर वात फैल गयी, बनर्जीजी चले !

गोया बनर्जी विदेश भ्रमण को जा रहे हैं, नाव किराए पर ठीक हो गयी है, संगी-साथी कहीं तैयार खड़े हैं !

आगन में तुलसी चौरा के पास उनकी अंतिम शय्या विछा दी गयी है, तकिए पर सिर रखकर दोनों हाथ छाती पर जोड़े बनर्जी सीधे लेटे हुए हैं।

ललाट पर चंदन से लिखा हरिनाम ! दोनों पलकों और कानों में चंदनसना तुलसी का पत्ता। छाती पर हाथ की लिखी छोटी-सी एक पोथी। लक्ष्मीकांत के अपने हाथ की लिखी पोथी—गीता के कुछ श्लोक। रोज़ पाठ करते थे, उसे साथ दे दिया जा रहा है।

यात्राकाल में कोई छुएगा नही, यात्री को मनाही है। उनके बिस्तर से हटकर आसपास बैठे हैं लड़के, टोले के मुख्य-मुख्य व्यक्ति।

लम्बे घूंघट मे अंत.पुरिकाएं ही करीब में बैठी चुपचाप आसू बहा रही है।

जब तक मौत की घड़ी न आए, जोर से रोने की गुंजाइश नही। इसकी भी मनाही है। रुलाई आत्मा की ऊर्ध्वगति की बाधा है।

बनर्जी-पत्नी भी उस मनाही को मानती हुई चुपचाप रो रही है।

घोषाल आकर खड़े हुए।

कापते हुए गले से कहा, 'जनक राजा की तरह चल दिए बनर्जी ?'

लक्ष्मीकांत ने हंसते हुए धीमे से कहा, 'विदेश से स्वदेश ! विमाता के पास से अपनी मां के पास !'

उसके बाद लड़कों को देखकर बोले, 'तारक ब्रह्म !' अर्थात् व्यर्थ की बातों में समय क्या बिताना !

नमो नारायणाय नमो नारायणाय हरेर्नामैव केवलम्।

लक्ष्मीकात ने धीरे-धीरे पलकें बंद की। तुलसी के पत्तों ने पलकों को ढंक दिया।

सांसों के उठने-गिरने के साथ-साथ अंदर-अदर नाम जप चलता रहा।

एक समय सास थम गयी।

उम्र हो चुकी थी उनकी ! भोगा नही, भोगाया नही, चल दिए। इसमें दुःख की कोई बात नहीं। कम से कम दु.ख करना उचित नहीं ! आदमी तो मरने के लिए ही दुनिया में आया है। अपने इस अंतिम और सबसे अच्छे काम को यदि वह निपुणता से, निर्दोष भाव से कर जा सके तो इससे और खुशी की

बात क्या हो सकती है ?

न, लक्ष्मीकांत की मृत्यु से कोई दु:ख नहीं।

फिर भी सगे-सम्बन्धियों को दु:ख हुआ।

माया में बंधा जीव दु:ख पाए बिना जाए कहां ?

लेकिन निकट आत्मीय न होते हुए भी एक इस मृत्यु से दु:ख के सागर में उतरने लगी, वह थी शारदा !

श्राद्ध में नए नातेदार को बनर्जी के लड़कों ने न्योता भेजा है और 'नियम भंग' तक रहने का अनुरोध करते हुए रासू को लिवा लाने के लिए आदमी भेजा !

तुलना के लहजे से कहें तो शारदा के माथे पर ईंट दे मारी है।

ले कल जाएगा और बात दिनभर चल रही है।

खबर पाते ही रामकाली जाकर देख आए हैं और लौकिकता के नाते जो चाहिए, भेज दिया है। काफी ही भेजा है।

अब रासू के साथ कोई जाएगा। श्राद्ध की 'सभाप्रणामी' और घाट-नहान के लिए सबके कपड़े ले जाएगा। 'नियम भंग' के दिन तालाब में जाल डाला जाएगा, मछली भेजी जाएगी, रासू की सासों के लिए अलता-पान-सुपारी जाएगी।

तमाम दिन यही बातें चल रही थीं।

शारदा को लग रहा था, सब मे जैसे अती हो रही है।

उसके बाप की चाची जो उस बार मरी, तो कहां, इतना तो नही हुआ !

जाने दो ! पैसे हैं, लुटाएंगे !

लेकिन शारदा का खास तालुका न बिक जाए इस मौके से !

रात के सिवाय कुछ बोलने का उपाय नही ! धड़कते दिल से गिरस्ती के काम-काज करती घड़िया गिनती रही वह !

फिर भी उन लोगो को अकल है। दिन ही दिन मे लिवा नही गए। एक रात हाथ मे है।

इस घर में खाते-पीते आधी रात हो जाती है।

तो भी आखिर वह मागी हुई घड़ी आयी।

अब दरवाजे का हुड़का लगा दिया जा सकता है, सारे संसार से अलग होकर दोनो जने पास-पास बैठ सकते हैं।

झट से बोलने की आदत नहीं है शारदा की।

पहले तो वह दीये की बाती को उसकाती है, उस पर कटोरा रखकर बच्चे का दूध गरम करती है, बच्चे को जगाकर दूध पिलाती है, उसके बाद थपथपाकर उसे सुला देती है, तब इस तरफ आकर पैर लटकाकर बैठती है।

लम्बा-सा एक निःश्वास छोड़ती है।

और तब कहती है, 'तो जा रहे हो ?'

रासू अवश्य इस प्रश्न के लिए तैयार ही था। इसीलिए निर्लिप्त भाव से बोला, 'इसके सिवाय तो कोई उपाय नही नजर आ रहा है !'

'उपाय खोजते फिर रहे थे शायद ?' तीखा व्यंग्य !

'खोजता क्या फिरूं ? जानता ही तो हूं कि छोड़ने-छाड़ने का रास्ता नहीं है।'

'कोशिश रहे तो छुटकारा मिल सकता है।' शारदा ने और तीखी सुई चुभोई।

'कैसे ?' रासू ने जरा तुनककर कहा।

'तबीयत खराब का बहाना बनाने से कोई खीचकर नहीं ले जा सकता।'

रासू ने कहा, 'ऐसा तगड़ा शरीर लिए वह बहाना कैसे बनाऊं ?'

इस खोज से शारदा डरी नहीं, झुकी नही। बेझिझक बोली, 'कोशिश से क्या नही हो सकता है ? दूध तुम्हें बरदाश्त नहीं, चुपचाप दो-तीन सेर कच्चा दूध पी लेते तो फौरन बार-बार मैदान जाने की नौबत आ जाती। सभी समझ जाते, बीमार है। और बड़ो से झूठ बोलना भी नही होता।'

'लेकिन यह झूठ के सिवाय और क्या है ? झूठ न बोलकर झूठा आचरण करना !' नीति वागीश रासू ने जोर देकर कहा।

'रुको-रुको ! ऐसा तो कभी करते नहीं है न हजरत ! फट्टा जेठजी के यहा से पासा खेलकर देर से लौटते वक्त सदर दरवाजे से न आकर पिछवाड़े की राह क्यों आते हैं, सुनू जरा ? मंझले चाचा ने संस्कृत पढ़ने के लिए जो टोल ठीक कर दिया है, महीने मे दस दिन तो वहा जाते ही नहीं, यह बात किसी से कहते हो ? रोज-रोज यहां-वहां का चक्कर नही काटा करते हो ? चलो, मुझे धरम का पाठ पढ़ाने मत आओ।'

'मैं किसी को कुछ सिखाने-दिखाने नही जाता। गुरुजनों का जो आदेश होगा, वही मानूगा, बस !'

'सो तो मानोगे ही। वहा मधु जो है, नए बगीचे का नया फूल। पटरानी !'

'फिजूल की बातें न करो।'

'हा, फिजूल की ही बात है !'

शारदा ने एक निःश्वास के साथ कहा, 'मेरा बदन छूकर प्रतिज्ञा की थी, वह बात याद है ?'

'क्यों नहीं ! लेकिन मैं तो वहां 'जमाई षष्ठी' का न्योता खाने नही जा रहा हूं। जा रहा हूं एक गण्यमान्य व्यक्ति के श्राद्ध मे।'

'उसके साथ मेरे भी श्राद्ध-पिंड की व्यवस्था हो रही है, यह मैं खूब समझ रही हूं। अबकी वे लोग लड़की को भेजने की बात ज़रूर करेंगे।'

रासू ने जैसे बिगड़कर कहा, 'तुम्हारी जैसी बात ! आपसे कोई लड़की भेजने को कहता है।'

'कहता क्यों नहीं है ! क्षेत्र विशेष में कहता है। सौत पर दी गयी लड़की के लिए कहता है !'

मैं कहता हूं, उसकी उमर भी होगी ससुराल बसने की तब तो ! तुम तो बस रात-दिन रस्सी देखकर सांप के डर से डरती हो !'

'उमर !' शारदा झंकार-सी उठी, 'लड़कियों के उमर होते कै दिन लगते हैं ? दस पार हुआ नहीं कि उमर ! मंझले चाचा की कड़ाई और डाट-डपट भी तो गयी, उन्होंने उमर हुए बिना ही अपनी लड़की को विदा किया।'

'गुरुजन के काम की शिकायत न करो। वजह थी, इसीलिए उन्होंने वैसा किया।'

शारदा लेकिन रुकने की नहीं, झुकने की नहीं !

उसने भी बात पर बात दी—'तुम्हारी दूसरी बीबी को ससुराल लाने का भी कोई कारण निकल आएगा ! मगर यह बात गांठ बांध लो, नयी बहू यदि आयी तो एक दरवाज़े से वह अंदर आएगी और दूसरे से घड़ा-डोरी लिए मैं भी निकल पड़ूंगी !'

यह हथियार अचूक था।

अबकी रासू काबू हो गया।

समझौते के सुर मे बोला, 'अच्छा, इतना बना-बनाकर दुःख को बुला लाने की क्या ज़रूरत है, यह तो कहो। दादा-ससुर के श्राद्ध में जा रहा हूं। भोज-भात खाकर चला आऊंगा। मैं किसी को लाने के लिए थोड़े ही जा रहा हूं !'

'हां, यही याद रहे !'

शारदा ने सहसा रासू का एक हाथ खींचकर बच्चे के माथे से लगाते हुए कहा, 'इस बात की कसम खाकर जाओ।'

'छिः-छिः-छिः ! बलिहारी तुम्हारी बुद्धि की। बच्चे के माथे पर हाथ···'

शारदा ने बेखटके कहा, 'इसमें डरना क्या है ? मुझे मुन्ने के माथे पर हाथ रखकर कसम खाने को कहो न—जीवन में मैं हरगिज़ पर-पुरुष की ओर नज़र उठाकर नहीं ताकूंगी, यह क़सम एक सौ बार खा सकती हूं।'

'खूब कही ! वह और यह एक बात है ?'

'और क्या ? मेरे सिवा संसार की और सभी स्त्रियों को पर-स्त्री सोचने कष्ट नहीं है !'

'वाः, जिसे अग्नि और नारायण को साक्षी रखकर ग्रहण किया···।'

'ओः !' शारदा झट उठ खड़ी हुई। दरवाजे का हुड़का खोल दिया, किवाड़ पकड़कर दबी लेकिन एक भयंकर आवाज में बोल उठी, 'अब तुम्हारे मन की वात जाहिर हुई। इतनी देर तक परेशान न करके पहले ही कह देना था ! अच्छा···'

रासू को भी अव डर हो आया। वह भी खाट से उतर आया। बोला, 'अहा, तो किवाड क्यों खोल रही हो ? कहा चली ?'

'वहीं जा रही हूं, जहा छल-कपट नही है, जलन नही है।' और वह झट कमरे से वाहर निकलकर अंधेरे मे खो गयी।

नः ! करने को अव कुछ नही रहा।

वेवस क्षोभ से कुछ देर तक आगन के उस कसौटी-काले अंधेरे की तरफ देखते रहने के वाद धीरे से किवाड़ को भिड़काकर रासू खाट पर आ बैठा।

पसीना छूटने लगा। गर्मी से नही, आतंक से।

मगर करे तो क्या ? वाहर जाकर वीवी को खोजता तो नही फिर सकता है वह ! मां या चाची को जगाकर यह दु:संवाद भी नहीं दे सकता।

अपने हाथो करने योग्य कुछ रह गया था, तो वह था हथेली को मुक्का वनाकर अपना सिर पीटना।

२०

वरामदे में चटाई पर बैठी एलोकेशी वहू के वाल वांध रही थी। देर से वाध रही थी। वही दोपहर को बैठी थीं, अव वेला झुक आयी।

उन्होंने गोया प्रण किया हो कि अपने जीवन की चरम कुशलता आज दिखाकर ही रहेंगी। वहू को सामने विठलाकर उसके पीछे घुटने के सहारे ऊंची होकर बैठी थीं। चेहरे का भाव कठिन-सा।

उधर कसाई से सत्यवती की नसें फूल रही थीं वालों की जड़ें सिर के चमड़े से निकल आना चाह रही थी। गरदन बहुत पहले से ही टनटन करने लगी थी, अव रीढ़ मे कुछ बेचैनी-सी लगने लगी। लेकिन उसके केश-विन्यास मे जिस अनोखी शिल्प-रचना की चेष्टा चल रही थी, उसके शीघ्र समाप्त होने की आशा नहीं थी।

लेकिन केवल एलोकेशी की अक्षमता को ही ज़िम्मेदार बनाना ठीक नहीं, ज़िम्मेदार वह पक्ष भी था। सत्यवती के वाल जैसे अड़ियल घोड़े हों, 'हरगिज कायदे मे नहीं आना चाहते।

लंबाई मे छोटे और फैलाव मे घने घुघराले वाल खुले रहने से देखने मे

जितने ही सुन्दर लगते हों चाहे, बांधकर उनका जूड़ा बनाने में मुश्किल पड़ती थी, बड़ी मुश्किल। उसकी जड़ बांधने जाओ कि फस-से खुल जाते हैं। तीन गोछी तक किसी तरह उन्हें लाया भी जाय तो पांच, सात या नौ गोछी की ओर तो जाया ही नहीं जा सकता।

लेकिन एलोकेशी ने आज ठान ली थी, सात गोछी का 'खोंपा' बांध देगी। इसीलिए दो-तीन बार नाकामयाब होने के बाद काले धागों के एक मोटे गुच्छे से बालों की जड़ को उन्होंने ब्रह्मतालु तक किसी तरह जी-जान से बांध डाला और अब सात गोछी के सात हिस्सों को सम्हालने की कोशिश करने लगी।

देर से चल रही थी यह कोशिश। इससे सत्यवती का वही हाल था। बड़ी देर तक काबू-सी बैठी रही। अब वह दोनों घुटनों को मोड़कर छाती के पास लाकर बैठ गयी। क्योंकि पैरों में झुनझुनी होने लग गयी थी। मुंह आसमान की ओर था—मुंह पर पहनावे की नीलाबरी का अंचरा पड़ा था।

मुंह पर आंचल डाले बिना उपाय नहीं, क्योंकि बाल बांधते वक्त घूंघट नहीं काढ़ा जा सकता। और वह जीता-जागता मुखड़ा उघारकर भी तो नहीं रखा जा सकता! आसपास कोई न भी हो, और सास चाहे पीछे ही बैठी हों, आखिर नयी बहू ठहरी! इसीलिए सत्यवती ने मुंह पर आंचल डाल लिया है, यानी डाल लेने को मजबूर हुई है। घूंघट हटाने के पहले ही एलोकेशी ने निर्देश दिया था, चेहरे पर अंचरा तो डाल लो बिटिया। तुम्हें तो अकल से वास्ता नहीं है, लिहाजा सब साफ-साफ बता देना पड़ेगा।

यह क्या सत्यवती के ससुराल में बसने का पहला दिन था?

नहीं! उसको आए कोई महीनाभर हो गया, लेकिन उसका सिर अभी तक सास के हाथ नहीं पड़ा था। इतने दिनों तक सौदामिनी ही बहू के बाल बांधा करती थी, साज-सिंगार कर देती थी मलाई और मैदा से। आज एकाएक एलोकेशी की नजर पड़ गयी, बहू के बाल का 'बेड़ा-जूड़ा' बंधा है।

देखकर एलोकेशी जल-भुन गयी। फिर भी निश्चिंत होने के लिए भौं सिकोड़कर कहा, 'बहू, जरा इधर तो आना!'

सास के सामने जबान खोलना भी मना है। सो सत्यवती चुपचाप उनके करीब जाकर खड़ी हो गयी।

एलोकेशी ने झटके से पतोहू की पीठ पर के कपड़े को उठाकर जूड़ा देख लिया, अवश्य घूंघट वैसा ही बना रहा। हां, बेड़ा-जूड़ा ही तो है।

जल-भुनकर आवाज दी, 'सौदी!'

जिसे हड़बड़ाकर कहते हैं, वैसे ही दौड़ी आयी सौदामिनी। देखा, नयी बहू सिर-छाती एक किए खड़ी है और मामी उसकी पीठ के कपड़े को हाथ से

उठाए हुए है। मामी की आखों में चिनगारियां, कपाल पर कुटिल रेखाएं।

सौदामिनी ने 'क्या कह रही हो' नहीं पूछा। शंकाभरी दृष्टि से सिर्फ ताकती रही।

'वहू की पीठ पर हुआ क्या ?'

'लहसुन ? कि कोई चर्मरोग ? या किसी पुराने घाव का दाग ! मामी की तेज निगाहों में कौन-सी चीज आ गयी ?'

लेकिन ज्यादा देर दुविधा मे नही रहना पड़ा। एलोकेशी तीखे स्वर में बोल उठी—'मैं पूछती हूं सौदी, ऐसी बेगारी करने की क्या जरूरत है !'

सौदामिनी के कलेजे पर से पत्थर उतर गया। जान मे जान आयी। कोई नयी बात नही ! वही सदा-सदा का लक्ष्य। सो उसने साहस सम्हालकर कहा, 'क्या हो गया !'

'क्या हो गया ! पूछने मे शरम नही आयी ? धरम के सांढ़ जैसी दोनो जून भात का ढेर साफ कर रही है और बदन को हवा लगाती फिर रही है, हया नही है जरा भी ? दस नही, बीस नही, ले-देकर एक ही भाई की बहू और उसका बाल इस लापरवाही से बाधा है ? मैं पूछती हूं, इतनी लापरवाही क्यों ?'

'हुआ क्या, सो तो कहोगी ?'

सौदामिनी ने सहज भाव से कहा और सत्यवती घूघट के अंदर अवाक् हुई-सी लगभग थर-थर कापती रही। एलोकेशी के कटु भाषण से नही, टोला घूमने वाली सत्यवती को गृहिणियों के मुह से ऐसी घिनौनी बातें सुनते रहने की आदत थी। रामकाली के यहां की बातें कुछ सभ्य थीं, नही तो संझली फुआ, साबी फुआ के यहां सदा ऐसी ही बातो की खेती होती रहती है। सो सास की उन बातों से नही, अवाक् वह हुई सौदामिनी की सहनशक्ति देखकर। इतने अपमान के बाद भी वह इस सहज ढंग से बोली !

यही सत्यवती को अदेखी बात थी !

कड़वी बातों के बदले कड़वी बात या फिर रोना—सत्यवती यही देखने की आदी थी और सौदा कह रही है, 'हुआ क्या है सो तो कहोगी !'

एलोकेशी ने कहा, 'क्या हुआ, यह कहकर बताना पड़ेगा !. खुद समझ नहीं रही हो ? आंखों देख नहीं पा रही हो ? यह कैसा बाल बाधा है ? बेड़ा-जूड़ा ! छि: ! इतनी उमर हो गयी, ससुराल आयी बहू के यह जूड़ा नही देखा ! लानत है, एक तो सिर, उसमें भी बहार का जूड़ा नही बाध पाती तू !'

सौदा हंस उठी—'जो बहार के बाल हैं बहू के, उनसे बहार का जूड़ा नही बनता ! कायदे में ही नही आते।'

'कायदे में नहीं आते !' एलोकेशी झंकार उठीं, 'देखती हूं, कायदे में कैसे नही आते ? बनर्जी-गृहिणी के बस में न आए, दुनिया में ऐसी कोई चीज़ नही। तीनों लोक में एक ही चीज़ को मैं रास्ते पर नहीं ला पायी, वह तुम हो !'

'ठीक तो है मामी ! एक ही तो बहू है तुम्हारी। तुम अपने ही हाथों उसका सिंगार करना न !'

फिर क्या था, एलोकेशी और उछल पड़ी—'ऐं ! क्या कहा सौदी ? इतनी हिमाकत ! मेरी बात का जवाब ? तेरा इतना घमण्ड चूर कब होगा, तेरे दु.ख पर स्यार-कुत्ते कब रोएंगे, मैं उसी दिन की राह देख रही हूं। कसम देती हूं, फिर जो कभी तूने बहू के बाल को हाथ लगाया !'

'बड़ों की कसम नही लगती—इसे मानने से चलता है कही ! तुम्हारी जब जैसी मर्ज़ी। कभी दोगी, कभी भूल जाओगी···।'

'क्या बोली, क्या बोली मुंहजली ? मेरे एक ही बहू है, उसकी भी बात मैं भूल जाऊंगी ?'

'इसमें ताज्जुब क्या है मामी ! यह तो तुम्हारी आदत है। लोग अपनी भूख से खाते है, तुम तो बहुत बार वही भूल जाती हो ! बुलाकर खिलाना पड़ता है।'

एलोकेशी समझ गयीं। समझ नही सकीं, यह शिकायत है या बड़ायी !

सो उन्होंने भारी गले से कहा, 'हां, मैं भूल जाती हूं और रोज़-रोज़ तुम मुझे बुलाकर सितुहे से खिला दिया करती हो !'

'खिला नही देती हूं, लेकिन तुम्हे याद थोड़े ही रहता है !'

'खैर, न सही ! सुन ले, आज से बहू के बाल मैं बाधा करूंगी। डोरी, काटे सब मेरे कमरे मे रख जाना। हां, चिड़िया-काटा दे जाना मत भूलना।'

'दे जाऊगी, दे जाऊगी ! और बहू के बाप ने सोने की कंघी, साप कांटा, फूल—यह सब ढेरों जो सिर का गहना दिया है, उन सब को ही बक्स मे बंद क्यों रखा है ? सब को निकालकर खूब अच्छी तरह से बाध देना !'

'वह मैं क्या करूंगी, न करूंगी, इसकी सलाह तुमसे नही लेनी। हर बात का टपाटप जवाब। भगवान कोई रोग देकर तेरी वाक्-शक्ति क्यों नही हर लेते, मैं यही सोचती हूं। तू जनमभर के लिए गूगी हो जा तो मैं नरसिंह बाबा को प्रसाद चढाऊं !'

'दुहाई मामी, वह सब मन्नत-वन्नत न मानो। देवी-देवता को कहो और तो सुनते हैं और ! गूगी के बजाय कही उन्होने ठूंठी बना दिया, तो काम-काज से तुम्हारा ही मरण होगा।'

'क्या कहा ! तू ठूठी हो जाएगी तो मेरी गिरस्ती ठप पड़ जाएगी। घमण्ड के मारे तेरे पाच पाव हो रहे है ! अपनी गिरस्ती मैं कानी उंगली से चला

सकती हूं ! मगर जब तुझे अन्न-वस्तर देकर पाल रही हूं तो मैं कानी उंगली भी क्यों हिलाऊं ?'

'अहाहा, मैं भी तो वही कह रही हूं । टूंटी हो जाने पर भी तो अन्न-वस्तर देना ही पड़ेगा !'

'हां, पड़ेगा ! गरज पड़ी है । खींचकर टोले के बाहर कर दूंगी !'

'ईश्वर के लिए ऐसा गजब करने मत जाना मामी, फिर तो टोले-मुहल्ले वाले वहां की धूल तुम्हारे मुंह में डालेंगे !'

सौदामिनी हंसते-हंसते सत्यवती को चकित करके वहां से चली गयी ।

सत्यवती बड़े घर की बेटी है । अपने इस छोटे-से जीवन में उसने बहुतेरे चरित्र देखे है, मगर ऐसा नहीं देखा ।

खैर ! सवेरे की उसी घटना का नतीजा यह मल्लयुद्ध है । सत्य के बालों की जड़ बेशक बहुत भारी है और लंबाई में बाल छोटे हैं । काली डोरियों की मिलावट से किसी कदर उन्होंने दो चोटियों को लम्बा भी किया, तो प्रजापति-नुमा बनाने में वे फसफसाकर खुल गयीं । और सत्यवती के नसीब का फेर, ऐन वक्त पर टनटन करती रीढ़ और झिनझिनाते पैरों को सहज करने के लिए वह जरा हिल-डुलकर बैठी ।

पात्र में तेल कि तेल में पात्र जैसी बात हो गयी । बंधन ढीला पड़ने की वजह से ही सत्यवती आराम के खातिर हिली-डुली हो या कि हिलने-डुलने से चोटिया खुल गयीं, समझ में नहीं आया । एलोकेशी ने देखा, बहू हिली और चोटिया खुली ।

सो मेहनत बेकार हो जाने के गुस्से से और सौदामिनी को कला-कुशलता का कमाल दिखाने की आशा के टूट जाने से होशोहवास खोकर वह एक अनर्थ कर बैठी । बहू की सीधी की हुई पीठ पर गुम् से एक मुक्का जमाकर कहा 'हो गया न चौपट ! पल को भी यदि थिर होकर···'

एलोकेशी बात पूरी नहीं कर सकी । लमहे में दूसरा एक प्रलय हो गया । झटके से सास के हाथ से अपने बालों की मुट्ठी छुड़ाकर सत्यवती छिटककर खड़ी हो गयी और यह भूलकर कि सास से बोलना नहीं चाहिए, बोल उठी, 'आपने मुझे मारा !'

मुक्का मारने के बाद एलोकेशी शायद जरा अनुतप्त हुई थी, लेकिन उस अनुभूति के दाना बांधने के पहले ही आकस्मिक इस बिजली की मार से पहले तो वह मानो बुत बन गयी । उन्हें बहू की आवाज सुनने का मौका नहीं मिला था, क्योंकि उनसे तो नहीं ही, उनके सामने भी बहू ने कभी बात नहीं की थी । बात करने का रिवाज ही नहीं है । कुछ पूछा तो सिर्फ गरदन हिलाकर हां-ना

जताया। बात बस सौदामिनी से ही करती है। वह भी एकांत में। रात में वह सोती भी सौदामिनी के ही साथ है। बड़ी हुए बिना 'घर-वर' का सवाल ही नहीं उठता है।

सत्य का गला कभी एलोकेशी ने नहीं सुना, वही स्वर आज सहसा कान में वज्र जैसा लगा।

बहू का ऐसा तीखा गला !

इत्ती-सी एक लड़की का !

अनुताप की भाप धूल होकर उड़ गयी !

एलोकेशी भी उठ खड़ी हुयीं। चीखकर बोलीं, 'मारा, अच्छा ही किया ! करेगी क्या तू ? तू भी मारेगी क्या ?'

सत्य ने तब तक एलोकेशी के बड़े जतन से बनायी सात गोछी की चोटियों को खोलना शुरू कर दिया था। सिर पर घूंघट नहीं, चेहरे पर का आंचल खिसक पड़ा था और वहां आग-सी दमक रही थी।

एलोकेशी की बात पर आग-से दमकते मुखड़े को फेरकर अवज्ञा के स्वर में सत्य बोली, 'मैं वैसी नीच नहीं हूं। लेकिन याद रखिए, फिर कभी···'

'एं, क्या कहा ? फिर कभी ! गला दबाओ तो दूध निकले, इत्ती-सी तो लड़की और उसकी इतनी बड़ी बात ! जानती है, मार-मारकर तुझे रुई-सी धुन दे सकती हूं।···सौदी, ला दे तो कोई लकड़ी, बहू को सीधा कैसे किया जाता है, दिखा दूं दुनिया को। पीठ पर लकड़ी की मार पड़ी नहीं कि सारा तेज निकल जाएगा।'

'मारकर भी तो देखिए, कितनी लकड़ी है !'

सास की आखों पर दमकती आखें रोपकर सत्य निर्भीक खड़ी रही।

जीवन में गुस्से से बदहवास बहुत बार हुई है एलोकेशी, बहुत बार छाती पीटी है, गाली-सराप दिया है, लेकिन ऐसी अवस्था उनके जीवन में कभी नहीं आयी।

यह अवस्था उनकी कल्पना, उनके स्वप्न से परे थी। इसीलिए वह निढाल-सी हो गयी, सांप की तरह ठंडी आखों से दुस्साहस की उस प्रतिमूर्ति की ओर सिर्फ ताकती रहीं।

ऐसी अवस्था में कब तक क्या होता, कहना कठिन है। लेकिन भाग्य के कौतुक से और एक अघटन घट गया।

ऐन इसी नाटकीय क्षण में नवकुमार घर में दाखिल हुआ। दाखिल होते ही वह काठ का मारा-सा रह गया।

यह कैसी परिस्थिति !

सांप के हजार फनों से बाल बिखरे आग बरसाने वाली आंखों से ताकती

हुई एलोकेशी के आमने-सामने जो खड़ी है, वह कौन है ?

नवकुमार की वहू ?

ऐसा भी हो सकता है ?

आसमान से गाज नही गिर रही है, धरती फटकर चौचीर नही हुई जा रही है, ऐसा कि प्रलयंकर आधी भी नहीं उठ रही है, गो कि नवकुमार की वहू नवकुमार की मा के सामने इस तरह से खड़ी है ? नवकुमार आया है, मगर उसे इसका भी खयाल नही ।

असंभव है ! असंभव !

यह दूसरी ही कोई है !

पड़ोस की कोई अनचीन्ही लड़की होगी । हुई होगी कोई खौफनाक-सी वात !

नवकुमार खांसना भूल गया, हटना विसर गया, अवाक् होकर देखता रह गया । वड़ी भारी मुसीवत है ! असंभव कहकर निश्चित ही कहा हो सकता है !

वहू का मुखड़ा देखने का सौभाग्य कभी नही हुआ, किंतु इधर एक महीने के अन्दर कौन-न दस-वीस वार झाकी-दरस मिला है । कोई देख ले कही, फिर भी नवकुमार स्त्री की तरफ देखता रहा, अवश्य पलक मारतेभर का देखना ।

कैमरे की लेंस पल मे ही छवि को सदा के लिए पकड़ लेती है ।

शकल न देखे, अवयवों का ढाचा तो देखा है !

और देखा है उसने नीलाबरी का आंचल ।

लिहाजा आख मूदकर सूरज को अस्वीकार करना हास्यकर है ।

यह दमकती मूर्ति पड़ोस की कोई नही, उसकी वीवी ही है ।

नवकुमार जैसे चुपचाप आया था, यदि वैसे ही चुपचाप वहां से खिसक पड़ता तो शायद नाटक का यह नाटकीय क्षण ऐसे चरम पर नही पहुंच पाता । हो सकता है, सत्यवती उसी निर्भीक भाव से वहा से हट जाती और एलोकेशी ने जिन्दगी में जितनी तरह की गालिया सीखी है, वैठी-वैठी देती रहती । पति और वेटे के आने पर नमक-मिर्च मिलाकर उन्हें वहू के दुस्साहस और ढिठायी की कहानी कहती । वात आयी-गयी हो जाती ।

लेकिन निर्वोध नवकुमार वही अवाक् खड़ा रहा ।

ऐलोकेशी की उस पर नजर पड़ गयी । आप वरामदे पर, लडका नीचे खड़ा ।

पहले तो उस तरह वेटे को हा किए खड़ा देख, एलोकेशी विलकुल हां हो गयी । फिर उस हा से एक भयंकर चीख-सी निकली—'अरे दईमारा अभागा छोरा, भीगी विल्ली वन गया है ! तेरे पैर में जूते नही है । मारे जूतों के यदि इसके चेहरे को चूर दे सके तो जानू, वाप का वहादुर वेटा है तू !'

लेकिन नवकुमार वुत वना-सा ।

दूसरे ही क्षण एलोकेशी ने दूसरा सुर अलापा—'हाय मेरी मां, कहा हो, देखो-देखो, बेटा और बेटा की बहू मिलकर मेरी कैसी बेइज्जती कर रहे है ! अरे ओ नोबा, नीच की बेटी को ब्याह करके तू भी क्या नीच हो गया ? खड़ा-खड़ा मां का अपमान देख रहा है । तो फिर मार, मुझे ही झाड़ू मार । झाड़ू ही मेरे लिए सही सजा है । नही तो क्या मैं अब तक इस बहू को इस घर मे खड़ी रहने देती ? सिर घुटाकर उसे गरदनिया देकर निकाल नही देती ! हाय दैया, बहू मुझे मारे और मेरा लडका खड़ा देखता रहे !'

अब शायद नवकुमार को होश आया और होश आते ही वह खुले दरवाजे से सरपट भागा ।

पोखरे में बैठी सौदा बर्तन मांज रही थी । घाट होकर नवकुमार को वैसे बेतहाशा दौड़ते देख राखसने ही हाथ को हिलाते हुए बोली, 'बात क्या हुई नोवू ? ऐसे दौड़ क्यों रहा है ?'

नवकुमार ने पहले तो सोचा कि सौदा की पुकार पर ध्यान नही देगा । दौड़कर सीधे निताई के यहा जाकर कहेगा, 'ला, एक लोटा पानी ला !'

निताई उसका अंतरंग मित्र है । मन की ऐसी डावाडोल हालत मे उसी के यहां जाया जा सकता है ।

लेकिन सौदा के बार-बार पुकारने पर क्या सोचकर तो वह ठिठक गया । उसके बाद धीरे-धीरे घाट के पास आया । आंधी से गिरे हुए एक ताड़ के पेड़ की जड़ के पास बैठकर रुंधे गले से बोला, 'मैं अब घर नही जाऊंगा, सौदा-दी !'

'जरा बात सुन लो इसकी ! मैं पूछती हूं, बात क्या हुई ?'

'सर्बनाश हो गया !'

'हाय राम ! सर्वनाश की बात भी कहने की है ?'

'हो तो कहना ही चाहिए !'

सौदा नवकुमार के स्वभाव से परिचित थी । इसीलिए वह ज्यादा डरी नहीं । बोली, 'क्यों, तेरी मा ने अचानक···?'

'मां ने नही सौदा दी, मैंने ही । मैं कह नहीं सकता, मैं जिन्दा भी हूं या नहीं ।'

'बदन में चिकोटी काटकर देख !' पानी मे डुबा-डुबाकर हाथ की राख-मिट्टी धोती हुई सौदा बोली, 'मामी ने रणचंडी का रूप धारण करके तुझे लथेड़ा है, क्यों ?'

'पता नही !'

'पता नही ! यह बनना छोड़ ! या तो बता कि हुआ क्या है, या फिर जहा जा रहा था, वही जा ! तू मर्द है कि औरत ?'

'जो दृश्य मैं देख आया हूं सौदा-दी, उसे देखकर बड़े-बड़े मर्दों के हाथ-पांव पेट में समा जाएं !'

'न, तेरा यह लटपट नही जाता। बताना है तो बता, नहीं तो अपनी राह लग ! भूत देखा कि डाकू, सो भी नही जानती !'

नवकुमार ने छाती मे ज़ोर लाया और टप् से बोल गया, 'मां और तुम्हारी भाभी मारपीट कर रही है।'

सौदामिनी चौंकी, 'मा और भाभी क्या कर रही हैं ?'

'कह तो दिया, मारपीट !'

सौदामिनी ज़रा देर ठक-सी रही। फिर बोली, 'मारपीट क्यों कहता है ! यों कह कि मामी वहू को पीट रही है और वह देखकर तू मर्द आदमी पिछुआ खोलकर भाग पड़ा है ! तू औरत होकर क्यो नही जनमा, मै यही सोचती हूं ! चलू, देखू जाकर कि इतनी देर में क्या हो गया। ज़रा ही देर पहले तो बर्तनों का ढेर लेकर आयी हूं। देखा, मामी वहू का जूड़ा बाध रही है। और पल मे प्रलय !'

सौदामिनी जल्दी-जल्दी बर्तनो को धोने लगी।

'मैं आज निताई के ही घर रहूंगा सौदा-दी ! चला।'

सौदामिनी बोली, 'दूसरे के यहां कितने दिन रहेगा ?'

'जब तक रह सकू !

'गर्ज़ कि तू आप खिसक पड़ेगा और वह बेचारी परायी वेटी तेरी मां से पिटती रहेगी ! दुधमुही बच्ची !'

परायी और दुधमुही बच्ची शब्द से नवकुमार का जी कचोट गया। आखों मे आसू आ जाने लगा। किसी तरह अपने को ज़ब्त करके बोला, 'तो मै क्या करूं ?'

सौदामिनी ने तिरछी नज़र से उसे एक बार देख लिया और कहा, 'ऐसा देखकर नही आता तो क्या था। तू देख रहा है, यह देखकर जितना भी क्यों न हो, कम-से-कम कुछ तो अपने को रोकती मामी, मारकर उसे बिलकुल मुआ नही पाती।'

नवकुमार शर्म छोड़कर झट बोल उठा, 'वह तुम जो भी कह लो, मैंने जो देखा, पड़ी-पड़ी मार खाने वाली नही है वह।'

सौदा ने मुसकरा कर कहा, 'मुझे भी यही लगता है। मारपीट न करे चाहे, पड़ी-पड़ी मार नही खाएगी। मगर तू तो बता ही नही पाया कि हुआ क्या है ?'

'मुझे ही क्या खाक मालूम है ! घर मे दाखिल होते ही देखा, दोनों आमने-सामने खड़ी हैं। एक साप-सी फुफकार रही है, दूसरी वाघिन-सी गरज

रही है।'

सौदामिनी हंसी, 'वाह, तूने तो नाटकी बातें बहुत सीख ली है। अच्छा है, आगे काम आएंगी। तेरी वहू भी बड़ी पण्डित है!'

वहू के बारे में जी भरकर सुनने की ख़ाहिश होती है उसे। लेकिन बात से बात को बढ़ाना जो नही जानता है वह! भविष्य को सोचकर रह जाता है।

. लेकिन कब?

बाघिन की शकल बार-बार मन को धक्का दे रही थी। खौफनाक, लेकिन खूबसूरत। कैसी बड़ी-बड़ी आंखें, कैसी जुड़ी भौहें!

हो सकता है, वहू भी मां-जैसी गुस्सैल हो! वह लाज और झिझक से महज वहू ही नहीं बनी रहेगी! नवकुमार के मन से ठीक मिल रहा था क्या!

जाने कैसे एक नुकसान के दुःख से जी टनटन कर उठा। माटी के पुतले-सी वहू उसे नसीब होती, निरीह-सी तो क्या विगड़ जाता भगवान का! कितनों के तो वैसी वहू होती है!

लेकिन साप के फनों-से बिखरे बालों से घिरा वह मुखड़ा!

उसमें मानो दीये की लौ सी हो!

नवकुमार महज एक पतगा-सा!

सौदामिनी बोली, 'देखना, ज्यादा रात मत करना। हाड़ी अगोरे बैठी नही रह सकूंगी!'

'हाड़ी!'

'रसोई!'

'भात!'

आज भला ये शब्द काम आएगे! नवकुमार को गोया यकीन नही आता। डरते हुए बोला, 'अच्छा, मैं यही रहता हूं, तुम देखकर मुझे बता नही जा सकती हो! तो फिर मैं निश्चित होकर ताश के अड्डे पर जाऊं।'

'अरे वाह,' बाबू साहब बैठे रहेंगे और मै इनके लिए जाकर खबर ले आऊंगी!'

बर्तनों का बोझा सौदा ने कंधे पर उठाया। हाथ में गमछे की पोटली में लोटा-कटोरा। जाते-जाते छोटे भाई को उसने फिर से भरोसा दिया, 'वहू की सोचकर जी मत खराब कर नोबू, मामी उसे खून करके निहायत ही फासी की बला न मोल ले तो समझ ले, यही वहू उसे दुरुस्त करेगी। तेरी वहू ऐसी-वैसी नही है!'

'खून करके!'

नवकुमार के कलेजे में कांटा-सा चुभा! पर, वह चुप ही रहा।

सौदा ने कहा, 'सांझ हो रही है। यहां अब मत ठहर, जहां जा रहा था, जा!'

सौदा ने लम्बी डगें भरीं। बंसबारी में कुछ दूर जाने के बाद देखा, नवकुमार पीछे-पीछे आ रहा है। उद्‌भ्रांत-सा, आंखें छलछलाती हुईं।

'मैं तुम्हारे साथ चलूं, सौदा-दी?'

चलते-चलते ही सौदा ने कहा, 'क्यों? अभी-अभी तो तूने कहा, अब कभी घर नहीं आओगे?'

'जी कैसा तो कर रहा है!' फिर अचानक सुर बदल लिया—'बहू ने अगर मां का अपमान किया है, तो उसे भी सजा देनी चाहिए।'

'ज़बरन किसी का अपमान करने वाली लड़की वह नहीं है नोबू, इसके लिए तू बेफिक्र रह! हां, कोई यदि ज़बरन अपमानित होने आए, तो और बात है। बात दरअसल क्या है कि बहू ऊंचे घर की लड़की है, शिक्षा-दीक्षा ऊंची है, पढ़ना-लिखना जानती है, बड़ी-बड़ी किताबें पढ डालती है, छंद बना लेती है···'

'ऐ! मुझसे मज़ाक कर रही हो?'

'गरज़ क्या पड़ी है! आसमान से तोड़कर बात कहने भी क्यों जाऊं मैं! और वह सब मैं समझती भी हूं? यह तो बहू जी खोलकर मुझसे कहती है, इसलिए जान सकी।'

'सौदा के पास बहू जी खोलती है!'

'हाय, नवकुमार के नसीब में वह दिन कब आएगा कि बहू उसके सामने अपना मन खोलेगी!'

सौदामिनी बोल उठी, 'मैं साफ कह दूं, तेरे घर मे उसका ब्याह होना ठीक नही हुआ है। तू बिगड़े चाहे जो करे, यह घर उसके योग्य नही है। मामी को सिर्फ़ पैसा ही है, नज़र भी है? और तेरी बहू को छोटी नजर की आदत नही? उस दिन जो बहू ने सुना कि मामी रुपया उधार लगाकर सूद कमाती है, तो वह मानो हिमाग हो गयी!'

नवकुमार ने खीजकर कहा, 'मगर यह सब उससे कहने की ज़रूरत ही क्या थी!'

'अरे बाबा, कान पकड़कर मैं तेरी बहू से नही कहने गयी हूं। घोष गृहिणी उसी के सामने एक जोड़ा बाजू बंधक रखने आयी और दर-दस्तूर करने लगी। वह एक पैसा कहती रही, मामी डेढ़ पैसे पर अड़ी रही। धेले के लिए बक-बक। आखिर···'

आखिर तक क्या हुआ, यह सुनने की नौबत नही आयी। घर से एक भयानक चीख-सी उड़ती हुई आयी।

'सर्वनाश···'

सौदा की मनाही के बावजूद नवकुमार ने सर्वनाश शब्द का ही व्यवहार किया, 'हो-न-हो, कुछ हो गया !'

सौदा तब तक घर के अंदर जा चुकी थी ।

और नवकुमार ? वह काठ का मारा-सा अपने ही घर को ताक रहा था।

यह तीखी नकियाई-सी आवाज किसकी है ?

यह आवाज तो एलोकेशी की है !

तो हुआ क्या ?

जो भी हुआ हो, सब-कुछ को ढंकते हुए नवकुमार के जी में एक हाहाकार भर आया कि इस बहू के साथ घर करना उसके नसीब में नहीं है !

मां या तो इसे मसानघाट भेजकर रहेगी या सदा के लिए नैहर भेज देगी।

मां की चीख क्रमशः आसमान छूने लगी ।

दल के दल पड़ोस की स्त्रिया उसके घर की तरफ दौड़ने लगीं।

नवकुमार खड़ा-खड़ा वह दृश्य देखता रहा पत्थर-सा, जैसे जात्रा का दर्शक हो !

२१

रामकाली त्रिवेणी के घाट पर आए थे। कोई रोगी देखने के लिए नहीं, योग था, गंगा नहाने के लिए आए थे। अकेले ही पूरी नाव किराए पर ठीक करली थी। भीड़भरी नाव में चलना उन्हें पसंद नहीं। जरूरत होती है, तो अपनी ही नाव ठीक करते हैं।

पहले इस तरह से नाव पर एकबारगी अकेले जाना उनके लिए सहज नहीं था। क्योंकि नाव से कहीं, त्रिवेणी या कटवा, जाने की सुन सत्यवती नाछोड़ बंदा बन बैठती थी। लगी-लगी घूमने वाली, निहोरा-विनती करने वाली बेटी को टाल नहीं सकते थे। साथ लेना पड़ता था। उसे साथ लेते तो नेड़ू और पुन्नू को भी। उन्हें छोड़कर सिर्फ़ अपनी ही बेटी को लेकर जाएं, नजर को खलने वाला ऐसा काम नहीं कर सकते थे।

वे भी जाते।

पानी में उन सबों को रामकाली होशियार करते और नहान के बाद देवी-देवता के दर्शन कराकर लौटते। घाट और बाट, नाव और मंदिर का प्रांगण नन्हीं-सी एक वाक्य-वागीश लड़की की बोली से गूंज जाता।

आज सिर्फ़ डाड़ खेने की आवाज थी—छप्-छप्। गंगा की खुली छाती की

ओर ताककर रामकाली ने एक उसांस ली।

आसमान मे उड़ने वाली चिड़िया पिंजड़े मे कैद होकर जानें कैसी है!

पुन्नू की भी शादी ठीक हो गयी है।

पिछले कुछ महीनों में दिन नहीं थे ब्याह के, ब्याह इसीलिए रुका पड़ा था। लेकिन पुण्यवती और तरह की लड़की है। निहायत सत्य की रैयत थी वह, इसीलिए शरारत करती फिरी, वरना वह बिलकुल घरवार वाली लड़की है। पुन्नू और पुन्नू जैसी लड़कियां पिंजड़े की मैना होकर ही पैदा हुई है।

लेकिन सत्य जैसी दूसरी कोई लड़की कहां देखी रामकाली ने? वह तो क्या और क्यों के सवालों से जानना ही चाहती है।

खुली गंगा की ओर निहारकर रामकाली के जी मे फिर एकवार आया कि ज़माने से उन्होने गंगा नही नहाया है। लगता है बड़े लम्बे अरसे से। फिर एक निःश्वास निकला।

मल्लाह बीच मे बोल उठा, 'बिटिया ससुराल में है मालिक?'

रामकाली ने कहा, 'हूं!'

दो-एक बार छप्छप्-छप्छप् डांड चलाकर माझी ने फिर कहा, 'अभी रहेगी?'

'देखें' कहकर मुख्तसर मे उन्होने प्रसंग की इति की। पुन्नू का ब्याह है, इसी मे जो आशा की किरण दिख रही है, वरना रहने के सिवाय और क्या! सदा वही रहेगी! यही चाहिए भी! मोक्षदा जैसा अपरूप रूप और तेजी लिए सदा ही वाप के घर रहकर जलती रहे, लड़की के लिए ऐसे भाग्य की कोई प्रार्थना नही करता। नैहर में रहने वाली लड़की का मतलब ही है अभागिन लड़की। तीज-त्योहार या ब्याह-जनेऊ के भोज-भात मे कुटुम्ब-सा आना—इस आने मे मा का मन भर सकता है, वाप का नही! सो उसकी इति हो गयी है।

लेकिन बेटी ही क्यों, बेटे का भी क्या फर्क है? बेटा घर रहता है, उसपर ज़ोर चलता है, इतना ही। लड़के के बड़े हो जाने पर उससे मन भरता है भला! शायद इसीलिए इंसान जीवन को सरस, भरा हुआ रखने के लिए ही वार-बार शिशु को बुला लाता है। और उसके बाद भी 'रुपए के सूद' मे आश्रय ढूंढ़ता है।

नित्यानंदपुर से त्रिवेणी का घाट दूर नहीं है।

माझी ने नाव को बांधा।

घाट पर उतरते ही जिनसे पहले रामकाली की भेंट हो गयी वह था राना का गोकुलदास। उसने दूर से ही रामकाली को उतरते देखा और लपका!

कीचड़ में ही आभूमि प्रणाम करके कृतार्थ गोकुलदास ने विनय के साथ हंसते हुए कहा, 'आज अपनी कैसी खुशकिस्मती सरकार, कैसी खुशकिस्मती !'

रामकाली ने मुसकुराकर कहा, 'आज सवेरे-सवेरे भाग्य की इतनी जय-जयकार कैसे !'

गोकुल ने कहा, 'जय-जयकार न करूं मालिक ! मुलाक़ात हो गयी, नहीं तो मुझे नित्यानंदपुर जाना पड़ता। लीजिए, चिट्ठी है।'

'चिट्ठी !'

'कलकत्ता से आयी है ! ताज्जुब है !'

रामकाली हैरान हुए। हैरानी मगर ज़ाहिर नहीं की। लिफाफे को उतारे हुए कपड़ों पर रखकर बोले, 'ठीक है ! और सब खबर तो ठीक है न !'

'जी, आपका आशीर्वाद !' और थोड़ा उसखुसाकर बोला, 'चिट्ठी कलकत्ता की है !'

'देख तो रहा हूं।' कंधे पर गमछा रखकर रामकाली पानी में उतरे। उनके लम्बे सोने-से शरीर पर उगते हुए सूरज की कच्ची धूप झलमला उठी। गोकुल हा किए ताकता रहा। ताकते हुए सोचा, 'इस्, स्वर्ग का देवता हो जैसे ! कैसा दिव्य शरीर !'

चिट्ठी की बात जी से निकालकर नहाया-धोया, चिट्ठी को चादर की कोर में बांधकर रामकाली मंदिर की ओर बढ़े। लाचार गोकुल फिर से प्रणाम करके विदा हुआ। कलकत्ता से किसकी चिट्ठी आयी—उसका यह कौतूहल नहीं मिटा।

नाव पर बैठने के बाद रामकाली ने खत को खोला।

पढ़कर स्तब्ध हो गए।

सुबह की रोशनी अपनी सारी चमक खोकर जैसे सांझ-सी मलीन हो गयी। अभी-अभी गंगा नहाकर निर्मल हुए रामकाली जैसे किसी अपवित्र वस्तु के संस्पर्श में आ गए।

चिट्ठी किसी जाने हुए आदमी की लिखी न थी। किसी अनजान आदमी की।

नीचे किसी का हस्ताक्षर भी न था।

उस बेनामी खत में संबोधन का ही बड़ा आडम्बर था। लेकिन उतना ही तो नहीं। चिट्ठी में जो था, कितना भयकर था।

बार-बार पढ़ा। फिर उसे खोला उन्होंने।

हरूफ सुन्दर ! पंक्तियां सजी-सजाई ! हिज्जे दुरुस्त ! इसमें शक नहीं कि चिट्ठी किसी पढ़े-लिखे आदमी की लिखी है। 'श्री श्री वाग्देवी शरण' से

शुरुआत—

'मान्यवर, सादर निवेदन करूं कि आपकी कन्या बड़ी विपदा में पड़ी है। अपनी ससुराल में वे बहुत ही सतायी जा रही है, बड़े अपमान और लाछन का जीवन बिता रही हैं। कहते जी सिहरता है, बदन कांपता है, फिर भी आपकी जानकारी के लिए लिख रहा हूं, अपनी सास से वे पिटती भी है। उस पाषाण-पुरी में ऐसा कोई नही, जो उस बेचारी को बचाए। आपके जामाता अपनी धर्मपत्नी के ऐसे सताए जाने के कारण रोते रहते हैं। बड़ो को कुछ कहने का बस भी क्या है ? ऐसी स्थिति मे आप अगर तुरत उन्हें लिवा ले जाएं, तभी मंगल जानिए। नही तो क्या हो सकता है, यह सोचकर दिमाग़ चकरा जाता है। एक इन्सान के फर्ज़ के नाते ही आपको यह सूचित कर रहा हूं। धृष्टता के लिए क्षमा चाहता हूं।...'

नः! हस्ताक्षर नहीं है।

चिट्ठी को धीरे-से मोड़कर मिरजई की जेब में रख दिया। धूप से चमकती धरती की ओर देखते रहे।

दुनिया मे इतनी रोशनी है, फिर भी दुनिया के लोग इतने अंधेरे में क्यों हैं ?

इस चिट्ठी का लिखनेवाला कौन है ?

सत्य की ससुराल का कोई दुश्मन ? झूठ-मूठ का दोष दिखाते हुए उनका बुरा करना चाहता है ? मगर चिट्ठी पर कलकत्ता की मुहर क्यों है ? कलकत्ता से यह चिट्ठी कैसे आयी ?

सोचते-सोचते आखिर रामकाली एक निष्कर्ष पर पहुंचे। लिखने वाला अवश्य कलकत्ता आता-जाता होगा। और अपने को छिपाने के लिए वही रहते हुए उसने यह चिट्ठी भेजी है।

फिर भी एक समस्या रही जाती है।

पत्र में लिखा यह वीभत्स समाचार सत्य है अथवा दुश्मन का झूठा प्रचार ?

रामकाली खुद जाकर इसकी पड़ताल करें कि किसी को भेजें ? कोई दूसरा आदमी जाकर क्या भीतरी तथ्य का पता कर सकेगा ? हा, किसी स्त्री को भेजा जाए तो हो सकता है।

रामकाली के परिवार मे जो स्त्रिया बारहों महीने काम करके गुजारा चलाती हैं, जैसे चूड़ा कूटनेवाली, मूढ़ी भूननेवाली—इन्ही में से किसी को किसी के साथ राहखर्च देकर भेज देने से खबर ला दे सकती है। गावों मे आम-तौर से यही लोग यह सब काम करती हैं। लेकिन मन इससे भी विमुख हो गया। इनके द्वारा खबर मंगाने का मतलब ही है, सात गावो में शोर होना ईश्वर जाने, क्या खबर लाएगी और उसी की सारे गाव में चर्चा होगी।

लगा, सत्य अगर खुद लिखती !

चिट्ठी लिखने-जैसी विद्या सत्य ने हासिल की है। लेकिन उससे लाभ क्या ? नैहर को अपना हाल लिखे ऐसी हिम्मत, ऐसी मजाल तो न होगी। फिर लड़कियों के लिखने-पढ़ने का क्या फायदा ?

स्थितप्रज्ञ रामकाली कविराज का कलेजा कैसा तो कचोट उठा। आंखों के सामने सत्य का वह ओजभरा मुखड़ा नाच उठा। और वही सत्य चुपचाप पिट रही है ! यकीन करना असम्भव है !

न:, यह चिट्ठी झूठ है।

दुश्मनो की करतूत है।

नहीं तो सत्य को सताने की वजह भी क्या हो सकती है ? मनुष्य खामखा ही ऐसा खूखार हो सकता है कहीं ? और सिर्फ सास ही तो नहीं, उसके ससुर भी हैं। हजार हो, भले आदमी हैं। उनकी जान मे ऐसा हरगिज नही हो सकता। यदि घर के लोग ही न जान पाएं तो बस्ती-टोले के लोग कैसे जानेंगे ?

उन्होने फिर सोचा। एक ही तो पतोहू है वह। विदाई के वक्त उन्होंने काफी सामान दिया है जिसमें सास खुश हो। फिर भी वह सत्य को सताएंगी ?

ऐसा भी होता है ?

कहने मे बुराई है, सोचने में बाधा नहीं। ब्याह ठीक करते समय बहुतेरे लड़कों में रामकाली ने इसी लड़के को पसंद किया, सिर्फ इसलिए कि परिवार में आदमी कम हैं। उन्होंने छुटपन से ही गौर किया है, उनकी लड़की जिद्दी है, तर्रार है, नही झुकनेवाली है। बड़े परिवार में सबका मन रखकर चलना शायद उसके लिए सभव न हो, इसलिए यही ठीक समझा था। आखिर सत्य भी तो बाप की इकलौती ही है।

घरजमाई की इच्छा उन्हें बिलकुल नहीं थी। सिर्फ इतना ही सोचा था कि लड़का बिलकुल वैसा न हो, थोड़ा-बहुत लिखा-पढा हो। उनकी यह साध मिटी थी। मिट भी रही थी। जमाई को छात्रवृत्ति मिली थी। संस्कृत पढ रहा है।

लोगों से यह भी सुना, क्या तो वह अंगरेजी सीख रहा है। उन्हे खुशी हुई। खुद कभी नही गए, मगर लोगों से हाल-चाल लेते रहते। इतना जानकर वे निश्चित थे कि सोहवत बुरों की नहीं है, बुरी लतो से वास्ता नही।

सब-कुछ तो ठीक ही था, अचानक बिना बादलों की यह बिजली !

उन्होंने फिर सोचा, यह करतूत दुश्मनों की ही है !

लेकिन मन में जो बेचैनी उन्हें हुई, उन्हें बिलकुल दबाकर निश्चित नहीं हो पा रहे थे। आखिर तय किया, एक बार स्वयं ही जाएंगे।

इज्जत को बट्टा लगेगा ?

ससुराल में बहू के लिए रात ही तो मरुभूमि में ओएसिस है। मौत की पुरी में जीवन। जितना बड़ा दुर्जय मान क्यों न हो, उस मान को घटाए बिना उपाय नही।

सबके साथ यही है। रात में भुवनेश्वरी की रुलाई भी रोके न रुक पायी। रामकाली ने दूसरी चौकी से ही भाप लिया। जरा-देर नींद के बहाने चुपचाप पड़े रहे, लेकिन अंत तक चुप रह सकना संभव नहीं हुआ। धीरे से बोले, 'नाहक ही रो क्यों रही हो!'

रुलाई का आवेग और प्रबल हो गया।

रामकाली ने कहा, 'बचपना न करो! आओ, इधर आओ! रो क्यों रही हो, कहो!'

आखें पोंछती हुई भुवनेश्वरी उठ ही आयी। आकर पति के बिस्तर के एक किनारे बैठकर आचल से आंखें पोंछने लगी।

रामकाली क्षुब्ध स्वर में बोले, 'तुम भी अगर औरों की तरह ही हो जाओ, फिर तो लाचारी है। मुझ से अपराध इतना ही बन पड़ा है कि मैंने कहा, पुन्नू के ब्याह के सिलसिले में सत्य को कुछ दिन पहले ही लिवा लाऊंगा। मैं खुद जाऊंगा तो वे लोग ना नही कर सकेंगे। लेकिन इस आसान-सी बात को न समझ सब लोग मिलकर ऐसा कर रही हो जैसे कोई अमंगल ही घट गया है। ताज्जुब है!'

'वैसी कोई बात नही।' भुवनेश्वरी ने किसी तरह से कहा, 'बच्ची के लिए जी उमड़ आया है, इसीलिए...'

रामकाली ने स्नेह-गम्भीर स्वर में कहा, 'ठीक ही हो रहा है। होना स्वाभाविक है। इकलौती बेटी है तुम्हारी! लेकिन रोने-धोने से तो कुछ होता-हवाता नही। मा का ही जी उमड़ता है, बाप के कुछ नहीं होता!'

भुवनेश्वरी के लिए इसका जवाब देना सम्भव नहीं था।

जरा देर में रामकाली बोले, 'जाओ! भगवान का नाम लेकर सो जाओ। कोशिश कर देखता हू, यदि उसे ला सकू।'

भुवनेश्वरी फिर रुलायी से टूट पड़ी, 'मेरा मन कह रहा है, वे लोग नहीं भेजेंगे।'

रामकाली और कुछ नही बोले। 'दुर्गा-दुर्गा' बोलकर करवट बदलकर सो रहे। भुवनेश्वरी देर तक रोती रही फिर सो गयी।

दूसरे दिन रामकाली ने बेटी के यहा जाने की तैयारी की।

अंग्रेजी पढ़ना फिलहाल बंद है, क्योंकि भवतोष मास्टर गांव में नही है। छात्रों

के लिए सेकेंड बुक लाने के लिए कलकत्ता गए है। नवकुमार को इसलिए काफी वक्त है इस समय। लेकिन उस वक्त को फूलों से सजाए, ऐसा भाग्य नही। दो घड़ी घर में आराम करे, खाए-पहने, रहे, इसका भी उपाय नही। वहां जब तक जागता रहता है, कलेजा कापता रहता है।

और सोता भी कब तक रहे ?

भैंस-विनिंदित वह नीद भी नहीं रही। विस्तर पर लेटे-लेटे नीद नहीं आती। उठता है, बैठता है, पायचारी करता है, पानी पीता है, फिर लेटता है। ऐसे ही बहुत वक्त बीत जाता है। और दिन मे निकम्मे का काम, पोखरे मे मछली मारना।

उसका दोस्त निताई और वह, दोनो जने दिनभर यही काम करते हैं। आज भी कर रहे थे। वंशी के फुदकने पर ध्यान। हठात् वहां से नज़र उठते ही पहले निताई की ही नज़र पडी।

बोला, 'ऐसी बहार वाली पालकी पर कौन आ रहा है, बता तो !'

नवकुमार ने देखा। कहा, 'सच तो ! बड़ी अच्छी पालकी है। लेकिन लगता है, आ नही रहा है, गाव पार कर रहा है।'

बोले, लेकिन दोनों उधर से नजर नही हटा सके। और कापते दिल, डरे हुए पुलक से देखा, पालकी उधर ही जा रही है।

नवलकुमार ने कहा, 'वंशी छोड़कर भाग चलें, चल !'

निताई बोला, 'क्यों, भाग क्यों चलें ?'

मेरा मन कह रहा है, 'पालकी नित्यानंदपुर की है।'

'ऐं !' चीन्हता है ?

'अंदाज़ है। लड़की की विदाई के लिए भेजी होगी। निताई, मैं चलता हूं !'

निताई ने उसकी धोती की कोर थाम ली। कहा, 'भागेगा ? मतलब ? अंत तक देख नही लेगा ?'

दोनों दोस्तों मे और थोड़ा-सा तर्क हुआ। और सच पूछिए तो नवकुमार भागने की जितनी चाहे सोचे, हिल भी नही सका। छिपकली की शिकारी नज़र के सम्मोहन से खिंचे कीड़े जैसा निर्जीव-सा बैठा रहा।

पालकी उधर ही आयी। अंदर बैठे व्यक्ति के इशारे से वही रुकी और सवार ने बैठे-बैठे ही हाथ के इशारे से उन्हें बुलाया। घाट से उठकर धोती की कोर को बदन पर डालते हुए दोनों जने आए।

'तुम लोग इसी गाव के हो ?'

भारी-भरकम गले की आवाज़ से दोनों का कलेजा काप उठा। गरचे नवकुमार अपने ससुर को नही पहचानता, ब्याह के समय नज़र उठाकर देखा भी

नही, दो-दो बार वहां से बुलाहट आयी, तबीयत खराब होने के बहाने नहीं गया। फिर भी उसका मन कह रहा था, 'वही है ! वही है !'

'हां, वही थे !' गरदन हिलाकर उनके उत्तर देने के बाद उन्होंने पूछा, 'यहा के नाती हो या लड़के ?'

निताई ने ज़रा बढ़कर कहा, 'जी, मैं यहा का नाती हूं। श्री कृष्णधनदत्त मेरे मामा हैं। मेरा नाम है निताईचन्द्र घोष ! और यह है नवकुमार बनर्जी ! मेरा मित्र !'

'नवकुमार बनर्जी !'

रामकाली की आंखों में बिजली की आभा-सी दौड़ गयी। निश्चित हुए। अनुमान ठीक निकला। फिर एकबार उन्होने उसे एडी-चोटी देख लिया। नारी सुलभ उसके लाल-दूधिया रंग को देखा, अलता-लगे से होठ देखे और धूप से झुलसे टुकटुक लाल मुखड़े को देखा। उसके बाद पालकी से उतर पड़े।

गम्भीर गले से कहा, 'मैं रामकाली चटर्जी हू।'

बैठ पड़ने का मौका मिलने से ही मानो उन दोनों की जान में जान आए। झठ बैठकर उन दोनों ने रामकाली के चरण छुए।

'हो गया, हो गया' करते हुए दोनों के ही माथे पर हाथ का जरा-सा परस देकर रामकाली ने एक बार निताई की ओर देखा और तब नवकुमार से कहा, 'यह जब, आपके मित्र हैं, तो इनके सामने बोलने मे हर्ज नही है। मैं पूछता हूं, इसी तरह मछली मारकर ही दिन बिताते हैं ?'

नवकुमार की ठोढ़ी छाती से सट गयी। लेकिन कायस्थ कुल का निताई उससे ज्यादा चुस्त-चालाक है। निर्भीक भी।

उसने झटपट जवाब दिया, 'जी नहीं। और दिन दोपहर को हम लोग मास्टर के यहां पढ़ने जाते है। आज वे…'

'क्या पढने जाते है ?'

नवकुमार ने पीछे से मित्र के चिकोटी काटी ताकि अंगरेजी पढ़ने की बात न कह दे। क्या पता, म्लेच्छ भाषा की पढायी के लिए यह ख़ौफनाक आदमी कही बिगड़ उठे।

लेकिन निताई ने वह मनाही नही मानी। बल्कि विनय ढंके गर्व से ही कहा, 'जी, अंगरेज़ी !'

'अंगरेज़ी ? बहुत खूब ! कहा तक पढी ?'

'जी, फर्स्टबुक सेकण्ड बुक खत्म कर चुके हैं। अब…'

'सुनकर खुशी हुई। लेकिन आज पढने क्यों नही गए ?'

पूछा नवकुमार से गया, लेकिन जवाब निताई ने ही दिया, 'मास्टर साहब किताब लाने के लिए कलकत्ता गए हैं।'

'कलकत्ता ! ओ, हां ! खैर, आपसे एक बात पूछनी है। मैं जानना चाहता हूं, गांव में आपके घर के कोई दुश्मन हैं ?'

'दुश्मन !' नवकुमार हक्का-बक्का-सा ताकने लगा।

'कोई दुश्मन !'

एलोकेशी के मुताबिक तो सारा गांव ही उनका शत्रु है !

'हा, शत्रु ! यानी जो आपका बुरा चाहता है। झूठा अपवाद फैलाकर आप लोगों को नुकसान पहुचाना चाहता है। ऐसा कोई है क्या ?'

नवकुमार ने ना करते हुए सिर हिलाया, किन्तु तब तक निताई जवाब दे बैठा, 'जी गाव मे तो सभी सबके दुश्मन हैं। ऊपर से ही हसी। फिर नोब्रू की मां के मिजाज से तो···'

'रहने दो···' रामकाली ने धीमे से डांट बतायी और मेघमंद्र स्वर मे कहा, 'गाव के सब की लिखावट पहचानते हो ? कह सकते हो, यह हरूफ किसका है ?'

मिरजई की जेब से चिट्ठी निकालकर उन्होंने थोड़ा-सा फैलाया। लेकिन फैलाने की जरूरत भी क्या थी। इन्हें तो मालूम है कि यह लिखावट किसकी है। भवतोष मास्टर की। और लिखने की प्रेरणा खुद निताई है। उसने मास्टर से नवकुमार की पत्नी की दुःखगाथा कही थी विस्तार से और भवतोष मास्टर ने कहा था, 'ठहरो, मैं इसका प्रतिकार करता हूं। साहबों के मुल्क मे कभी कोई स्त्री जाति का सताया जाना बर्दाश्त नही करता !'

'क्यो, पहचान पा रहे हो ?'

दोनो ने जोरों से गरदन हिलाई। अवश्य ना करते हुए। हां करके कौन सिह के मुह मे अपने को डाले ?

'ठीक है। मैं आपके घर ही जाता हूं। आपके पिताजी घर पर है ?'

'जी है', इस अस्फुट स्वर ने रामकाली को निश्चित कर दिया कि उनका जामाता गूगा नही है।

पालकी के कहारों को रामकाली ने कुछ निर्देश दिया और इनसे बोले, 'चलिए, आपके साथ इतनी दूर पैदल ही चलू।'

'जी मैं दौड़कर घर पर खबर करता हू।' कहकर मित्र निताई विश्वास-घातक की तरह उसे अगाध पानी में छोड़कर दौड पड़ा।

कई कदम चलकर एकाएक अपने स्वभाव से परे रामकाली बोल उठे, 'मेरी लड़की क्या आपके घर में कुछ उत्पात कर रही है ?'

'जी···ऐं···!' नवकुमार तुतलाने-सा लगा।

'यही पूछ रहा हूं। बच्ची है। अबोध होना असम्भव नही है।'

'जी, नही···नही···'

नवकुमार के पसीना छूट गया । धोती का जो छोर उसने बदन पर डाल रखा था, उसी से वह आंसू पोंछने लगा ।

रामकाली ने धीमे से कहा, 'घबराने की कोई बात नहीं । मैंने तो कौतूहल से महज पूछा था । खैर ! मैं जिस काम से आया हूं, वह बताऊं । आप मेरे जामाता हैं । घर में एक शुभकार्य होने वाला है, इसलिए मैं बिटिया को लिवा जाना चाहता हूं । ब्याह के समय अवश्य यथारीति न्योता आएगा, तब आपके पिताजी और आप आइएगा । घर की स्त्रियां आपसे वहा कई दिनो के लिए रहने का अनुरोध करेंगी, यह मैं आपके माता-पिता से कह जाऊंगा । आप रहने के लिए तैयार होकर आइएगा ।'

नवकुमार इन बातों का क्या उत्तर दे ?

डर और खुशी से, आशा और उत्कण्ठा से उसके तो स्वेद-कम्प होने लगा ।

घर के दरवाजे पर पहुंचते ही नवकुमार ने कहा, 'जी, मैं जाता हूं ।'

'अरे, जाने क्यों लगे ?'

'जी हा, मैं जाता हूं । निताई रहा···' और उसने इधर-उधर देखकर ससुर के पैर के पास की माटी को छूकर प्रणाम किया और भाग गया ।

रामकाली ने उस ओर देखकर एक नि.श्वास फेंका ।

लिख-पढ़ रहा है !

मगर आदमी बन रहा है क्या ?

ऐन इसी वक्त निताई नवकुमार के घर से निकला और नीलाबर बाबू ने दरवाजे के पास खड़े होकर मुसकराते हुए कहा, 'अच्छा, समधीजी ! कहिए, कैसे आना हुआ ?'

२२

बेला झुकने से पहले ही रामकाली की पालकी अकेले उन्ही को लेकर लौट पड़ी । पालकी के खुले दरवाजे से ढलते सूरज की सुनहली आभा झाक रही थी, फागुन के अत की शिशु-सी शरीर हवा रह-रह कर अंदर घुस आती थी ।

अकास-बतास, पेड़-पौधे मे सर्वत्र जोत-जड़े आनन्द का आवेश । लेकिन प्रकृति के उस मधुर रूप की तरफ ध्यान देने जैसी मानसिक अवस्था नही थी रामकाली की । जाने किस दुरंत क्षोभ से मन उनका हाहाकार कर रहा था । लगता है, कही जैसे बहुत बड़ी हार हो गयी है उनकी ।

क्या भद्रताबोधविहीन नीलाबर बनर्जी से हार गए है ? बेटी की विदाई नही करा सके, इस क्षोभ से मन चंचल था ?

बात तो दरअसल यह नहीं थी। नीलांबर बाबू ने तो भद्रता की हद दिखाई।

बिटिया की विदाई का प्रस्ताव रखते ही नीलांबर बाबू बोले, 'बेशक ! यह तो अच्छी ही बात है। अपनी बेटी को आप लिवा जाएंगे, जी चाहे जितने दिन रखें, इसमे मुझे क्या एतराज हो सकता है ? अरे ऐ, कौन है, ज़रा पत्रा तो ले आ।'

रामकाली ने कहा, 'तिथि मैं दिखाकर ही आया हूं। कल सर्वशुद्धा त्रयोदशी है। दिन भी अच्छा है। कल ही ले जाऊंगा। आज रात रुकना ही पड़ेगा। इसलिए बस्ती में किसी ब्राह्मण के यहा सोने का इन्तज़ाम करा दीजिए। लेकिन दया करके खाने-पीने का कोई प्रबन्ध न कीजिएगा। कहारो के खाने-पीने का सामान उनके पास है।'

नीलांबर ने गाल पर हाथ रखकर स्त्रियो जैसे ढंग से कहा, 'यह आप क्या कह रहे है समधीजी ! इतना बड़ा घर, यह दालान और आप कही और···'

रामकाली ने गंभीर हंसी हंसते हुए उन्हें बीच ही मे रोक दिया, 'जी आप क्या बंगालियों के लोकाचार को भूल रहे है ? बेटी-दामाद के घर रहना लोकाचारसम्मत है ?'

नीलांबर हंसी के साथ हे-हे करते हुए बोले, 'जी हा, सो तो ठीक है, लेकिन नाती होने के बाद तो यह बात नहीं चलेगी।'

रामकाली ने और भी गंभीर होकर कहा, 'हा, नाती होने के बाद ! खैर, दूर भविष्य की चर्चा मे समय बरबाद करने की क्या ज़रूरत है ? अभी तो बिटिया से ज़रा भेंट करने का इन्तजाम कर दीजिए।'

'बेशक ! इसमें इन्तज़ाम क्या करना ! अरी ओ सौदा, बहू को ज़रा बीच वाले कमरे में ले आ। समधीजी भेंट करेंगे।'

'तो ? नीलांबर के व्यवहार मे खोट कहां है ?'

इससे और अच्छा व्यवहार क्या हो सकता है ? कितने घरों में तो बहू के बाप-भाई के आने पर बाहर-ही-बाहर खिला-पिलाकर उन्हे रुखसत कर दिया जाता है। बेटी से भेंट नही करने देते। और कही अगर बहुत करने-कराने से मिलने भी दिया जाता है, तो कोई पहरेदार बैठा रहता है। इसे देखते हुए यह तो मांगी मुराद मिलना हुआ। रामकाली को तो कृतार्थ हो जाना चाहिए।

लेकिन आदमी का मन भी अजीब है ! रामकाली को लगा, 'यह सौदा को पुकार कर जो हुक्म दिया गया, वह जैसे बेगार टालने जैसी बात हो। जैसे कोई यह कहे कि अरे, कौन है, एक मुट्ठी भीख तो दे जा, कम्बख्त भिखमगा बड़ा चिल्ला रहा है।'

रामकाली को ग्लानि-सी हुई। सारा परिवेश अशुचि-सा लगा। लेकिन

चारा क्या था ? जामाता का दोस्त वह छोकरा तो दरवाजा थामे नज़र आ रहा था, वह कहा गया ? उन्होने इधर-उधर नज़र दौड़ाई। पता न चला।

यह सौदा कौन है ? समधीजी के तो कोई लड़की नहीं है। चिंता की उस भीड़ मे अचानक बीच वाले कमरे की सांकल बज उठी।

कमर का कपड़ा खोंसते हुए नीलांबर उठे। अंदर जाकर क्या कहा, क्या किया, भगवान जाने। बाहर आकर बोले, 'आइए, समधी जी।'

रामकाली अन्दर गए।

देखा, अंधेरे-से एक कमरे में एक चौकी के किनारे लंबे घूंघट में एक बालिका मूर्ति खड़ी है। पहनावे की साड़ी चटकदार ! शायद पिता के सामने जाने के लिए उसे थोड़ा-बहुत सजाया-गुजाया गया है।

कमरे के बाहर एक कम उमर की स्त्री खड़ी। माथे पर मामूली घूघट। रामकाली के कमरे में जाते ही उसने उनके चरण छूए और धीमे से कहा, 'वह रही। बातचीत कीजिए। फिर बेटी को ले जाइएगा।' कहकर टुप् से एक दरवाजे होकर जाने कहां चली गयी। लेकिन उसकी उस अस्फुट बात को पचा पाने के पहले ही एक और धीमा लेकिन तीखा गला उनके कानों 'पहुंचा—'बहू को अकेली छोड़ आयी ?'

'वाह, मैं स्वाग के पुतले की तरह खड़ी क्या रहती ? शर्म नही लगती है ?'

यह जवाब भी उनके कानों पहुचा। उसके बाद फिर वही तीखा गला, 'अरे, हाय री मेरी लजवंती ! अब अकेले मे वह बाप को एक की एक सौ लगाए !'

इसका जवाब नही सुनाई पड़ा। लेकिन मन तो खीजा ही हुआ था, कैसा तो विकल होकर विस्वाद हो गया। बेटी से मिलने की खुशी का श्रीगणेश ही गोबर हो गया।

इसी बीच सत्य ने चुपचाप बाप को प्रणाम किया। प्रणाम करके चरणों की धूल को सिर से लगाना भी न भूली।

लेकिन रामकाली एकाएक ऐसे विचलित क्यों हो गए ? सत्य के इस आचरण से उसका कलेजा हाहाकार क्यों कर उठा ? यह स्थितप्रज्ञ व्यक्ति जिस हाहाकार को अभी तक दबा नही पा रहे है ? रामकाली ने क्या यह उम्मीद की थी कि उनकी वह सत्यवती हू-ब-हू वैसी ही है ? बाप को देखते ही दौड़ी आएगी, टप् से प्रणाम करके पुरखिन-सी बोल उठेगी, 'इतने दिनों में बेटी की याद आयी है बाबूजी ? बाप के प्राण को धन्य है, इतने दिनो में बेटी को एकबार देखने की भी इच्छा नहीं हुई कि वह ज़िंदा है या मर गयी ! यह तो ग़नीमत कहिए कि पुन्नू फुआ का ब्याह ठीक हुआ···'

या कि रामकाली ने मन में यही सोच रखा था कि सत्य पहले की सत्

नही है, वदल गयी है एकवारगी ? इसी से उन्होंने यह आशा की थी कि नजर पड़ते ही वाप की गोद में लिपट जाएगी और चुपचाप रोती रहेगी ! उसके अविरल झरते आसू से उनका तपता कलेजा ठंडा होगा !

लेकिन ऐसी इच्छा तो रामकाली को नही होनी चाहिए। आवेग-प्रवणता तो उनकी रुचि के विलकुल विरुद्ध है। ऐसे मौके पर रोने-धोने से उनकी त्योरी सिकुड़ आती है। खुद उनकी लड़की ही अगर ऐसे सस्ते ढंग से आवेग दिखाती तो वे असंतुष्ट नही होते क्या ?

अनेक विचित्र उपादानो से वना मानव-मन कव क्या चाहता है, कहना वड़ा कठिन है। क्या चाहता है, यह वह खुद नहीं समझ सकता। कभी-कभी गहरी पीड़ा से केवल इतना ही कह उठता है, यह क्या हुआ ? ऐसा तो नहीं चाहा मैंने !

इसीलिए सदा के अडिग रामकाली ने आज अचानक अपनी वेटी की शांत सभ्य वधू-मूर्ति देख चंचल होकर सोचा, 'यह क्या हुआ !'

वात नही फूटी। केवल इतना ही मुह से निकला, 'अच्छी हो न !'

सत्य ने वैसे ही सिर झुकाकर कहा, 'हां ! घर में तो सव कोई कुशल से हैं न ?'

दादी, फुआदादी से लेकर वागदी नौकरानी तक एक-एक का नाम लेकर उसने नही पूछा कि कौन कैसी है। सिर्फ इतना ही कहा, 'घर मे तो सव कोई कुशल से हैं न ?'

अजीव है ! ससुराल आने पर लड़कियां क्या इसी तरह से अपने आजन्म के आश्रय को अपने माटी के घरौंदे की ही तरह तोड डालती है ? मन से विलकुल धो-पोंछ देती हैं ? इसीलिए शकुंतला को फिर कभी कण्व मुनि के आश्रम में नही देखा गया, नही देखा गया सीता को जनक जी के यहा ! महा-कवियो की लेखनी ने भी इस अमोघ नियम को सहज सत्य ही मान लिया था, इसीलिए उनकी लेखनी निष्ठुर उदासीनता के साथ आगे ही वढती गयी, पीछे पलटकर नही देखा।

तो, नारी और नदी एक ही धातु की वनी है !

लेकिन गिरिराज दुहिता उमा ?

नः, उमा तो इतिहास की नहीं, पुराण की नही, महाकवियों की अमर लेखनी की अपूर्व सृष्टि नहीं, वह तो आम लोगों के मन की माधुरी से वनी एक अमिय छवि है। मनुष्य की आशा और कल्पना, प्रत्याशा और आकांक्षा से वनी प्रेम-प्यार की मूर्ति !

रामकाली के मन मे भावों की लहरें लहरा आयी, जैसा कि आमतौर से उनमें नही होता। सोचा, सत्य के वारे में इतने दिनों तक उनमे जो मूल्यवोध

था, सत्य उसके लायक नही है ? सत्य वैसी ही साधारण लड़की है, जो सहज ही वदल जाती है ? सोचा, तो क्या पिटने की वात ही सही है और सत्य एक निरी डरपोक लड़की मात्र है ? ऐसी लड़की जो पिटती है, डर के मारे काठ हुई रहती है, अपने को जाहिर करने की हिम्मत नही कर पाती ?

फिर भी अपने को जब्त करके रामकाली ने कहा, 'हां, सभी कुशल से हैं। पुन्नू के व्याह का दिन सोलह वैशाख ठीक हुआ है। इसीलिए तुम्हे लिवा जाने के लिए आया हू।'

हां, इस वात के उच्चारण करते ही मानो कलेजे में उन्होने हथौडी की चोट महसूस की।

सत्य खुशी के मारे उछल नही पडी। उसके वदले मे बोली, 'शादी का दिन वैशाख महीने के वीच में है। अभी तो वस फागुन ही खत्म हो रहा है। इतना पहले विदा कराने की वात कहने से ये लोग कुछ सोच सकते हैं वावूजी!'

रामकाली ने एक गहरी उसास छिपाकर कहा, 'इन लोगो ने ना नही कहा है।'

'नही कहा है, यह इनकी भलमनसाहत है। लेकिन हमें भी तो सोचना चाहिए। इन्हें असुविधा मे डालकर...'

'यानी अभी जाने की राय नही है तुम्हारी ?'

रामकाली को और एक उसास छिपानी पड़ी।

अव सत्य ने सिर उठाकर देखा। सीधे वाप की नजर की तरफ ताका। खूवसूरत साड़ी का घूंघट खिसककर पीठ पर गिर गया, जिससे सत्य का ढीठ घुघराले वालो से घिरा सारा मुखड़ा ही साफ दिखने लगा।

सत्य ने नजर झुकाई। खिसके हुए घूंघट को सम्हालते हुए वोली, 'स्थिति के हिसाव से राय नही ही है। सासजी की सेहत ठीक नही है, अकेली ननद के माथे सारी गिरस्ती...।'

रामकाली ज़रा आश्चर्य से वोले, 'ननद ! नवकुमार के वहिन भी है ?'

'सहोदर नही, लेकिन सहोदर से भी वढ़कर वावूजी ! फुफेरी वहन—वही, जो आपको यहां पहुंचा गयी।'

ओ ! ननद के प्रसंग को वहीं ख़त्म करते हुए उन्होंने कहा—'जाने का जव उपाय नहीं है तो क्या किया जाए ! लिहाज़ा रात को अव यहां ठहरने की भी ज़रूरत नहीं। इसी वक्त चल दूगा। जाने से पहले तुम्हें एक वात पूछू, तुमने तो थोड़ा-वहुत लिखना-पढ़ना सीखा था। मैं समझता हूं, खत-वत पढ़ भी लेती होगी, इस चिट्ठी को पढ़कर समझ सकोगी ?'

रामकाली ने मिरजई की जेव से चिट्ठी निकाली।

चिट्ठी को हाथ में लेकर सत्य ने कुछेक पंक्तियां पढ़ी, भगवान जानें,

घूंघट की आड़ में उसका चेहरा कैसा हो उठा, आवाज लेकिन ठीक ही रही। शांत गले से बोल उठी, 'आप ज्ञानवान हैं, फिर भी नही समझ सके कि यह किसी शत्रु का काम है !'

'ऐसा कौन शत्रु है तुम लोगों का ?'

'सो कौन जानता है ? बहुत-से शत्रु तो ऊपर से भले भी बने रहते हैं।'

चिट्ठी को पूरा पढ़े बगैर ही उसने लौटा दिया।

रामकाली ने उसे फिर जेब मे डाला। दीर्घ निःश्वास को छिपाए बिना ही बोले, 'तो तुम्हे यहां कोई कष्ट नही है ? तुम्हारे लिए मुझे चिंतित होने की भी कोई वजह नही। ईश्वर ने कल्याण किया। यही बताकर तुम्हारी मा को दिलासा दे पाऊंगा।'

'मा को !' सत्य जरा चौकी, 'मां को इस चिट्ठी के बारे में मालूम है ?'

'नही !' उन्हे यह सब नही मालूम है। लेकिन बेटी-बेटी करके व्याकुल हो गयी है न। खैर, इसी बात का संतोष है कि तुम्हारे प्रति कोई दुर्व्यवहार नहीं होता। और मैं यकीन करूंगा कि तुम ठीक ही कह रही हो।'

सत्य ने फिर एक बार उसी तरह से सिर उठाकर ताका। अब की जैसे भयंकर मान की एक छाया उसकी आखों मे फूट पड़ी। धीमे लेकिन दृढ स्वर मे बोली, 'कासे-पीतल के बर्तन भी एक जगह रहते हैं तो समय-समय पर टकराते है बाबूजी, हम सब तो जीते-जागते आदमी है ! कभी झगड़ते ही नही, झगड़ेंगे नहीं, यह भला बलपूर्वक कहा जा सकता है ? लेकिन हा, अपनी बेटी पर इतना भरोसा रखिए कि वह कोई अन्याय करेगी भी नही, सहेगी भी नही।'

रामकाली चले आए।

सत्य ने फिर उन्हे प्रणाम किया।

लेकिन यही तो इति नही थी।

'बिटिया को लिवाए बिना ही जो चल दिए समधीजी ?' रामकाली को इस सवाल का जवाब देना पड़ा था। और चूंकि बनाकर झूठ नहीं बोल पाए इसलिए व्यंग्य भी सुनना पड़ा।

अपने उसी स्त्री जैसे-ढंग से गाल पर हाथ रखकर सत्य के ससुर ने कहा, 'आप कह क्या रहे है समधीजी ? बेटी बाप के यहां नही जाना चाहती ? यह तो बड़े आश्चर्य की बात सुनाई आपने !'

रामकाली के जी में आया, कुत्ते का काटना घुटने के नीचे ! लेकिन सत्य के ससुर के लिए यस मुहावरा सहज ही उनके मन में आ सका, यह भी तो कम ग्लानि की बात नही।

उनके व्यवहार में सौजन्य और विनय की कमी नहीं थी, फिर भी

रामकाली को वे स्थूल और अमार्जित क्यों लगे ? जामाता बेशक बेवकूफ-सा है, स्वभाव का कैसा है, कौन जाने। बस वही तो ज़रा देर के लिए भेंट हुई थी, फिर जो चंपत हुआ सो हुआ।

उसके दोस्त को भले फिर देखा। यह खूब समझ में आया कि उसका दोस्त नवकुमार के मां-बाप के प्रति श्रद्धाशील नहीं है।

श्रद्धा के योग्य भी नहीं हैं वे।

तो भी रामकाली का जी कचोट उठा, ऐसी ससुराल से भी सत्य खासी हिलमिल गयी है। ऐसी मिल गयी है कि सास की सेहत के बहाने उसने मैके जाने का लोभ छोड़ दिया।

मौका मिला, फिर भी मैके जाने को तैयार नहीं हुई, ऐसी कोई लड़की रामकाली ने अपने इतने बड़े जीवन में देखी है क्या ? फिर भी उसे ठीक से समझना मुश्किल है।

शायद हो कि उसे अब कभी भी समझा नहीं जा सकेगा। रामकाली की बेटी रामकाली से बहुत दूर चली गयी है, और भी बहुत-बहुत दूर चली जाएगी। उस सत्य को अब कभी ढूंढकर पाया नहीं जा सकेगा।

सदा के निःसंग रामकाली के मन की एक छोटी-सी संगी, रामकाली के आकाश का टिमटिमाता एक तारा—सदा के लिए खो गया !

कि उनकी भावना में बाधा पड़ी।

नज़र आया, पालकी के कहारों से ताल मिलाते हुए एक और आदमी दौड़ रहा है।

कब से दौड़ा आ रहा है ?

आया ही कहां से ? कुछ कहना चाहता है क्या ?

रामकाली ने कहारों से रुकने को कहा।

और तब देखा, यह निताई है। नवकुमार का मित्र।

क्या बात है ? किसी एक प्रत्याशा से रामकाली का चेहरा दमक उठा।

क्या सोचा उन्होंने ? सत्यवती ने उन्हें लौटालने को कहा है। अब रोकर कहेगी, आपने बेटी के मुंह की बात ही सुनी बाबूजी, उसके मान को नहीं देखा। एक बार ना किया कि आप चल दिए ?

बहुत-सी बातें मन में घुमड़ आयी, पर संयत स्वर में ही कहा—'क्या खबर है ?'

निताई हांफ रहा था। दम लेकर बोला, 'मेरी ढिठाई माफ करें, मैं यह कहने आया हूं कि आपने यह क्या किया ? बेटी को लिवाने के लिए आए और खाली हाथ लौट रहे हैं। बनर्जी बाबू से हार गए ?'

घूघट की आड़ में उसका चेहरा कैसा हो उठा, आवाज लेकिन ठीक ही रही। शांत गले से बोल उठी, 'आप ज्ञानवान है, फिर भी नही समझ सके कि यह किसी शत्रु का काम है !'

'ऐसा कौन शत्रु है तुम लोगों का ?'

'सो कौन जानता है ? बहुत-से शत्रु तो ऊपर से भले भी वने रहते है।'

चिट्ठी को पूरा पढ़े बगैर ही उसने लौटा दिया।

रामकाली ने उसे फिर जेब में डाला। दीर्घ नि.श्वास को छिपाए बिना ही बोले, 'तो तुम्हें यहां कोई कष्ट नही है ? तुम्हारे लिए मुझे चिंतित होने की भी कोई वजह नहीं। ईश्वर ने कल्याण किया। यही बताकर तुम्हारी मां को दिलासा दे पाऊंगा।'

'मा को !' सत्य जरा चौकी, 'मां को इस चिट्ठी के बारे में मालूम है ?'

'नही !' उन्हे यह सब नहीं मालूम है। लेकिन बेटी-बेटी करके व्याकुल हो गयी है न। खैर, इसी बात का संतोप है कि तुम्हारे प्रति कोई दुर्व्यवहार नहीं होता। और मैं यकीन करूंगा कि तुम ठीक ही कह रही हो।'

सत्य ने फिर एक बार उसी तरह से सिर उठाकर ताका। अब की जैसे भयंकर मान की एक छाया उसकी आखों मे फूट पड़ी। धीमे लेकिन दृढ स्वर में बोली, 'कासे-पीतल के बर्तन भी एक जगह रहते है तो समय-समय पर टकराते है बाबूजी, हम सब तो जीते-जागते आदमी है ! कभी झगड़ते ही नहीं, झगड़ेगे नही, यह भला बलपूर्वक कहा जा सकता है ? लेकिन हा, अपनी बेटी पर इतना भरोसा रखिए कि वह कोई अन्याय करेगी भी नही, सहेगी भी नही।'

रामकाली चले आए।

सत्य ने फिर उन्हे प्रणाम किया।

लेकिन यही तो इति नही थी।

'बिटिया को लिवाए बिना ही जो चल दिए समधीजी ?' रामकाली को इस सवाल का जवाब देना पड़ा था। और चूकि बनाकर झूठ नही बोल पाए इसलिए व्यंग्य भी सुनना पड़ा।

अपने उसी स्त्री जैसे-ढग से गाल पर हाथ रखकर सत्य के ससुर ने कहा, 'आप कह क्या रहे है समधीजी ? बेटी बाप के यहा नहीं जाना चाहती ? यह तो बड़े आश्चर्य की बात सुनाई आपने !'

रामकाली के जी में आया, कुत्ते का काटना घुटने के नीचे ! लेकिन सत्य के ससुर के लिए यह मुहावरा सहज ही उनके मन में आ सका, यह भी तो कम ग्लानि की बात नही।

उनके व्यवहार में सौजन्य और विनय की कमी नही थी, फिर भी

रामकाली को वे स्थूल और अमार्जित क्यों लगे ? जामाता वेशक बेवकूफ-सा है, स्वभाव का कैसा है, कौन जाने। बस वही तो ज़रा देर के लिए भेंट हुई थी, फिर जो चंपत हुआ सो हुआ।

उसके दोस्त को भले फिर देखा। यह खूब समझ में आया कि उसका दोस्त नवकुमार के मा-बाप के प्रति श्रद्धाशील नहीं है।

श्रद्धा के योग्य भी नही हैं वे।

तो भी रामकाली का जी कचोट उठा, ऐसी ससुराल से भी सत्य खासी हिलमिल गयी है। ऐसी मिल गयी है कि सास की सेहत के वहाने उसने मैंके जाने का लोभ छोड़ दिया।

मौका मिला, फिर भी मैंके जाने को तैयार नहीं हुई, ऐसी कोई लड़की रामकाली ने अपने इतने बड़े जीवन में देखी है क्या ? फिर भी उसे ठीक से समझना मुश्किल है।

शायद हो कि उसे अब कभी भी समझा नही जा सकेगा। रामकाली की वेटी रामकाली से बहुत दूर चली गयी है, और भी बहुत-बहुत दूर चली जाएगी। उस सत्य को अब कभी ढूंढकर पाया नही जा सकेगा।

सदा के नि.संग रामकाली के मन की एक छोटी-सी संगी, रामकाली के आकाश का टिमटिमाता एक तारा—सदा के लिए खो गया !

कि उनकी भावना में बाधा पड़ी।

नज़र आया, पालकी के कहारो से ताल मिलाते हुए एक और आदमी दौड़ रहा है।

कब से दौड़ा आ रहा है ?

आया ही कहा से ? कुछ कहना चाहता है क्या ?

रामकाली ने कहारों से रुकने को कहा।

और तब देखा, वह निताई है। नवकुमार का मित्र।

क्या बात है ? किसी एक प्रत्याशा से रामकाली का चेहरा दमक उठा।

क्या सोचा उन्होंने ? सत्यवती ने उन्हें लौटालने को कहा है। अब रोकर कहेगी, आपने बेटी के मुंह की बात ही सुनी बाबूजी, उसके मान को नही देखा। एक बार ना किया कि आप चल दिए ?

बहुत-सी बातें मन में घुमड़ आयी, पर संयत स्वर में ही कहा—'क्या खबर है ?'

निताई हाफ रहा था। दम लेकर बोला, 'मेरी ढिठाई माफ करें, मैं यह कहने आया हू कि आपने यह क्या किया ? बेटी को लिवाने के लिए आए और खाली हाथ लौट रहे हैं। बनर्जी बाबू से हार गए ?'

रामकाली का चेहरा सुर्ख हो उठा।

किसी तरह से अपने को ज़ब्त करके बोले, 'ढिठाई को माफ करना कठिन हो रहा है।'

'समझ गया! लेकिन बड़ी उम्मीद से मैं बेतहाशा भागा आ रहा हूं। बेटी को आप ले नही जा रहे है, पर पीछे शायद उसे ज़िंदा ही न देख पाएं। शायद आत्महत्या करके—आपकी बेटी टूट सकती है, झुक नही सकती!'

रामकाली ने दबे गले से डाट-सी बतायी—'देखने मे तो भले-से लगते हो, स्वभाव ऐसा इतर-सा क्यो है?'

'इतर-सा!'

पराए घर की बहू की आलोचना इतरता ही है।

'खैर!' निताई ने अभिमानक्षुब्ध चेहरे से सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा, 'और क्या कहूं। लेकिन यह हिमाकत अकेली मेरी नही है, आपका दामाद नवकुमार—निताई ने थूक घोंटा—कह रहा था, नजर के सामने स्त्री-हत्या देखूगा, प्रतिकार नहीं करूंगा? इसीसे मैं···।'

निताई धीरे-धीरे चला गया।

काठ के मारे-से उधर ताकते रहे रामकाली।

आत्मसम्मान छोड़कर उसे फिर से बुलाएं?

बुलाने के बाद?

आदि से अंत तक सब सुनकर फिर जमाई के यहा जाएं?

फिर?

फिर उनसे कहें, न, मुझसे गलती हो गयी! नादान बच्ची, खयाल में क्या कह गयी, वह बात कोई बात ही नही, मैं उसे ले जाऊंगा!

अच्छा, फिर?

यदि सत्य फिर कहे कि फिर लौट कैसे आए बाबूजी? मैंने तो कह दिया, अभी जाना नही हो सकेगा।

तब?

तब क्या करेंगे रामकाली? यही कहेंगे कि पगली लड़की, पागलपन छोड़! तेरी मां तुझे देखे बिना रो-रो के दिन काट रही है। यह कहेंगे कि तुझे साथ लिए बिना लौटने मे मेरा जी हाहाकार कर रहा है। कहेंगे, नही, ऐसा नही होता। आत्मसम्मान को कितना सताएं?

'उठा पालकी!' कहारो से कहा।

कहार पालकी उठाकर चल पड़े। धीरे-धीरे उनके विस्मय की धूसरता फीकी हो आयी। कार्य-कारण का रूप आंखो में उतर आया।

नीलांबर बनर्जी से वे नही हारे, हार गए अपनी आत्मजा से। बुद्धि से

उसने उन्हें परास्त कर दिया। बाप को समझा दिया कि ससुराल में वह सुखी है, संतुष्ट है।

जीवन देकर भी अपने बाप की शांति को बरकरार रखेगी वह! और रामकाली? रामकाली सत्य के उस कौशल से भटक गए, अभिमान से अंधे हो गए, अपना अहंकार लिए लौट आए।

अब वापस नही जाया जा सकता।

ठीक वक्त का इंतजार करना होगा। पुन्नू के ब्याह के बिलकुल करीब वह आएगी—कुटुंब की नाई। आएगी—बशर्ते कि तब तक वह जिंदा रह जाए।

आखें जल उठी, जैसे मिर्च पड़ गयी हो। अपने स्वभाव से बाहर पालकी से मुह निकालकर उन्होने कहा, 'कछुए की तरह क्या चल रहा है, पांवों मे जोर नही है?'

चिट्ठी शत्रु की करतूत है—यह बात निरी गलत नही! बहू को एलोकेशी रोज पीटती हैं, यह कहना उनके प्रति अन्याय करना होगा। पीटा एक ही दिन था, वह बाल बांधने वाले दिन। हा, जरा आस मिटाकर ही मारेगी, यह सोचकर आंगन में सूखते हुए चैलों में से एक उठा लायी थी, लेकिन उस चैले को बहू की पीठ पर तोड़ने का सुख उन्हें नही मिला। दईमारी बहू ने झट झपटकर वह चैला उनके हाथ से छीन लिया और गम्भीर होकर बोली, 'देखिए, आप गुरुजन हैं, गुरुजन की तरह रहिए, आपको सिर-आखों पर रखूगी। और नहीं तो जान लीजिए, आपके नसीब मे दुःख लिखा है। आपने मुझे पहचाना नही है, इसी से यह समझ रखा है कि मुझ पर जो चाहे करेंगी। यह खयाल छोड़ दीजिए।'

उसकी बात पूरी होते न होते ही एलोकेशी ढाढ़ें मारकर रो पड़ीं और मुहल्ले की भीड़ जुटा ली।

फिर तो हलचल हो गयी। हल्ला मच गया।

लेकिन उस रंगमंच पर सत्य नहीं नजर आयी।

सौदामिनी ने ही लोगों की हैरानी दूर की। कहा, 'फागुन की गरमी में मामी का दिमाग गरम हो गया है।' अवश्य यह बात लोगों को अलग ले जाकर कही था। और फिर मामी से भी होले-होले कहा, 'मामी, सांप की पूछ पर पांव मत रखो, यह तुम्हारी बहू ऐसी-वैसी नही है।'

सौदामिनी को गिन-गिनकर गालिया देती हुई एलोकेशी ने कहा, 'अच्छा, गावभर के लोग देखेंगे कि मैं इस बहू के माथा मुड़वाकर इसे गाव से बाहर निकाल देती हूं कि नहीं!'

लेकिन एलोकेशी अपनी इस बात को काम का रूप नही दे सकीं। यह

सुनकर बहू ने सौदा को कहने के बहाने साफ सुना दिया, 'घर की बहू का सिर मुड़वाकर उसे घर से बाहर निकाल देने में अगर आप सब का सिर ऊंचा हो तो अपनी मामी से वही करने को कहो, सौदा-दी ! उन्हें लेकिन सोच लेने को कहना, ऐसा करने से लोग कीचड़ किस पर उछालेंगे !'

सुनते ही एलोकेशी आपे से बाहर हो गयी—'ठहरो, आज तुझे काटकर मैं खुद भी फांसी चढ़ती हूं। ऊः, घर की बहू है, और ऐसी ज़बान !'

सत्य ने रसोई के बरामदे से मछली काटने वाली हंसिया उठाकर चुपचाप सास की तरफ बढ़ाते हुए कहा—'तो लीजिए, वही कीजिए। ऐसे मैं यह देखने नहीं आऊंगी कि किसके मुंह पर कालिख पुती !'

इसके बाद तो एलोकेशी निढाल-सी हो गयीं। उनके मुंह से कोई बात न फूटी। कुछ देर तक उस हंसिया की चकचक धार की तरफ ताकती रहकर वहां से खिसक पड़ीं।

और तब से बक-झक छोड़कर उससे बोलना बंद रखा। भीतर ही भीतर नीलांबर को उकसाती रहीं कि बहू के गहना-गुरिया छीनकर बाप के घर भेज दो। भेजने के बाद फिर कभी उसे मंगाना नहीं !

लेकिन हीला-हवाला खोजने में दिन बीतते जा रहे थे कि अचानक रामकाली आ पहुंचे।

एलोकेशी को मानो हाथ में चांद मिल गया। उन्होंने तय कर लिया कि इसी बहाने बहू को भेज देंगी ! सदा के लिए ! क्योंकि इस बीच उन्होंने एक लड़की देख रखी थी। सात-आठ साल की, निरीह-सी। और फिर लड़की के बाप ने यह कहा था कि लड़की को वे चीनी सोना के गहनों से एड़ी-चोटी लाद देंगे।

यही महामंत्र एलोकेशी पति को आठों पहर जपाती रहीं। इसलिए एक ही बात पर नीलांबर बहू को विदा करने के लिए तैयार हो गए थे। बहू ही बिदक बैठी।

रामकाली चले गए तो एलोकेशी ने कटाक्ष करते हुए पति से कहा, 'देख लिया, कैसी जांबाज और धोखेबाज है यह लड़की ! मैंने कहा नहीं था, इसकी हड्डी-हड्डी में शरारत है ?'

नीलांबर ने कहा, 'हां, देख तो रहा हूं।"

'तो फिर बताओ, इसी बहू को लेकर मुझे घर करना होगा ? एक तो उस मुंहजली सौदी से ही नाक में दम है, तिस पर यह बहू ! और फिर दोनों में मेल कितना है। इसीलिए मैं सूप की हवा लगाकर बहू को विदा करना चाहती हूं। एक बात और—' धीरे-धीरे बोली—'यह भी समझो कि अभी साथ नहीं होने दिया है। यह छक्का-पंजा बहू पति को जैसे ही पाएगी, एकबारगी मुट्ठी में

कर लेगी। फिर हमारा नोबू हमारा थोड़े ही रहेगा। इससे तो मेरी 'वकुलफूल' के देवर की वह बेटी भोली-भाली है।'

लेकिन समधी से नीलांबर यह नहीं कह सके कि समधीजी, भला चाहते हैं तो अपनी बिटिया को ले जाइए, वरना उसे हम सूप की हवा देकर निकाल देंगे।

नीलांबर में एक दोष है। उनका कलेजा जितना चौड़ा हो चाहे, मुंह का जोर कम है।

एलोकेशी ने अपने मुंह-गाल पर थप्पड़ मारकर कहा, 'क्या बताऊं, समधी मर्द हैं, उनसे बोलेने का उपाय नहीं, नहीं तो मैं देख लेती वे कैसे काइया है और उनकी लाड़ली बेटी ही कितनी हरामजादी है!'

बहू से बोलना बंद कर रखा था। एलोकेशी की यह आन लेकिन रह नहीं सकी। सत्य बैठी पान लगा रही थी, वहीं लपककर गयीं और बोली, 'बाप लेने के लिए आया था, गयी नहीं?'

सत्य ने एक बार नजर उठाई और फिर नजर झुकाकर पान लगाने लगी।

'ऐं! जवाब नहीं दिया? बाप के साथ अपनी फुआ के ब्याह में गयी नहीं?'

सत्य ने धीमे से कहा, 'ब्याह में तो अभी देरी है!'

'लेकिन बाप तो लेने के लिए आया था!'

'देखिए, बाबूजी के बारे में ऐसी अश्रद्धा से न बोलिए!'

सत्य ने लगी खिल्लयों को पनबट्टे मे रखकर उसपर गीला लत्ता डालकर ताक पर रखा।

गुस्से के मारे एलोकेशी को कोई दिशा नहीं सूझी। लाचार बोलीं, 'कल-मुही, सोचा क्या है तूने? बाप के घर नहीं जाएगी। सदा मेरे सीने पर बैठ-कर दाढ़ी उखाड़ा करेगी?'

सत्य ने एक बार अंतरभेदी दृष्टि से ताककर कहा, 'ऐसी आफ़त को जब वरण करके ले आयी है तो बोझा तो सदा को ढोना ही पड़ेगा!'

नवकुमार को भग्नदूत से खबर मिली।

निताई कह गया, तेरे ससुर ने बस मुझे जलाकर भस्म कर देना ही बाकी रखा।

लेकिन निताई की बात का उसने कुछ वैसा नहीं लिया।

सताई जानेवाली पत्नी को बचाने के साधु-संकल्प से उसने दुःस्साहस का काम किया था, लेकिन रामकाली के चले जाने के बाद अपने मन की ओर झांक-कर उसे खुद आश्चर्य हुआ, सत्यवती का जाना नहीं हुआ, इससे उसके मन में

पुलक की लहर लहरा रही थी।

इस रहस्य का वह किनारा नहीं खोज सका।

लेकिन नवकुमार के लिए और जो कौन-सा अनोखा रहस्य रखा था, यह क्या वह पलभर पहले भी जानता था ?

रात ज्यादा नही हुई थी, सांझ ही हुई थी, अभी। एलोकेशी नियमानुसार अपने बिस्तर पर जा लेटी थी और नीलाबर अपने रात के सफर में निकले थे, काठ के चिराग़दान पर दीया रखकर सौदा रसोई कर रही थी। नवकुमार चुपचाप घर के अंधेरे दालान को पार कर रहा था कि बगल के कमरे के दरवाज़े के पास से एक धीमी किन्तु सख्त आवाज आयी—'ज़रा रुकिए तो!'

यह आवाज़ पिता की नहीं थी, मां की नही, सौदा की नही।

लिहाजा!

घर में और कौन है, उसके स्वप्नलोक की प्रतिमा के सिवा ?

अंधेरे में कोई किसी को देख नहीं पा रहे थे, सिर्फ आवाज़ ही सुनी जा रही थी—'मेरी दु:खगाथा सुनाते हुए नित्यानंदपुर को चिट्ठी किसने भेजी थी ?'

कहना न होगा, नवकुमार बुत बन गया।

'जवाब क्यो नही देते ?'

नवकुमार ने धीमे से कहा, 'क्या कहूं ?'

'साफ बताओ, मेरे बाबूजी को चिट्ठी किसने लिखी ?'

इस प्रश्न पर मौन रहना नवकुमार के वश के बाहर था। वह बोला, 'मुझसे बोल रही हो, कही कोई सुन लेगा!'

'उसकी फिकर मुझे होगी! तुम बात का जवाब दो!'

नवकुमार ने थूक घोंटा, गला खुजाया और पसीना-पसीना होकर बोला, 'मुझे क्या पता ? कैसी चिट्ठी ?'

'देखो, झूठ मत बोलो! नरक में भी ठौर नही होगा! मैं खूब समझती हूं, यह करतूत तुम्हारी है!'

नवकुमार का पतित्व, प्रभुत्व और पौरुष मानो धिक्कार उठा। वह भी सहसा बिगड़कर बोला, 'यदि मैंने ही लिखी है तो कौन-सा कसूर किया है ? आप ही तो मर रही थी!'

अंधेरे में से धीमा और तीखा स्वर तुरत निकला—'मैं मर रही थी, यह ढिंढोरा पीटकर कुटुंब के कानो तक पहुंचाने की बात नही थी! जो अपनी मा के गाल पर कालिख पोतते है, उनकी विद्या-बुद्धि की बड़ाई क्या! घर के दुश्मन विभीषण को सारी दुनिया दुर्-छिः करती है, तारीफ नही करती! इस

बात को समझकर काम करना !'

दरवाजे पर खड़ी मूर्ति का आभास अंधेरे में खो गया ।

गले के स्वर का अनुरणन भी हवा में ग़ायब हो गया, मगर नवकुमार जहां का तहां खड़ा रह गया ।

पत्नी के पहले संभाषण की रोमांचकर और आवेशभरी जो कल्पनाएं नवकुमार का नाजुक हृदय आज तक करता आ रहा था, उसपर किसी ने स्याहीभरी दवात उलट दी !

जीवन में स्त्री से पहली बातचीत उसकी इसी तरह से हुई ।

२३

इलाके में सत्यवती की बेहयाई की बात किसी से छिपी न रही । बाप लिवाने आया था, सास-ससुर ने हां कर दिया, पर सत्य नहीं गयी, बाप को लौटा दिया—फूस के छप्पर मे लगी आग-जैसी ही यह बात इस से उस टोले तक फैल गयी । टोले की दूसरी बहुओं ने सोचा, 'बनर्जी-परिवार की बहू की बहुतेरी निंदा सुनी थी, अब उसका मतलब समझ में आया, बहू पागल है ।'

'अहा, बेचारा नवकुमार !'

'समधी की संपत्ति के लालच से बाप ने बेटे के गले में एक पागल बहू को बांध दिया !'

सत्य के बारे में इस तरह की आलोचना और एक बार हो चुकी थी और उसके नैहर मे ही । जब यह बात फैली कि रामकाली ने बेटी को भेजना नहीं चाहा था, बेटी ने ही खुद कहा, विदा कर दो बाबूजी ! उस समय इससे कुछ कम छिः-छिः नहीं हुई थी ।

भुवनेश्वरी रो-रोकर माटी गीली करती रही, सत्य की सहेलियां गाल पर से हाथ नही हटा सकी—पर सत्य निश्चल रही । सिर्फ जब शारदा ने कहा, "ननदजी, अपने ही हाथो अपने पांवों कुल्हाड़ी मारी ।' तो वह बोली थी, 'कुल्हाड़ी तो बाबूजी ने आठ ही साल की उम्र में गले पर रख दी थी भाभी, नयी कौन-सी बात हुई ?'

'फिर भी ! एक साल और रह पाती···'

'इतनी बड़ी जिंदगी में एक साल की कमी-बेशी से क्या आता-जाता है ? गुस्से में लोग दूसरे ब्याह की या क्या तो कह रहे हैं । यदि वही कर बैठें तो ताजिंदगी सौत की जलन के लिए जलते रहना होगा ।'

शारदा एक नि.श्वास छोड़ती हुई चुप हो गयी ।

और जब भुवनेश्वरी ने रोते-पीटते हुए उसका हाथ पकड़कर कहा—'हम सबके लिए तुम्हारा जी कैसा नहीं कर रहा है सत्य ?' तो उसने दूसरी ओर मुंह फेरकर कहा—'करता है या नहीं, यह बात क्या ढोल पीटकर कहनी पड़ेगी !'

'तो फिर अपने से जाना क्यों चाहा ?'

'क्यों का कोई जवाब नहीं ! आप ही तो कहती हो—

मां निरबुधिया रो-रो करके मरती है।
सोच तो देखे, खुद किसका घर करती है !'

भुवनेश्वरी को इससे भी होश नहीं आया। बोली, 'मेरी तो ग़नीमत है, यह टोला, वह टोला, तेरी तरह दस-बीस कोस दूर नहीं है।'

अब सत्य के धीरज का बांध रोके न रुका। रो पड़ी। कहा, 'यह बात उस समय क्यों न सोची थी ? मैं तो इकलौती बेटी थी, नजर से दूर, बहुत दूर, गंगाहीन देश को विदा कर दिया। माया-ममता होती तो ऐसा करती ? पुन्नू की ही लो, सालभर की छोटी तो है मुझसे, खेलती फिर रही है और मुझे जाने कब परगोत्तर कर दिया !' गला साफ करके उसने बात पूरी की, 'ऐसा नहीं किया होता तो गले में अंगोछा डालकर कोई खींच ले जा सकता था मुझे ? बाबूजी ने बेटी पर ममता नहीं की, गौरीदान करके पुण्य कमाया। मुझे भी माया-ममता नहीं है। निर्मोही बाप की निर्मोही बेटी हूं मैं···'

और माटी पर लुढ़ककर वह फफकने लगी।

बाप की आड़ में और मां के सामने इस आलोचना की आंधी उठी थी।

इस बार यही।

इस बार मोटामोटी सत्य की ओट में ! सिर्फ सौदा बोली, "धन्य हो भाभी, तुम्हें नमस्कार छि:-छि: करूं कि पैरों की धूल लू तुम्हारी, सोच नहीं पा रही हू।'

जवाब मे सत्य ने झुककर सौदामिनी के ही पावों की धूल ली और हंसकर कहा, 'राम कहो, तुम गुरुजन हो ! छि:-छि: ही करो, जो सदा से पाती आयी हूं मैं।'

सत्य के अंदर विराट् समुद्र का जो आलोड़न चल रहा है, उसे क्या वह लोगों के सामने फैलाकर रख दे ? समुद्र का आलोड़न ही कहिए। फिर भी बाप के चले जाने के बाद टूट नहीं पड़ी वह। मजे मे तेल-बाती लिए दीए सजाने बैठी, उसके बाद घाट पर गयी, बदन धोया, कपड़े फीचे, उतने बड़े घड़े को भर लाई, बरामदे पर उसे रखकर गीले ही कपड़ों ठाकुर घर मे संझा-बाती दिखायी, शंख फूका, तुलसी चौरे में जल डाला और कपड़े बदलकर रसोई करने बैठ गयी।

रात की रसोई आजकल सत्य ही बनाती है। सौदा से कह-कह करके अपना यह हक उसने अदा किया है।

सिर्फ रसोई करते समय उसकी आंखों से आंसू वह निकला था—फागुन के अन्त से बीच वैशाख तक कितने दिन हैं, इसका लेखा वह नहीं लगा सकी—इसका कोई साक्षी नहीं।

किन्तु सत्य के जीवन में वह बीच वैशाख आनन्द की मूर्ति जैसा दिखा था, दमकता-चमकता रूप लिए?

नहीं! उस रूप के दर्शन नही मिले।

पुन्नू के ब्याह में वह नही जा पायी। ऐन उसी वक्त पर एलोकेशी पेचिश से अरमरा उठी थी। कथरी ओढे पड़ी वह सास बोल उठी थी, 'क्या बोली सौदा, मैके जाने के लिए उछल रही है हरामजादी! जब बाप दुलार से लेने आया था, तब तो नहीं गयी और अब, जब मैं मर रही हूं'''। कह दे उससे, नही जा पाएगी! जो लेने के लिए आया है, वह उलटे पावों लौट जाए!'

मामी मरने को है, इस नाते सौदा परहेज़ करके बोलेगी, यह नही! वह झंकार उठी, 'उन लोगों ने तुम्हारे आदमी को शालिग्राम की तरह खातिर करके खिलाया-पिलाया, एक गठरी सामान देकर सम्मान से विदा किया और तुम उनके आदमी को उलटे पांवों लौटा दोगी? लौटा दो, मुह उज्ज्वल होगा। मेरा कहा मानो, दस-पाच दिन के लिए भेज ही दो। बच्ची है, फिर यह सुना है कि यही फुआ इसकी सदा की साथिन रही''''

एलोकेशी ची-चीं करके बोली, 'तो फिर कह दो जाने को! और तुम्हीं क्यों रहोगी? तुम भी विदा हो जाओ! सिर्फ जाने के पहले एक छुरी लाकर मेरे गले पर चला देना!'

सौदा ने छुरी नही दी, आप भी विदा न हुई। उसने सिर्फ़ सत्य के जाने की तैयारी की। लेकिन नवकुमार आड़े आया।

हठात् मर्द मालिक की भूमिका अदा करते हुए बोल उठा, 'जाना-वाना नहीं होगा किसी का! मेरी मा मरने को है और कोई अपनी चचेरी फुआ के ब्याह का भोज खाने चली! कह दो सौदा-दी, यह नही होगा।'

नवकुमार की इस घोषणा से सास-ससुर ने निर्लिप्त होकर कहा, 'अब हम क्या कह सकते हैं, जब नोबा''''

सौदा ने फिर भी कोशिश की। कहा, 'जैसे हर समय तुम लोग नोबा के ही कहे उठते-बैठते हो।'

लेकिन काम नही बना। एलोकेशी ने गाली-सराप देकर भूत भगा दिया।

सत्यवती बोली, 'मैंने बाबूजी से कहा था कि ब्याह में जाऊंगी''''

नवकुमार ने इस पर सौदा के मारफत कहलवाया, 'अगर कोई यह चाहती हो कि समाज में हमारी हेठी हो, तो जाए !'

सौदा जरा देर उसकी ओर ताकती रही, फिर अचानक हंसकर बोली, 'बड़े तो विज्ञ की तरह बोल रहे हो, असली बात क्या है, सो बताओ ? बहू का साथ तो अभी हुआ नहीं है, फिर भी इतना जी-कैसा ?'

सौदा की इस बात पर नवकुमार का मालिकाना भाव सहसा गायब हो गया—जाः—कहकर हट गया। शायद यह भी सोचा, सौदा-दी क्या अन्तर्यामी है ?

लेकिन अन्त तक सत्यवती ही अड़ गयी। सौदा जब अपनी कोशिश में कामयाब हो गयी, तय हुआ कि न्योता रखने के लिए जब नवकुमार जाएगा तो साथ में बहू भी जाएगी। सिर्फ तीन दिन के लिए। वर-वधू उधर विदा होंगे और इधर ये भी चले आएंगे। इस पर सत्यवती बोल उठी, 'ऐसी एक मुट्ठी भीख की जरूरत नहीं है मुझे ! तीन दिन में तो घर के ही सब लोगों की शकल नहीं देख पाऊंगी, टोले की तो दूर रही। ऐसे जाने का क्या फायदा ? लोग कहेंगे, सत्य आयी थी, सत्य चली गयी। छिः !'

'सुन लो इसकी बात ! भात नसीब नहीं, गहने की आशा ! अरी, मुट्ठी-भर भीख भी तो नहीं मिल रही थी ! कम-से-कम ब्याह तो देख लेगी !'

'नहीं देखा तो क्या ? जिसे न्योता रखना है, वही जाए।'

'फिर तो वह गया !'

और ठीक ही नवकुमार ने हाथ जोड़कर कहा, 'माफ करो बाबा !'

अन्त में नीलांबर ने ही उपाय किया। उस आदमी के हाथ चिट्ठी लिख भेजी, नवकुमार की मां मौत की सेज पर हैं। लाचारी किसी का आना संभव न हो सका। न्योते के दो रुपए भेज रहा हूं।'

रामकाली उस चिट्ठी को देखकर देर तक चुप रहे। उसके बाद धीरे से बोले, 'ये रुपए तू जलपान के लिए रख ले राखू ! और हां, अंदर जाकर कह दे, सत्य की सास की हालत नाजुक है, इसलिए वह नहीं आ सकी।'

उसके बाद शादी हो गयी। वैशाख बीता। जेठ-आषाढ़ भी बीत गया। रामकाली को नवकुमार की मां के मरने की खबर नहीं मिली।

यह न पाना क्या रेगिस्तान की रूखी हवा जैसा है ? जो हवा सारी कोमलता और सरसता को सोख लेती है ? नहीं तो रामकाली धीरे-धीरे इतना नीरस और कठिन क्यों हो गए ? उन्होंने भलमनसाहत के नाते अपनी समधिन का कुशल क्यों नहीं पूछा-आछा ? बेटी को लाने में बेहयाई का असम्मान है, यही क्यों सोचा उन्होंने ?

अन्तःपुर में विच्छेद-व्याकुल मां का एक हृदय जो रामकाली की इस कठोरता के सामने मूक पीड़ा से स्तब्ध पड़ा है, इसे समझने की इच्छा क्यों नहीं हुई उन्हें ?

रामकाली ने क्या यह सोचा कि इस बार भी उस रत्तीभर की लड़की ने ही बाप के सामने अपना अहंकार दिखाया है ? दृढ़ता का अहंकार, कठिनता का अहंकार ? उसने यह कहना चाहा है, देखो, मैं भी कुछ कम नही हूं ! इसी से आहत पितृहृदय इस अंधेरे मे दिशा खोकर चुप पड़ा है। सोचा है, देखा जाएगा !

लेकिन कब तक देखेंगे वे ?

असमान उम्र के दो जने के शतरंज की चाल में कितनी ही बातें गुजर गयीं। जिनमें से एक भी गुजरने पर बेटी दौड़कर बाप के यहां आ सकती है। मगर कहना तो चाहिए ? बेटी का बाप गले में धोती का छोर डालकर अर्जी पेश करे जब तो ?

रामकाली यह नही करने के।

सो और एक बार अपने नियम के मुताबिक वर्षा, शरद, जाड़ा, वसंत बीत गया।

२४

संध्या-गायत्री, आह्निक-पूजा आदि से निवृत्त हो गृहदेवता नारायण-शिला का प्रसाद दो बताशे मुह में डालकर पानी पीने के बाद नीलाबर बाबू ने आवाज दी, 'सौदा, आज मेरे लिए जलपान की तैयारी मत करना, तबीयत कुछ ठीक नही है !'

मामा के लिए सौदा थोड़े से भुने चावल में नमक-तेल मिला रही थी। घर में खोए की बरफी, नारियल के लड्डू थे। काम चल जाएगा। नीलाबर आजकल रात में ज्यादा कुछ नही खाते।

मामा की हाक सुनकर सौदामिनी निकली, 'क्यों, आपकी तबीयत को क्या हो गया, मामा ?'

'क्या पता, भूख नहीं !'

इतना कहकर रोज की तरह बदन मे बनियान डाल कंधे पर अलवान रखकर रात की चराई में वे निकल पड़े।

सत्यवती कमरे से निकली। कहा, 'तबीयत अगर खराब है तो ससुरजी जाड़े की इस रात में बाहर क्यों निकले ?'

सौदा ने हंसी रोककर कहा, 'क्यों निकले, यह तू उनसे खुद ही पूछ सकती थी।'

'सुन लो ज़रा, मैं उनसे बोलती हूं?'

'अरे हा!' सौदा होंठ दबाकर हंसने लगी।

सत्य ने झट सौदा का हाथ पकड़ लिया और संदेह के स्वर में बोली, 'अच्छा, कहो तो ननदजी, ससुरजी जब भी टहलने जाते हैं, तुम इस तरह हंसती क्यों हो? कहां जाते हैं वे?'

'हाय राम, हंसती कब-कब हूं! जाते होंगे शतरंज-पाशे के अड्डे पर!'

'तो तबीयत खराब होने पर भी जाना पड़ेगा? आंधी, पानी, गाज गिरने पर भी नही छूट सकता है? तुम लोग मना नहीं कर सकती हो?'

'मना? बाप रे, वह खिंचाव जमराज के खिंचाव से भी ज्यादा है!' सौदा ने फिर अपनी हंसी को दबाया।

'मैं ससुरजी से बात करती होती तो उनकी यह जानमारू लत छुड़ा देती!'

'तो फिर यही कोशिश करके देख। खुद से कहते न बने, अपने दूलहा से कहलवाना। वह लायक लड़का है, यदि बाप के इस बुरे नशे को छुड़ा सके।'

यह नही कि बात सत्य को जंची नही, बल्कि सौदा की बातों में उसे कैसे तो एक छिपे हुए कौतुक का आभास मिला। उसमे यही संदेह ज़ोर पकड़ गया कि ससुर का यह नशा शतरंज-पाशे के अड्डे का नही है।

रात को कमरे में पैर रखते ही सत्य ने पहली बात यही उठाई—'अच्छा, ससुरजी रोज़ रात को कहा जाते हैं, कहो तो?'

हां, कुछ दिन हुए सत्य को रात का अधिकार मिला है। मिला है सौदा की ही कोशिश से और सौदा की कोशिश नवकुमार के प्रति करुणा है। वरना वह तो हिल-डोल ही नही रही थी।

नयी वहू के सपने में विभोर नवकुमार ऐसे प्रश्न के लिए तैयार नही था। इसी से वह सकपका गया और कहा, 'नही जानती हो?'

'जानती होती, तो तुमसे पूछती?'

नवकुमार गंभीर हो गया। कहा, 'बाप गुरुजन है! उनके बारे मे आलोचना न करना ही ठीक है!'

सत्य ने भंहो पर बल डालकर कहा, 'गुरुजन की निंदा करना दोष है, तो क्या उनके बारे में कुछ भी कहना दोष है?'

नवकुमार और भी गंभीर होकर बोला, 'यह तो निंदा की ही बात है। ब्राह्मण होकर बागदी-टोले में जाना, उन सबके हाथ से पानी-पान खाना, यह सब क्या कोई गुण की बात है?'

'बागदी टोले में जाना, उनके हाथ का पानी-पान खाना !' सत्य को मानो उसके पति ने धोबी के पाट पर पटक दिया।

वह सकपकाई। पूछा, 'मतलब ?'

नवकुमार ने सत्य की उमर का खयाल नहीं किया। यह सारे ज्ञान की आधार है, उसकी यही धारणा है। इसलिए उदास-सा बोला, 'मतलब अगर न समझो तो लाचारी है। बाप के बारे में और खोलकर क्या कहूं ? कहते हैं न— पिता स्वर्ग, पिता धर्म...। नहीं तो पाट-बाट में जब उनकी पागलपन को देखता हूं तो गुस्से से तन-बदन को आग नहीं लग जाती ? लेकिन करूं क्या, जी को समझाना ही पड़ता है, जो भी हो चाहे, माता के ही समान है।'

पूज्य पिताजी के बारे में 'कुछ नहीं कहूंगा' कहकर भी सब-कुछ बताकर नवकुमार ने निश्चित होकर प्यार से स्त्री को करीब खींचना चाहा।

लेकिन यह क्या ? रोज की वह प्रसन्न प्रतिमा एकाएक पत्थर की मूरत क्यों बन गयी ?

सत्य सचमुच ही पत्थर-जैसी सख्त हो गयी थी। और उसके उस शरीर का मन ?

वह मन भी क्या एक अजाने डर से काठ हो गया ?

हां, डर से ही। जैसे डर से बहुत-बहुत पहले बालिका सत्य का मन भटता की वह शंकरी के बारे में एक अजाने अंधेरे के आदमी की बात सुनकर काठ हो गया था। लेकिन उस दिन सिर्फ़ अंधेरा ही था, सिर्फ़ डर। आज उस अंधेरे में बिजली की तीखी चमक-सी आंखें चौंधियाने वाली एक जोत भी।

आज की सत्य वह अबोध बालिका नहीं थी। संसार-तत्त्व का वह बहुत-कुछ जान चुकी है। इसीलिए भय के गाढ़े अंधकार में दप्‌दप् करके जल उठी बिजली की चौंध।

एकाध बार कोशिश करके निराश होकर नवकुमार ने कहा, 'गुस्से हो गया गया ? दिनभर के बाद सुख-दुःख की दो बातें करूंगा, जरा हंसी-खुशी होगी, इसी उम्मीद में हां किए रहता हूं...।'

सत्य ने रुंधे गले से कहा, 'खुशी-हंसी कुछ कुम्हार के यहां के बर्तन तो नहीं है कि फरमाइश पर ही मिल जाएं, यदि हंसी-खुशी के लायक मन न हो ?'

निर्बोध नवकुमार ने मज़ाक की नाहक चेष्टा करके कहा, 'लेकिन इसमें तुम्हारे इतने दुःखी होने का क्या है ? आखिर मैं तो किसी बागदिन से प्यार...।'

'रुको भी !' कमरे की दीवार-दीवार से तीखे धिक्कार का स्वर टकराया।

जाड़े की रात की वजह से कुछ गला खोलकर बात की जा सकती है। और सच पूछिए तो सत्य ऐसी लज्जावती बहू भी नहीं। उसके गले की आवाज अव-

तव सुनायी पड़ती है।

धिक्कार देकर सत्य कथरी को गले तक ओढ़कर उधर को मुंह किए बोली, 'घृणा की इस वात को लेकर हंसी-मजाक करते तुम्हें शर्म नही आती ? मैं लेकिन साफ कहे देती हूं, अब से यदि मैं ससुरजी की श्रद्धा-भक्ति न कर पाऊं तो मुझे दोष मत देना !'

नवकुमार मन ही मन अपने को ही भला-बुरा कहने लगा—'छि: ! कैसा गधा हूं मैं ! बाबूजी कहां जाते हैं, मैं नही जानता—यही कहने से हो जाता। अपनी बीवी को तो वह जानता है। ठीक है तो गंगाजल, और कहीं विगड़ उठी तो आग !'

उफ़, अजीव एकवग्गी है। एक बार नवकुमार का कौन-सा झूठ तो पकड़ा गया कि पांच दिन तक बोलचाल बंद ! हार-पार कर निताई से राय-सलाह लेकर नवकुमार ने एक श्लोक सुनाया, स्त्री से झूठ कहने में पाप नही है, तब जाकर स्त्री के मुंह का ताला खुला। अवश्य ताला शास्त्र के वाक्य को मानकर नही, प्रतिवाद के लिए खुला।

सत्य ने तेज दिखाकर कहा, 'चुप्-चुप्, शास्तर की रहने दो ! जो शास्तर कहे कि झूठ मे पाप नहीं है, उस शास्तर से मुझे अरुचि है। स्त्री क्या आदमी नही है, उसमें भगवान नही बसते ? अब तुम्हारी किसी बात का विश्वास करूंगी मैं ?'

जो भी हो, झगड़े के बहाने ही बातों का बंद दरवाज़ा खुला था। अब, अबकी न जाने क्या हो ?

सत्य सोच रही थी—'छि: ! उसके ससुर का यह चरित्र ! ससुर के चरित्र की बहुत-सी खामियां देख चुकी है वह—नीचता, क्षुद्रता, स्वार्थपरता में अपनी स्त्री एलोकेशी से वह कुछ कम नही हैं। किंतु इस खामी से तो शर्म और नफ़रत से लहू के कण भी री-री कर उठें ! इस उम्र मे ऐसी हरकत और मज़ा यह कि इस बात को यह सभी लोग जानते हैं ! न:, ऐसे ससुर की वह भक्ति नही करेगी, इसके लिए लोग जो चाहे कहें !'

सहसा सत्य के सर्वांग को आलोड़ित करते हुए रुलाई का एक प्रबल आवेग उमड़ा। और इतने लंबे अरसे के वाद बाप पर तीखे अभिमान से उसका हृदय फटने लगा।

इस घर में आकर बहुतेरी नीचता, क्षुद्रता और हृदयहीनता उसने देखी—अशिक्षा और कुशिक्षा का फल समझकर सह गयी। किंतु आज एक बूढे आदमी की ऐसी चरित्रहीनता की गंदगी मानो उसे उठा-उठाकर पटकने लगी।

इसीलिए जो सत्य हजार सताए जाने के बावजूद कभी रोती नही, वह आज आंसू से तकिया भिगोती हुई कहती रही, 'बाबूजी, दस-पांच नहीं, महज़ एक ही

तो लड़की मैं थी तुम्हारी, बिना देखे-सुने ऐसे घर में डाल दिया ? ऐसे विचक्षण हो तुम और यह तुम्हारा विचार !'

रोते-रोते किसी समय सत्य सो गयी।

लेकिन रात कम सोई है इसलिए देर तक सोएगी, यह सुख बहू के भाग्य में नहीं जुटता। रोज की तरह तड़के ही उठकर स्नान-शुद्ध होकर भारी मन से वह नारायण के कमरे को संवारने गयी और आदत के मुताबिक चंदनौटी खींचकर चंदन जो घिसने गयी कि उस बात से बिजली की सिहरन-सी पैदा हो गयी। इस जतन से चंदन घिसने, फूल-तुलसी चुनने और धूप-दीप से घर भरने की क्या कीमत है ?

इन उपकरणों से नीलांबर बाबू ही तो पूजा करेंगे। उन्हें कुछ खांसी की शिकायत है। इसलिए सुबह नहाते नहीं, मुंह-हाथ धोकर तशर का कपड़ा पहनकर पूजा के आसन पर बैठते हैं।

लेकिन नहाएं भी तो क्या !

देह, मन, आत्मा—जिनका सब-कुछ अपवित्र है, स्नान से वह शुद्ध भी क्या हो !

हाथ समेटकर घुटनों में मुंह गाड़े सत्य बैठ रही। फूल तोड़ना, तुलसी बीनना नहीं हुआ।

बड़ी देर के बाद सौदामिनी उधर आयी। चौंककर बोली, 'अरे, क्या हो गया बहू, ऐसे क्यों बैठी है ?'

सत्य चुप रही।

हड़बड़ाकर सौदा दरवाजे के चौखट तक बढ़ आयी। बोली, 'जी खराब लग रहा है ?'

सत्य ने सिर हिलाया।

'तो ? मैके के लिए जी कैसा कर रहा है ? सच तो कितने दिन हो गए...।'

सत्य उठ खड़ी हुई। बोली, 'मैके के लिए जी कैसा करते कभी देखा है कि कह रही हो ?'

सौदा उसकी बड़ी ननद है, तो भी इसे इतनी छूट है।

सौदा हंस पड़ी। कहा, 'सो तो नहीं देखा है ! तो दूल्हे से कलह ?'

'नाहक ही न बोलो ननद जी ! वैसे टुच्चे विषयों से तुम्हारी बहू नहीं हारती। मेरा मन ठीक नहीं है। आज से पूजाघर का काम मैं नहीं करूंगी।'

अचानक ऐसी घोषणा से सौदा ने स्तंभित होकर कहा, 'सो क्या, बहू ?'

'बस यही ! गुरुजन के बारे में कुछ कहना नहीं चाहती, लेकिन ससुरजी

आकर पूजा के आसन पर बैठेंगे, यह सोचकर संवारने की इच्छा मेरी जाती रही।'

भय से सौदा ने अपने ही मुंह पर हथेली रखकर धीरे-धीरे कहा, 'हाय राम, मामी सुन लेगी तो जिंदा छोड़ेगी ?'

सत्य ने मुह फेरकर सूखे गले से कहा, 'इस घर में अब जिंदा रहने की इच्छा भी नही है, ननदजी !'

सौदा अवाक्। यह कैसी बात। इसका मूल कारण ससुर के बारे में सत्य ने जो कल पूछा था, वही है, इसमें संदेह नही। लेकिन उससे इस रणमूर्ति का कौनसा संबध है, सौदा समझ नही सकी।

समझ सकने की बात भी नही।

सौदामिनी के काफी उमर हुई है। यह सब बात उसके लिए कुछ भी नही। आसपास में हरदम देखते-देखते हाड़-मांस स्याह हो गया है। लिहाजा पति-पुत्र के सिवाय और किसी की चरित्रहीनता से जो इतना विचलित होना संभव है, यह सौदा की धारणा के बाहर है।

लेकिन दूसरी बातों में सौदा बुद्धिमती है, इसलिए इस बात पर ज्यादा जोर न देकर बोली, 'ठीक है, मैं झटपट नहाकर यह सब कर-करा देती हूं, तुम चली आओ !'

'नाराज न होना ननदजी, मेरा मन मान ही नही रहा है। तुम्हे कौन-कौन-सा काम है, बता दो ! मैं किए देती हूं।'

और सच ही सत्य पूजाघर से बाहर निकल आयी।

खैर, पूजाघर की जिम्मेदारी तो सौदा सम्हाल देगी, लेकिन बहुओं का और भी तो एक काम है सवेरे का !

वह कौन झेलेगा ?

सवेरे मुह में पानी भी डालने से पहले सास-ससुर की पद-वंदना सत्य के नित्य नियमित कर्म में शामिल है। एलोकेशी ने सिखलाया है।

सत्य भी इसे करती आयी है।

लेकिन आज सत्य ने बड़ा ही दुस्साहासिक संकल्प किया था। उसे सही-सलामत न रहने दिया जाए, यह भी मंजूर, लेकिन उस अपवित्र आदमी के चरणों की धूल वह माथे से नही लगाएगी।

गुरुजन हैं ?

हैं तो क्या किया जाए, वे यदि इतरजन का आचरण करें ?

एलोकेशी भी सवेरे-सवेरे ही नहाकर पूजाघर में दाखिल होती हैं। गिरस्ती के काम-काज का तो कोई भार नही है न ? सौदा है, बहू है। एलोकेशी को देवता-ब्राह्मण मे बड़ी भक्ति है। नीलाम्बर सवेरे वही रहते हैं।

चंडी-पाठ करते हैं, महिम्न स्तोत्र पढ़ते हैं।

पति-पत्नी में जो भी बातें होती हैं, यही होती हैं। क्योंकि बातचीत करने का जो असली समय है, वह तो एलोकेशी के हाथ से बाहर है। मसहरी-वार्तालाप का उपाय कहां ?

सत्य रोज़ यहीं उन दोनों को प्रणाम कर जाती है।

लेकिन आज सत्य का पता नहीं !

कुछ देर के बाद सौदा को बुलाकर एलोकेशी ने खीज के साथ कहा, *'आज नवाब-नंदिनी का पता नहीं है ! गयी कहां ?'*

सौदा समझ गयी, माजरा क्या है और बहू की बेवजह ज़िद से ज़रा आजिज़ ही हुई। फिर भी सम्हालकर कहा, 'जाएगी कहा ? वह रही, उधर !'

सौदा कल्पित 'उधर' की तरफ देखने लगी।

एलोकेशी ने कहा, 'श्रद्धा से या अश्रद्धा से, सास-ससुर के चरणों सिर नवाती है, आज से शायद वह भी बंद ?'

नीलांबर महिम्न स्तोत्र पाठ करते हुए उत्कर्ण हो उठे। सौदा तब तक हवा हो गयी। जाकर सत्य से कहा, 'क्यों री बहू, आज प्रणाम नहीं ठोंका है, क्यों ?'

सत्य हाथ का काम चुकाकर उदास बैठी थी। गरदन घुमाए बिना ही बोली, 'नहीं !'

'सास को खटका है ! जा-जा, झटपट निबटा आ !'

जैसे कि सत्य भूल गयी है, याद दिला दे रही है।

सत्य ने कहा, 'दोनों जने एक ही जगह बैठे हैं। एक को प्रणाम करूं, एक को नहीं, यह अच्छा नहीं दीखता।'

सौदा अब आजिज़ी को नहीं छिपा सकी, 'तू भी बहुत अती करती है बहू ! स्वभाव-दोष किस मर्द के नहीं है ? तुम्हारे बाबूजी की तरह थोड़े ही सब देवचरित्र हैं। तो क्या स्वभाव-दोष के चलते ससुर का पावना प्रणाम भी रद्द हो जाएगा ?'

'बाबूजी की बात मत करो, ननदजी ! लेकिन जो मेरा जी नहीं चाहता, वह काम मैं नहीं कर सकती। एक तरह से तो वे पतित हैं। शालिग्राम की पूजा उनके हाथों होनी ही नहीं चाहिए।'

सत्य शायद उत्तेजना से जोर-ज़ोर से सास लेने लगी।

सौदा को कुछ देर तक बोलने की शक्ति ही न रही।

कुछ देर काठ की मारी-सी खड़ी रहने के बाद बोली, 'तेरी जैसी मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूं बहू, इतनी बातें समझ सकने का सामर्थ्य नहीं है। मैं बस सार बात समझती हूं कि जो जो चाहे करे, मैं अपना कर्तव्य करती जाऊंगी।'

'मन में विरक्ति रखकर भक्ति दिखाना ही क्या कर्तव्य है ?'

सौदा तुरत इसका जवाब नहीं दे सकी। कुछ कहने जा रही थी कि तब तक पीछे आकर बाघिन खड़ी हो गयी। मन में उनके संदेह का धुआं—जैसे समझ लिया हो कि कुछ न कुछ हुआ है।

बाघिनी-सी ही झपटकर बोली, 'कर्तव्य-अकर्तव्य की क्या बात हो रही है रे सौदी ?'

सौदा चुप ! सत्य भी चुप !

एलोकेशी ने ही फिर टोका, 'मुह में बोली क्यों नहीं है ? दोनों में क्या राय-सलाह हो रही थी ? तू मेरा ही खा-पहनकर मेरी ही बहू को फोड़ेगी सौदा ! मेरे घर से जाएगी कब तू ?'

बात कुछ नयी नही। एलोकेशी की बात की यही मात्रा है। सौदा कभी जवाब नही देती, लेकिन आज एकाएक ही वह विचलित स्वर में बोल उठी, 'तुम्हारी बहू को मैं कभी कुछ बुरा नही सिखाती मामी, सत्परामर्श ही देती हूं। सच है कि झूठ, तुम्हारी बहू ही बताए !'

बहू सास के सामने बोलती नही। पर सत्य जब-तब इस नियम को तोड़ देती है। आज भी वह टप् से बोल उठी, 'यह बात हज़ार बार सत्य है ! ननदजी मुझको नेक ही सलाह देने आयी थी। मगर वह सलाह मुझे वाजिब न जचे तो ? आप इधर आ गयी हैं, अच्छा ही हुआ,' कहकर सत्य ने सास के चरणों की धूल को सिर से लगाया। कहा, 'और चाहे जो हो, आप सती-लक्ष्मी हैं !'

सती-लक्ष्मी पहले तो अकचका गयी। फिर बोलीं, 'इन सब बातों का मतलब क्या है सौदा ?'

'मतलब तो मैं भी नही समझती मामी, बने तो बहू ही समझावे।'

आज सौदा को वास्तव में गुस्सा आया ! यह क्या है ? तिल को ताड़ करना ! जान-सुनकर कचकच को बुलाना ! दुनिया में जो बात किसी ने नही सुनी, नही सोची, नहीं कही, वही बात इस बित्ताभर की लड़की के दिमाग़ में आती ही कहां से है ! और यह कलेजा ! सत्य का कलेजा वह बहुत बार देख चुकी है, देखकर मूर्च्छित होने-होने को हुई, लेकिन आज की घटना से उसकी तुलना नही हो सकती।

सच ही तुलना नहीं हो सकती।

क्योंकि जाते-जाते भी सौदा ने सुना, सत्य कह रही है, 'कहने में सिर झुका जा रहा है, फिर भी कहे बिना नही रह सकती, ससुरजी के पैरों की धूल माथे पर लेने की अब इच्छा नही रही। जब तक नहीं जानती थी तब तक...'

बात के अंतिम हिस्से को सुनने का साहस सौदा को नही रहा। वह बेवजह ही झट से घड़ा उठाकर घाट की ओर चली गयी।

थड़ी देर के बाद कमर पर घड़ा लिए वह धीरे-धीरे पिछवाड़े के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। नः, कोई शब्द नहीं! सन्नाटा है! तो क्या कोई हत्याकांड हो चुका? यह मसान की निस्तब्धता है?

बरामदे पर आकर सौदा लेकिन अवाक् हो गयी। उसने देखा, बिचले कमरे के दरवाजे के सामने अंगोछे में बंधी कुछ गठरिया हैं, और मामी-मामा दोनों मिलकर एक फटे कपड़े मे सामान को बाध रहे हैं। क्या है, ठीक समझ में नही आया। यह अप्रत्याशित है। सौदा के कलेजे का लहू जम-सा गया।

इतनी देर में यह सारी तैयारी हो गयी? हुई भी क्यों? तो क्या ये बहू से हारकर घर छोडकर जा रहे है?

बात यही थी!

सौदा से आखें मिलते ही एलोकेशी ने कहा, 'ननद-भाभी मिलकर मजे में घर-गिरस्ती चला, पापी-तापी लोग विदा हो रहे हैं।'

घडा रखकर, सौदामिनी बैठ गयी। बोली, 'पागल हुई हो मामी!'

'पागल भी हुई तो दुनिया डूबेगी नही सौदा! दस से, धरम से पूछ ले, आदमी इसमें भी पागल न हो तो किसमें हो?'

सौदा ने गला उतार कर कहा, 'वह तो पागल है। उसकी बात का भी बुरा मानना है!'

'पागल है! खामा गेंहुअन हैं, गेंहुअन! बहू की तरफ से तू वकालत मत कर सौदा! इतने बड़े एक गण्यमान्य व्यक्ति बेटा-पतोहू के धिक्कार से जान देने जा रहे थे। बहुत मना-मनू कर लौटाया है। अब गुरुधाम जा रहे है। उसके बाद जो हो नसीब मे।'

एलोकेशी जल्दी-जल्दी गठरी बाधने लगीं।

सौदा के जी मे आ रहा था कि दौड़कर जाकर बहू से कहे, 'भला चाहती है, तो पैरो पकड़कर माफी माग, जा! लेकिन जानती है, बेकार है कहना। बैकुंठ से खुद नारायण भी आएं तो सत्य को डिगा नही सकते। सत्य में गुण बहुत हैं, मगर यही एक बहुत बड़ा दोष है। जिद्दी है! औरत की इतनी ज़िद!'

सो सौदा ने इधर ही सम्हालने की कोशिश की—'लेकिन तुम लोग क्यों घर छोड़ोगी? घर क्या बेटा-पतोहू का है?'

'न सही, जहा रहकर उसका मुंह देखना पड़ेगा, वहा नहीं रहेंगे, बस!' इतनी देर के बाद नीलाबर ने जबान खोली। यह बात उन्होंने ही कही।

'खैर! घर से लेकिन यों ही तो नही जा सकती। मैंने रसोई चढ़ाई है। दो कौर मुह में देना ही होगा।'

समंदर में जैसे फिलहाल बालू का बांध !

रसोई चढ़ायी जरूर थी। लेकिन रसोई की हालत के बारे में अब कोई पता नहीं। लकड़ी जलकर चूल्हा ठंडा भी हो गया होगा।

अचानक नीलांबर हुंकार-से कर उठे, 'इस घर मे अब मैं पानी का घूंट भी नही ले सकता हूं ?'

सौदा की छाती धडकने लगी। मामी से वह बहुत कुछ बोल सकती है, लेकिन मामा से ? वह उल्लासी के हाथ से पानी पीते है, पान खाते है—बहुतेरी बाते मालूम है। तो भी तो डर नहीं गया। लेकिन वह बहू ? भय को जय करने का मंत्र उसे कहां मिला ? जिस मंत्र के ज़ोर से साफ कह सकी, 'वे तो पतित हैं, शालिग्राम की पूजा उनके लिए उचित नही।'

सौदा सोचने लगी, नोबा भी आज ही हाट मे देरी कर रहा है ! और ऐसे दुर्दिन मे ही क्या हाट का दिन होना है !

सौदा क्या करे ? जाकर बहू के पाव पकड़े ? या कि रसोई में सांकल लगा-कर कहीं आचल बिछाकर सो रहे ! उसे ही ऐसी क्या पडी है ? आखिर उसी के दोष से तो नवकुमार के मा-बाप घर नही छोड़ रहे है !

साहस देखकर साहस होता है ?

दुस्साहस देखकर दुस्साहस ?

इसलिए उससे दूसरा रूप धारण किया। बोली, 'ठीक है, मैं जाकर चूल्हे में पानी डाल देती हूं !'

वह चली गयी।

जाकर देखती क्या है कि रसोई के बरामदे मे बैठी सत्य साग बीन रही है उसकी शक्ल से कुछ समझ में नहीं आता।

सौदा से रहा नही गया। बोल उठी, 'पिंड के इस काम का क्या होगा ? खाएगा कौन ? मालिक-मालकिन तो घर छोड़कर जा रहे हैं !'

सौदा को हैरान किए देती हुई सत्य बोल उठी—'घर छोडना इतना आसान नही है ननदजी ! संसार को छोड़ते हुए कोई सारे संसार की चीजों की गठरी बांधकर नही ले जाता ! तुम नाहक ही सोच रही हो ! कोई कही नही जाने का ! मैंने चूल्हे की आच उसका दी है, तुम अब सम्हालो !'

सत्य का ही कहा ठीक निकला।

अंत तक उन दोनों ने घर छोड़ने के सकल्प को छोड़ दिया। सिर्फ खाने के वक्त जरा ज्यादा मिन्नत खुशामद करनी पड़ी।

वे दोनों रुके नवकुमार के निहोरा से। नवकुमार ने दोनों के पैरों पर सिर पटका और मा के पैर छूकर शपथ खाई कि वह बहू को डांट-फटकार देगा।

और नोवू ने आज तक जो कभी नहीं किया था, वही कर बैठा। दिन में ही बीवी से बोल पड़ा।

लेकिन बकझक, निहोरा-विनती करके, हाथ जोड़कर सत्य को सीधी राह पर लाने में कामयाब हो सका? अंत में जब उसने खुदकुशी करने की धमकी दी, तो सत्य ने कहा, 'पुरुष के बजाय तुम औरत होकर क्यों नहीं पैदा हुए, विधाता का एक रहस्य ही है यह। खैर! यदि श्रद्धाहीन प्रणाम की ही तुम्हें इतनी जरूरत है, तो कल से वही ढोंग करूंगी।'

रात को लेकिन नवकुमार का रूप ही दूसरा था।

सुंदरी और तरुणी स्त्री से बोलचाल बंद होने का दुस्सह कष्ट सहने की शक्ति उसमें नहीं है, इसलिए खुशामद में बोला—'मा-बाप को सुनाते हुए तुम्हें जरा डांट-फटकार करनी पड़ी, नहीं तो कहेंगे कि बेटे ने बहू को माथे पर चढ़ा रखा है।'

'आज मुझे बात करने का जी नहीं है! माफ करो!' सत्य ने करवट बदल ली।

कुछ देर गुजर जाने के बाद वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। कहा, 'मैं कलकत्ता जाऊंगी।'

नवकुमार चौंका, 'कलकत्ता! कलकत्ता जाओगी! अब समझ में आया, तुम्हारा दिमाग ही खराब हो गया है।'

'क्यों, दिमाग खराब हुए बिना कोई कलकत्ता नहीं जाता? तुम्हारे मास्टर का दिमाग खराब है?'

मास्टर से तुम्हारी तुलना? वे तो मर्द हैं। अकेले जाते हैं, अकेले आते हैं। अपने दोस्तों के यहा ठहरते है। तुम इनमे से कौन-सा कर सकोगी?'

सत्य ने कहा, 'मैं मर्द नहीं हूं, तुम तो हो? तुम नहीं जा सकते? तुम्हारे ही साथ जाऊंगी! डेरा लेकर रहूंगी!'

नवकुमार अवाक् होकर बोला, 'तुम्हारे साथ-साथ मैं तो पागल नहीं हुआ हूं! मा-बाप, घर-द्वार छोड़कर कलकत्ते मे डेरा लेने जाऊं? क्यों आखिर?'

'क्यों, बताऊं? इसलिए कि देखोगे, तुम्हारे इस बारुईपुर के बाहर भी दुनिया है!'

'देखने की मुझे जरूरत!'

सत्य ने बड़े धिक्कार के स्वर में कहा, 'जरूरत क्या है, अपने बारुईपुर के इस कुएं में रहकर यह समझने की भी जुर्रत न होगी।'

नवकुमार ने मतलब नहीं समझा। वह एक जोरदार दलील जोर के साथ दे बैठा, 'औरत कलकत्ता जाएगी! फिर जात-धरम कुछ रहेगा?'

सत्य ने कहा, 'ससुरजी के अगर जात रह गयी हो, शालिग्राम को छूने का

अधिकार रह गया हो, तो कलकत्ता जाने से मेरी भी जात नहीं जाएगी।'

'फिर वही बात! पुरुष ढाई कदम बढ़ाए कि शुद्ध, औरतों का ऐसा होगा? चमड़ा वाले नल का पानी पीना पड़ेगा, मालूम है?'

'पीना पड़ेगा तो पीऊंगी! वहां और दस ब्राह्मणों की जो गति हो रही है, वही होगी। क्या हालदारों का मंझला लड़का कलकत्ता नहीं गया है?'

'गया है। वहू को लेकर नही।'

'तो क्या मरी वहू को मसान से उठाकर ले जाता?'

'हालदार का लड़का नौकरी करने गया है।'

सत्य ने दृढ़ता से कहा, 'तुम भी उसी के लिए चलो!'

नवकुमार उपहास की हंसी हंसते हुए बोला, 'मैं! मैं कलकत्ता जाऊंगा नौकरी करने के लिए?'

'क्यों नही? तुमने जितनी अंगरेज़ी सीखी है, इस इलाके मे किसी ने सीखी है?'

और दिन होता तो नोवू स्त्री की इस स्वीकृति से गल जाता, लेकिन आज उसके जी मे सुख नहीं था, नही था वह सुख सो वह बोला, 'सिर्फ विद्या रहने से ही तो नही होता...'

सत्य ने जुडी भौहो को सिकोडकर कहा, 'तो और क्या चाहिए?'

आफत मे पडकर नवकुमार से सच ही कहा गया—'साहस चाहिए।'

सत्य जरा देर चुप रही, फिर झुप् से लेटकर बोली, 'वह मैं दूंगी।'

इतने बडे भरोसे से भी लेकिन काम नही हुआ। नवकुमार ने खिजलाकर पूछा, 'पराई नौकरी की पड़ी ही क्या है? मुझे क्या अन्न की कमी है? ठीक से चला पाएं तो हाथ पर हाथ धरे बैठे-बैठे ही चला सकता हूं। गुलामी क्यों करने जाऊं?'

सत्य ने कहा, 'बैठा-बैठा खाऊंगा, इस प्रवृत्ति को मिटाने का सबक लेने के लिए ही जाना जरूरी है।'

बहुत-बहुत बतकही होती रही। नवकुमार ने आखिर कहा, 'मैं साफ कहे देता हूं, मुझसे न होगा।'

सत्य भी अडिग हो बोली, 'और मैं भी कहे देती हूं, कलकत्ता मैं जाऊंगी, जाऊंगी, जाऊंगी! मैं यह देखूंगी कि औरत के कलकत्ता जाने से माथे पर वज्र गिरता है या नहीं।'

लेकिन यह देखने में सत्य को बहुत दिन लग गए थे। गीले लत्ते को आंच मे सुखाकर उसकी बाती बनाकर तब दीया जलाएं, तो समय तो कुछ लगता ही है। तब तक सत्य दो बच्चों की मां हो चुकी।

जाड़ा, गर्मी, वर्षा, वसंत की अटूट शृंखला के शृंखल में बंधी नियमतांत्रिक धरती के राज्य की प्रधान प्रजा इन मनुष्यों के जीवन में लेकिन न तो है नियम की निश्चितता, न ही है शृंखला का भरोसा। उसे न तो विधाता, न प्रकृति— किसी ने कभी निश्चित नियम का भरोसा नही दिया।

इसीलिए स्वस्थ और सहज आदमी भी रात को सोने जाने के पहले दृढ विश्वास के साथ यह नही कह सकता कि सुबह की रोशनी वह देखे ही गा! नही कह सकता कि उसके भरे वसंत के बीच मे वज्र का अभिशाप नही आएगा, शरत की सुनहली किरण को धोते हुए बेरोक बारिश नही शुरू हो जाएगी।

न, इन सबके बारे मे आदमी बलपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकता। उसे पता नही, बड़ी-बड़ी उम्मीदों से गढे उसके सुख के संसार को कब अचानक मौत का पंजा तहस-नहस कर देगा या उस घर को आकस्मिक दुर्घटना या असाध्य रोग परेशान कर देगा। कौन कह सकता है कि अपने ये अमोघ नियम लिए इस अनियम के देवता कहा बैठे हैं?

फिर भी रामकाली कविराज के यहा लगातार आने वाली दुर्घटनाओ ने इलाके के लोगों को हतचकित कर दिया।

उनके बाहर का उतना बड़ा घर आग से जल गया, इससे भी किसी को उतना आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि अग्नि-देवता की भूख किस्मत की मार तो है, पर उसमे आदमी की असावधानी या कारसाजी की साफ छाप होती है। और फिर रामकाली पर भाग्य की वही पहली मार थी।

उनके घर की अगलग्गी को दुश्मन की कारसाजी साबित करने की कोशिश किसी ने नही की। यह निरी लापरवाही का ही नतीजा है, सबने ही समझा था। बात यों थी—

नियम-सा था कि पड़ोस के घरों मे यहीं से आग ले जायी जाती थी। जरूरत पड़ने पर सदा पडोसियो के यहां से कोई न कोई आकर इनकी रसोई से जलती हुई लकड़ी ले जाया करते। उन सबके-चूल्हे में नारियल के सूखे पत्ते, सूखे गोंयठे, छोटी-छोटी लकड़िया, डाल-पत्ते पड़े ही होते, जलती लकड़ी उनमे डालते ही काम बन जाता।

रामकाली के यहा रोज सवेरे तीन-चार चूल्हे जलते है। लिहाजा पड़ोसी अपने यहां आग सुलगाने का बेकार झमेला क्यो करे? काम तो यह झमेले का है। सोले की लकड़ी रखो, चकमकी ठोको—समय लगता है। उससे तो'''।

जिस दिन की बात है, बगल के घोषाल की विधवा लड़की तोरू एक पहर दिन

को इस घर से एक जलती हुई लकड़ी लेकर अपने घर जा रही थी कि सिर के ऊपर खुले आकाश में एक डढ़कौआ का-का कर उठा।

डढ़कौए का बोलना अपशकुन है, यह कौन नहीं जानता। घोपाल की लड़की तोरू भी जानती थी। उसे यह भी मालूम था कि जिस दिन वह विधवा हुई, उस दिन जाने कहां तो लगातार डढ़कोआ बोलता रहा था। तिस पर आज चतुर्दशी थी।

तोरू का कलेजा कांप उठा! उसने जल्दी-जल्दी डेग बढ़ाया। लेकिन तो भी बाधा पड़ी। वह कौआ और नीचे उतर आया। लगभग उसके माथे के ऊपर एक चक्कर लगाकर बोल उठा, 'का!' तोरू का कलेजा वर्फ हो गया। हिताहित ज्ञान जाता रहा। क्या करते क्या होगा, इसका खयाल न रहा। उसने हाथ की वह जलती लकड़ी कौए पर दे मारी।

कहना फिजूल है, वह लकड़ी कौए का तो बाल भी बांका न कर सकी, सीधे रामकाली के बाहर वाले घर के छप्पर पर जा गिरी। बैठका, चंडीमंडप, यह सब तो रामकाली का पक्के का था। लेकिन एक साथ ज्यादा लोगों के खयाल से बाहर उन्होंने दो बड़े छप्पर डलवा रखे थे। बिलकुल पास-पास, अगल-बगल। वे दोनों अग्निदेवता के नैवेद्य बन गए।

तोरू केवल असावधान ही न थी, अनमनी भी थी। उसने यह खयाल भी नहीं किया कि वह लकड़ी कहां गिरी या गिरकर उसने क्या किया। वह फिर वहीं लौटी और दूसरी एक जलती लकड़ी लेकर घर लौटी। उस लकड़ी के कारनामे का पता तब चला, जब आग की लपलपाती लपटों और धुएं के बादलों से आसमान भर गया। और, मुहल्लेभर के लोगों की चीख से आसमान टूट पड़ने लगा।

मूर्ख तोरू यह कह-कहकर छाती पीटने जा रही थी कि हाय-हाय, यह सर्वनाश तो मुझसे ही हो गया, लेकिन उसके चाचा ने इशारे से 'चुप्-चुप्' करके उसे चुपा दिया।

किन्तु आग को नहीं रोका जा सका। और, रोका भी कैसे जा सकता था? पोखरे से घड़ा-घड़ा पानी लाकर उंड़ेलना ही तो एक उपाय था?

रामकाली ने गम्भीर गले से ऐलान कर दिया, 'आग पर पानी डालने की जरूरत नहीं, उससे आग और फैलेगी। चंडीमंडप की दीवार पर पानी डालो। जिनके घर आस-पास हैं, वे अपनी-अपनी दीवारों को ठंडी करें।'

लोग हाय-हाय करते घर लौटे, तो सांझ हो चली थी। रामकाली चटर्जी जैसे निष्पाप, निष्कलंक आग से तेज आदमी के घर आग लगी क्यों, इस पर चर्चाओं का अंत नहीं रहा।

यह तो शुरूआत थी।

इसके कै दिनों के बाद ही दीनतारिणी नहाकर लौटीं और 'जी कैसा कर रहा है' कहकर लकवा की शिकार हो गयीं।

यह लकवा पातक रोग है। दीनतारिणी के अजाना न था यह। बेटे की तरफ ताककर आंसू-कलंकित आंखों के इशारे से उन्होंने कातर निवेदन किया कि मुझे झटपट पार करो।

रामकाली ने पसीना पोंछने के बहाने एक बार कपाल से हाथ लगाया।

तीनेक दिन के बाद ही दीनतारिणी चल बसीं।

उतने बड़े वैद्य होने के बावजूद अपनी मां को बचा नही सके, इसके लिए उन्हें किसी ने दूसा नही। बल्कि दीनतारिणी के भाग्य को धन्य-धन्य कहने लगे, 'बूढी खूब गयी! न भोगा, न किसी को भोगाया। ऐसी ही मौत तो चाहिए।'

टोले के बड़े-बूढे ही बोले, और किसे हिम्मत है?

रामकाली के चाचा, बड़े भाई तो भरसक उनके सामने ही नहीं आते। सामने आता है रासू! चाचा से वैदई सीखता है। मगर वह चाचा को निराश ही करता। रामकाली कभी त्योरी चढ़ाते, कभी हंसकर कहते, 'उंह, तुझसे कुछ न होगा रासू?'

और केवल रासू ही?

कुज के किस लड़के से क्या हुआ? पाठशाला जाकर अजीब-अजीब खेलों को सोचने के सिवाय रासू के किसी भाई का दिमाग खुलते नही देखा गया। रासू ने फिर भी तो छात्रवृति पास की। संस्कृत पाठशाला में भी कुछ दिन पढ़ा।

गढ़न-शकल बहुत-कुछ चाचा जैसा। सामने खड़ा होता है तो आदमी जैसा लगता है। दूसरे भाई तो इस बात मे भी नही।

वैदई दिमाग में न पैठे, बहुत बातों में रासू लेकिन रामकाली का दायां हाथ है। दीनतारिणी के श्राद्ध का इतना बड़ा हंगामा जो हुआ, रासू न होता तो रामकाली को आफत न होती? आप तो वे हविषान्न, त्रिसंध्या स्नान आदि बहुतेरे विधि-निषेधों के बंधन में बंधे थे।

काम-काज में रासू काफी समर्थ है।

मा के श्राद्ध में रामकाली ने दान सागर किया। उस अवसर पर सत्यवती आयी, नवकुमार भी आया।

रासू ही लाने गया।

दादी के मरने की खबर सुनकर सत्य का जी छटपटा रहा था। रासू को देखकर मानो उसने आसमान का चांद देखा। ऐसे समय मे पिता ने रासू या गिरि या तांतिन को नही भेजा, अच्छा किया। साढ़े तीन वर्ष के बाद यही

पहली बार मैके आना हुआ।

लेकिन सत्य के शरीर के अंतःपुर मे उस समय और जो एक पहली संभावना की सूचना झलकी थी, यह क्या वह नहीं जानती थी ? कि समझ नहीं पायी थी ?

सत्य न पाए, सौदा समझ पायी थी। लेकिन रणचंडी मामी को सहज सूचना से ही जताने की हिम्मत नही की उसने। सोचा और कुछ दिन बीते, खुद ही समझेगी बुढिया।

ऐसे में दीनतारिणी के मरने की खबर !

सौदा को डर लग गया। इस समय यह !

सोचा, मामी से कहूं कि न कहू !

आखिर तक नही कह पायी।

ममता ने उसे कहने नही दिया। कही यह खबर सुनकर एलोकेशी बहू को जाने न दे !

अहा, जब से आयी है बेचारी, लगातार यही है। अपनी बुद्धि से या चाहे जिसकी भी बुद्धि के दोष से, है तो ! इसी बहाने जा पाए, तो जाए ! भगवान भला ही करेंगे !

जाते वक्त सत्य को लेकिन चेता दिया, मैके जा रही हो, दिनो बाद, जा ! लेकिन सावधान ! बंधी गाय छूटने के बाद जैसा उछलती है, वैसी मत उछल-कूद करना। मुझे भई शुबहा हो रहा है—

सोच हुई, इस ढंग से ताककर सत्य ने पूछा, 'क्या ?'

'साफ कहे बिना काम नही चलेगा ? इधर तो पक्की घरनी हो ! शुबहा हो रहा है कि पेट में बच्चा-बच्चा कुछ आया है, समझा ? सावधानी से रहना चाहिए !'

भय कि खुशी ? भय ! भय ! लेकिन एक अजीब भय।

अपने मे किस एक अज्ञात रहस्य ने डेरा डाला है, यह सोचते ही रोंगटे खडे हो आते।

बैलगाड़ी के अंदर बैठकर घूंघट से नवकुमार को सत्य ने बार-बार देखा और वह मानो नया-सा लगा।

यह खबर उसे मिली ?

पता नही, क्या होगी वह अवस्था !

गाड़ी मे खासा झकोरा लग रहा था।

एक बार इसीलिए चुपचाप कह भी उठी, 'पालकी क्यों नहीं ले आए भैया ?"

रासू ने अप्रतिभ होकर कहा, 'तकलीफ हो रही है, न ? मैंने कहा था, तो चाचा ने कहा···!' जरा आगा-पीछा करके कह ही गया वह, 'बोले, काम-काज का घर है। बहुतेरे सगे-सम्बन्धी आएंगे, सभी को तो पालकी नही भेज पाऊंगा।' इस पर भी मैंने कहा था, 'और सब और बेटी-जमाई, एक हैं ?' तो भी बोले, 'घर में जमाई भी तो एक नही हैं रासू !' अब तू ही बता, उन्हें कौन समझाने जाए ?'

अनमने मे सत्य ने चुपचाप को ज़ोर गले से ही कह दिया, 'इसमें समझने की क्या है बड़े भैया ? सच ही तो ! जमाई सब बराबर है। अपने जमाई के लिए अपना-बिराना करने से कैसे चलेगा ? बल्कि पुन्नू का ब्याह तो अभी-अभी हुआ है···' बात को पूरी नही कर पायी, नवकुमार की मौजूदगी का खयाल आते ही जीभ काटकर चुप हो गयी।

लेकिन सागर में बालू का बांध कब तक ? फिर किसी समय बोल उठी।

कितने प्रश्न ! कितनी उत्सुकता !

इस साढे तीन वर्षों के अरसे मे कितनी घटनाएं घटी, जन्म-मृत्यु की कितनी लीला हुई, कितने छोटे-बड़े हो गए, कितनी कुमारियों की शादी हो गयी—ये तथ्य कुछ कम मूल्यवान तो नही ! यह सब जानना नहीं होगा ?

'तुम लेकिन ज़रा भी नही बदले हो बड़े भैया !' मुसकराकर सत्य ने कहा।

और नवकुमार विगलित विस्मय से हंसी से उज्ज्वल हुए उस मुखड़े की ओर ताकता रहा। विस्मय ही तो ! सत्य का यह मुखड़ा उसने देखा कब ? हंसने पर सत्य का मुखड़ा ऐसा अनोखा लावण्यमय हो उठता है, यही उसने कब जाना ?

सत्य के सवाल पर रासू भी हंसकर बोल उठा, 'इन्हीं कै दिनों में मैं क्या बदलता ?'

'कै दिन !'

सत्य को तो लग रहा है, कितना युग-युगांत पार हो गया। अचरज से फैली हुई आखो उसने यही कहा, 'कै दिन ! कहते क्या हो बड़े भैया, साढे तीन साल कै दिन हुआ ?'

'साढ़े तीन साल ?' रासू फिर हंस उठा—'इतने ही मे साढ़े तीन साल हो गए ? जो हो, सुनने ही मे तीन साल लगते है, कैसे तो गुजर गए !'

सत्य ने उसास लेकर कहा, 'तुम्हारे क्यों न गुजरेंगे ! आज़ाद आदमी। हमें ही लगता है जैसे एक जनम पार कर आया।'

बाप के घर में कदम रखकर भी सत्य को यही लगा, जैसे एक ज़माना पार करके आयी।

लेकिन कहां आयी ?

जिस जगह से गयी थी, ठीक उसी जगह ? वह जगह क्या आज भी वैसी ही पड़ी है ? सूनी, खाली ?

शायद हो कि थी, या कि है, लेकिन जन्मातर से आयी इस लड़की को क्या उसी रूप में लेगी ? किसी भी लड़की को क्या लेती है ? गोत्र बदलने के साथ ही साथ मन का विराट परिवर्तन नहीं हो जाता ?

ऐसी भीड़-भाड़ का घर, फिर भी वे सत्य के साथ-साथ डोल रही थी, भुवनेश्वरी, शिवजाया की दोनों नातिनें, यहां तक कि मोक्षदा भी ! सत्य क्या खाएगी, सत्य कहां सोएगी, सत्य कहां बैठेगी, कुछ उसने चाहा और नहीं तो न मिला। यही सब। भुवनेश्वरी की तो बात ही नहीं। उसकी सास मरी, छूत है। छूने-छापने की गुंजाइश नहीं। फिर भी कह-सुनकर जितना कर सकती हो।

बात कुछ चैन की नहीं। यह तो जैसे हर पल यह याद दिलाना हो कि तुम कुटुम्ब हो, अतिथि हो।

सत्य आखिर एक बार झुझला ही उठी। मां पर ही झुंझलाई—'आखिर तुम लोग चाहती क्या हो ? बैरंग ससुराल लौट जाऊं ? बाप्, तुम्हारे सत्कार का यह झमेला मेरे बस का नहीं। घर मे और भी तो ससुराल वाली लड़कियां आयी हैं। कहा, उनके लिए तो इतनी हलचल नहीं है ?'

बात भी सच है।

ससुराल में रहने वाली और भी लड़कियां आयी हैं। पुन्नू तो आयी ही है, कुंज की दोनों घरनी बनी-सी लडकिया आयी है, शिवजाया की बेटी आयी है, रामकाली के जो छोटे चाचा नहीं रहे, उनकी तीन-तीन लड़कियां आयी है, कुज की सहोदर बहिन की बेटिया आयी हुई है, सब झुंड की कवै[1] हो रही हैं। सिर्फ सत्य···

बेटी की इस बात से अप्रतिभ हो भुवनेश्वरी ने कहा, 'यह सब अक्सर आती हैं। तेरी जैसी कौन है कि घर बसाने जो गयी सो एक बारगी तीन-चार साल···।'

भुवनेश्वरी बात पूरी नहीं कर सकी।

मां के रुंधे-गले से कुछ नर्म पड़कर सत्य ने कहा, 'समझ गयी ! मगर अभी तो हूं कुछेक दिन ! श्राद्ध खत्म होते ही तो नहीं चली जा रही हूं। यह वहा तय हो चुका है। उस समय बेटी का आदर-लाड़ करना। अभी तुम्हारी सास का श्राद्ध है, अभी बेटी को लाड़ करना सोहता है ?'

---

१. एक तरह की मछली।

भुवनेश्वरी ने छलकती आखों कहा, 'कै दिन रहेगी, तू ही जाने !'

'अरे बाबा, रहूंगी, रहूंगी ! दो-एक महीना रहूंगी ! हो चुकी है बात। चल पुन्नू, बरगद तले का अपना घरौंदा देख आएं !'

और पुन्नू का हाथ पकड़कर खींचती हुई वह पिछवाड़े के दरवाजे से निकल गयी।

बरगद तले की वह जगह बड़ी मनोरम है। जगह चुनने के लिए वे बड़ाई पा सकती हैं।

बहुत बड़ा एक बूढ़ा बरगद, जटाओं से उसने छायाभरी एक ऐसी जगह बना रखी है कि दो-एक झोंक बारिश हो जाने पर भी नीचे रहने वालों का सिर नहीं भीगेगा। धूप की तो बात ही नही, उसका तो प्रवेश निषेध है।

यही है सत्य के छुटपन के खेलने की जगह। ससुराल जाने के कई दिन पहले तक भी वह खेलती रही थी। अब वह जगह वीरान है। अब के बच्चों की जगह और कही है।

लिपी-पुती जगह अब धूल से भर गयी है, तो भी क्षत-विक्षत देह लिए छोटे-छोटे चूल्हों की पीत पुरानी याद दिलाती है।

इन चूल्हों को किस जतन से बनाया था !

सत्य कुछ देर तक पेड़ तले चुपचाप बैठी रही। जैसे बोलने की शक्ति ही न हो। लिहाजा पुन्नू भी चुप।

बड़ी देर के बाद एक लम्बा निःश्वास छोड़कर सत्य ने कहा, 'यह गजब देख पुन्नू, सभी बदल गए, सब कुछ बदल गया, लेकिन ये नाचीज चीजें ज्यों की त्यों हैं !'

पुन्नू ने भी उसांस ली, 'सच !'

एक-एक करके दिखाते हुए सत्य ने कहा, 'यह चूल्हा पूटी का है, यह खेंदी का, यह टेंपी का, यह गिरिबाला का, यह सुशीला का, यह तेरा, है न ?'

अपने बारे में वह नही बोली।

वह पुन्नू ने कहा, 'यह तेरा था ! उधर देख, राख की ढेर में टूटे-फूटे बर्तन भी पड़े हैं।'

हां, खेलघर का एक घूरा भी था। सभी तो जरूरी है। घूरा, घाट, गुहाल, ढेंकीघर, कमी क्यो हो ? बड़े लोग जिस खेल मे मशगूल है, ये लोग उसी की तो हू-ब-हू नकल करती हैं। उनके माटी और लकड़ी के खिलौनो ने भी घाट पर बर्तन माजा है, कपड़े फीचे हैं, ढेंकी कूटा है, पकाया-चुकाया है, तरकारी कूटी है, मसाला पीसा है, बच्चे को सुलाया है। फर्ज से जरा भी कहीं नही चूकी। उनके काम के बहाने बूढ़े बरगद तले की यह जगह मुखर रही है।

बैठी थी, अचानक उठ खड़ी हुई सत्य। कहा, 'पुन्नू, चल! अब देखने को जी नही चाहता। कलेजा कैसा तो कचोट-कचोट उठता है!'

पुन्नू को भी वैसा ही लग रहा था। [बोली, 'चल! अब माया करना विडंबना है। जिस दिन परगोत्तर करके दूर कर दिया है, उसी दिन से सब मिट चुका है। लड़कियों का जनम ही बुरा है।'

सत्य ने फिर एक लंबी-सी उसास ली। कहा, 'लड़कियों का जनम बेकार नहीं है रे पुन्नू, हमारे लिए नियम बनाने वाले ही बेकार हैं। दूसरे गोत्र में देकर सदा के लिए दूर कर देने का हुक्म भगवान ने नही दिया है। यह देख तू मेरी सहेली है, सदा की। तेरे ब्याह में आ नहीं पायी। यह दु:ख भला मरने पर भी मिटेगा? नही मिटेगा! फिर भी नही आयी! यह क्या भगवान ने कहा है?'

उसने उसास ली, इसके यह मानी नही कि वह हंस नही रही है, गप नही कर रही है, टोले में घूम नही रही है। यह सोचना गलत होगा। यह सब यथावत् चल रहा है। गप्पों का समंदर, बातों का पहाड़। टोले की कौन लड़की ससुराल गयी, कौन मैके में है—सबकी खोज करते फिरना और गप्प में मगन हो जाना, यह खूब चल रहा है। उसास तो सूने में।

वह उसास नितांत सूनेपन में, मन के अन्दर है। इतनी पूर्णता में भी जैसे कहीं एक गहरी शून्यता है, और उसी शून्यता पर शायद पांव रखना पड़ा है सत्य को, इसीलिए पाव के नीचे की ज़मीन ढूंढे नहीं मिल रही है।

वह शून्यता यह कि सत्य अब इनकी नही है। यह घर सत्य का नही है।

इतने बड़े यज्ञ की भीड़-भाड़ मे किसने कहा जगह कर ली है, क्या पता। औरतें अन्दर महल मे। पुरुष बाहर। कोठाघर में दामाद, मेहमान और नए बने बाहर वाले घर मे जात-बिरादर। नवकुमार कहा है, सत्य को नही मालूम, बीच-बीच मे याद आती है। अहा, बड़ा शर्मीला है, मुहचोर! क्या जाने कहा है और कैसे है। जब से आयी है, भेट नही हुई। बाबूजी तो हजारों काम मे हैं, उन्हें ऐसी फुर्सत कहा कि जमाई की खोज-पूछ करें। और-और लोग जो करें। पता नही वह मेरे बारे मे क्या सोच रहा है।

रह-रहकर उसकी याद आ रही थी। जो कैसा कर रहा है, भाव और ज़रा घमंडी शरारती अक्ल भी काम कर रही थी। जी मे आ रहा था, उसे एक बार बुलाकर कहे, 'देख रहे हो न? सभी देख रहे हो? समझ रहे हो कि तुम्हारी मां मेरी जितनी भी बेकदरी करें, मैं कुछ ऐसे-वैसे घर की बेटी नहीं हूं।

लेकिन यह सब कहने का मौक़ा कहां था?

शादी का समारोह नहीं था कि सभी मौज मजे में हों। मां का क्रिया-करम

और फिर बहुतों मे एक होने पर भी दीनतारिणी का पद घर की मालकिन का था। छोटी ननद से वे जितना भी डरती हों चाहे, बेटे से जितना ही दबी-दबी रहती हों, सबको पता था कि घर की मालकिन वही हैं। घरनी की वह जगह खाली हो जाने से सूना-सूना तो सबको लगता ही है। घटते हुए जेरबार भी हो रहे हैं सभी, ऐसे मे किसे इस बात की याद हो कि सत्य से उसके दूल्हे की किसी बहाने भेंट करा दें। और चातक की अवस्था तो नही है उसकी ! इतने दिनों तक ससुराल में रह आयी है, इसलिए उन्हे कैसे खयाल हो कि सत्य को अपने दूल्हे को देखने की इच्छा हो रही है ?

खयाल एक भुवनेश्वरी को हो रहा था।

लेकिन वह तो सब तरफ से कैद थी। एक तो सास की मरने की नियम-नीति की जिम्मेदारी, फिर बेटी की। वैसी कोशिश करे तो सत्य जलभुन नहीं उठेगी, यह वादा भुवनेश्वरी से कौन करे ?

और, उसकी मा उसे पूरा समझ भी सकी है ?

नहीं।

यह वह सोच भी नही सकती थी कि सत्य बहाने खोजती फिर रही है।

खैर, अत मे हो गयी भेट।

नियम-भग का यज्ञ होते-होते प्रायः साझ हो गयी। सत्य पोखरे मे हाथ धोकर मामियो के साथ एक बार मामा के घर तक गयी थी। जल्दी में लौट रही थी कि नेड़ू से भेट हो गयी।

नेड़ू ने रोका ! रहस्य से खिले मुखड़े से बोला, 'ऐ सत्य, भूत से डर लगता है तुझे ?'

'भूत से डर !'

'हू-हू, पेड पर का भूत ! बेशक होता है !'

'बेशक होता है !' सत्य ने मुह चमकाकर कहा, 'आए बडे जोतपीजी !'

'डर नही लगता है ? ठीक कह रही है ! इस झिकमिक बेला मे अपने उस बरगद के नीचे जा सकती है तू ? नही जा सकती ! वहा कोई नहीं जाता !'

'हाय रे मेरे कौन रे ! कोई नहीं जाता ! यह कह कि तू नहीं जाता ! तूने भी वहा कम नही खेला है। फिर भी माया-ममता नही है। हमारी बात ही जुदा है, हम और पुन्नू जैसे गयी नही !'

'गयी थी ?'

'जरूर ! तू अचानक इतना बन क्यों रहा है रे नेड़ू ? उल्लू की आखें गिनने नही जाते थे हम ?'

'अहा, यह तो पहले की बात है। अब ससुराल मे रहते-रहते वह साहस

हवा नहीं हो गया है ?'

'इस् रे ! हवा हो जाएगा ? चल न तू, दिखा देती हूं ! रात तक वहां रह सकती हूं, पता है ?'

और वेखौफ सत्य गट-गट करके उधर को बढ़ गयी, जहां इस कन्या-निरीक्षण वाली रोशनी से भी प्राय: गहरा अंधेरा था।

लेकिन वहा वह कौन ?

कौन ? कौन ?

सत्य लगभग चीख ही उठी थी। नेड़ू के डर से सम्हल गयी। सुन ले तो खैर रहने देगा भला ? सत्य के डरने का ढिंढोरा पीटता फिरेगा। लेकिन वह आदमी तो इधर ही आ रहा है ! भाग चले ? उहू, हो न हो, नेड़ू की कोई कारसाजी है यह !

कि एक सभावना से सिर से पाव तक बिजली-सी खल गयी। दूसरे ही क्षण वह संभावना प्रत्यक्ष मूर्ति में बदल गयी।

'अरे, तुम ! तुम यहा···'

जान-सुनकर भी सत्य ने आश्चर्य का भान किया।

नवकुमार ने हताश गले से कहा—'तुम्हारे ही दर्शन की आशा से। बाप के यहा आकर तो डूमर का फूल ही हो गयी हो—मैं मर गया कि जिंदा हूं, खोज तक नही ली।'

सत्य ने पुलक को छिपाने की व्यर्थ कोशिश की। हंस पड़ी—'अहा, बात का ढंग कैसा ! मैं ही खोजती फिरूंगी !'

'कम से कम दर्शन तो दोगी ? खैर, मैंने ही बहुत अकल लड़ाकर···'

'सो तो देख ही रही हूं। नेड़ू के सिवाय और भी किसी के कान में यह बात पड़ी है क्या ?'

'न: ! सिर्फ वही···'

'खैर ! तब ठीक है ! नेड़ू विश्वासघातक नही है ! हां, जरूरत ?'

'जरूरत !' नवकुमार और भी हताश स्वर में बोला, 'बिना जरूरत के स्त्री को देखने की भी इच्छा नही हो सकती ? तुम्हारे जैसा संगदिल तो नहीं हूं !'

'संगदिल ! अच्छा !' सत्य ने धीमे से हंस दिया। पूछा—'कैसा लग रहा है ?'

'बहुत अच्छा !' नवकुमार ने निश्छल भाव से कहा—'कसम, मैंने सपने में भी नही सोचा था कि मेरी ससुराल ऐसी है। कितना ऐश्वर्य, कितना दब-दबा ! जगह भी बड़ी अच्छी है। गंगा मैया को देखकर जी जुड़ा जाता है।'

सत्य ने कहा, 'तो समझो ? स्त्रियों को कितना त्याग करना पड़ता है !'

'सच !' नवकुमार ने फिर निष्कपट भाव से स्वीकार किया, 'जब से आया हूं, यही सोच रहा हूं। सच पूछो तो तुम तो एक राजकुमारी हो ! उसकी तुलना में मैं···'

आवेश में ज्यादा कुछ बोल पड़ने से पहले सत्य ने सम्हाल लिया, 'राम कहो, यह कैसी बात ! तुम मेरे स्वामी हो ! पूज्य ! राजकुमारी की बात नही लेकिन कलेजा हू-हू कर सकता है या नही ?'

'सौ बार, हजार बार कर सकता है !'

और नवकुमार ने दुस्साहस करके अपना हाथ सत्य के कंधे पर रख दिया।

तो क्या सत्य इस नेह-परस या प्रेम-परस से पुलकित नहीं होती है ? होती है ! फिर भी स्त्रियोचित सावधानी से बोली, 'ऐ, हट जाओ, कही कोई देख लेगा, फिर किसी को मुंह दिखाने का उपाय नही रहेगा ! डूब मरने के सिवाय चारा नहीं रहेगा !'

नवकुमार लेकिन इस डर से डरा नही। बल्कि दूसरा हाथ भी स्त्री के दूसरे कंधे पर रखकर ज़रा खीचने की अदा से बोला, 'क्यों, पर पुरुष हूं क्या ?'

'न सही ! लोक-लाज भी तो एक चीज़ होती है !'

'वह कहो, तो यहा एकांत में भेंट, करने से ही निंदा हो सकती है ! लेकिन तुम्हारे भाई ने तो कहा, यहां कोई नहीं आता है !'

'हां, सो तो है ! जभी तो आम-जामुन के बगीचे को छोड़कर बरगद की इस छाह में ही खेलने की जगह चुनी थी ! बरगद का कुछ भी तो लोगों के काम नही आता है—न फूल, न फल, न पत्ता, न लकड़ी। इसीलिए आदमी का पाव वहां नही पड़ता। सिर्फ छाह का आश्रय।'

साझ का अंधेरा गहरा होता जा रहा था।

नवकुमार ने अचानक कवि-कवि जैसा कहा, 'सच, तुम्हारे पिताजी को—यानी ससुरजी को देखने से मुझे ऐसे ही बरगद का खयाल आता है ! विशाल बरगद !'

सत्य चौंकी ! अभिभूत हो गयी।

इसी आवेग मे लोक-लाज को भूलकर उसने सत्य के दोनों हाथो को हाथ में दबाकर कहा, 'सच ? मेरे पिताजी तुम्हें अच्छे लगे ?'

'अच्छा लगने की नही कह रहा हूं मैं। कह रहा हूं भक्ति की बात, सम्मान की बात। बहुत बड़े बरगद को देखकर जैसा···'

'बाबूजी से बात की है ?'

'बात ! बाप रे ! कहां वे और कहा मैं ! कितने व्यस्त आदमी है—दूर से ही देखता हूं···'

सत्य ने कुछ-कुछ विह्वल-से स्वर में कहा, 'बाबूजी को सब दूर से ही देखते हैं'''सब ! मां भी ! एक मुंहजली मैं ही'''

लोकलाज की और भी भूल गयी । सत्य ने नवकुमार की प्यासी छाती में सिर रख दिया ।

उस मीठे स्वाद का लाभ नवकुमार ने भी कुछ देर के लिए उठाया । उसके बाद बोला, 'नया दामाद हूं । पहली बार आया तो ऐसे एक शोक-दु:ख के मौके पर । किसी के शादी-व्याह में आते तो जरूर हम लोगों को अलग कमरा देते, क्यों ?'

औरत जैसी यह बात सुनकर सत्य हंस पड़ी । कहा, 'अलग कमरा देने से ही क्या हम लेते ?'

'नहीं लेते ?'

'पागल ! शरीर में हया नहीं है ? वर नाम की चीज ससुराल में ही अच्छी होती है, समझा ?'

नवकुमार ने जैसे रूठकर कहा, 'समझा ! जभी तो इस अभागे के चले जाने के बाद दो महीना अच्छी तरह से रहा जाएगा'''

सत्य के मन में बिजली की एक लहर-सी दौड़ गयी । दो महीने कि कै महीने, कौन जाने । फुआ-दादी ने तो वही बात कह दी जो कहकर आते वक्त सौदा-दी ने डरा दिया था । धीरे-धीरे सत्य भी अनुभव करने लगी कि शरीर में किसी बेचैनी ने बसेरा बनाया है । लगता है, खास बेचैनी गले के ही पास है । अंदर से जैसे कुछ ठेलता आ रहा है, खाने की चीजें अंदर नहीं उतरना चाहतीं, लगता है, निकल पड़ेगी । फुआ-दादी ने खाना देखकर ही भाप लिया और फिर दुनियाभर के उपदेश दे बैठी । सांझ को बाग-बगीचे में, पेड़ों तले, छप्पर की ओलती में जाने की मनाही कर दी ।

सत्य वह मनाही मान रही है ।

वह जरा हड़बड़ायी, 'रात हो रही है, चलूं, डांट पड़ेगी !'

नवकुमार ने कहा, 'यहां कौन डांटेगा ? यहां तो तुम महारानी हो । नेड़ू ने मुझे सब बता दिया है । कैसी लाड़ली बेटी हो तुम और जाकर किस फजीहत में पड़ी हो !'

सत्य फिर अपनी दृढ़ता पर वापस आ गयी । कहा, 'यह सब क्या कह रहे हो ? जिसका जैसा नसीब ! ससुराल में बकझक किस लड़की को नहीं सुननी पड़ती ? छोड़ो भी ! जाती हूं !'

'चली ही जाओगी ? फिर कब भेंट होगी ?'

'यह कैसे कहूं ?'

'मैं तो अगले बुधवार को चला जाऊंगा। उससे पहले एक बार भेंट नहीं होगी ?'

'अच्छा, देखूंगी !'

नवकुमार ने धीमे से कहा, 'जी में आता है, यहीं रह जाऊं ! ओह, क्या घर है ! हरदम गुलजार। और हमारे यहा तो'''

'सो हो ! अपना जो है, वही ठीक है ! तुम भी कभी दस में एक आदमी बनोगे ! तुम्हारी भी दुनिया ऐसी ही गुलजार होगी !'

'मेरी दुनिया ? हुं: ! खैर, इस गरीब के यहां फिर कब आओगी ?'

सत्य झट बोल उठी, 'कह नही सकती। छ: महीने, सालभर भी लग सकता है।'

'छ: महीने ! सालभर ! मतलब ?'

घर पर सभी गरचे यह कहते हैं कि उफ़, कितनी बड़ी हो गयी है सत्य ! कहते है, रूप तो जैसे बदन में समा नहीं रहा है, कैसी स्वस्थ-सुन्दर हो गयी है ! फिर भी उछल-कूद से बाज नही आती।

लेकिन लगता है, फुआदादी के सामने अब उछल-कूद नही चलेगी।

यहां आकर सत्य टोले में हंसती-खेलती फिर रही थी—आते वक्त सौदामिनी ने जो शुबहा किया था, आंख मूदकर उसकी ओर से लापरवाह-सी होकर। अंदर की किसी बेचैनी ने अजाने भय की कोई छाह डाली भी हो, तो बाहर से उसे उसने पोंछ डाला था।

यों किसी को संदेह भी नहीं हो पाया, आखिर सत्य किसी की नज़र के सामने रहती ही कब है। सभी तो समारोह में व्यस्त हैं। एकाएक एक दिन भुवनेश्वरी को ही शुबहा हुआ, जिसकी आखें हजारों काम के होते हुए भी सत्य के आंख-मुंह के सामने ही थीं। संदेह हुआ और उसने शारदा से कहा। शारदा ने गौर से देखा और निस्सदेह हो गयी।

फिर क्या था, इस कान से उस कान, इस मुंह से उस मुंह ! सारे मुहल्ले की औरतों को खबर हो गयी। औरतों से पुरुषों को भी मालूम हो गया।

रामकाली के कानों तक पहुंचने में लेकिन कुछ देर हुई। क्योंकि मां के मरने के बाद से वे भीतर महल में नही सोया करते थे। छुनका तक वे इसी नियम पर चलेंगे, यह मानो अदेखी स्याही से लिखा जा चुका था।

तो ? भुवनेश्वरी किस उपाय से खुशी की यह खबर उनके कानों तक पहुंचाए ?

कोई तरकीब नही सूझ रही थी और आनंद का यह भार भी अकेले-अकेले ढोते नही बन रहा था।

दो ही दिन में दो साल हो गए भुवनेश्वरी के।

तो भी, यह भी जी में नहीं आ रहा था कि यह खबर कोई और दे, उसके मन में यह कामना हो रही थी कि इस मीठे, सुन्दर, भयंकर समाचार को वह उपहार की तरह स्वामी को देगी।

लेकिन भुवनेश्वरी को खुद यह समाचार देना नसीब न हुआ। रामकाली खाने बैठे थे कि मोक्षदा धप् से बोल बैठीं। कहा, 'तुम्हारे दिमाग में बात रहेगी कि नहीं, नहीं जानती, फिर भी कह देना फर्ज है, इसलिए कहती हूं, तुम अब नाना होने वाले हो!'

रामकाली ने चौंककर ताका।

ठीक समझ नहीं सके मानो।

मोक्षदा को यह सब पसंद नहीं। सो वह और भी साफ तीखी भाषा में बोलीं, 'उर्दू-फारसी में नहीं बोल रही हूं, सत्य को बाल-बच्चा होने वाला है।'

रामकाली हक्क-बक्का हो गए। पानी के ग्लास को होठों से लगाकर नीचे रखा, उसके बाद सर झुकाकर मानो थाली में उसका अर्थ खोजने लगे।

अभी वे बोलेंगे नहीं। आचमन करके बैठे हैं। छूतका का यह साल वह बदस्तूर विधि-निषेध मानकर चलेंगे। उन्हें इन बातों पर कभी विश्वास नहीं रहा, लेकिन आदमी का मन जो कितना जटिल है, यह मा की मृत्यु के बाद रामकाली की गहरी आचारनिष्ठा से साबित हुआ।

वे बोलेंगे नहीं यानी जवाब भी नहीं मिलेगा।

और मुसीबत यह कि खाने के इस इतने-से समय के बाद उन्हें पाता कौन है? इसीलिए जो भी कहना है, वह इसी समय उनके कान में डाल देना अच्छा है।

मोक्षदा ने फिर कहा, 'मैं कहती हूं, अपनी गुणवती समधिनजी को खबर भेजने की कौन-सी व्यवस्था करोगे, यह सोचो। उसे तो भरपेट दे-दिवाकर भी फायदा नहीं होता। एक टोकरी मिठाई और एक मटका तेल भेज दो। साथ में पुजावा!'

रामकाली खाते रहे। उधर भुवनेश्वरी की आंखों में पानी। जिस समाचार से रामकाली मारे खुशी के उछल पड़ते, वह खबर उन्हें तब दी गयी, जब वे चुप रहेंगे! क्यों, इसके सिवा दूसरे समय नहीं कहा जा सकता था?

इसके सिवाय आशा-आकाक्षा, उद्वेग और आनन्द से भुवनेश्वरी के कांपते हृदय को पंखुड़ियां फैलाकर खिलने का मौका नहीं मिला।

इसलिए नाना अनुभूति और अबोध वेदना के धक्के से आंखों की वह धारा

ही चलती रही।

मोक्षदा ने आखिर अंतिम हथियार का इस्तेमाल किया, 'हां, एक बात कहे बिना जी नहीं पा रही हूं, तुम्हारी दुलारी बिटिया इतने दिनों तक ससुराल में रहकर भी कुछ नहीं बदली। वही की वही है। साझ-वाझ नहीं मानती, छूने-छाने की परवाह नहीं करती। बाग-बगीचा, घाट-बाट, सारी दुनिया का चक्कर काटती फिरती है। मैं मना करने गयी, अपना-सा मुह लिए रह गयी। अब तुम्हीं देखो, अगर उसे दबा सको।'

रामकाली के क्या आज कौर गले से नीचे नहीं उतर रहा है? अभी खाने मे इतनी देर हो रही है!

मोक्षदा को भी ज्यादा बैठने की फुर्सत नहीं। वह, 'बड़ी बहूरानी, देखना, ससुरजी को क्या चाहिए?' कहकर चली गयी।

मोक्षदा को नाराजगी हुई। मातृशोक हुआ तो क्या, ऐसे शुभ समाचार से भी प्रसन्नता न होगी? इतना भी क्या! खैर! सत्य की ससुराल में आदमी भेजने का इंतजाम उन्हीं को करना होगा, यह मालूम है उन्हें! यह काम औरतों का है।

शारदा पंखा लिए पास ही बैठी थी। ससुरजी को देखने का भार उसे दिया गया था।

गले तक घूंघट काढ़े शारदा ही बैठी थी। यह उसका सबसे बड़ा कर्तव्य है। दीनतारिणी, मोक्षदा, काशीश्वरी, शिवजाया—जो कोई भी उनके पास रहें, निगरानी करें, शारदा अलग बैठी उनको पंखा जरूर झलती रहेगी।

दूसरी करे भी कौन?

भुवनेश्वरी तो इतनी मालकिनों के सामने हया-शरम पीकर पति के खाने की निगरानी को आ नहीं सकती।

मोक्षदा के चले जाने के बाद रामकाली उठे।

बरामदे के एक ओर माजा हुआ गड़ुआ और उस पर तह किया धुला हुआ गमछा रखा हुआ था—हाथ धोने के लिए। फिर भी क्या सोचकर वे घाट चले गए। हविष्य के समय तो घाट में मुंह धोने का नियम था, मगर अब क्यों? खैर!

आज भुवनेश्वरी ने एक दुस्साहस का काम किया। तेजी से वह रसोई के पीछे के बेड़े से बाहर निकल गयी और झाड़ियों से घिरा जो औरतों का घाट है, उसके पास से जाकर मर्दों के घाट के करीब जा खड़ी हुई।

हाथ-मुह धोकर रामकाली मुड़े तो अवाक् रह गए—'तुम? यहां?'

भुवनेश्वरी ने घूंघट के अंदर से कहा, 'तो क्या करूं, चोर और लुहार में भेंट कहां होती है? किसी बात की जरूरत हो तो…'

रामकाली ने खीजकर कहा, 'तो यही क्या बात करने की जगह है ?'

भुवनेश्वरी की आखों से सावन बरस रहा था, यह घूघट की ओट से ही समझ में आ रहा था। उसी में उसकी बात सुनी गयी—'तुम्हें पाती ही कब हूं ?'

रामकाली ने शांत भाव से ही कहा, 'खैर, क्या कहना है, झटपट कह डालो ! चारों तरफ लोग···'

'सत्य की कह रही हूं !'

रामकाली के गले मे कैसा तो एक विरूप स्वर बज उठा—'हा ! सुन लिया ! उसका खयाल रखना ! उछल-कूद न करे ! जाओ, घर जाओ !'

भुवनेश्वरी का सर्वांग एक मूक स्वाभिमान से काप उठा। वह और न बोली। धीरे-धीरे मुह फेरकर चली आयी।

उसके जाने के ढंग से रामकाली के जी में आया, कुछ और नर्म होकर बोलने से अच्छा होता। वह निर्बोध बेटी के इस समाचार से डर गयी है। लेकिन रामकाली करें क्या, यह तो स्त्री से गप्प-गाली की जगह नही है।

सोचा, फिर कभी कह देंगे, इसमें डरने की कोई बात नही।

लेकिन वह कब कब ? पता है रामकाली को ?

मालूम है कि स्त्री के साथ गप्पा गाली क्या चीज है ? स्नेह, प्रेम, प्यार—यह सब जाहिर करने की चीज नही है, रामकाली यही जानते है।

मोक्षदा चली आयी।

आते ही सत्य की ससुराल में खबर भेजने की तैयारी करने लगीं।

बैलगाड़ी लेकर राखू भी जाएगा। गिरि के लिए तशर की साड़ी आयी। राखू के लिए पीली रंगी धोती और चादर। पीतल के एक बहुत बड़े घड़े में एक घड़ा सरसों का तेल और एक मटका रसगुल्ला ! देखते ही सत्य की सास असली बात समझ जाएगी, कहना भी न पड़ेगा !

ये लोग निकल रहे थे कि रामकाली ने रुकने का इशारा किया। रुपया भरा बटुआ मोक्षदा की ओर बढ़ाते हुए बोले, 'इसे गिरि के जिम्मे कर दो, ताकि वहां के लोगो को दे-दिखाकर खुश कर सके।'

सभी लोग फूले नही समा रहे थे, दीनतारिणी की मृत्यु का शोक इस खुशी को दबा नही पा रहा था। सिर्फ रामकाली ही मानो हारे जा रहे थे। कोशिश करके भी वे मन मे वैसी खुशी नही ला पा रहे थे।

रामकाली का जैसे कोई नुकसान हुआ हो !

सत्य बड़ी होती जा रही है ! सत्य बडी हो गयी !

हो ही तो गयी है ! फिर भी मानो कही कुछ आशा थी। मा के श्राद्ध के

इस विराट् आयोजन में सत्य की दौड़-धूप, आना-जाना, गप-शप देख रहे थे वे। सोच रहे थे, जो सोचा था, वैसा कुछ नहीं है। सिर्फ ससुराल के दबाव से…

सोच रहे थे, भीड़भाड़ से निवटें तो सत्य को पास बिठाकर बातचीत करेंगे।

भीड़भाड़ चुकी कि मोक्षदा संवाद लेकर आयी।

रामकाली अब किसे पास बैठाएं ?

वह तो बहुत दूर चली गयी।

नः, अब उसे कभी भी करीब में नहीं पाएंगे।

नए चक्र के षड्यंत्र में पड़कर वह एक नए ही राजा की प्रजा हो गयी।

वह राज प्रमीला राज्य है। वह षड्यंत्र विधाता के चक्र का है।

२६

नवकुमार के चले जाने के बाद से ये कई दिन और भी टो-टो करती फिर रही थी सत्य। जैसे बंधी गाय छूट जाने पर करती है। नवकुमार के रहते थोड़ा सावधान होना पड़ता था। पर मोक्षदा की बाज जैसी निगाह के आविष्कार से उसकी आजादी बुरी तरह जाती रही।

बगावत की गुंजाइश नहीं। उठते-बैठते उपदेशों की झड़ी—बाहर मत निकलो, दो आदमियों के बीच मत जाओ, सांझ हो जाने पर अंगना में मत निकलो, शनिवार और मंगलवार को रास्ते में मत जाओ, घाट-बाट में अकेली मत चला करो…। निषेधों का वृन्दावन ! इसके सिवाय 'विधि' !

पैरों की उंगली में चांदी की अंगूठी पहने रहो, बालों के छोर पर और साड़ी के अंचरे में सदा गाठ बाधे रखो, दुश्मन जैसी किसी औरत को देखते ही अलग हट जाओ और किसी की नजर लग गयी हो, ऐसा लगे, तो लोहा तपाकर दाग लो, रात को जूड़े में काठी डाला करो—ऐसे ही शासन-अनुशासन में सत्य को चलना पड़ रहा है।

जैसे बाधकर पीट रहे हैं उसे।

तो भी जब-तब भयकर कुछ कर बैठती है।

जैसे, अनमने में पान धोए पानी को लांघ गयी, मछली धोए पानी होकर पार हो गयी आदि इत्यादि।

भुवनेश्वरी सिर्फ यही कहती, 'अरी ओ सत्य, कब जाने क्या कर बैठेगी बाबा, आ, मेरे पास बैठ जा न ज़रा !'

कभी-कभी बैठ भी जाती वह !

शायद थकी होने की वजह से। लेकिन ज्यादा देर तक मां के पास रहने में शर्म आती। सदा ही चंचल चित्तवाली सत्य ने अचंचल होकर एक अरसा ससुराल में काटा, अब वह सहज थकावट से हार नही मानना चाहती, ममता की अधीनता मानने को राजी नही होती।

इसलिए रामकाली के पास नालिश की गयी।

रामकाली ने डांट-फटकार नहीं की। चिकित्सक के नाते नियम-निषेध नहीं बताया। कुछ नहीं किया। पता नही क्यों, अंदर ही अंदर एक पीड़ा-सी महसूस कर रहे थे। कैसी तो एक विमुखता। मानो अंतिम आधार भी खो दिया है, इसकी एक निर्लिप्त शून्यता ही उसमें।

उन्होने सिर्फ एक दिन सत्य को बुलाकर कहा, 'बड़े जो कहे, उन्हें सुनना ! वे सब जानती है ! उनकी बात नही मानने से नुकसान हो सकता है !'

अभिमान से सत्य तीन दिन तक लेटी ही रह गयी।

भुवनेश्वरी ने शिकायत की तो कहा, 'यही तो चाहती हो तुम लोग ! ठीक तो है ! जो चाहती हो, वही हो रहा है !'

लेकिन क्षति को क्या समझा गया ?

नही ! रामकाली अभी ग्रहदशा में पड़े हैं।

महागुरु निपात के विपाक से मुक्त नही हो पा रहे है। इसीलिए उनका पहला दौहित्र धरती के प्रकाश मे खिलते ही अंधेरे मे खो गया।

दूसरा क्या कारण हो सकता है ?

सत्य तो इधर सब कायदा-कानून मानकर ही चल रही थी।

मोक्षदा ने जरूर कहा कि यह सब शुरू की लापरवाही का नतीजा है। लेकिन चिकित्सक रामकाली ने सो नही कहा। उन्हें लगा, यह शायद उन्ही की लापरवाही का परिणाम है। पिता के नाते न सही, चिकित्सक के नाते उन्हें और कुछ करना था।

मगर यह भी तो सत्य है, अपने-सगों को मिलाकर इस परिवार की जो गोष्ठी है, उस गोष्ठी में साल में औसत पांच-सात बच्चों का जन्म हो रहा है, सहज में ही हो रहा है। मालूम भी नही हो पाता।

फिर रामकाली का कसूर कहा पर है ?

अभी-अभी कै दिन पहले ही तो 'तेल-मिठाई' के साथ सत्य की ससुराल में खबर भेजी गयी थी, ऐलोकेशी जैसी स्त्री ने भी समाचार ले जानेवाली को नया वस्त्र दिया था और बहू को काफी दिनों तक मैके में रखने की इजाजत भी दी थी। अब फिर यह खबर भेजनी होगी !

अवश्य लड़की हुई थी ! जो भी हो, आखिर पहली संतान ही तो थी ! सत्य को तो खोट लग गयी ! अखंड गर्भवती तो अब नहीं रह सकी वह ! किसी शुभ काज में तो आगे बढ़कर नहीं आ सकेगी !

एलोकेशी का कड़ा हुक्म आया, बहू के स्वस्थ होते ही सावधानी से पालकी से उसे भिजवा दें। दुलारी बेटी ने मैके जाकर लाड़ से ही यह किया है, इसमें संदेह नहीं।

रामकाली को यह वचन चुपचाप पीना पड़ा।

निदेश भी मानना पड़ा।

रासू को फिर रोते-रोते आखें सुजानेवाली सत्य को लेकर उसकी ससुराल जाना पड़ा।

रामकाली की ग्रहदशा फिर भी नही मिटी।

कोई बात नही, चीत नहीं, नेड़ू नाम का वह निरीह लड़का हठात् एक दिन खो गया ! जैसे एक दिन रामकाली गायब हो गए थे ! लेकिन नेड़ू पर तो खड़ाऊं की मार नहीं पड़ी !

रामकाली ने बहुत खोज-ढूंढ़ की, कुज औरत की तरह बहुत रोए, नेड़ू का पता नहीं चला। इसके कई महीने बाद काशीश्वरी चल बसी। और कई महीनों के बाद शिवजाया की बड़ी लड़की विधवा होकर ढेरों बच्चों के साथ वही आ रही।

मगर मजा यह कि हजार असुविधा होने पर भी रामकाली किसी से यह नही कहते कि सुविधा नही होगी। हजार झंझटों के बावजूद यह नही कहते कि 'नहीं, अब नहीं चलता।'

विधवा होकर जो चचेरी बहन आयी, ब्याह योग्य उसकी दोनों लड़कियों के संबंध के लिए उन्होने जी तोड़ कोशिश शुरू कर दी। घटक भेजे। सुनार को बुलवा भेजा। लड़का भी खोजा जाए, गहने भी तैयार हों। बहन के चार लड़कों के बारे मे भी नहीं भूले। किसी को संस्कृत पाठशाला में दाखिल किया, किसी को स्कूल मे।

फर्ज अदायगी में कोई त्रुटि नही। कोई अनाचार नहीं। फिर भी बार-बार उन पर भाग्य की मार पड़ने लगी।

कहते है, उस्ताद की मार अंत मे और भाग्य नाम के व्यक्ति जैसा उस्ताद और कौन है ?

सो रात खत्म होते समय के जोत-अंधेरे में वह अपनी सबसे बड़ी मार दिखा गया।

कुछ ही घंटों के कै-दस्त मे भुवनेश्वरी सिधार गयी।

रामकाली की जो दवा बोलती थी, उसका माहात्म्य खत्म हो गया ? खत्म ही होता, नियति को कौन रोक सकता है ? परन्तु कोशिश करने का भी अवसर कहां मिला उन्हें ? अवसर मिलता तो अफसोस कम होता । लेकिन संकोची भुवनेश्वरी, निर्बोध भुवनेश्वरी ने उस कोशिश का मौक़ा नहीं दिया । आधी रात को बिस्तर से उठकर जो घाट गयी, सो उठकर ही नहीं आयी । किसी को जताया नहीं । शायद कह ही नहीं सकी ।

इस भयंकर घटना का आविष्कार भोर-भोर को बागदी बुढ़िया ने किया । वह चीखती-चिल्लाती आकर पछाड़ खा गिरी । उसकी इस चीख से बात को समझने में भी देर लगी ।

और कुछ मिनट पहले समझकर होता भी क्या ? तब तक तो सब शेष हो चुका था । गाल बैठ गए थे, आंखें धंस गयी थीं, नाड़ी छूट चुकी थी ।

रामकाली ने एक बार नब्ज पर हाथ रखा और तुरत उसके हाथ को नीचे उतार दिया । झुककर बैठे और रुंधे, कांपते गले से कहा, 'मंझली बहू, यह क्या किया ?'

रामू ने हाथ के दीए को रोगिणी के मुंह की तरफ बढ़ाया । भुवनेश्वरी ने बड़े कष्ट से पलकें उठाकर आंखें एक बार खोलीं । कुछ कहना चाहा, लेकिन होंठ नहीं हिला सकी । आंखों के कोने से आंसू की दो बूंदें ढुलक पड़ीं ।

इस बीमारी में रोगी को अंत तक होश रहता है । मौत के सफ़र में उस जानेवाली के मन में कुछ कहने की जो विकलता है, भीतर उथल-पुथल है, यह बात हवा से हिलती दीये की मंद लौ मे भी मालूम पड़ गयी ।

रामकाली ने वैसे ही रुंधे और कांपते गले से कहा, 'ऐसी सख्त सज़ा क्यों दी, मंझली बहू ?'

क्षणभर के लिए मुमूर्षू के अंदर की आकुलता की जीत हुई । उसके होंठ हिले । एक शब्द निकला, 'छिः !'

सत्य को देखे बिना ही चल दी ?

कि वह लकड़ी-सी हुई आती देह बिजली की चोट खायी जैसी हिल उठी, गढों में धंसी आंखों से छलककर पानी बह गया ।

हवा के झटके से रामू के हाथ का दीया बुझ गया ।

रात में स्वस्थ भुवनेश्वरी ने घर के काम-काज किए, कल के लिए सब कर-करा के सोने गयी, पर सवेरे का मुह नहीं देख सकी ।

रामू स्त्री की तरह हाव-हाव करके रो पड़ा । जो जहां थे, सभी रो पड़े ।

मोक्षदा का चीत्कार सुबह की स्निग्ध पवित्रता को चीरता हुआ मानो धिक्कार उठा ।

कुंज जेठ थे । ज्यादा करीब नहीं आ सकते थे । दूर ही बैठकर छाती पीटते

हुए बोल उठे, 'जिन्दगी भर कितनों को तो तुमने बचाया रामकाली, सोने की प्रतिमा-सी इस घर की लक्ष्मी को नहीं बचा सके ? हार गए ?'

रामकाली ने उस हाहाकार की ओर एक बार ताका। बोले, 'लड़ने का मौक़ा कहां मिला ?'

अजातशत्रु भुवनेश्वरी मरने के समय अपने परम देवता से मानो एक दुश्मनी कर गयी।

संझले बाबू ने टूटे गले से मंत्रोच्चार की तरह कहा, 'नारायण ! नारायण ! अंत में नारायण ! रामकाली, आत्मा अभी यहीं हैं ! नारायण का नाम लो !'

'आप लोग लें !' कहकर रामकाली उठ खड़े हुए।

ऐसी आकस्मिक मृत्यु में घर के पास के लोगों से ही भेंट नहीं होती है, तो दूसरे गांव के···। मां की ऐसी मौत सत्यवती कैसे देखती, लेकिन उसका श्राद्ध भी वह नहीं देख सकी।

हां, भुवनेश्वरी का श्राद्ध अच्छी तरह से ही हुआ।

घर में और भी पांच बड़ी-बुढ़ियां हैं, इसीलिए किसी को उसका उचित पावना नहीं मिलेगा, रामकाली को इस नीति पर विश्वास नहीं। आयोजन देखकर मोक्षदा ने कहा, 'हमारी बात छोड़ भी दो, पर तुम्हारे चाचा अभी जिन्दा हैं, उनके सामने कम उमर की बहू के श्राद्ध में इतना लाभ-काफ क्या अच्छा काम हो रहा है ?'

फुआ की ओर बिना ताके ही रामकाली ने जवाब दिया, 'तुम सबों की ही क्यों, मैं किसी भी बात नहीं छोड़ रहा हूं, जो नियम है, वही कर रहा हूं।'

मोक्षदा ने ईर्ष्याकातर निःश्वास छोड़कर कहा, 'पांच-पांच बूढ़ियों की नज़रों के सामने उमर की उतनी छोटी बहू का समारोह के साथ श्राद्ध करना ही नियम है ?'

रामकाली ने वैसे ही मुह फेरकर कहा, 'आत्मा की उमर नहीं होती !'

लेकिन आंखों देखकर सहा जो नहीं जाता।

रामकाली ने धीमे से कहा, 'संसार में बहुत-कुछ को सह लेना पड़ता है। इस पर नाहक चर्चा चलाने का क्या लाभ ?'

मोक्षदा चुप हो गयी। बात तो सच ही है। छोटे की मौत ही जब सह ली जाती है, उसकी उस प्रिय परिचित मूर्ति को आग में फूंककर, चिता बुझाकर आते ही जब खाया जा सकता है, सोचा जा सकता है, तो किस मुंह से यह कहा जाए कि उसके पारलौकिक काम को देखने की क्षमता नहीं !

लेकिन मां के श्राद्ध को देखने की क्षमता छोटी सत्यवती को न होगी, इसी-लिए क्या उसे लाया नहीं गया ?

नहीं ! उसका आना ही संभव नहीं हुआ। उसने जब मां के मरने का

रामकाली की जो दवा बोलती थी, उसका माहात्म्य खत्म हो गया ? खत्म ही होता, नियति को कौन रोक सकता है ? परन्तु कोशिश करने का भी अवसर कहा मिला उन्हें ? अवसर मिलता तो अफसोस कम होता। लेकिन संकोची भुवनेश्वरी, निर्बोध भुवनेश्वरी ने उस कोशिश का मौका नही दिया। आधी रात को बिस्तर से उठकर जो घाट गयी, सो उठकर ही नही आयी। किसी को जताया नही। शायद कह ही नही सकी।

इस भयंकर घटना का आविष्कार भोर-भोर को बागदी बुढ़िया ने किया। वह चीखती-चिल्लाती आकर पछाड़ खा गिरी। उसकी इस चीख से बात को समझने में भी देर लगी।

और कुछ मिनट पहले समझकर होता भी क्या ? तब तक तो सब शेष हो चुका था। गाल बैठ गए थे, आंखें धंस गयी थी, नाड़ी छूट चुकी थी।

रामकाली ने एक बार नब्ज़ पर हाथ रखा और तुरत उसके हाथ को नीचे उतार दिया। झुककर बैठे और रुंधे, कांपते गले से कहा, 'मंझली बहू, यह क्या किया ?'

रासू ने हाथ के दीए को रोगिणी के मुंह की तरफ बढ़ाया। भुवनेश्वरी ने बड़े कष्ट से पलकें उठाकर आंखें एक बार खोलीं। कुछ कहना चाहा, लेकिन होंठ नही हिला सकी। आंखों के कोने से आसू की दो बूदे ढुलक पड़ी।

इस बीमारी में रोगी को अंत तक होश रहता है। मौत के सफ़र में उस जानेवाली के मन मे कुछ कहने की जो विकलता है, भीतर उथल-पुथल है, यह बात हवा से हिलती दीये की मंद लौ में भी मालूम पड़ गयी।

रामकाली ने वैसे ही रुंधे और कापते गले से कहा, 'ऐसी सख्त सजा क्यों दी, मंझली बहू ?'

क्षणभर के लिए मुमूर्षू के अंदर की आकुलता की जीत हुई। उसके होंठ हिले। एक शब्द निकला, 'छि. !'

सत्य को देखे बिना ही चल दी ?

कि वह लकड़ी-सी हुई आती देह बिजली की चोट खायी जैसी हिल उठी, गढ़ों मे धसी आंखों से छलककर पानी बह गया।

हवा के झटके से रासू के हाथ का दीया बुझ गया।

रात में स्वस्थ भुवनेश्वरी ने घर के काम-काज किए, कल के लिए सब कर-करा के सोने गयी, पर सबेरे का मुंह नही देख सकी।

रासू स्त्री की तरह हाव-हांव करके रो पड़ा। जो जहा थे, सभी रो पड़े।

मोक्षदा का चीत्कार सुबह की स्निग्ध पवित्रता को चीरता हुआ मानो धिक्कार उठा।

कुंज जेठ थे। ज्यादा करीब नही आ सकते थे। दूर ही बैठकर छाती पीटते

हुए बोल उठे, 'जिन्दगी भर कितनों को तो तुमने बचाया रामकाली, सोने की प्रतिमा-सी इस घर की लक्ष्मी को नही बचा सके ? हार गए ?'

रामकाली ने उस हाहाकार की ओर एक बार ताका। बोले, 'लड़ने का मौक़ा कहां मिला ?'

अजातशत्रु भुवनेश्वरी मरने के समय अपने परम देवता से मानो एक दुश्मनी कर गयी।

संझले बाबू ने टूटे गले से मंत्रोच्चार की तरह कहा, 'नारायण ! नारायण ! अंत में नारायण ! रामकाली, आत्मा अभी यहीं हैं ! नारायण का नाम लो !'

'आप लोग लें !' कहकर रामकाली उठ खड़े हुए।

ऐसी आकस्मिक मृत्यु में घर के पास के लोगों से ही भेंट नहीं होती है, तो दूसरे गांव के···। मां की ऐसी मौत सत्यवती कैसे देखती, लेकिन उसका श्राद्ध भी वह नही देख सकी।

हा, भुवनेश्वरी का श्राद्ध अच्छी तरह से ही हुआ।

घर में और भी पांच बड़ी-बुढ़िया हैं, इसीलिए किसी को उसका उचित पावना नही मिलेगा, रामकाली को इस नीति पर विश्वास नही। आयोजन देखकर मोक्षदा ने कहा, 'हमारी बात छोड़ भी दो, पर तुम्हारे चाचा अभी जिन्दा हैं, उनके सामने कम उमर की बहू के श्राद्ध में इतना लाभ-काफ क्या अच्छा काम हो रहा है ?'

फुआ की ओर बिना ताके ही रामकाली ने जवाब दिया, 'तुम सबों की ही क्यो, मैं किसी भी बात नही छोड़ रहा हू, जो नियम है, वही कर रहा हूं।'

मोक्षदा ने ईर्ष्याकातर निःश्वास छोड़कर कहा, 'पांच-पाच बूढ़ियों की नज़रो के सामने उमर की उतनी छोटी बहू का समारोह के साथ श्राद्ध करना ही नियम है ?'

रामकाली ने वैसे ही मुह फेरकर कहा, 'आत्मा की उमर नही होती !'

लेकिन आंखों देखकर सहा जो नहीं जाता।

रामकाली ने धीमे से कहा, 'संसार मे बहुत-कुछ को सह लेना पड़ता है। इस पर नाहक चर्चा चलाने का क्या लाभ ?'

मोक्षदा चुप हो गयी। बात तो सच ही है। छोटे की मौत ही जब सह ली जाती है, उसकी उस प्रिय परिचित मूर्ति को आग में फूककर, चिता बुझाकर आते ही जब खाया जा सकता है, सोचा जा सकता है, तो किस मुह से यह कहा जाए कि उसके पारलौकिक काम को देखने की क्षमता नही !

लेकिन मां के श्राद्ध को देखने की क्षमता छोटी सत्यवती को न होगी, इसीलिए क्या उसे लाया नही गया ?

नही ! उसका आना ही संभव नहीं हुआ। उसने जब मा के मरने का

समाचार सुना, वह दो दिन से सौर-घर में थी। जिस दिन भुवनेश्वरी का देहावसान हुआ, ठीक उसी दिन सत्यवती के दूसरी संतान पैदा हुई—बेटा !

दो परिवार मे दो जने आए कुटुम्ब घर से—एक जन्म का समाचार लेकर, दूसरा मरण का।

सत्य इस बार प्रसव के पहले मैके नहीं आयी। उसके पिता इतने बड़े चिकित्सक है तो भी। इसकी वजह थी और वजह भी निरी स्त्रियों वाली। ऐसे मौकों पर स्त्रियों की प्रथा और कुसंस्कार की ही जीत होती है। सत्य की बाबत भी इसका अन्यथा न हुआ। चूंकि पहली बार मैके में वैसी दुर्घटना हो गयी, इसलिए इस बार दोनों ओर से यही तय हुआ कि अब की उसकी ससुराल में ही बच्चा हो। सो सत्य वहीं रही।

ठीक ही है। गोद मे लड़का आया। एलोकेशी ने बड़ी खुशी से आदमी के मारफत खबर भेजी। आदमी को कह दिया, 'देख, इस शुभ संवाद की बख्शीश मे पीतल की थाली कटोरा मत लेना। कहना, घड़ा कहां है ?'

लेकिन न थाली-कटोरे की बात रही, न घड़े की। आदमी जो पहुंचा तो देखा, यहां ऐसी मुसीबत आन पड़ी है।

इधर सत्यवती पुलक, आनंद, आशा, गर्व लिए उस आदमी के लौटने का इंतज़ार कर रही थी। लेकिन उसके पहले ही उधर का आदमी आ पहुंचा।

जच्चाघर के दरवाज़े पर खड़ी होकर एलोकेशी ने कोमल-कठिन स्वर मे कहा, 'बहू, जच्चाघर मे रोना नही चाहिए। रोने से बच्चे के अमगल का डर रहता है, नाडी का दोष हो सकता है, सो तुम्हे सावधान करके कहूं, कै-दस्त से तुम्हारी मां बेचारी चल बसी। यह खबर कुछ छिपाने की तो है नही, चार दिन का शोक न पाला जाए, कम-से-कम दो दिन मछली-वछली खाना छोड़ना ही पड़ेगा ! इसीलिए बता दिया। पुरोहित से पुछवाती हू, ऐसी स्थिति मे क्या विधि-व्यवस्था है।'

तुरत-तुरत की प्रसूति तरुणी की छाती पर बेपरवाह होकर तेज छुरी का वार करके निरे सहजभाव से एलोकेशी वहां से चली गयीं। पलटकर देखा भी नहीं कि उसका असर क्या हुआ।

लेकिन टोले मे एलोकेशी अपनी सखी-सहेलियों में यह मज़ेदार खबर परोसती फिरी, 'देखा ? मैं क्या झूठ कहती हूं कि बहू का कलेजा काठ का है ? मा के मरने की खबर सुनकर टुकुर-टुकुर ताकती रही, ज़ोर-ज़ोर से रो नही उठी।'

सच ही सत्यवती ज़ोर से रो नही पड़ी।

काठ की मारी-सी देर तक बैठी ही रह गयी। उसके बाद कब जाने वह नवजात शिशु अपनी देह के वजन से कहीं ज्यादा वजन से चीख उठा। वह उसे धीरे से गोद मे उठाकर इधर को पीठ किए दीवाल की ओर ताकती हुई चुप बैठी रही।

जहा 'मंझली वहू' के परिचय चिह्न से चिह्नित एक सुन्दर-सा चेहरा, साफ रंग नाटे कद की स्त्री भीत-कुंठित पांवो दिनभर सबका मनोरंजन करती फिरती है, और उसी के आस-पास प्रायः भूली हुई-सी हो गर्वित चरणों कमर मे फेंटा बांधे एक तंदुरुस्त-सी लड़की घूमती है। लेकिन जच्चाघर के इधर-उधर, किसी भी तरफ खिड़की नही। तीनों तरफ गोबरपुती माटी की दीवार। नजर वहां थिर होकर रुकी रह जाती।

सत्यवती इस बात पर सदा खीजा करती थी कि मां सदा ऐसी डरी-हुई-सी क्यों रहती है? कहा करती थी, बस, डर कि डर। देख लेना मा, इसी डर से तुम्हें स्वर्ग नही मिलेगा।

तो क्या सत्यवती की मा को स्वर्ग नही मिला?

फिर क्यों सत्यवती का प्राण स्वर्ग नाम के उस अदृश्यलोक के लिए असीम शून्यता से हाहाकार करता फिरता है?

'मां नही रही, मां को अब देख नही पाऊंगी'—सत्य यह नहीं सोच पा रही है, सिर्फ़ यही लग रहा है कि वह सदा की ममतामयी जैसे भयंकर एक निष्ठुर खेल में मातो एक ही दौड़ में जाने दूर-दूरातर के किस लोक में पहुंचकर सत्य को चिढ़ाकर हंस रही है।

कहती है, क्यो री, रात-दिन तो तू अपने खेल ही में भूली रहती थी, मां नाम की भी कोई है, उसकी ओर कभी ताककर देखा भी था? यह ख़याल किया था कभी कि तुम उसकी इकलौती बेटी हो, तुम्हारे सिवा संसार मे उसे अपना कहने को कोई नही है?

'मा नही रही' इस दुःख से सत्य को मां के प्रति छुटपन मे अपनी उदासीनता का दुःख ज्यादा दुःख दे रहा था। मां का उसने अच्छी तरह से ख़याल क्यों नही रखा, कभी उसकी गोद मे दो घड़ी स्थिर होकर बैठी क्यों नहीं! रात में और-और लड़कियों के साथ दादी के घर में सोने के बदले मा की छाती से लगकर क्यो नही सोयी! अक्सर तो वह संकोची महिला अपने भीरु-भीरु मुखड़े को हंसी से खिलाकर चुपचाप अनुरोध करती थी, आ, मेरे साथ इस कमरे में सोना। कहानी सुनाऊंगी।

मगर जिससे यह अनुरोध, वह कभी भी उसकी मर्यादा नही रखती। लापरवाही से कहती, 'हूं, बड़ी तो कहानी जानती हो तुम! उस कमरे में हम

सभी सखी-सहेलियां है, उन्हें छोड़कर तुम्हारे साथ सोने आऊं ! खूब !'

कैसी संगदिल लड़की ! पत्थर !

गोबर लिपी दीवार से सर पीटकर अंदर की पीड़ा को तोड़-फोड़ देने की इच्छा हो रही थी उसे। भगवान, एक सिर्फ़ एक बार के लिए उस दिन को लौटा नही दे सकते ? सत्य उस दिन की उस निष्ठुर लड़की के किए पाप का प्रायश्चित्त कर लेती !

उस नाटी-छोटी मूरत को दोनो हाथों से जकडकर उसकी छाती मे मुंह गाड़कर कहती, 'मा, वह लड़की निष्ठुर नही थी, अबोध थी !'

इधर, ससुराल से लौटकर जाने के बाद देखी हुई मां को वह हरगिज याद नही कर पाती थी, घूम-फिरकर मा की केवल वही निरी वधू-मूर्ति ही रामकाली कविराज के उतने बड़े आंगन में तमाम घूमती दीखती।

सत्य यदि मर जाए, तो स्वर्ग नाम की उस जगह मे मां के साथ भेंट होगी ? यदि यह संभव हो, तो सत्य मां की छाती से जा लगे और रो पड़े, मां, इतनी निर्दयी तू कैसे हुई ?

खोयी हुई सत्य ने क्या यह सोच लिया कि वह सच ही वहां पहुंच गयी ? मां को छाती से जा लगी ? और उसका रोना इतना ज़ोर से हो गया कि उसने इतनी दूर मर्त्यलोक को चौकन्ना किया !

नही तो एलोकेशी दौडी-दौडी क्यों आती ? क्यों वह कठोर स्वर मे डांट उठती—'बहू, एक बच्चे को गंवाकर तुम्हारी आस नही मिटी, इसे भी गंवाने की तुली हो ? जच्चाघर मे बच्चे को गोदी मे लिए-लिए ऐसा रोना ! धन्य तुम्हारे जी को ! मैं पूछती हूं, मा-बाप किसी के रहते हैं सब दिन ? फिर भी ग़नीमत कहो कि विधाता ने खयाल किया, बाप नही गया, मा गयी। माग मे सिंदूर लिए सदा सुहागिन-सी चली गयी। खुश हो, सो नही, फुक्का फाड़ रही है ! ज़्यादा दिन जीने से दुर्भोग के सिवा नसीब क्या होता ? सुन लो, यदि बच्चे पर आसू गिरा तो दुर्गत कर छोड़ूगी मैं तुम्हारी, मां-मा करके तुम्हारा यह रोना निकाल दूगी !'

बच्चे पर आंसू !

सत्य ने आचल से पोछकर आंखों को सुखा लिया और डरते हुए ताककर देखा, बच्चे पर कही आसू की बूद तो नही गिरी है !

यह रही ! यह ! सत्य सिहर उठी।

हे भगवान, दया करो ! ऐसी ग़लती फिर कभी नहीं करूंगी !

कल्पित आंसू की बूद को आचल से पोंछकर बच्चे को उसने अपनी छाती

में जकड़ लिया। मौत की तरफ से आंखें मूंदकर वह जीवन के आमने-सामने बैठ गयी।

२७

कहावत है, भाग्यवान का बोझा भगवान ढोते हैं ! रासू की स्त्री शारदा अवश्य अपने को वैसी भाग्यवती नहीं समझती बल्कि जब-तब यह कहकर अफसोस करती रहती है, जैसा अपना भाग्य है ! लेकिन एक प्रकार से आज तक भगवान उसका बोझा ढोते आए हैं। ढोते आए हैं ग्रह-नक्षत्रों का एक कौशलपूर्ण समावेश से।

नहीं तो पाटमहल के लक्ष्मीकांतजी की पोती अभी तक पाटमहल में ही नही पड़ी रहती ! लेकिन शारदा को नि.सयत्न राज्यभोग का सुयोग देकर वह वही पड़ी है।

लक्ष्मीकात नही रहे, लेकिन उनके बेटे श्यामकांत ने ठाठ-बाट बरकरार रखी है। वर सभी शास्त्रीय आचार-आचरण मानकर चलते है। हिलने-डोलने में भी पत्रा पलटते है और ग्रह का फेर आदि मामले में काशी से पढ़कर आए हुए ज्योतिपार्णवजी की राय लिया करते हैं।

उन्ही ज्योतिपीजी ने पटली की जनमपत्री देखकर ससुराल जाने में खास विधि-निपेध बता रखा था।

बताया था, अट्ठारह साल की उम्र से पहले उसका पति के पास जाना खतरे से खाली नही। उस समय तक उसके पति-सुख में राहु का कटाक्ष है।

ज्योतिपीजी की इस बात से किसी को आश्चर्य न हुआ, बल्कि ऐसा न होने से ही लोगों को आश्चर्य होता। क्योंकि पति-सुख स्थान मे राहु की दृष्टि की बात ज्योतिपी को क्यों कहनी पड़ेगी। इसका पता तो उसके ब्याह के ही दिन चल चुका है।

वह तो कहिए कि उसके बाप के पुण्य का जोर था कि रामकाली को उसके दूल्हे की सूझ गयी थी। नही तो ब्याह की ही रात में उसे माग का सिंदूर धोना पड़ता। या फिर उसे आधी विधवा की ज़िंदगी बितानी पड़ती।

रामकाली ऐन मौके पर भगवान होकर आ पहुचे, उन्होंने उस मुसीबत से बचा लिया। लेकिन भाग्य के लिखे को कौन मेटे ? ग्रह-नक्षत्र ने उसे सचेत किया, पटली, खबरदार, स्वामी की तरफ मत देख ! कम से कम अट्ठारह साल की उम्र तक !

लक्ष्मीकात के श्राद्ध मे सामाजिक नियमानुसार जमाई को न्योता दिया

गया था ! लेकिन कड़ी निगाह रखी गयी थी, उन दोनों की भेंट न हो। भाग्य के फेर से जमाई का आना ही न हो सका। पेचिश हो गयी। कौन जाने, वह दो सेर कच्चा दूध पी लेने का नतीजा था या नहीं ! खैर !

श्यामकांत ने पटली के ससुर का इस ग्रहदशा की बात बता दी थी। इसीलिए इतने दिनो तक विदाई का प्रस्ताव नहीं आया। दीनतारिणी के श्राद्ध का उतना बड़ा आयोजन गया, उसमे भी उसका ससुराल जाना न हो सका।

'एक घाट' के लिए सभी सगे-संबंधी जो जहा थे, आए। सत्य, पुन्नू, कुंज की ससुराल बसनेवाली पाच-पाच बेटिया, शिवजाया की दौहित्रिया, कोई बाकी नही रही, रह गयी एक यही पटली जो कि प्रधानों में भी प्रधान थी।

लेकिन अब समय आ गया।

पटली ने अट्ठारहवें साल मे पैर रखा। कुंज की स्त्री अभया नयी बहू को लाने के लिए हड़बड़ा उठीं। मुह से बेशक यह कह रही थीं कि अब विदा न कराने से अच्छा लगता है भला। लेकिन उनका भीतरी मतलब इससे गभीर था। वह था, बड़की के घमंड को चूर करना ! शारदा को जितना अहंकार है, उतना ही तेज। दिन-दिन मानो वह बढ़ता ही जा रहा है। पता नहीं कैसे, भुवनेश्वरी की सूनी जगह धीरे-धीरे कैसे तो शारदा के दखल में आ गयी है, भुवनेश्वरी जैसा ही शारदा के बिना कोई काम नहीं चलता। भुवनेश्वरी वाली नम्र नीरवता शारदा मे नही है, यह जितनी चौकस है, उतनी ही प्रखर भी। अपनी सास के भी कान काटना चाहती है।

दीनतारिणी के मर जाने से घरनी की जो जगह अभया को मिलनी चाहिए थी, वह मानो अभया को नहीं मिली। रसोई की नौकरी से ज्यादा कुछ अभया को नही मिला, बल्कि वही और भी टेढ़ा हो गया। इसलिए कि काशीश्वरी तो रहीं नही, गिरकर हाथ टूट जाने की वजह से मोक्षदा भी कमजोर-सी पड़ गयी हैं। इसलिए अभया को तुरत नहाकर उन लोगों के कमरों में भी कुछ-कुछ कर आना पड़ता है। जैसे मसाला पीसना, पानी देना।

गिरे हुए लाचार हाथी की तरह मोक्षदा सदा की उस अछूत के हाथ का पानी लेती हैं।

इस तरह देर तक सारी घर-गिरस्ती शारदा के ही हाथों रहती है। साथ में शिवजाया रहती है, और भी नातेदारिनें रहती है। लेकिन, गजब, सब जैसे दूध-आम की तरह घुल-मिल गयी हैं। अभया रूपी गुठली की जगह घूरा रह गयी है। कम से कम अभया का यही खयाल है।

बहू का यह रौब, यह दबदबा अभया अब सह नही पा रही हैं। बहू को सबक सिखाने का जो हो रहा है। वह हथियार भी अब उनके हाथ आ गया

है। श्यामकांत ने खबर दी है, पटली ने अट्ठारहवें वर्ष में पैर रखा है।

सुनकर अभया के कलेजे का ज़ोर बढ़ा।

सौत को लाकर सीने पर सवार करा देने से स्त्री जैसी दुरुस्त हो जाती है, वैसी और किस चीज़ से होती है?

उधर पाटमहल में ज़ोर-शोर से तैयारी शुरू हो गयी।

ग्रह का फेर गया, अब बेटी ससुराल बसेगी। पटली की मां भरपूर सामान देना चाह रही है। वह सामान सहेज रही है और उठते-बैठते बेटी को उपदेश दे रही है कि वह कैसे ससुराल में बहुतों मे एक बन सकेगी। बड़ी बुद्धू है पटली! उसकी मां बिहुला को इसीलिए चिंता है।

लेकिन दूसरी तरफ़ उसे बहुत बड़ा भरोसा है। एक तो बेटी की उठती उम्र, फ़िर मैके में निश्चित सुख से खूब तंदुरुस्त हो गयी है। और रूप! बचपन से ही गजब का है।

घर घर सभी उसे रूप के लिए ही सुनाया करतीं। कहतीं, बहुत खूबसूरत बला को पति नहीं नसीब होता। पटली तू ने शास्त्र की इस बात को नए सिरे से साबित कर दिया। इससे तो हमारी काली-कलूटी और चिपटी नाक वाली लड़कियां अच्छी हैं। तेरी हमजोलिया तीन-तीन, चार-चार बच्चों की मां बन चुकी।

डरा भी रही है वे लोग। कहतीं हैं, अब सौत थाह पाने दे तो समझो। अब तक वह अकेली राज़ करती आयी है। तुम बिटिया के गले और कमर में तावीज़ बाध दो पटली की मा! किसके मन में क्या है, क्या पता? बेटी को मना कर देना, सौत के हाथ का पान न खाए, पानी न पीए!

आशा और आशंका, स्वप्न और आतंक से दिन बिताते हुए आखिर एक रोज़ पटली के जीवन का वह चरम दिन आया। पटली ससुराल गयी।

घर का थोड़ा-बहुत धुधला-धुंधला-सा याद है। जिस बड़े आंगन में जाकर खड़ी हुई थीं, जिस बड़े दालान में ले जाकर उसे बिठलाया गया था, घाट के जिस किनारे नहलाया था, जिस कमरे में आठ दिन वह रही थी...यही सब! और कुछ नहीं।

उतनी-उतनी औरतो में उसकी सौत जो कौन है, वह समझ ही नहीं सकी। समझने की कोशिश भी किसने की? रोते-रोते आंखें तो सुर्ख हो गयी थीं।

रोना सिर्फ़ ससुराल आने की वजह से नहीं, खुद को बहुत बड़ी अपराधी मानने की वजह से रुलाई और बढ़ गयी थी। सच तो, पटली जैसी बदनसीब

त्रिभुवन में और कौन है ?

ब्याह करने के लिए जाता हुआ दूल्हा रास्ते मे मरे, यह कब किसने सुना है ? उसके बाद यहा ! 'बहूभात'[1] के दिन घर जब गम-गम कर रहा था, जीती-जागती एक बहू खो गयी ! सुनकर हा हो गयी पटली।

घाट-बाट में मर्द तो साप काटे या बाघ का शिकार हो गायब हो सकते हैं, लेकिन औरत ? वह भी बहू ? घर के अंदर से कैसे खो जाएगी ? भूत के उड़ा लेने के सिवाय और कुछ नही कहा जा सकता।

इन सारे कारणों की जड अपने को मानकर भय और घृणा से जब वह रो-रोकर आकुल हो रही थी, तो सत्य ने आकर उसे दिलासा दिया था।

हा, एक यह भी बात याद है उसे।

सत्य !

आईने-सी चमकती दो बड़ी-बड़ी आखें, उनके ऊपर जुड़ी घनी काली भौहें—अभी भी उसे साफ याद आती हैं।

पटली को रोते देख सत्य ने कहा था, 'अपने को बदनसीब समझकर रो क्यों रही हो ? भगवान ने जिसके भाग्य में जो लिखा है, वही होगा। फिर अपने को ही सब-कुछ का हेतु मानने का क्या हेतु है ? तुम नही पैदा होती, तो दुनिया का कल-कब्जा ठप पड़ जाता क्या ?

हमउम्र चचेरी ननद की बात सुनकर अवाक् रह गयी थी वह। ज़िंदगी मे उसने ऐसी बातें नही सुनी। वह भी उत्ती-सी लडकी के मुह से ! गोकि सभी गुरुजनों की जबान पर एक ही बात थी, जो कुछ भी बुरा हुआ, सब पटली के कारण।

वह ननद निश्चय ससुराल में है। पटली की तरह ग्रहदशा से कौन लड़की बाप के घर बैठी रहती है ?

जोरदार तैयारी इस घर में भी चल रही थी।

अभया मानो कुछ ज़रूरत से ज्यादा दिखा रही थीं।

प्यार से शायद नही, दिखावे के लिए। शारदा या उस जैसी सुहागिनें समझें कि जो आ रही है, वह दया की भिखारिन होकर नहीं, अधिकार के दावे से आ रही है।

हां, कमरे के बारे में मुह खोलकर साफ कुछ कह नही सकी हैं, लेकिन इशारे से, आभास से यह बता दिया कि अब से शारदा को बच्चे के साथ इधर-वाले कमरे में सोना चाहिए। लड़का बड़ा हो चुका, अब घर अगोरने का क्या !

---

१. नई बहू के आने पर होने वाली दावत।

लेकिन शारदा इन इशारों पर ध्यान नहीं देती। बड़े लड़के को तो उसने चाचाओं के ज़िम्मे कर दिया है। अपना इलाका उसने दुरुस्त रखा है।

बड़ा लड़का बोनू यानी बनविहारी अपने छोटे चाचा नेड़ू का बेहद प्यारा था। वह जब से गायब हो गया, दूसरे चाचाओं के ज़िम्मे है। दुलरुआ तो वह सब का है, लेकिन अपने बड़े पोते को अभया मानो भली आंखों नहीं देख सकती। इसलिए नहीं कि वह शारदा के पेट का है, बल्कि इसलिए भी कि वह मां से बड़ा हिला है। सो वह जब-तब खिसिया उठती—रातदिन छोटे काका की रट! जब उसकी शादी हो जाएगी, तब ?

मंझले चाचा के होते छोटे चाचा की शादी क्यों होगी। या होगी भी तो भतीजे से क्यों ठनेगी, वह लड़का यह सब सवाल नहीं करता, सिर्फ़ कह बैठता, छोटे चाचा की शादी ही नहीं करने दूंगा।

अभया और भी खिजलाकर कहती—हां, करने क्यों देगा। और कोई क्यों आए, तेरी मा ही अकेली सब-कुछ हथिआए बैठी रहे!

आखिर वह छोटा चाचा गायब ही हो गया, शादी नहीं हो सकी। अभया सोचती, उस लड़के की बात फल गयी, इसी से वैसा हुआ।

और वह बात उसकी मा की शिक्षा का नतीजा है।

चूंकि शारदा उनके हाथ से बाहर है, इसलिए वह एक ऐसे खिलौने की कामना कर रही थी, जिसे मुट्ठी में रख सके।

मंझली बहू भी आती!

लेकिन मंझले लड़के की शादी का नाम भी नहीं ले रहे थे रामकाली! एक दिन बड़े भाई के मुंह पर ही कह दिया—वैसे निकम्मे लड़के का ब्याह कराकर क्या होगा ?

निकम्मा हो तो लड़के का ब्याह नहीं होगा, ऐसी बात किसने कब सुनी है ? लेकिन कुंज छोटे भाई के डर से सदा ही सिटपिटाए रहते हैं। इसलिए जो कुछ भी कहा, ओट से कहा। खुद हिम्मत करके ब्याह की व्यवस्था करने नहीं गए।

खैर, इतने दिनों के बाद एक निरी निज की चीज मिलने की आशा बंधी।

लेकिन दुनिया मे एकबारगी संदेहहीन सुख कहा है!

बहू की उम्र सुनकर मन में वैसी चैन नहीं थी।

बूढ़ा कौआ, पोस मानता है ?

पका बांस क्या नवेगा ?

लेकिन पटली क्या पका बांस है ?

क्या जाने, पटली क्या है ?

औरत जात जब तक अपने स्वार्थ के केन्द्र में आकर खड़ी नहीं होती, तब तक उसे कौन पहचान सकता है ? भली है, लक्ष्मी है, ये सारे विशेषण तो कितनी बार बेकार साबित होते हैं।

पटली क्या है, यह न जानते हुए भी जब से यह खबर मिली है कि उसकी ग्रहदशा समाप्त हो गयी, शारदा के कलेजे में खटका होने लगता है। रासू की चिन्ता का भी अंत नहीं। मन में एक भयानक भय है, फिर भी पुलक से सिहरता एक आवेग भी। न जाने, सात साल की वह लड़की अट्ठारह की होकर देखने में कैसी हुई है। जो विदाई का पत्तर लेकर यहां से गयी थी—रासू की मां—उसने तो आकर कहा है, 'बहू तो जैसा कमल का खिला फूल है !'

जब से सुना है, एक अवर्णनीय सुखकर यंत्रणा रासू के मन को कुरेद-कुरेद-कर खा रही है।

शारदा उस कमल के फूल को रासू की पूजा मे लगने देगी ? या बहुत दिन पहले की उस शपथ की याद दिलाकर उसे वंचित रखेगी ?

शारदा कमल का फूल कभी नहीं रही।

कमल, गुलाब, चमेली, मल्लिका— कुछ भी नहीं। यदि फूल से ही उसकी तुलना की जाय तो अपराजिता जैसी किसी हद तक।

लेकिन रंग की सावली होते हुए भी दमकती मुखश्री और अनोखी सुकुमारता के नाते वह बड़ी बहू बनकर इस घर में आने का सौभाग्य पा सकी थी। और अब, अपने व्यक्तित्व के बल पर वह घर में चोटी की बन बैठी है। लेकिन रासू अभी जीवन-रस का अन्वेषी युवक है। प्रखर और मुखर शारदा से आजकल वह डरता है।

सेवा की निपुण कुशलता से उसने स्वामी को पूरी तरह मुट्ठी मे कर रखा है। अभी भी गर्मी की रातों में पंखे को भिगोकर पति को हवा करती है, जाड़ों की रात में दिए की लौ में हाथ को गरम करके पति के कनकनाते हाथ-पाव को गरम किए देती है।

और, गिरस्ती के कामो, रसोई में कितनी ही पसीना-पसीना क्यों न हो जाती हो, पति के पास जब आती है, बदन-हाथ धोकर चुनतदार महीन साड़ी पहनना नहीं भूलती, सिर पर फुलेल लगाकर जरा चिकनी-चुपड़ी होकर ही आती है।

किन्तु खिले कमल से फुलेल होड़ ले सकेगा ?

बहू जो आयी तो चारों तरफ से वाह-वाह होने लगी। वाह-वाह के दो कारण थे। एक तो बहू का रूप, दूसरा साथ मे आए सामानों की प्रचुरता।

रामकाली कविराज के यहां सामान जरूरत से कहीं ज्यादा है। बिना

जरूरत के भी वे बहुत-सा सामान बनवाकर रख देते हैं। ढूंढ़े तो घर में कोई बारह जांते मिलेंगे, सोलह सिलौटी। पानी का घड़ा न भी होगा तो चालीस-पचास। फिर भी औरतों का मन!

वही लोढ़ा-सिलौटी, जांता-सूप, घड़ा-लोटा जैसे गृहस्थी के मामूली उपकरणों से ही उनका मन आह्लाद से भर जाता है।

सबने एक स्वर से कहा, अलबत्त, कुटुम्ब की नजर है! ठान-दीदी नंदरानी ने हंसते हुए कहा, एक ही चीज़ नहीं दी है—ढेंकी। एक ढेंकी दी होती तो रासू के ससुर का देना सोलहों कला से पूर्ण होता। पता नहीं, समधिन ने वही क्यों बाकी रखा?

पटली के बाप ने ढेंकी बेशक नहीं दी, पटली को ही दिया। वही पटली ढेंकी का मूसल बनकर कम-से-कम एक जने के कलेजे पर चोट करने लगी है।

तो भी शारदा ने संकल्प किया, सौत को वह पति के आस-पास तक भी नहीं फटकने देगी। 'सिंहवाहिनी' वाली उस शपथ का पूरा-पूरा लाभ उठाएगी।

उपाय भी क्या है! रासू को पहचानना तो बाकी नहीं है। उस रूपवती के पास जा पाए तो रासू तो उसी वक्त सिर मुड़ाकर उसका खरीदा हुआ गुलाम बन जाएगा।

पहले दिन तो अवश्य अभया ने बहू को अपने ही पास सुलाया। काफी रात गए तक जागकर-जगाकर बहू को उपदेश देती रही, इस घर में कौन अपना है, कौन विराना। किसको मानना होगा, किस पर संदेह करना होगा।

लेकिन उसके बाद वाले दिन क्या होगा?

या उसके भी बाद वाले दिन?

और फिर चिरदिन?

शारदा यही सोचने लगी।

आज तो बीता! कल? और चिरकाल?

रासू के लिए तो माना, सिंहवाहिनी की शपथ है, लेकिन घर के और दस जने के लिए? उनके विष बुझे बाण जब कलेजे में आकर बिंधते रहेंगे तो क्या जवाब देगी शारदा?

घर के अंदर का चिराग़ बुझा हुआ था। रासू अभी बाहर से आया नहीं।

वैशाख की मतवाली हवा में चम्पा की मदिर गंध, छोटे-छोटे रोशनदान होकर भी रह-रहकर वह बयार अंदर आती और सारे कमरे में खुशबू बिखेर देती!

ऐसी रात, ऐसी मोहमयी बयार और पीड़ा से टनटन करता यह कलेजा ! ऐसे माहौल में यह सोचा भी जा सकता है भला कि शारदा ने काफी दिनों तक स्वामी-संग पाया है। उसके लड़के की उम्र इस समय बारह साल की है।

यह सोचा जा सकता है कि भोग-पात्र की तरफ अब शारदा का हाथ बढ़ाना उचित नहीं है। अब स्वेच्छा से पति का अधिकार छोड़कर भंडार के बर्तन-भांड़ों में ही जीवन की सार्थकता को ढूंढना उसके लिए ठीक है ?

लेकिन गजब है ! हरगिज यह यकीन नहीं हो रहा है कि शारदा ने इतने दिनों तक इस घर का सुख उठाया है। बल्कि आंसू से धुंधली होती आती नजर में बार-बार यही लगता है, हुंः, कितने दिन !

समय-समय पर मैके गयी है, अभी वही एक-एक बड़ी विरति लग रही है।

शारदा का गरीब बाप बेटी को ले ही कितनी बार जा सका है ? सोलह-सत्रह साल के उसके विवाहित जीवन में दिन, महीने, घंटा का भी हिसाब जोड़ें तो चार-पांच साल !

तो भी तो एक युग हासिल रह जाता है।

कब किस होकर निकल गया वह लम्बा युग ?

धीरे-धीरे रासू कमरे में आया। सदा जिस ढंग से आया करता है। शारदा जिसे व्यंग से 'चोर की तरह' आना कहती है।

नई-नई शादी हुए वाला ढंग रासू का नहीं बदला !

तो क्या उसे भी यह पता नहीं कि उसकी उम्र कब तो अट्ठारह से चौंतीस हो गयी है ? पता नहीं चला कि बीच की उम्र के ये साल हाथ से पुचककर निकल कैसे भागे ?

इसीलिए सोने के कमरे में दाखिल होने में आज भी शर्म !

आज रासू का तमाम दिन लेकिन बड़े कष्ट से गुजरा। वह अव्यक्त पीड़ा मानो पकड़ से परे है, उसने उनके मन को सिर्फ भारी कर रखा है।

इस कष्ट की वजह तो है !

यह सिर्फ इसीलिए नहीं है कि अपनी खूबसूरत स्त्री को वह अभी तक एक नजर देख भी नहीं पाया। असल में किया क्या जाएगा, इस चिन्ता ने बेचारे रासू को डावाडोल कर रखा है।

दूसरी स्त्री का मुंह नहीं देखूगा, इस शपथ की याद आती है ?

शारदा के प्रति ही वफादार होकर चलने की चिन्ता ? या कि शपथ को महज बात की बात कहकर टाल दे और···

पीड़ा दरअसल यही हो रही है।

टाल जाए और कहीं शारदा कुछ कर बैठे ? शारदा मर्माहत होगी,

वह रासू को धिक्कारेगी, नफ़रत करेगी—यह सोचते हुए भी तो जी फटने लगता है।

और यदि शारदा के सामने की गयी शपथ को रखे तो इधर एक निरी निर्दोष स्त्री के प्रति अन्याय करना होता है। इतने दिनों के बाद ससुराल आकर पति की ऐसी बेरुखी से वही क्या दुःख, लज्जा, अपमान से भर जाना नही चाहेगी ? जो खिले कमल-सी है, उसे इतना बड़ा सदमा पहुंचाया जा सकेगा ?

इस दुविधा में रासू टुकड़े-टुकड़े हो रहा है।

महज एक माटी के दीए से इतने बड़े कमरे का अंधेरा दूर होता है, यह रासू के लिए हास्यकर नहीं था। इसलिए दीये की उसी रोशनी के अभाव में बोला, 'उफ, कितना अंधेरा है !'

लेकिन दूसरी तरफ से कोई जवाब नही मिला।

रासू ने नियमानुसार दरवाजे में हुड़का ठोंका और करीब आ करके कहा, 'दीया नही जलाया है ?'

अबकी शारदा बोली। और ताज्जुब है, अंदर का वेदना-विधुर हाहाकार जब बात होकर बाहर निकला तो निकला तीखे व्यंग के रूप में। शायद इसीलिए स्वभाव नाम की चीज को मरने के बाद तक भी विस्तार दिया गया है।

शारदा ने चुभने वाले स्वर में कहा, 'दीया जलाने की अब जरूरत ही क्या है, घर मे जब पूनो का चाद आ गया है !'

'पूनो का चाद !'

रासू सीधा-सादा है, अबोध है—वह अभी स्वर्ग से गिरकर धरती पर आया है—'पूनो के चांद का मतलब ?'

'ओ, मतलब नही जानते हो ?' व्यंग से पति को छलनी बनाते हुए वह बोली, 'अच्छा ! घरभर के लोग धन्य-धन्य कर उठे और तुम्हारे कानों तक नही पहुचा ? तुम्हारी दूसरी के रूप से धरती उजियारी हो गयी ! इसी से फिजूल का तेल खर्च नहीं किया।'

रासू ने साहस संजोकर कहा, 'औरतों की जात बड़ी ईर्ष्यालु होती है।'

'क्या कहा ?' शारदा गोया तीखेपन की होड़ में उतरी है, 'औरतों की जात ईर्ष्यालु होती है !'

'और नही तो क्या ?'

'महापुरुष पुरुष जाति बिलकुल देवता है, क्यों ? क्या कहूं, मुह खोलकर तुलना करने जाऊं तो महापातक का डर है, तो भी कहूं, औरतो की अवस्था से जरा अपनी अवस्था को मिलाकर देखो न ! स्त्री यदि किसी पर पुरुष की ओर ताक भी ले तो महापुरुषों के सिर पर खून सवार हो जाता है !'

रासू ने धिक्कारसने स्वर मे कहा, 'छिः-छिः ! किस बात से किसकी तुलना!

पर पुरुष की बात जबान पर लाने में शर्म नहीं आयी ? दूसरी स्त्री परायी स्त्री होती है ? छिः !'

शारदा लेकिन ऐसे धिक्कार से भी विचलित नहीं हुई, लिहाजा अनझुकी-सी बोली, 'दूसरी, तीसरी, चौथी—जितनी चाहे स्त्री जुट जाए तो परायी स्त्री की क्या जरूरत ? औरतों को तो यह सुविधा नहीं है न ?'

रासू ने हताश हुए से स्वर में कहा, 'ईर्ष्या से तुम्हें होशोहवास नहीं रहा है बड़ी, इसीलिए जो भी चाहे कह रही हो। नयी बहू को मैंने नहीं बुलवाया है। बड़ी-बूढ़ियों ने समझ-बूझकर ऐसा किया है। अब तक तो वही पड़ी थी।'

'इस् रे ! दु:ख तो छलका पड़ रहा है ! वहीं पड़ी थी ! हाय-हाय, बेचारी अथाह पानी में पड़ी थी !'

शारदा चाकू से काट-काटकर बोलने लगी, 'मैं लेकिन साफ कहे देती हूं, हिस्सा-बखरा की इल्लत में मैं नहीं जाने की। यदि मुझे चाहते हो, तो उसे नहीं छू पाओगे और यदि उसे चाहते हो तो मैं···।'

अचानक शारदा का गला रुंध गया और रासू को इस रुंधे गले से ही बड़ा डर लगता है।

वह बोला, 'तो मुझे क्या करने को कहती हो ? गुरुजनों का जो हुक्म हो, वह मानूं कि चीख-चिल्लाकर उसका विरोध करूं ?'

'क्या करोगे, यह तुम सोच देखो। आखिर तुम कुछ दूधपीते बच्चे नहीं हो। गुरुजन जहर खाने को कहें, तो खाओगे ? चाचा-ससुरजी ने धरम का काम किया, मेरे कलेजे में बास करके भले आदमी की जात बचायी ! इतना ही अगर धरम का ख्याल है, तो क्यों न खुद···!'

'बड़ी !' रासू डपट उठा, 'कह क्या रही हो ? पागल हो गयी क्या ?'

शारदा धप् से बिस्तर पर लेट गयी। कहा, 'पागल होने की घटना घटे तो आदमी पागल होगा ही, इसमें आश्चर्य क्या है ? चाचा-ससुर ने अगर मेरा घर नहीं तोड़ा होता तो आज बल्कि उनका टूटा घर जुटता।'

'बड़ी ? किसकी तुलना कर रही हो ? ऐसी बातें जुबान पर लाने से भी महापाप होता है।'

'जुबान पर लाने से महापाप, मगर मन में ? मन को कोई डरा-धमका कर रख सकता है ! खैर, जाने दो ! भला-बुरा कुछ भी नहीं कहूंगी मैं ! मुझे जो कहना था, कह चुकी !'

रासू ने समझौते के स्वर में कहा, 'इस तरह जामे से बाहर क्यों हुई जा रही हो, बड़ी ? तुम घरनी हो ! जवान बेटे की मां ! तुम्हारा स्थान कौन छीन सकता है ? लेकिन लोक-समाज की बात तो है न ! उसे एकबारगी निकाल बाहर करने से···।'

में से एक तो बहुत दिन पहले ही गुज़र गए—कुंज, रामकाली और शशितारा के पिता जयकाली। दूसरे, यानी शशितारा के ससुर जिन्दा थे और पतोहू के मैके आने की राह के कांटा को मजबूत किए हुए थे।

अभी-अभी उनका श्राद्ध हुआ और इतने वर्षों के बाद शशितारा नैहर आयीं। अभी कुछ दिन यहां रहेगी।

आने के बाद दो दिन उन्हें यहा का हालचाल समझने में लगा। अब वह काम के लिए तैयार हुई हैं। घर में सहोदर भाई कुंज के प्रति पत्ति हीन दशा तथा सौतेले भाई रामकाली के बोलबाला और दबदबा से उनके जी मे शेल विधा है और रासू की पहली स्त्री के बेहयापन से वह गाल पर हाथ रखने को मजबूर हुई हैं।

अवाक् होकर बोली, 'अजी, वह बड़ी बी जबर्दस्ती पति को रोके रहेगी, और यह समरथ युवती बहू बेचारी सास के कमरे मे पड़ी छत की कड़ियां गिनती रहेगी ? तुम लोग यही होने दे रही हो ? मैं कहती हूं, लड़के की बात भी तो सोचनी होगी। उसकी टटकी बहू यों पड़ी रहे और वह बासी पर संतोष करे ? इतनी उमर हो गयी, मैंने ऐसा न देखा, न सुना !'

शारदा की सास ने इतने लंबे अरसे से न देखी ननद को नितांत अपनी का अधिकार देते हुए विगलित स्वर में कहा, 'देखो ननदजी, तुम्ही देखो। जितना रहोगी, उतना समझोगी। एक तो तुम्हारे भैया के मिनमिन स्वभाव के चलते मैं बड़ी होते हुए भी छोटी हूं, चूल्हा-चक्की के सिवाय कुछ देखा नही। तिस पर बहू जाबाज। यों देखोगी, वह किसी के सात-पांच में नही है, लेकिन मारे घमंड के चूर। किसी की राय पर चला तो लो उसे ? हरगिज नहीं चलने की और ऐसी अड़ियल कि कुछ कहने की हिम्मत नही पड़ती।'

शशितारा ने दृढता से कहा, 'तुम्हें नहीं पड़ती, मुझे पड़ेगी। मैं इसका कोई किनारा करके ही दम लूंगी।'

किनारा करने के लिए भाभी के साथ इजलास पर आकर शशितारा ने मुजरिम को तलब किया।

शारदा आयी। गरदन झुकाकर घूंघट के अन्दर से ही धीमे से कहा, 'क्या कहती हैं ?'

शशितारा हिलडुलकर बैठी। पंखा झलती हुई बोलीं, 'एक वाजिब बात कह रही हूं। कुछ खयाल मत करना। जिन्हें अक्ल नही, उन्हें अक्ल देने के लिए आंख में उंगली गड़ाने के सिवा उपाय भी नही। वही करूंगी। उससे तुम्हारी आखो में यदि जलन हो, तो मुझे दूसना मत।'

शारदा के गले से जरा हंसी की आवाज हुई—'आप लोगों को दूसूगी, मुझे ऐसी हिमाकत है, फूआजी ?'

पंखा झलने की गति को तेज करके शशितारा ने कहा, 'हिमाकत ! नहीं, हिमाकत तो तुममें नहीं देखती। लेकिन अक्ल भी तो नहीं नजर आती। नयी बहू के बारे में तो बिलकुल नहीं सोचती हो !'

कि शशितारा और उनकी भाभी को अवाक् करते हुए शारदा के गले से धीमा लेकिन साफ स्वर गूंजा—'मैंने नही सोचा, आप इतने जने तो सोच रही हैं !'

'इतने जने ? हम ? तुमने तो अवाक् कर दिया बड़ी बहू ! हम सोचकर उसका कौन-सा उपकार कर सकती है ! सुनें ? तुमने इधर आत्महत्या कर लेने का डर दिखाकर पति-को सिटपिटा रखा है, वह डर के मारे परेशान है, हम क्या करें ? उस दिन मैं छोरे को खीच लायी—रासू, इधर आ। कमरे की तो घर में-कमी नही है। इस कमरे में नवाबी पलंग न हो, पति को पाए तो नयी बहू के लिए आम का तख्ता ही राजतख्त है। लेकिन वह डर से हाथ छुड़ाकर भाग गया। कहा, तुम्हारी बड़ी बहू आत्महत्या करेगी। अच्छा बहू, मैंने सुना, तुम्हारा बाप तो बड़ा भला है, तुममें यह कैसी नीचता ?'

शशितारा की बात खत्म होते-होते कमरे मे बिजली-सी कौंध गयी। वह बिजली और कुछ नही, शारदा की आंखो की आग ! सिर उठाने मे घूंघट खिसक गया था। उसे ज़रा-सा खींचकर मुंह को खुला ही रखे वह बोली, 'फूआजी, दस के चक्कर से भगवान भी भूत बन जाते है, फिर आदमी किस खेत की मूली है ! फेरे में पड़कर भले आदमी की बेटी नीच बन जाए तो ताज्जुब क्या ?'

एक तो जबान खोलना, फिर ऐसी बात !

शारदा की सास से अब अपनी मर्यादा के प्रति सचेत हुए बिना नहीं रहा गया। इसलिए नथवाले मुखड़े को घुमाकर बोलीं—'तुम घूंघट हटाकर सासों से झगड़ रही हो बहू ! इतना चौड़ा कलेजा कैसे हो गया ? जानती हो, तुम्हें सदा-सदा के लिए नैहर भेज दे सकती हूं ?'

इजलास का शायद शारदा को पता था और सवाल के जवाब के लिए वह तैयार ही थी। जरा तीखी हंसी हंसकर बोली—'सदा-सदा के लिए ही अगर जाना है, तो बाप के घर क्यों जाने लगी—आखिर यमराज के घर को तो किसी ने छीन नहीं लिया है ?'

शशितारा इस बार झकार उठी—'यमराज के घर का डर दिखाकर हमें डरा नही सकोगी बहू, हम रासू नही है ! मैं पूछती हूं, वह जो एक बड़े घर की लड़की आयी है, जिसके बाप ने विदाई मे सामान देकर घर को भर दिया है, उसके हक को नही मानोगी तुम ? और वह अनोखा रूप, टटका कमल, अपने पति को उससे वंचित करोगी ? तुम्हें नरक मे भी जगह नहीं मिलेगी।'

शारदा हंस उठी ! साफ शब्दों में कहा, 'अच्छा ही तो है, फूआजी ! नरक में जगह नहीं मिलेगी तो स्वर्ग में जाऊंगी। इन दो के अलावा दस-बीस जगह तो नहीं हैं !'

दोनों ही घरनी की बोलती बंद करके शारदा उठ खड़ी हुई—'छोटे देवरजी ने ताड़ के बड़े खाने की ख्वाहिश की है। चलती हूं, ताड़ों को निचोड़ लूं !'

गर्ज कि आप सबके कठघरे से निकाल भागती हूं।

शशितारा ने समझा, जैसा सोचा था, वैसी नहीं यह ! लानत देकर इससे काम नहीं बनाया जा सकता है। उन्होंने दूसरी चाल चली। कहा, 'देखती हूं, सभ्यता-भव्यता की पाठशाला में तुम बिलकुल नहीं पढ़ी हो बहू ! गुरुजनों के सामने से बिना अनुमति लिए उठते मैंने अपनी ससुराल की तरफ किसी बहू-बेटी को नहीं देखा। हमने खुद भी गुरुजनों के कुछ पूछने पर हां-हूं करके ही जवाब दिया है, उठकर जाने को कहे बिना गरदन झुकाए वहीं बैठी रही हैं।'

शारदा इससे भी अप्रतिभ नहीं हुई। उसने उसी तरह हंसते हुए कहा, 'बैठने की फुर्सत हो तो बैठने में भी सुख है, फूआजी !'

'हूं ! देखती हूं, झट जवाब देना ही तुम्हारा रोग है। भोली-भाली सास पायी है, इसी से यह हाल। खैर, सुनो ! मैं समझौते की ही कह रही हूं। तुम घरनी हो! बेटे की मां! काफी दिनों तक पति का सुख उठाया। उसे बिलकुल डुबा देने से कैसे चलेगा ? अग्नि को साक्षी रखकर उसका भी विवाह हुआ है ! मेरी सुनो, बारी तै कर लो।'

शशितारा मन ही मन हंसी। 'नयी का नशा तो सवार हो रासू पर, फिर देखती हूं, कितनी कदर रह जाती है तुम्हारी ! कहां रह जाता है यह तेज ! उस बहू का स्वाद पाने पर तुम गले में फांसी लगाओ कि डूब मरो, रासू का कुछ आता-जाता नहीं !'

बारी की सूझ के लिए शशितारा ने अपनी तारीफ की। पर उस तारीफ को शारदा ने ज्यादा देर टिकने नहीं दिया। बोली, 'बिना इजाजत लिए ही जा रही हूं, फूआजी ! ऐसी छोटी बातें सुनने से सिर झुक जाता है !'

'एं, क्या कहा ? हम लोग छोटी बातें कर रही है ? नीच घर की लड़की, कहने मे तेरी जीभ नहीं लड़खड़ाई ?'

शशितारा नाच उठी, 'वाह तुम खूब ऊंची बातें कर रही हो ! अकेली खाऊंगी-पहनूंगी, अकेली भोग करूंगी, यह हुई महत्व की बात ! बारी की बात छोटी हुई ! बारी से तो दोनों कुल बचता है !'

शारदा की जबान पर बार-बार कोई सख्त बात आ रही थी। उसे किसी

तरह जब्त करके बोली—'दोनों कुल को बचाने की जरूरत नहीं, आप लोग एक ही कुल को बचाएं !'

अब खड़ा नहीं रहा जा सकता।

मान-सम्मान रखना कठिन हो जाएगा। शारदा की अपनी आंखें ही उसे अपमानित करेंगी।

दो-दो गुरुजनों को काठ की मारी-सी बनाकर शारदा चल दी।

इस चरम अपमान की घड़ी में उसे भुवनेश्वरी की याद आयी। शारदा की किस्मत ही खोटी है, वरना स्नेह का वैसा एक सहारा वह खो देती ! भुवनेश्वरी की अभी मरने की उम्र थी ?

हां, शारदा बेहया है, स्वार्थी है। लेकिन दूसरे के लिए उदार होने का नसीब उसे मिला कब ? भाग्य ने तो उसे सदा छला है। और वह छलना गुरुजनों के ही हाथों से आयी है।

बड़ों के लिए श्रद्धा-सम्मान आए भी तो कहां से ? जहर की प्याली के बदले अमृत का उपहार कौन देता है ?

शशितारा ने गाल पर हाथ रखककर अभया से कहा, 'सम्मान में तुम बड़ी हो मामी। तुम्हारे चरणों की धूल लेनी चाहिए। लेकिन तुम्हारे चरणों की धूल पर लोटने को जी चाहता है कि ऐसी जहरीली गेंहुअन के साथ तुम गिरस्ती करती हो।'

कुंज की स्त्री ने कपाल पर हाथ रखकर कहा, 'नसीब ननदजी ! बात दर-असल यह है कि नसीब की बात उन्हें फिलहाल सूझी है, ननद की दिव्य-दृष्टि के प्रभाव से। और, आज तक जितनी बेवकूफी की है, सूद-मूल सहित उसे वसूल करने की इच्छा होती है।'

शशितारा ने दबी खूखार आवाज मे कहा, 'उस नागिन की तरफ से रामू के मन को बिलकुल मोड़ दे सकती हूं, ऐसी दवा मुझे मालूम है—अचूक टोटका। छटपटाकर रामू नयी बहू के कदमों पर आ गिरेगा, बड़ी बहू उसके लिए जहर हो जाएगी।'

'सच भाभी, ऐसी दवा तुम्हें मालूम है ?'

शशितारा के होंठो पर एक अजीब हंसी निखर आयी—'मालूम नही है तो तुम्हारे ननदोई को ऐसे ही खरीदा हुआ गुलाम बनाकर रखे हुए हूं ? नाता-गोत नही मानता था, खूबसूरत औरत को देखा नही कि पागल हो उठा। मुझे एक बागदी बुढ़िया ने दवा सिखा दी। तबसे ऐसा सीधा हो गया कि मेरे सिवा और कुछ भी नही जानता। मैं उठने को कहती हूं, तो उठता है, बैठने को कहती हूं, तो बैठता है। मेरी तरफ टुकुर-टुकुर ताकता रहता है। मैं कहती हूं, छोड़ो भी ! मेरा वही अच्छा लगता है। नौकरी नही ही की तो क्या, पर

खाने की कमी तो नहीं पड़ी है। मेरे अंचरे में तो बंधा है वह !'

रासू की मां ने सकपकाते हुए कहा, 'कोई जड़ी-बूटी। रासू का कोई नुकसान तो न होगा ?'

'लो ! मैं ऐसा काम करूंगी ? यह और कुछ नहीं, एक से जी हटकर दूसरे पर लगना। तो सुनो, भाग्य से परसों ही अमोसिया है—ठीक आधी रात को वहू अगर बाल विखेरे नंगी होकर किसी केले के पेड़ की जड़ में सुई गड़ा आ सके तो···'

शशितारा की वात पूरी नही हो पायी। शारदा का लड़का दौड़ता हुआ आया, 'जल्दी चलो, जल्दी। मंझले दादा वेहोश हो गए हैं !'

'मंझले दादा ?'

यानी रामकाली !

सभी दौड़ पडे। तो क्या रामकाली भुवनेश्वरी की तरह बिना नोटिस दिए···

रामकाली अंदर महल में गिरे पड़े, इसलिए इतना शोर मच गया। वाहर गिरे होते तो औरतें इतना करीव जाकर हा-हुताश नही कर पाती।

जिन्हें छूने का अधिकार था, उन लोगों ने सिर पर, चेहरे पर पानी डाल-डालकर गंगा बहा दी। घर में जितने पंखे थे, सभी उठा लाए। यह चिंता की ही वात न थी, एक प्रकार का रोमांच भी था। जिस आदमी की ओर कभी कोई हिम्मत करके ताक नही सके, वह वेवस-सा आंखें मूंदे पड़ा था।

शारदा भी एक पंखा ले आयी। दूर बैठी झलने लगी। सोचने लगी, अजीव है। इतने दिनों से यहां हूं, आदमी ये देखने में कैसे है, कभी नही देखा। इसे ही क्या कहते हैं तप्त काचन वर्णाभा···

एक भयंकर आलोड़न से शारदा की आंखो में पानी झलक आया। ऐसे पति को छोड़कर मंझली चाची को चला जाना पड़ा ? इसी से स्वर्ग में टिक नही पा रही हैं, खीचकर इन्हें अपने पास ले जाना चाह रही हैं ! मन का पति ऐसी चीज़ है ! सोचा, मंझले चाचा माया तोड़कर चले !

फिलहाल यह पता चला, शारदा की आशंका अमूलक है। रामकाली ने आंखें खोली।

चारों ओर इतने-इतने मुखड़ों को देखकर उनकी भौंहें जरा सिकुड़ी। उन्होने फिर आखें मूद ली। वड़ी देर के वाद वोले—'वाहर चडीमंडप में मेरा विछौना कर दो।'

रामकाली वाहर ही गए।

औरतों की यह हाय-हाय उन्हें वर्दाश्त नही। आप अपने ही पास शर्मा रहे

थे। रामकाली के लिए ऐसी कमजोरी अक्षम्य है। वे गिर पड़े, पांच जनों ने उनके मुंह-माथे पर पानी डाला, हाय-हाय की, इससे बढ़कर घृणा की बात क्या हो सकती है ?

ऐसा हुआ क्यों ?

बहुत दिनों से अंदर ही अंदर एक क्षय चल रहा था, जैसे एक टूटन की आहट सुन पा रहे हों। तभी से सेहत गिर गयी है।

रामकाली में भी आवेग का एक आलोड़न उठा। वह छोटे-मोटे कद की औरत, रामकाली ने जिसे कभी आदमी ही नहीं गिना, वह रामकाली जैसे कठिन आदमी के भीतर की इतनी शक्ति हर लेगी, यह रामकाली की धारणा से बाहर था।

भुवनेश्वरी के लिए मानो उन्हें एक वात्सल्यसनी प्रीति थी। जीवन के किसी आदर्श, किसी चिंता, किसी सुख-दुःख में उन्होंने उसे नहीं पुकारा। आज लगता है, स्त्री पर उन्होंने न्याय नहीं किया। सदा जिसको छोटा समझा, वह शायद वैसी छोटी नहीं थी, जिसे मामूली समझा, वह शायद मामूली नहीं थी। स्नेह के साथ यदि थोड़ी-सी श्रद्धा भी देकर रामकाली उसे हृदय की सहधर्मिणी बना ले पाते, तो शायद हो कि तमाम जिंदगी इतने अकेले नहीं रहते।

मृत्यु की महिमा से भुवनेश्वरी मानो बड़ी हो उठी।

बिस्तर पर लेटे-लेटे ही रामकाली ने तय किया—तीर्थयात्रा करेंगे। वायु-परिवर्तन की आवश्यकता है।

दो-तीन दिन तो रामकाली के लिए उद्वेग में ही कट गए सब के। चाचा के मना करने के बावजूद रासू बाहर चंडीमंडप में ही सोया।

आज फिर से घर में स्वाभाविकता आयी। गोकि रामकाली की तीर्थयात्रा के संकल्प से लोगों को भय हुआ, चिंता हुई, लेकिन कुछ आज ही तो नहीं जा रहे हैं। तैयारी चलने लगी।

शशितारा ने रासू को आज फिर बुलवा भेजा। कहा, 'सुनो, यदि बदन पर मर्द का चमड़ा है तो बीवी के आंसू से मत भीगना। अजी, खुदकुशी क्या आसान है! आज तू इधर के कमरे में सोना!'

तीन-तीन रात बाहर गुजारकर रासू का मन यों ही चंचल था, इस प्रस्ताव से और भी चंचल हो उठा। लेकिन हां करने की गुंजाइश नहीं थी। यह मानो वैसी ही बात हुई, भूख है, सामने स्वादिष्ट भोजन है, पर मुंह सिला है।

और फिर रासू शारदा नहीं है कि बात का फर्राटे के साथ जवाब दे। उसने गरदन झुका ली। शशितारा ने समझा, मौनं सम्मति लक्षणम्। बोलीं, 'तुझे कोई फिक्र नहीं करनी। तू सिर्फ खाने-पीने के बाद मेरे कमरे में चले आना। फुआ-भतीजे की गप-शप के बहाने रात कुछ ज्यादा कर देंगे। उसके

बाद—अहा, बेचारी नयी बहू के मन की तरफ ज़रा ताकेगा नही ?'

रासू की आखों में आंसू आ गया। वह झटपट वहां से खिसक गया। नयी बहू के लिए सोचता नहीं है वह ? हर वक्त तो सोचता है। लेकिन जिसके लिए शशितारा को इतनी फिक्र पड़ी थी, वह कहा है ? पाटमहल के लक्ष्मीकांतजी की पोती ?

वह मानो एक अजीब डर से काठ हो गयी है। इतने दिनों में उसने पहचान जरूर लिया है कि उसकी सौत कौन है। सौत इतनी डरावनी लगती है, इसकी शायद उसे धारणा भी नही थी। शारदा की ओर ठीक से ताक भी नही सकती वह, बोलना तो दूर की रही।

लेकिन शारदा हरदम उससे बोलती है। सबको खिलाने का भार जो शारदा पर ही है ! लाचारी पटली को भी उसी के ज़िम्मे पड़ना पड़ा है। सास ने दो-चार दिन अपने हाथों रखने की कोशिश की थी, पर असमर्थ होकर बाज आयी।

शारदा हर घड़ी उसे बुलाती—'नयी बहू, आओ, खा लो। नयी बहू, मूढ़ी खाओगी ?···तुम्हें मछली की पेटी अच्छी लगती है ? नयी बहू, चूरे आम का अचार नही खाती हो तुम ?···अचार के तेल के साथ कभी कैथा खाया है ? खाना चाहो, तो कहो, मिलाएं।'

नयी बहू किसकी नयी बहू है, शारदा यह नही जानती। कुटुम्ब की लड़की आयी है, एक भारप्राप्त कर्मचारी उसका आदर-जतन कर रही है।

आज भी फुलौड़ी और बैंगनी लिए वह नयी बहू को बुलाने आयी—'गरम-गरम खाओगी ?'

पटली ने सिर हिलाकर कहा, 'नही।'

शारदा हैरान हुई। नयी बहू कभी किसी बात में ना नही करती। ना नहीं करती है, इसलिए शारदा को बल्कि कौतुक ही होता है। सोचती है, अच्छी तरह से खिला-पिलाकर उसे ठंडा करके रखा जाएगा।

शारदा यह नहीं समझती कि पटली डर से ही ना नही कर पाती। आज उसके ना कहने पर बोली, 'क्यों भई, खाओगी क्यो नही, भूख नही है ?'

सिर को और भी झुकाकर पटली ने हिलाया।

शारदा ज़रा देर चुप रही फिर मुसकराकर बोली, 'क्यो नयी बहू, भूख की कमी तो तुम में कभी नही देखी मैंने।'

नयी बहू की तरफ से कोई जवाब नही आया। गरदन कुछ और झुक गयी। शारदा जाने को हुई। कहा, 'अच्छा, तो दो-एक तिल के लड्डू भेज देती हूं। खाकर पानी पी लो।'

अब की नयी बहू अचानक बोल उठी, 'आप मेरा इतना जतन क्यों करती हैं ?'

शारदा शायद इस सवाल के लिए कतई तैयार न थी, सो वह सकपका-सी गयी। लेकिन पलभर के लिए। दूसरे ही क्षण ज़रा तीखा हंसकर बोली, 'क्यों न करूं, जतन करने का ही तो नाता है !'

अब तक गरदन नीची थी, अब शायद अजानते ही उसने सिर को उठा लिया। उसकी लंबी पपनियों वाली आंखों से आंसू की दो बूंदें लुढ़क पड़ीं। उन आंखों की नज़र में एक असहाय भर्त्सना फूट पड़ी। अपनी वह नज़र शारदा पर रोपकर ही उसने कहा, 'मज़ाक कर रही है !'

मुखरा शारदा मानो मूक हो गयी। आंसू की उन दो बूंदों की ओर ताक नहीं सकी और ईश्वर जाने, हृदय के किस अनोखे रहस्य से शारदा की आंखों में भी आंसू भर आया। फिर भी अपने को ज़ब्त करके वह बोली, 'मज़ाक किया ही तो ! नहीं करना चाहिए ?'

पटली को अब शायद खयाल आया, दो बूंद आंसू लुढ़काकर ही उसकी आंखें शांत नहीं हो गयी हैं। उसने आंखें नीची कर लीं। किसी तरह से गले की आवाज़ को साफ़ करके कहा, 'मैं तो आपकी दुश्मन हूं ! मुझे रुखसत कीजिए ! आप भी जी जाइए, मैं भी जी जाऊं।'

शारदा ने ज़रा उदास कौतुक से कहा, 'मैं तो खैर जी जाऊंगी, लेकिन तुम्हारे जी जाने की वजह ?'

'आपके कलेजे का पत्थर और घरभर की दया की पात्र होकर नहीं रहना पड़े, यही।'

शारदा फिर मूक हुई। देखा, नयी बहू के झुके हुए सिर की आड़ से आंसू बह-बहकर उसकी गोद में जुड़े दो गोरे-गोरे, फूले-फूले-से हाथों पर जमा ही होता जा रहा है।

स्तब्ध होकर देर तक उस तरफ़ देखती रही शारदा, फिर कहा, 'आंखें पोछो, नयी बहू ! अब रोओ नहीं !'

'आपके पैरों पड़ती हूं दीदी, मुझे पाटमहल भिजवा दीजिए।'

'हाय राम, भेजने की मालिक मैं हूं ?' वह हंसी। बोली, 'अरी, मुझी को तो हुक्म दिया गया है, सदा के लिए विदा हो जा ! खैर, वह छोड़ो। मैं कहती हूं, इतना रूप और जवानी लिए रोती मरेगी और इतनकर क्या माग मढ़ी होगी री ! लड़ाई करके सौत से पति को छीन नहीं लेगी ?'

'मैं लड़ाई-वड़ाई कुछ नहीं चाहती दीदी !'

'लड़ाई-वड़ाई नहीं चाहती ? अर्थात दुश्मन है, तब तो मोहब्बत करनी होगी।' शारदा ने वैसे ही उदास कौतुक से कहा, 'तू मेरा साथ दे [illegible]

[illegible]

किरकिरा कर दिया। लडाई में बल की आजमाइश होती है और दान-खैरात मे कुल उठाकर दे देने के सिवा उपाय नहीं रहता।'

'मुझे कुछ नही चाहिए, दीदी।'

'कुछ नहीं ? पति भी नहीं !'

'नही !'

शारदा बोली, 'मगर दुनिया का नियम क्या है, जानती है ? अनमांगे सब-कुछ मिलता है, मागे भीख भी नही। इस्, बातों में ऐसी मजेदार बैंगनी गोबर हो गयी। खा ले, जी ठीक होगा।'

मंझले दादाजी !

रामकाली एक पतली-सी वही पर झुककर तीर्थयात्रा का हिसाब-किताब लगा रहे थे कि रासू के छोटे बेटे की पुकार से चौंककर स्नेह-कोमल स्वर में बोले, 'क्या है भैयाजी !'

'जी, मां कह रही है, वह आपसे भीख मागेगी।'

रामकाली हक्के-बक्के से ताकने लगे। यह कैसी अजीब बात! दरवाजे के उस पार रासू की स्त्री की आहट मिली। विचलित हुए-से बोले, 'भैयाजी, क्या कह रहे हो, मैं समझ नही पाया।'

अबकी माध्यम की भूमिका जाती रही। माध्यम को महज माध्यम बना-कर शारदा ने धीमे से कहा, 'मुन्ने, कहो कि मा कह रही है, उसने तो कभी कुछ मागा नहीं है, घर की बडी बहू है, एक भीख चाहिए !'

रामकाली ने सोचा, यह और कुछ नही, रासू की दूसरी पत्नी की वजह से होने वाला नाटक है। हो न हो—सौत से ऊबी हुई यह लड़की सौत को मैके भेज देने का प्रस्ताव करने आयी है। कुछ विरूप-से होकर बोले, 'आखिर भीख है क्या, यह जाने बिना तो सादे कागज पर दस्तखत नही बनायी जा सकती, बहू-रानी ! यदि देने की ताकत मुझ में न हो ?'

'मुन्ने, कहो कि आपके चाहने से ही होगा।'

रासू की स्त्री के इस दुस्साहस से गरचे रामकाली चौंके, मगर चमत्कृत भी हुए। और अचानक ही एक और भी दुस्साहसी लड़की की याद आते ही ढीले पड़ गए। बोले, 'अपनी मां से कहो भैयाजी, चाहने जैसी बात हो तो जरूर चाहूंगा।'

'मुन्ने, कहो कि आप तीरथ को जा रहे हैं, मेरी मां को भी अपने साथ ले जाइए।'

यह तो रामकाली की धारणा, उनके स्वप्न से भी बाहर की बात है। रासू की बहू यही कहने के लिए आयी है ! पागल है क्या यह लड़की ! लेकिन चूंकि

'नितांत हास्यकर बात थी, इसीलिए जरा कौतुक के स्वर में बोले, 'तुम्हारी मा को ले जाऊं, इतनी जुर्रत क्या मुझ मे है भैयाजी ! तुम बड़े होओ, मां को ले जाना !'

'मंझले दादाजी, मां कह रही है, मजाक मे टाल जाने से नही चलेगा, मां सचमुच ही भीख मागने आयी है।'

रामकाली ने अब माध्यम का सहारा छोड़ दिया। कहा, 'बड़ी बहूरानी, तुम्हारी याचना बड़ी कठिन है। मैं पुरुष ठहरा, कहां रुकूगा, कहां ठहरूगा, कहां घूमूंगा…'

'दादाजी, मा कह रही है, तकलीफ से वह नही हारेगी। आपकी रसोई, बर्तन-बासन के लिए भी तो एक आदमी चाहिए। मा सब कर देगी।'

'भैयाजी, तुम्हारी मा बच्ची है। सब समझ नही पाती, नही तो मुझे दुबारा नही कहना पड़ता। उनसे कहो, घर की बड़ी बहू के नाते उन्होंने एक माग की, मैं उसे पूरी न कर सका, इसका मुझे भी दुःख है। इसके बदले में उनके नाम से बीस बीघा ज़मीन लिख-पढ़ देता हूं। उसकी आमदनी से वह मनमाना खर्च करें। और, तुम जब बडे होगे…?'

'मुन्ने, कहो बेटे, जगह-जायदाद की मुझे कोई जरूरत नही !'

'बीस बीघा ज़मीन !'

यह लडकी इससे भी नही लुभाई ! अजीब है ! सच पूछिए तो यह इरादा रामकाली का आज का नही है। कुछ दिनो से ऐसा ही कुछ करने की वे सोच रहे थे। इस बहू को वे जितनी भी मामूली और ईर्ष्यालु समझते रहे हों, इसके बारे मे उनके मन की गहराई मे कोई अपराध-बोध उन्हें दुखाता रहता है। इसीलिए उस क्षति की पूर्ति के लिए…।'

लेकिन यह कहती क्या है, जगह-जायदाद की कोई जरूरत नही। ज़रा देर चुप रहकर बोले, 'तो फिर मैं क्या करूं भैयाजी, वह काम कैसे करूं, जिसमें लोग निंदा करे ?'

'आप तो लोकनिंदा से डरते नहीं, दादाजी !'

'लोकनिंदा से नही डरता ?'

रामकाली मानो एक अनोखे रहस्य के राज्य के सामने आ खड़े हुए। आखिर ये लोग रामकाली को समझते क्या है ? रामकाली के बारे मे, रामकाली का अजाना जो एक जगत है, उनकी धारणा क्या है ? कौतुक के विस्मय से मितभाषी रामकाली आज ज़रा ज्यादा ही बोल रहे हैं।

'लोकनिंदा से नही डरता, यह बात कौन कहता है भैयाजी ? डरता हू, डरता हूं, जब सचमुच निंदा का काम करता हूं…!'

बीच ही में दबा कंठस्वर स्पष्ट हो उठा, 'मुन्ने, कहो कि आपके अगर

कोई दुखी लड़की होती और आप उसे तीरथ को ले जाते तो लोग निंदा करते ?'

रामकाली चुप हो गए।

बड़ी देर चुप रहने के बाद बोले, 'अच्छा भैयाजी, तुम लोग अन्दर आओ। मुझे ज़रा सोचने दो।'

हां, रामकाली सोचेंगे। बहुत कुछ सोचेंगे। सोचेंगे कि इतनी छोटी लड़की बीस बीघा ज़मीन का मोह छोड़कर तीरथ जाना चाहती है, आखिर किस मानसिक स्थिति से ? और यह सोच देखेंगे कि मोक्षदा को साथ लेकर वहू की विनती रखी जा सकती है या नहीं। मोक्षदा के हाथ टूटा है, पांव तो ठीक ही है। उनका भी तो जीवन में कुछ नहीं हुआ कभी। रामकाली को इस कर्त्तव्य के बारे में सोचना चाहिए था। भंडार और रसोईघर के जीवों के बारे में रामकाली ने इतना ज़्यादा कभी नहीं सोचा।

एक लड़की बीच-बीच में उन्हें सोच में डाल दिया करती थी। दिनों से वह रामकाली से अलग है। रामकाली ने ताज्जुब से सोचा, 'ओह, कब से उसके बारे में नहीं सोचा।'

वह चिन्ता में न पड़ जाए, इसलिए रामकाली के बीमार होने की खबर उसे नहीं दी गयी। लेकिन तीर्थयात्रा की ख़बर ? यह खबर भी दिए बिना चला जाएगा ?

२९

बुख़ार !

पखवारा बीता !

बढ़ता ही जा रहा है। घटने का नाम नहीं। धीरे-धीरे विकार शुरू हुआ। मुट्ठी बांधकर रोगी छटपटाता है। बिस्तर पर उठ-उठ आता है। रोगी को कसकर दवाए रखने के लिए दो-दो आदमी बैठे हैं।

एक जनी तो कलसी-कलसी पोखरे का ठंडा पानी ला-लाकर हरदम रोगी के माथे पर डाल रही है। वैद्य जी दवा तो दे रहे हैं, लेकिन इस तरह से मुंह बिदकाकर धीरे-धीरे गरदन हिलाते हैं कि दवा का भरोसा नहीं होता।

इधर घर में रथयात्रा की भीड़ !

टोले के लोगों को मानो खा-सोकर चैन नहीं। वे सब उस परम घड़ी का हर पल बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हैं। नाटक का आखिरी दृश्य यहां

छूट न जाए। अवश्य कोई बुरा चाहने वाला नहीं है। निरीह नवकुमार को सभी चाहते हैं। कोई-कोई उसके लिए मन्नत भी मानते, देवीथान का चरणामृत लाकर पिलाते।

बनर्जी-पत्नी का वही एक चिराग, उसके जीवन के लिए उद्वेग और उत्कण्ठा का अन्त नहीं था लोगों में। फिर भी उम्मीद जब छोड़नी ही पड़ रही है, तो नाटक के विशेष क्षण को क्यों छोड़ें!

इसलिए अपने-अपने घर की रसोई और खाने को कुछ मुख्तसर करके सभी इस घर की हाज़िरी बजाती है। और सभी तो एक-एक तजुर्बेकार चिकित्सक हैं। उस चिकित्सा-विद्या को आजमाने का अवसर जब मिला है, तो मौका हाथ से क्यों जाने दें?

बात असल यह है, वैद्य का इलाज अब बन्द है, टोले की बड़ी-बूढ़ियों का ही इलाज चल रहा है। कल नूटू सुनार की मां के बताए सड़े पोखरे के सेवार का लेप पेट पर दिया जा रहा था। इसलिए कि नूटू की मा के जेठ के लड़के के लिए ऐसी दशा में यही दवा अचूक साबित हुई थी। लेकिन नूटू की मां का नसीब! वैसा अचूक प्रयोग भी कारगर न हुआ। रोगी ने बिस्तरे पर सिर घिसटना शुरू कर दिया।

इसीलिए आज हरि घोषाल की स्त्री की दवा चल रही है। धान रखो तो लावा हो जाए, इतना ताप देह में! इसलिए उन्होने यह बताया कि एड़ी-चोटी रोगी को गीले कपड़े से लपेट दो, ऊपर जोर-जोर से पंखे की हवा करो। हवा से गीला कपडा सूखे कि फिर उसे भिगोओ।

रोगी को होश नही, लिहाजा तीमारदारो को बक-बक की छूट। ठीक इसी हालत और इन्ही लक्षणों से किसके जाने हुए कितने रोगियो ने आखिरी सास ली, इसी के लेखा-जोखा के साथ ज़ोर-ज़ोर से पंखा। नीलांबर बाबू बड़ी देर तक बैठे-बैठे हठात् 'जी कैसा कर रहा है' कहकर पास के कमरे मे जाकर लेट गए। सौदा उनके आंख-मुंह मे पानी देने लगी। ऐसे में एलोकेशी का फूट-फूटकर रोना सुनायी पड़ा।

जो औरतें रोगी के कमरे में बैठी थी, उन्होंने समझा, उससे और नही सहा जाता। दबे रहते-रहते कलेजा फटा जा रहा है।

जो वहां से बाहर थे, मरे कि बचे करके दौड़े आए। नीलांबर, 'जा:, सर्वनाश हो गया' कहकर चौकी से उठते हुए धड़पड़ाकर लुढ़क गए और सौदा उन्हें उठाने के बजाय उस कमरे मे चली गयी। लेकिन तुरत ही वापस आयी और मामा को सात्वना देने लगी।

एलोकेशी के पास जाना फर्ज था, मगर कौन-सा फर्ज अदा करे? आखिर चतुर्भुजा तो नही है।

जो महिलाएं आयी वे कहीं बदुर गयीं और अचानक यों रो पड़ने का कारण जानकर गाल पर हाथ रखकर बैठ पड़ी।

एलोकेशी ढेंकीघर में बैठी रो रही थीं !

कई ने तो यह भी कहा, पैरों की धूल दो नोवू की मां, अपने पावों की धूल दो, माथे से लगाऊं ताकि तुम्हारे जैसी सहने की शक्ति हो। ऐसी खूंखार बहू के साथ इतने दिनों से घर कर रही हो तुम !

एक ने शिकायत की—मैं सोच रही थी, आज शाम को तुम्हारी बहू को चंडीमंडप ले जाऊंगी और शंख की चूड़ी और सिंदूर बंधक रखकर आहिवात की मन्नत मानूगी। तुम्हारे दिमाग का ठीक कहा, और पांच जने न करें तो कैसे चले। लेकिन बाप रे, जैसी बहू है तुम्हारी कि कहने का साहस नहीं होता।

अपरा ने फुसफुसाकर कहा, 'मत कहो दीदी, मत कहो ! मैंने क्या नहीं कहा था ? हाथ-बंधक के लिए कहा था। लेकिन नोवू की बहू ने शायद सौदा से कहा, 'मैं दाएं हाथ के बदले बाएं से खाऊं तो मेरे पति को परमायु लौट आएगी— यह यक़ीन नहीं करती मैं। ठीक-ठीक दवा के बिना क्या बीमारी जाती है ?'

'ऐं ! यह कहा ?'

सौदा ने तो यही कहा। कहा, इसके लिए बहू को ज्यादा मत कहो-सुनो, चाची, उसे किसी की मान-मर्यादा रखना नहीं आता है न ! शायद हो कि तुम्हारे मुंह पर ही ना कह देगी।

'मैं क्या यों ही कह रही हूं, नोवू की मां का चरण-धुला पानी पीना चाहिए ?'

बात एलोकेशी के भी कानों तक पहुंची। छाती पीटकर वह फिर एक बार उसी जाने-चीन्हे सुर में रो पड़ीं। 'हाय रे नोवू रे, मेरे सोने के गोपाल रे, तेरे होते हुए ही तेरी बहू पैरों से मेरी कैसी खबर ले रही है रे !'

जो तीमारदारी में लगी थीं, वे सब दौड़ी आयीं।

हुआ क्या ! इस बुरी घड़ी में आफत की परकाला बहू जाने क्या कर बैठी !

बहू जो कर बैठी, चरम ही था।

उसने सास के मुंह पर कह दिया, 'रोगी को धीरे-धीरे न काटकर सीधे चंडी के सामने बलि चढ़ा देना ही तो ठीक है। यह बेचारा भी जी जाता और लोगों की परेशानी भी जाती।'

जो बहू पति के बारे में इस तरह से गला खोलकर सास से बोल सकती है, वह बहू कर क्या नहीं सकती ?

'झाड़ू मारकर निकाल दो, झाड़ू मारकर निकाल दो !' चटर्जी-गृहिणी ने ज़ोर गले से कहा, 'इसी डकैत के चलते तुम्हारा लड़का भूसा-सा हो गया, नोबू की मां, नहीं तो वैसा मोटा-ताज़ा लड़का, ऐसा भुतहा रोग ही क्यों होगा उसे ?'

'तो भी मेरा नोबू उसी बहू के लिए मरता है, दीदी! बहू के डर से बेचारा सिटपिटाए रहता है।'

दोनों बातों में सामंजस्य न होते हुए भी एलोकेशी ने कहा, 'भगवान वह तेज तोड़ रहे हैं ! हा, तुम्हारे माथे पर भी मुद्गर मार रहे हैं। यही तो विधना का विधान है। एक के पाप की दूसरे को सज़ा। लेकिन यह भी कहूंगी, इसके दुःख से स्यार-कुत्ते रोएंगे। राह का दुश्मन भी 'आह' करता जाएगा।'

ये सब की सब एलोकेशी की कर्ज़दार है। छिप-छिपाकर सूद का कारोबार करती हैं। इनमें ये बहुतों का चांदी-सोना एलोकेशी के संदूक में सड़ रहा है !

टोले मे खरी-खोटी कहने वाले न्यायदर्शी नही है, ऐसा नही। लेकिन वैसों को एलोकेशी ने बिगाड़ रखा है। तो भी नवकुमार की सख्त बीमारी की सुनकर देखने आते हैं वे लोग, दो-एक वाजिब बात कह भी जाते है।

जैसा कि भोजू की फुआ कह गयीं, 'हां जी, बहू के मैके खबर भेजी है ?'

एलोकेशी ने बिदककर जवाब दिया, 'किस लिए ? वहा खबर देकर क्या होगा ?'

'हाय राम, उनका दामाद है। मुंह पर नही कहती हूं, लेकिन भगवान की मार का तो जवाब ही नही। कुछ हो-हवा जाए तो जवाब क्या दोगी ?'

'जवाब ?'

एलोकेशी दुःख भूलकर गरम हो उठी थी, 'क्यों ? मैं क्या उनके आगन में बसती हूं ? रैयत हूं उनकी ? कर्ज़दार हूं ? कठघरे की मुजरिम हूं मैं ? कि कैफियत देनी पड़ेगी ? क्या कहूं, इस समय मेरा दुर्दिन है, नहीं तो तुम्हे उचित बात सुना देती कायथ-ननदजी !'

सवरा की बड़ी चाची ने एक दिन कहा था, 'नोबू का ससुर सुना है नामी कविराज है, उन्हें खबर क्यों नहीं भेजती ?'

एलोकेशी ने कहा, 'मेरे तो दस-पांच प्यादे-बराहिल नही हैं कि सोचा और खबर भेज दी। बेटे की बीमारी से ही आखों फूला सरसों देख रही हूं। ठीक है, तुम लोग तो हो, भेज दो खबर ! कहला भेजो कि आकर जमाई की चिकित्सा कीजिए !'

इसके बाद कौन बोले ?

लेकिन एलोकेशी क्या इतनी बुरी हैं कि अपने बेटे का भी भला-बुरा नहीं देखतीं ?

नहीं, ऐसी बात नहीं है।

असल में एलोकेशी यह नही मानती कि बहू का बाप धन्वंतरी है ! मन मे यह बात भी काम कर रही है, यदि सच ही ऐसा हो, बहू के बाप के किए ही उनका बेटा चंगा हो उठे, तो अपमान की वह जलन वह जुड़ाएंगी कैसे ?

और फिर बहू, रात को दिन नही देखने लगेगी ? बेटे की जिंदगी के लिए हज़ार बार तैंतीस करोड़ देवता के चरणों सिर पटक रही है वह। बहू का घमड कुछ चूर हो, यह भी प्रार्थना है। दोनों का सामंजस्य नही होता, क्योंकि मरा हुआ पति जी उठे तो स्त्री के दबदबे का अंत नही रहता। वैसे मे कोई मा के पुण्य-बल का जिक्र नही करता, स्त्री के अहिवात की कहता है।

इसलिए यह जी उठना ही यदि बहू के बाप की बदौलत हो !

ओः, बख्शो ! नोबू अपने बाप के पुण्य से तरेगा। रोज़ एक सौ आठ तुलसी चढाना बेकार जाएगा ?

काश, एलोकेशी के बेटे की परमायु सौ साल होकर बहू का बुरा हाल होना सभव होता। ऐसा होने का उपाय नही। एलोकेशी की आखो की पुतली ही तो बहू के अहंकार की जड़ है !

सत्य इस नाटक के किस अंक मे है ?

क्या वह एकबार भी स्वामी की सेवा का पुण्य नही कमाती ?

नही, पुण्य कमाने का वह सौभाग्य उसे नसीब नही। क्योंकि बड़ो के सामने वह पति के तन-चरण पर हाथ नही फेर सकती ! कमरे में जाए भी किस शर्म से ?

रात मे ? रात मे तो सास-ससुर दोनों बेटे को अगोरे पड़े रहते है। सौदा उनकी खिदमतगारी करती है। वहा सत्य कौन होती है ?

फिर गोदी में बच्चा ! छः महीने का भी नही हुआ है। गिरस्ती भी उसी के गले पड़ी है।

पति की सेवा का एक हिस्सा उसका है—दवा का अनुपान ठीक करना। बहुत-सी चीज़ों को चूरने-पीसने, बुकनी बनाने में, सिझाने में बहुत-सा समय जाता है उसका।

दवा से लाभ नही हो रहा है, यह देखकर कविराज बराबर अनुपान की शिकायत करते हैं। ऐसे में सत्य सूखी आखें पड़ी रहती है। सिर्फ रसोई के कोने मे, मुह नोचा किए अकेली काम करती होती है और रात मे जब दोनों

लड़के सो जाते हैं, वह आंसू के सागर को बांध से मुक्त कर देती है।

नवकुमार अगर सचमुच न बचे ?

धरती-आकाश जैसे मथा गया हो ! जो आदमी सत्य के मन की दुनिया में अबोध-अजान के भाव से गिना जाता था, वह उसका इतना बड़ा सहारा है, सत्य ने अब समझा। अब, जब कि वह जाने को है।

वह उस पर बकझक ही क्यों करती रही ? सिर्फ प्यार ही क्यों नहीं किया ? हंस-हंसकर ही बातें क्यों नहीं करती रही ?

देवता, इस बार के लिए उसे बचा दो। सत्य उसे केवल प्यार ही करेगी। वह बेवकूफी करे, कायरपन करे, बचपना करे, सत्य उसको दोष नहीं गिनेगी।

लेकिन जिएगा वह ?

सत्य ने मा की अवहेलना की थी, मां मर गयी। स्वामी की अवहेलना करके पार पाएगी ?

जब तो अकल नहीं थी। समझ नहीं आयी थी कि मा क्या चीज होती है। अब ? अब क्या जवाब है ?

कान खड़े करके सत्य तमाम रात जगी बैठी रहती। कभी अचानक यदि वह भयंकर शब्द उठे। दबे पावों जा-जाकर यह खिड़की वह खिड़की करती। लेकिन विफल होकर लौट आती। रात को रोगी की कमरे की खिड़की खोलकर कौन रखेगा ? एक तो सान्निपातिक ज्वर विकार, हवा लगने से ही संकट। और यदि खिड़की खुली हो तो अपदेवता नहीं झांकेंगे ? हवा-बतास नहीं लग जाएगी ? सोचने में गरचे कलेजा कांप उठता है, लेकिन बिना सोचे भी उपाय नहीं—रास्ता खुला मिले तो यमदूत नहीं घुस पड़ेंगे ? वह रास्ता एलोकेशी खुला रखेगी ?

सो सत्य कान को तीखा से तीखा किए लेती।

तो क्या, इसी में सत्य के सभी कर्त्तव्य चुक गए ? पति के लिए करने को और कुछ नहीं है ! वे बाप-मां हैं, ठीक है। लेकिन यदि अबोध हों ? फिर सत्य ही कम अबोध कैसे है। एक महीना हो चला, नवकुमार को बुखार है। बढ़ता ही जा रहा है और आज तक कोई सही दवा उसके पेट में नहीं गयी ?

सत्य के भगवान क्या उसे माफ करेंगे ?

एलोकेशी को दिलासा दे रही थीं सब—'तुमने कोई दोष नहीं किया कभी, किसी का कुछ बुरा नहीं किया, तुम्हें भगवान पुत्रशोक क्यों देंगे ?'

नेक सलाह भी दे रही थी—'कहना नहीं चाहिए, लड़के को यदि कुछ हो जाए नोवू की मां, तो एक दरवाजे से उसे और गला धक्का देकर दूसरे से इस हरामजादी बहू को निकाल बाहर करना। जो बहू सास को इतनी बड़ी बात कहे···'

'अजी ओ बतासी की मां, सिर्फ उतना ही कहा है ? तो लो, सुन लो। रात को बाहर जाने के लिए जैसे ही दरवाज़ा खोला, देखा टप् से कौन तो वहां से खिसक गयी। 'कौन-कौन' ? बिल्लाई ! देखती क्या हूं कि वही देवीजी हैं। गुस्से में मुह से भला-बुरा निकला—दरवाज़े के पास खड़ी क्या कर रही थी हरामज़ादी ! तुक कि ताक। इस पर उसने क्या कहा, जानती हो ?—बेटा मौत की सेज पर है और आप की जीभ की धार नहीं जाती ? कैसी मां है आप।'

सुनने वाली महिला ने तड-तड अपने गाल पर थप्पड़ मारकर कहा, 'हाय राम, कहां जाऊं ? अरी ओ नोदू की मां, ऐसी वहू का मुह लात मारकर तोड़ नही दिया तुमने ?'

शांतिमूलक इस व्यवस्था के जवाब में 'उदार चरितानाम' नोदू की मा क्या कहती, पता नही। अचानक एक आंधी आ गयी। नजर आया, गुहाल के पास वाले दरवाज़े को ठेल-ठालकर नाईन चुपचाप रसोई की तरफ जा रही है। यानी सत्य की खोज में जा रही है।

बहू से नाईन की कैसी राय-सलाह ? एलोकेशी ने आवाज़ दी, 'उधर कहा जा रही है ?'

चालाक नाईन भाप गयी कि पकड़ में आ गयी। झूठ बोलकर छिपाने के बजाय वह इधर आकर चुपचाप बोली, 'बहूरानी ने मुझे अपने बाप के पास भेजा था न, वही खबर देने के लिए···'

बात वह पूरी नही कर पायी। एलोकेशी बोल उठीं—'किसके पास भेजा था ?'

'अपने बाप के पास। बहुत बड़े कविराज हैं न ? जमाई का हाल लिखकर भेजा था, इलाज करने के लिए···'

'और तू यह बात मुझे बताए बिना आज़ाद-सी चली गयी थी ?'

नाईन नर्म पड़ने वाली औरत नही थी। उसने जैसे ही देखा कि एलोकेशी ने डांट-डपट की नीति अपनाई, वह भी तेज़ी के साथ बोली—'आज़ाद-गुलाम की नहीं जानती। देखा, बहू बेचारी पति की चिंता से छटपटा रही है, माया हुई !

'माया ! योगी के आगे धुरखेल ! बिना मज़ूरी लिए तू जम्हाई तो लेती ही नही और माया से तू···'

'मैंने बिना मज़ूरी की तो नही कही। उसके बिना मेरा चल भी कैसे सकता है ? वाजिब मज़ूरी दी गयी···'

'दी है मज़ूरी ?' एलोकेशी बिगड़ उठीं—'वह कहा पाएगी ? यानी वह मेरे बक्से से चोरी करना सीख रही है। और तू मंत्री होकर···'

कि पीछे से गाज गिरी।

इतनी-इतनी घरनियों के बारे मे सचेत हुए बिना ही सत्य बोल उठी, 'छोटे घर की तरह मत बोलिए। नाईन-चाची को राह खर्च के लिए मैंने अपने पैरों के पाजेब दिए हैं!'

'पाजेब!' महिलाएं बुत बन गयी।

सास को बिना बताए ही गहना दान!

पल-पल मूर्च्छित होकर भी शायद यह चोट नही मिटेगी। इतने बड़े दुस्साहस की कोई सोच भी नही सकती थी।

एलोकेशी छाती पर चोट मारकर बोली, 'देख लो। तुम सब मुझे झाड़ू मारोगी कि नहीं—मैं बहू की निंदा करती हूं। हाय मेरी मां, मैं क्या करूं···'

सत्य ने उधर देखा भी नही। नाईन की ओर मुखातिब होकर बोली—'बाबूजी चंडीमंडप में थे?'

नाईन ने गाल पर हाथ रखकर कहा, 'लो, सुनो! वह कहा? उनके हाथ में नाजुक रोगी है, आ नहीं सके। दवा भेजी है। तुम्हारे बड़े भाई आए है। उसी के हाथ में दवा और चिट्ठी है।···हाय राम, यह क्या? बहू गिर पड़ी, हाय राम!'

बाध खोकर बिखरी हुई नदी को घेरकर ज़ोरों का कोलाहल उठा। 'गश आ गया, गश! कि नकल! चोरी पकड़ी गयी न···!'

नदी को घेरकर असंख्य लहरें उठीं।

दीक्षागुरु के मरने पर तीन दिन का अशौच पालना शास्त्रीय विधि है।

विद्यारत्न रामकाली के मंत्रदाता गुरु नही थे। और रामकाली भी ऐसे शास्त्रीय नियम का अक्षरशः पालन नही करते। तो भी विद्यारत्न की मृत्यु के दूसरे दिन काम-काज, पूजा-पाठ छोड़कर वे चुपचाप बैठे थे।

तीन दिन तक औषध रूपी नारायण को नही छूएंगे, शास्त्रपाठ नही करेंगे, अन्न नही खाएंगे।

पिछले कई दिन तक रोगी के यहा रात-दिन यमराज से लड़ते रहे और हारकर लौट आए। चेहरे पर उस हार की स्याही की छाप थी। सोच रहे थे, इस हालत मे जमाई के यहा जाने का कोई मतलब नही होता। जब इलाज नहीं करना है, दवा नही छूनी है। सोचा, परसों, स्नान शुद्धि के बाद···

उनकी सोच मे रुकावट आयी।

देखा, उनकी पालकी वापस आ रही है। या तो रासू आ रहा है या उसका भेजा हुआ संवाद। रासू से कह दिया था, 'सत्य ने घबराकर कहलाया तो है, लेकिन बीमारी वास्तव मे कठिन है या नही, यह देखकर रासू ही आए या

'पालकी भेजकर उन्हें सूचित करे।'

सांस रोककर ज़रा देर इंतज़ार किया, पालकी खाली है या भरी हुई। नही, पालकी खाली नही थी।

रासू उतर रहा था। ख़ैर! ईश्वर ने बचा लिया! रासू झुककर प्रणाम करने गया कि बोले, 'हां-हा, अभी प्रणाम करने की मनाही है। कैसा देखा?'

'अच्छा नही!'

अचानक रामकाली के मन की आखो में एक मूर्ति तिर आयी। निराभरण शुभ्रमूर्ति। सिहर उठे। निस्तेज स्वर में बोले, 'दवा से कोई फल नहीं हुआ?'

'दवा दी नही गयी' रासू ने गंभीर गले से कहा—'सत्य ने वापस कर दी।'

'वापस कर दी?'

सत्य ने रामकाली की दवा लौटा दी! रासू ने उस उड़े हुए चेहरे की ओर बिना ताके ही हाथ की डिबिया उतार दी। कहा, 'हा! उसने आपकी चिट्ठी नही ली, नही पढ़ी।'

रामकाली ने पूछा, 'तुमसे उसे मिलने नही दिया?'

'नहीं-नहीं, मिलने तो दिया। सत्य भी अस्वस्थ थी। मेरे जाने के समय ही मूर्च्छित हो गयी थी शायद! होश मे आने पर मुझसे मिली। कहा, 'बाबूजी जब नही आ सके, तो चिट्ठी रहने दो भैया, उसे पढ़कर क्या करूंगी? दवा भी वापस ले जाओ। मेरे नसीब में जो बदा है, वही होगा! यदि मैं सती मां की बेटी हूंगी तो उसी के पुण्य प्रताप से मेरा सिंदूर और सुहाग की चूड़ियां साबित रहेंगी।'

जीवन मे सभवतः यही पहली बार रामकाली हतवाक् हो रहे, ढूंढे शब्द नही मिले। तो क्या सत्य की बात को अबोध की समझकर रामकाली स्नान-शुद्ध होकर जाएंगे?

किन्तु वही अबोध सत्य यह भी तो कह सकती है, 'आप आए क्यों बाबूजी, जब आपकी दवा खिला नही रही हूं।'

३०

इस इलाके में इतिहास की यह पहली घटना है।

साहब डॉक्टर बुलाने के इतिहास की।

भवतोष मास्टर, निताईचरण और नीलांबर बनर्जी की कुलबोरन बहू, इन तीन ग्रहों के मिलन से यह इतिहास बना। यह खबर सुनकर जो जहा था, वहीं

खड़ा रह गया, जो जिस उमर का था, उसी उमर का रह गया !

वनर्जी परिवार की दईमारी रणचंडी बहू की करतूतें किसी से छिपी नहीं थी। सब यही सोच नहीं पा रहे थे कि लोगों ने अभी तक उसे घर में रखा कैसे है, गरदनिया देकर निकाल क्यों नहीं देते !

सभी वोलते-वतियाते थे, इसके अंदर कोई राज है···वाप की इकलौती वेटी है न ! और उतना वड़ा आदमी वाप ! हो न हो, वाप ने कोई शर्त रखकर यह शादी की है। ऐसे में वहू को अगर मैके विदा कर दे तो नोवा ससुर की जायदाद नहीं पाएगा !

वहू को विदा कर देने का नाटक वार-वार ठीक जमने के वक्त ही विगड़ते-विगड़ते फिलहाल सभी हताश हो पड़ी थीं। और नित्य नयी पूराक जुगाने के नाते सत्य को एक प्रकार से पसंद ही करना शुरू कर दिया था।

चर्चा का एक बड़ा विषय, अपने-अपने घर की वहू-वेटियों को सवक देने के लिए एक बुरी नजीर का मिलना—यह भी तो लाभ ही है।

लेकिन नोवू के वीमार पड़ जाने से उसकी वहू की आलोचना के लायक भाषा भी लोगों को ढूंढ़े नहीं मिल रही थी। वेद में, पुराण में, नाटकों में ऐसी जावाज औरत तो किसी ने न देखी, न सुनी।

इसलिए उसकी भाषा भी नहीं वनी।

फिर भी इतनी दूर तक किसी ने कल्पना नहीं की थी। क्या तो वहू ने छिपकर नोवू के दोस्त निताई से भेंट की, अपने गले का दस भरी वजन का हार वेचकर भवतोष मास्टर से कहकर कलकत्ता से साहव डॉक्टर को वुलवाया !

भवतोष मास्टर से भी वात की !

साहव डॉक्टर के इलाज से नोवू मरे या वचे, फिलहाल सोचने का विषय यह नहीं है, विषय है इसके वाद नीलाबर का किंकर्त्तव्य ?

वात तो अव औरतों तक ही महदूद नहीं रही थी, समाज के मुकुटमणि पुरुषों की खोपड़ी भी खाने लगी थी। नोवू की वहू सिर उठाकर सास से झगड़ती है, ससुर के सामने वोल वैठती है या खूसट जैसी और भी वहुत कुछ कर वैठती है—यह सव तो वे लोग अपनी-अपनी पत्नियों से सुनते आए थे, लेकिन इससे वहू के ऊपर खीजने के सिवाय और कुछ करने को नहीं था।

लेकिन अव तो इसे औरतों की वात कहकर उड़ा नहीं दिया जा सकता। अव जात जाने का सवाल है। नीलाम्बर वावू समाज के माथा हो सकते हैं, हुए तो क्या हुआ, दूसरों का सिर तो नहीं काट सकते न !

वागदिन की छुआ-छापी वाली वात को हंसी-मजाक में मान लिया गया है। वह दुनिया के वाहर हो, ऐसी वात भी नहीं। लेकिन घर में साहव आए, घर की वहू पर-पुरुष से वात करे—यह मानले—समाज ऐसा नाखून और

दांत-विहीन नही हो गया है ?

चंडीमंडप में बैठक हुई। पंचों ने मिलकर यह तय किया कि पहले तो नीलांवर पर अपनी पतोहू को छोड़ देने का दबाव डाला जाए, वह अगर राजी न हो या उससे यह करते न बने, तो उसे समाज से अलग करना होगा।

समाज मे रहना कुछ हंसी ठट्ठा नही। यह जरमराता मरीज यदि वास्तव में साहब डॉक्टर की दवा से बच जाए, बच भी सकता है, इन लालमुंह वालों की दवा मे जादू है, सुना है ! ईश्वर करे, बच जाए, परन्तु उसका अग प्राय-श्चित्त कराके महाप्रसाद खिलाना ही पड़ेगा।

और यह भवतोष मास्टर !

उस कम्वख्त को तो गांव से निकाल वाहर करना था, लेकिन वह शैतान डॉक्टर के साथ ही गाड़ी पर सवार हो कलकत्ता चल दिया।

घोड़ागाडी मे डॉक्टर के साथ वैठकर आया !

मुजरिम मे वच रहा एक निताई।

वहरहाल वह भी लापता है। साहव डॉक्टर रूपी आग को पूंछ मे बाधकर ले आया और लकाकाड करके चपत हो गया !

आग ने अपना आग का काम किया।

पहले कानोंकान किसी को खबर न हुई।

ईश्वर जाने, सत्य ने कव इतना सारा कुछ किया। गाव मे इतनी-इतनी आंखो के होते हुए उसने भानमती करामात दिखा दी।

लोगो ने देखा, गाव के रास्ते पर घोड़ागाड़ी आ रही है।

नीलावर ने देखा, वह गाडी उनके दरवाजे पर आकर रुकी। और उसके अन्दर से एक कम्वख्त साहव उतरा।

नीलावर के कलेजे का लहू वर्फ हो गया। हो न हो, यह गाड़ी कलक्टर या मजिस्ट्रेट की है, निश्चय ही किसी दुश्मन ने उसके नाम चुगली खायी है और इसीलिए नीलावर के लिए हथकड़ी आई है।

क्यों आएगा, आने का कारण क्या है, नीलावर को इतना सब सोचने का दम नही रहा। खयाल नही रहा कि गाड़ी से उतर कौन रहा है। वे साहव के कदमों पर पछाड़ खाकर गिर पड़े !

उधर घर-घर वेतार-वार्ता पहुंच गयी, नीलावर के यहा घोड़ागाड़ी से साहव आया है।

कानूनी कार्यवाही के सिवाय और कोई वात लोगो के दिमाग मे नही आयी। खिडकी को थोड़ा-सा खोलकर सबने देखा और कहने लगे, इसी को कहते हैं, विपत्ति कभी अकेली नही आती। उधर लड़का मरण-सेज पर और

इधर यह हाल !

नीलांबर के यहां झांक-ताक चलने लगी।

कि एक आदमी ने देखा, साहब के गले में नल झूल रहा है।

डॉक्टर है ! डॉक्टरी नल झूल रहा है !

डॉक्टर ! नोबू के लिए साहब डॉक्टर आया है ! भीतर ही भीतर नीलांबर यह चालाकी चल रहा है, और किसी से राय तक नहीं। यह तो पड़ोसी के गाल में औचक थप्पड़ मारना हुआ ! उधर बाबू साहब का पैर पकड़कर रोने बैठे हैं।

साहब ने कहा, 'डरो मत ! रोगी अच्छा हो जाएगा।' लेकिन यह बात कानों मे नही गयी। कान में पहुंची भवतोष मास्टर की बात, 'अरे, यह क्या कर रहे हैं—ये तो कलकत्ते से डॉक्टर आए है, नवकुमार के इलाज के लिए।'

नीलांबर ने ताककर देखा। निताई को भी देखा। समझ गए, कोई साजिश चल रही है। उस साजिश की नायिका के रूप में सत्य की शकल ही आंखों में उतर आयी।

लेकिन यह हुआ कैसे ?

जैसे भी हुआ हो चाहे, अभी तो चूं भी नही करना।

बुत-सी बनी सत्य रोगी के सिराहने की ओर बगीचे की तरफ वाली खिडकी पर खड़ी थी। किवाड़ को ऐसा आड़ा कर रखा था कि वह कमरे के अंदर के लोगों को देख पाए, अंदर के लोग उसे न देख सकें।

भवतोष मास्टर के साथ जब उससे भी एक हाथ ज्यादा लंबा तगडा टक-टक लाल वह आदमी कमरे में दाखिल हुआ, तो न जाने क्यों, सत्यवती का कलेजा काप उठा। उसके बाद हठात् दोनों आखों मे आंसू छलक आए।

प्रकट में हाथ तो नहीं जोडा, मन ही मन प्रणाम करके बोली, 'बाबूजी, अपनी इस ढीठ बिटिया की हिमाकत को माफ़ कीजिए। दूर से आशीर्वाद कीजिए, जिसमें मेरे सुहाग का सिंदूर कायम रहे।···समझती हूं, मैंने तुम्हें दुखाया है, मगर तुम्हारी ही तो बेटी हूं। तेज कहो, अहंकार कहो, तुमसे ही तुम्हारी बेटी में आया है।'

उसके बाद उसने अपनी मां का चेहरा याद करने की कोशिश की। बोली, 'मां, तुम्हारी कसम खाकर मैंने बाबूजी की दवा लौटायी है, जिसमें तुम्हारे नाम पर कलक न लगे।'

काली, दुर्गा, चंडी, शिव—इन सबको नहीं जानती है सत्य, वह जीवन के साक्षात् देवताओं से ही आशीर्वाद मागती है।

साहब डॉक्टर की दवा धन्वंतरी हो !

ऐसे गहरे क्षण में भी कब जाने उसका कौतूहल भरा मन बच्चे जैसा कौतूहली हो उठा। विस्मित पुलक से आंखें फाड़कर देखने लगी, डॉक्टर कैसे रोगी की पीठ पर नल लगा रहा है, नल के दोनों सिरों को कान में डालकर गंभीर बैठा है।

जरा देर में भारी गले की आवाज सुनायी पड़ी, 'डरने का कारण नहीं ! ठीक हो जाएगा !'

म्लेच्छ को देवता सोचने से पाप लगता है ?

उसके बाद रंगमंच का समारोह मिटा।

जो लोग डॉक्टर को लिवा आए थे, वे लोग उसी के साथ खिसक पड़े। इधर हाथ में वज्र ताने दो-दो आदमी निश्चेतन-से निष्क्रिय होकर बैठे रहे।

नीलाबर और उनकी पत्नी !

पुतले-से बैठे है ? समझ नही पा रहे है, ऐसी हालत में ठीक कौन से रास्ते से चलना बुद्धिमानी है !

न·, वज्र उन्ही के माथे पर गिरा।

नोबू की बात वे भूल गए।

·सौदा कुछ सचेतन थी।

उसने हाथ के इशारे से निताई को बुलाकर डॉक्टर ने क्या-क्या करने को बताया, बता जाने को कहा। उसी मौक़े से यह भी पूछ बैठी, 'रुपया किसने दिया रे ? मास्टर ने ?'

निताई ने सिर खुजाकर कहा, 'न···यानी···बात यों है, सौदी-दी ! भाभीजी उस दिन घाट में मुझे बुलाकर रो पड़ी थी।'

सौदा ने डपट लिया, 'बहू जिसके-तिसके पास रोने वाली लड़की नहीं है।' यह भनिता छोड़कर सच-सच बता ! बता !'

सो निताई ने सच बात बता दी।

बहू ने गले का हार खोलकर निताई को देते हुए कहा, 'ये जैसे मेरे पति हैं, आपके मित्र हैं। यही समझकर काम कीजिए। कलकत्ते में इस हार को बेचकर साहब डाक्टर को लिवा आइए।' बाहों का ज़ेवर भी उतारकर देना चाहा था। निताई ने मना कर दिया।

रोगी के कमरे में कोई नही था। सत्य धीरे-धीरे आकर बिस्तर के पास खड़ी हो गई। सौदा आ रही थी—लौट गई। मन ही मन बोली—'नोबू बचेगा तो तेरे ही पुण्य से। बिहुला ने अपने मरे हुए पति की लाश लेकर स्वर्ग तक धावा किया था, सावित्री यमराज के पीछे-पीछे दौड़ी थी। वे युग-युग से लोगों की पूजा पा रही हैं।'

जरा देर में उसने सुना, बहू सास से नर्म गले से कह रही है, 'साहब डाक्टर

की दवा तो आप लोग छुएंगे नहीं, इसलिए रोगी की तीमारदारी का भार न हो तो मुझे दें, आप बल्कि रसोई'''

एलोकेशी ने सूखे गले से कहा, 'अब तो तुम जो भी कहोगी शिरोधार्य करना ही पड़ेगा। महारानी विक्टोरिया के बाद तुम्हीं हो! खैर, रसोई का जिम्मा न हो तो यह चांदी ही लेती है, लेकिन तुम्हारे लड़कों का?'

सत्य ने और भी नर्म गले से कहा, 'वे तो ज्यादातर ननदजी के ही पास रहते है!'

'रहते हैं तो क्या सिर पर सवार कराना होगा?'

दुनिया में सब-कुछ संभव है। एलोकेशी सौदा की तरफ भी खींचकर बोलीं। सौदा अगली बात को सुनने के लिए खड़ी रही। उसने बहू का फिर और भी नर्म गला सुना—'ननदजी तो उन्हें जान से भी बढ़कर मानती है। सिर पर सवार क्यों सोचेंगी?'

सत्य के इस नरम गले ने सौदा की आंखों में आंसू क्यों ला दिया? उसे क्यों लगा कि सत्य के गले में यह झुका हुआ स्वर नहीं सोहता। उसकी ज़ोरदार आवाज़ ही ठीक है! बहुत ठीक!

•

३१

साहब डाक्टर के हाथ-यश से या कि सत्य के सुहाग से अथवा अपनी ही परमायु के ज़ोर से नवकुमार बच गया। लेकिन न जाने क्यों, अंदर से वह सत्य को ही अपना जीवनदायिनी मानने लगा था।

इसलिए उस जीवन को लेकर सत्य जो चाहे करे। जिस देश में बीमार होने से साहब डाक्टर मिलता है, मरने के डर की विभीषिका ही नहीं रहती, सत्य अगर उसे उसी देश में लेजाकर बसाना चाहती है, तो उसकी उस चाह को नवकुमार मजाक और अवास्तव कहकर उड़ा नहीं देता।

इस तरह सत्य का काम थोड़ा आसान हो आया। हो सकता है, इसीलिए लोग कहते है, ईश्वर जो भी करते है, भले के लिए। नवकुमार की यह जानलेवा बीमारी भी अंत तक सत्य के जीवन में, कम से कम सत्य की राय में, परम मंगल ले आयी। लड़कों को सत्य आदमी बनाना चाहती थी। आदमी जैसा आदमी। और वैसा आदमी बनने के लिए दुनिया को देखने की ज़रूरत है।

भवतोष मास्टर की कोशिश से निताई और नवकुमार को कलकत्ता में नौकरी मिल गयी है। निताई को रैली ब्रदर्स में और नवकुमार को सरकारी दफ्तर में।

लिहाज़ा उन दोनों का एक पैर रथ पर, एक पैर पथ पर है। नवकुमार स्वयं मां-बाप से यह बात नही कह सका, सत्य को ही कहना पड़ा। हां, उन दोनो ने बेटा-पतोहू से बोलना बंद कर दिया।

कुछ दिन पहले तक सौदा भी सत्य पर झुंझलाई-सी थी। लेकिन उसके साहब डाक्टर बुलानेवाले रूप से वह भी आच्छन्न-सी हो गयी।

सौदा ने आजकल बीच-बीच मे अपने जीवन की बही के पन्ने भी पलटना शुरू कर दिया है। काश, वह भी सत्य जैसी हिम्मतवर हो सकती! होती तो उसका जीवन यों बरबाद नही होता। शायद हो कि कुपथगामी पति को सही रास्ते पर लाकर सुख से घर-गिरस्ती कर पाती। लेकिन सत्य जैसी शक्ति उसमें नही है। मन मे तो सोचा करती, जिस काम मे दोष नही, पाप नही, उसकी निंदा से क्या डरना? पर, कार्यतः नही कर पाती। चाहती तो स्वामी को सुधार सकती थी। मामा-मामी के यहां भी नाहक ही उनसे बाघ जैसा डरती है। वाजिब कह नही पाती। डरपोक है।

सत्य साहसी है।

इसीलिए डाबर के गंदले पानी से निकलकर समदर मे अपनी नाव ले चली।

अड़ोस-पड़ोस में सत्य की हमउम्र जो बहू-बेटियां हैं, उनमे भी सत्य ने एक आलोड़न-सा ला दिया।

आश्चर्य है!

अनोखा!

उन्ही जैसी एक स्त्री पति-पुत्र को लेकर कलकत्ता मे रहने के लिए जा रही है! और फिर एलोकेशी जैसी खूंखार सास के शिकंजे से निकलकर! उनके पतिगण इधर कुछ दिनों से दाम्पत्य-सुख के माधुर्य से वंचित हैं। क्योंकि आड़-ओट मे उनकी स्त्रिया नवकुमार के साहस और प्रेम की नजीर देती हैं।

वे अभागे पुरुष नवकुमार को 'स्त्रैण', 'स्त्री की मुट्ठी में' आदि विशेषणो से भूषित करके भी खास सहूलियत नही कर पा रहे हैं।

लेकिन बहुओं के लिए असुविधा यह थी कि अकेले मे सत्य से मिलकर पति को स्त्रैण बनाने का मंतर सीखने का उपाय नही था। सत्य से मिलने की उन्हें सख्त मनाही थी। और जब घाट-बाट मे जाती, तो सास, फूआ-सास या कुछ नही तो नन्ही कोई ननद ही पहरे पर होती।

सो बड़ों के सामने वे सब सत्य को दुर्-छिः ही करतीं।

करें छिः-छिः, सत्य वह सब सुनती ही नही। वह उस समय केवल जाने की धुन मे लगी थी।

ऐसे ही समय सत्य ने एक दिन बात उठायी।

हो सकता है, इसे भी उसने तैयारी में ही समझा हो। या एक अनिश्चित की राह में कदम बढ़ाने से पहले अंतिम बार के लिए जन्मभूमि को देख लेने की प्रबल इच्छा हुई हो। जो भी कारण हो चाहे, सत्य ने चर्चा की, जाने से पहले एकबार वहा से हो आऊं ?

'हो आने को जी चाहता है', या 'हो आती तो अच्छा होता' या कि 'हो आना उचित है', ऐसी भाषा की तरफ ही नही गयी वह।

हो आऊं !

गरज कि यह स्थिर सिद्धांत है। अब ब्रह्मा का बेटा खुद विष्णु भी आए तो इसमें हेर-फेर की उम्मीद नही।

एलोकेशी ने उदास मुह से कहा, 'जाओगी, ठीक है ! मगर मुझसे क्यों कहने आयी हो ? पूछ रही हो ? क्या इजाजत माग रही हो ?'

हा, बहू से फिर बात कर रही है वे। इसलिए कि बोलना ही उनकी बीमारी है। मुह सीकर दो घड़ी रह सकना उनकी जनमपत्री मे नही लिखा है। 'नही बोलूंगी' यह निश्चय करके भी बोलने लग जाती है।

सत्य ने एक बार अपनी बड़ी-बड़ी आखें उठाकर देखा और बोली, 'नही, उस झूठे तमाशे की जरूरत नहीं समझती। जाने की जब सोची है, जाने का ही इंतजाम करना होगा। कहा इसलिए कि ससुरजी से कहें, जरा पत्रा देख दें।

एलोकेशी अब अपने स्वभाव पर आ गयी।

मुह बिदकाकर बोली, 'बाप तो पूछता नही, बाप के यहा जाओगी किस मुह से ?'

सत्य ने आसमान की ओर मुंह करके उदास मुह से कहा, 'उन्हें एक बार प्रणाम करने जाऊंगी। मा-बाप का कर्त्तव्य है और संतान का नही ?'

'ठीक है। तुम कर्त्तव्य करो। बाप को प्रणाम करने जाओ। मगर मेरा बेटा बगैर न्योता के नही जाएगा, सो कहे देती हूं।'

सत्य उठ खड़ी हुई। बोली, 'आप तो दुनिया के बाहर की एक-एक बात कहती है। आपका बेटा नहीं जाएगा तो इतनी दूर क्या पड़ोस के किसी के साथ जाऊंगी ?'

'तुम्हें भी साथ की जरूरत ?" एलोकेशी ने पिच् से थूक फेंका, "डकैत भी तुम्हें देखकर डर जाएगा !'

'डर जाए तो ठीक ही है। फिर भी साथ में किसी मर्द सूरत का होना अच्छा है। मेरे पिताजी को प्रणाम करना तो आपके बेटे का भी काम है।'

'बेअदब ! बकझी ! जाने और कितना सुनूगी !'

सत्य जानती थी, ऐसा ही होगा।

इसलिए अनुमति मांगने के प्रहसन से वह बाज आयी।

प्रवल की जीत होती ही होती है !

पत्रा देखकर यात्रा का दिन भी देखा गया; शुभ घड़ी में पति-पुत्र को लेकर सत्य पालकी पर भी सवार हुई। खास कोई अड़चन नही आयी। उन लोगों ने हथियार डाल ही दिया।

पालकी ससुराल के गांव से निकल गयी। पालकी का दरवाजा खोलकर सत्य ने झाका।

नवकुमार ने कहा, 'घूंघट हटाकर क्यों झांक रही हो? जाने कौन देख ले।'

सत्य ने पुलक-कंपित स्वर में कहा, 'वला से ! अव मैं ससुराल की वहू तो नहीं हूं।'

'आखिर औरत तो हो ?'

'औरत नही हूं, यह थोड़े ही कहती हूं। लेकिन चेहरे पर लिखा तो नही है, वेटी कि वहू।'

वड़े लडके तुड्‌ की यह सव समझने की उम्र हो आयी है। वह वोल उठा,- 'अव तू कमर मे फेंटा वांधेगी क्या ?'

'फिर तू कहा ! कितनी वार वता चुकी हूं, मा को तू नही कहना चाहिए। तुम कहा करो। तो भी…'

अचानक नवकुमार हंस उठा, 'हुआ ! शासन हो चुका ! आदमी वह वहुत वड़ा है कि सवक सिखाया जा रहा है ! मैं तो इतनी उम्र तक मां को तू ही कहता आया हूं !'

सत्य का चेहरा सख्त हो आया। कहा, 'इस उम्र तक तुमने जो-जो किया था, उसका दृष्टांत और किसी वक्त लडके के कान मे उड़ेलना ! मैं जव कुछ वताती होऊं तो वीच मे न टपका करो !'

'वाप रे ! हो क्या गया ? किस वात से तुम्हे क्या हो जाएगा, समझना मुश्किल है !'

नवकुमार समझ गया, जरा वेतौर हो गया। जरा देर पहले की वह लावण्यमयी मूर्ति उस कठिनता मे गायव हो गयी। सच, सत्यवती की चपलता, लावण्य और उमंग से दमकता हुआ मुखड़ा कैसा अनोखा लगता है। मगर वड़ा क्षणस्थायी होता है। पल ही में वादलो से ढंक जाता है।

सत्यवती की वह कभी थाह भी पा सकेगा ?

लेकिन नवकुमार के आत्मज ने सत्यवती के मुखड़े पर घिरे वादलों को हटा दिया।

इस बीच तुड़्‌ मां की गोद के पास सटकर बोला, 'मामा के यहा जाने पर अच्छा लड़का बनना चाहिए न, मां ? नहीं-नहीं, सबके यहां अच्छा बनना चाहिए। सिर्फ मामा के यहां जाने पर और भी अच्छा बनना चाहिए ! मैं यह सब जानता हूं।'

बेवकूफ है मुन्ना ! मामा के यहां जाकर सिर्फ आं-आं करके रोएगा।

बेटे के इस 'आं-आं' की अदा से सत्य हंस पड़ी।

न:, इतनी दूर के लिए नवकुमार को डरने का कारण नही है। बादल स्वामी नही होंगे। शायद गति में ही अनोखे एक पुलक का स्वाद है। इसीलिए सत्य पल-पल किशोरी की नाईं उमग-उमग उठती है।

'अजी, वह देखो, खेत में वह कैसी काली गैया है ! गया का पत्थर का कटोरा हो जैसे।'''तुड़्‌, उधर देख, तालाब में कितने कमल फूले है ! बचपन में हम ढेरों कमल तोड़ा करती थीं। मामा के यहा चल, तुझे वह तालाब दिखाऊंगी। अरे हा, यह तो कहो जी, वह कौन-सा पेड़ है। ठीक पहचान नही पा रही हूं। कैसी तो नयी किस्म के पत्ते हैं ! हाय राम, कैसी बनफूल की-सी महक आयी ! ठीक हम लोगों के वहा जैसी।'

अपनी खुशी में अपने आप से ही बात करती जा रही थी सत्य, पति-पुत्र उपलक्ष मात्र थे।

नवकुमार एकटक उस मुखड़े की ओर ताकता रहा।

इतने दिनों तक साथ रहा, दो-दो बच्चों का बाप बना, पर दिन के ऐसे खुले प्रकाश में इस तरह से कब अपनी लावण्यमयी स्त्री की ओर ताकता रह सका है।

डेरे पर जाने का खौफ थोड़ा कम हो आया है, अब बल्कि थोड़ी-थोड़ी रोमांचकर उमंग है। वहा गुरुजनों की सुर्ख आखों का डर नहीं, पड़ोसियों की नज़र का भी खतरा नही।

सिर्फ नवकुमार और सत्यवती।

हां, नौकरी का बड़ा डर है। लेकिन भवतोष मास्टर ने बड़ा भरोसा दिया है। कहा, तुम जितनी अंग्रेजी जानते हो, उसकी चौथाई ही अंग्रेजी सीखकर साहब के दफ्तर में कितने लोग काम करते है। दफ्तर में घुसते ही तुम साहब की नेक-नजर में पड़ जाओगे। यह भी कहा, गाव में पड़े रहकर जगह-जमीन पर जीवन बिताने की इच्छा इस जमाने में बेकार है।

कलकत्ता जाकर दो कमीजें सिलवानी पड़ेंगी, एक जोड़ा जूता लेना होगा। उसके बिना तो दफ्तर जाया नही जाएगा।

भवतोष ने इनके लिए एक डेरा भी ठीक कर रखा है। आप तो वे मेस में रहते हैं। नवकुमार जब परिवार लेकर जा रहा है, तो उसका तो बिना डेरे

के काम नहीं चलेगा। नसीब निताई का बुरा है। उसके मामा ने कहा, 'स्त्री को डेरे पर ले जाओगे तो तुम्हारे हाथ का खाएंगे नहीं!'

इतनी बड़ी सज़ा के खतरे को टालकर पति के साथ जाए, इतना बड़ा कलेजा निताई की स्त्री को नहीं है।

निताई को नवकुमार की ही हांडी में जगह देनी पड़ेगी। अपनी बहू को भी वह यदि ला पाता, तो दोनों जनी साथ रहतीं। ब्राह्मण-कायस्थ हुए तो क्या, कोई किसी की हांडी नहीं छूती, पर दोनों साथ बैठती, गप करती, पान लगातीं—यह सब तो एक साथ करतीं! खैर!

भवतोष ने बताया है, घर बहुत सुन्दर है। तीन-चार कमरे हैं। दर-दालान, रसोई, भंडार, आंगन, कुआं। नल भी है शायद। घर के अन्दर नहीं, दरवाजे के पास ही। नल का पानी पीकर जात न गंवाना ही ठीक है। जब कि कुआ है।

जैसा होगा, देखा जाएगा।

मूल बात है किराया! अखर जाएगा। बाप से तो अब रुपया नहीं मांगने जाएगा वह!

भवतोष ने कहा है, कलकत्ता में वैसा मकान दस रुपये में भी मिलना मुश्किल है। वह तो चूंकि भवतोष के एक मित्र का है, इसलिए आठ रुपये में मिल रहा है।

तनखा भी तो नवकुमार को अट्ठावन रुपये मिलेंगे! ऐसी मोटी तनखा वाले को इतने में कातर नहीं होना चाहिए।

जो भी हो, निताई का प्रस्ताव वह नहीं मानेगा। निताई ने किराये का हिस्सा देना चाहा है! छिः! ऐसा दोस्त। भला उससे किराया लिया जा सकता है!

लेकिन वहां सत्य का क्या रवैया होगा, क्या पता। आखिर तो पराया है!

नः, ऐसा शायद नहीं करेगी।

इस बात में सभ्य है वह।

अब, वह दिन कब आता है जब घर के अजाने-अनचीन्हे दर-दालान में बैठ-कर दोनों मित्र आफिस जाने का खाना खाएंगे! और सत्य बाल बिखेरे, कमर में आंचल बांधकर रसोई करेगी, परोसा करेगी!

यह सब-कुछ सत्य के ही चलते सम्भव होगा।

विगलित प्रेम से सत्य की ओर ताककर देखा।

लेकिन सत्य की दृष्टि उस समय लक्ष्यभेदी थी, नथुने फूले हुए, चेतना एकाग्र। एकाएक वह बोल उठी, 'वह, वह रहा, जटा भैया की छत का मुंडेरा, वह रहा गांगुली चाचा के आंगन का नारियल, जिस पर गाज गिरी थी। अरे

ऐ कहारो, दाएं-दाएं…"

रास्ता दिखाने की ज़िम्मेदारी उसने अपने ऊपर ली।

पालकी को उतारा कि एक हलचल हो गयी। उसके बाद जब बात मालूम हो गयी तो सभी आकाश से गिर पड़े। कहा नहीं, सुना नहीं, लड़की अचानक ऐसे क्यों आ पहुंची? ऐसा तो नहीं होता।

किस मूर्ति में उतर रही है?

कौन इसे फेंक जाने को आया है।

अजी नहीं-नहीं।

षड़ैश्वर्यमयी राजरानी के वेष में आयी है—कार्तिक-गणेश का हाथ पकड़े, भोलानाथ के साथ!

जी कैसा कर रहा था, इसलिए बाप को देखने आयी है, बाप के घर के और सबों को। अपनी जन्मभूमि को।

चारों ओर ठगी-सी दृष्टि डालते हुए सत्य ने जैसे ही आंगन में पांव रखा कि ज़ोरों की रुलाई उठी।

विलाप मिला रुलाई।

अलग करके समझने का उपाय नहीं कि गला किसका है। सामूहिक रोना। घर की सब औरतों के साथ टोले की बहुतेरी औरतों ने भी सुर मिलाया।

लेकिन नए सिरे से यह विलाप किसके लिए? भुवनेश्वरी की घटना को तो बहुत दिन हो गए।

यह असल में किसी के लिए विलाप नहीं, नया कोई शोक भी नहीं।

कुछ तो सत्य के आगमन का आनंदाश्रु और बाकी सत्य की लम्बी अनुपस्थिति में घर में शोक की जो-जो घटनाएं घटीं, उन सबकी सूची बताते हुए रोदन!

इस विलाप रोदन में खोयी हुई-सी सत्य दोनों लड़कों का हाथ पकड़े आंगन में ही एक ओर खड़ी रही और बाहर ठगा-सा नवकुमार बैठा रहा। सामने ही ससुर बैठे थे, लेकिन उनसे कुछ पूछने की हिम्मत उसे नहीं। प्रणाम करके सिर झुकाए वहीं जो बैठा, सो बैठा ही रहा।

और फिर ससुर तो निर्विकार-से थे। घर की इतनी बड़ी रुलाई से वे ज़रा भी विचलित नहीं थे। इससे लगा, कोई खास बात नहीं।

वह भी गांव-घर का ही है। बेटी ससुराल से आती है, तो ऐसा रोना-धोना होता है। यह उसका अजाना नहीं। धीरे-धीरे वह निश्चित हुआ और रुलाई भी धीरे-धीरे फीकी हो आयी।

रामकाली ने ही बात की, 'घर से कब चले?'

'जी···।' नवकुमार ने चौंककर देखा।

रामकाली ने ताककर देखा। एक तंदुरस्त सुन्दर पुरुष के शरीर में अभी तक जैसे एक लजीले किशोर का मुखड़ा! सुन्दर-सुकुमार किन्तु बुद्धि की कहीं कोई छाप नहीं। मन ही मन हंसे—इसे स्नेह किया जा सकता है, इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। शायद इसीलिए भगवान ने सत्य को इतना दृढ़ बनाया है—वह लता जैसी सहारा नहीं चाहेगी, वनस्पति की तरह आश्रय देगी।

उनके एक निःश्वास निकला।

जी में आया, सत्य के नसीब में सदा दुःख है। रामकाली की बेटी ने बाप की ही ललाट-लिपि पायी है। कितने दुःखी हैं रामकाली! भुवनेश्वरी कितनी सुखी थी!

पहले रामकाली ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा कि कभी ऐसा सोचेंगे। अपने को कभी दुःखी की कोटि में रखेंगे।

नवकुमार के उस तटस्थ सुर 'जी' को सुनकर रामकाली ने फिर एक बार कहा, 'घर से कब चले?'

'जी, सवेरे ही, थोड़ा-सा माड़-भात खाकर ही···'

बोलते ही शायद अपनी बेवकूफी समझ में आयी। सबेरे को ठीक से समझाने के लिए माड़-भात का प्रसंग न ही लाया होता! सबेरे ही काफी था। लेकिन मुह की बात और हाथ का ढेला।

रामकाली हड़बडाकर बोले, 'अच्छा! इतना समय लग गया! फिर तो··· नहीं! अब बैठना नहीं! हाथ-मुंह धोकर···'

नवकुमार ने अब ज़रा साफ तरह से कहा, 'आप परेशान न हों। रास्ते में पालकी रोककर खाया है हम लोगों ने। सामान साथ में था।'

'सो हो! बेला ढल गयी! अरे, कौन है?'

एक ही साथ कई उम्र के बहुत से लड़के आ खड़े हुए। ये अगल ही बगल में झाक-ताक कर रहे थे, आने का भरोसा नहीं हो रहा था।

रामकाली ने कहा, 'अन्दर जाकर कह दे, इनके हाथ-मुहू धोने का इंतज़ाम करे!'

हाथ-मुंह धोना सांकेतिक है। असल मतलब है जलपान का प्रबन्ध। उनमें से दो-एक लड़के भागकर गए। दो-एक खड़े रहे। किसने तो झट से कह दिया, 'क्या मजा है, जीजा जी! कलकत्ता के डेरे में जाकर रहेंगे!'

रामकाली ज़रा चौंके।

सत्य तो घूंघट काढ़े हुए ही प्रणाम करके अन्दर चली गई, नवकुमार के सामने बाप से बात नहीं की।

नवकुमार औरत जैसा शर्म का मान किए बैठा था। रामकाली ने पूछा, 'यह कलकत्ता की बात क्या कह रहा है?'

नवकुमार ने धीरे-धीरे जवाब दिया—'जी, कुछ ऐसा ही सोचा गया है!'

'सुनकर खुशी हुई। इस समय कलकत्ता की तरक्की के बहुत उपाय हुए हैं। किसी काम-धाम की कोशिश की गयी है क्या?'

'जी हां! मास्टर साहब ने एक नौकरी जुटा दी है!'

जामाता हैं। इसलिए कर्त्तव्यबोध से उन्होंने पूछा, 'कहां?'

'जी, सरकारी दफ्तर में!'

'बड़ी अच्छी बात है! रहने का कहां ठीक किया? मेस में?'

'जी नहीं! मास्टर साहब ने डेरा ठीक कर दिया है!'

रामकाली ने वेतन के बारे में नहीं पूछा। सिर्फ जरा चिंतित स्वर में बोले, 'फिर तो रसोइए की भी व्यवस्था करनी होगी। डेरे में अकेले'''

नवकुमार से लाज का मान और नहीं रखा जा सका, पुलक को छिपाने की आभा मुंह में मलकर बोला, 'जी, रसोइए की जरूरत नहीं होगी। तुड़ू-मुन्ने की मां—आपकी लड़की ही तो जा रही है!'

'मेरी लड़की! सत्य! सत्य कलकत्ता जा रही है!'

नवकुमार सकपकाकर चुप हो गया। समझ नहीं पाया कि रामकाली का यह स्वर किस भाव का द्योतक है। कुछ परेशान से नहीं लगे?

हां, कुछ विचलित हुए रामकाली।

बहुत दिन पहले की एक बात याद आ गयी।

बालिका सत्य की मूर्ति आंखों में नाच उठी और उसके सामने तिर आया दूसरा एक भयातुर मुखड़ा। उस मुख के सामने उंगली उठाकर सत्य कह रही है, 'तुम्हें इतना डर किस बात का है मां! देख लेना, कलकत्ता मैं जाऊंगी, जाऊंगी, जाऊंगी!'

सत्य अपनी प्रतिज्ञा रख रही है, लेकिन यह देखकर गर्व, आनन्द, विस्मय, पुलक से मुग्ध कौन होगी?

नि.श्वास छिपाकर बोले, 'हिम्मत कर रहे हो, अच्छी बात है, पर तुम्हारे मां-बाप की व्यवस्था?'

'दीदी है! टोले के लोग हैं!'

'हूं! उन लोगों ने एतराज नहीं किया?'

नवकुमार के लिए अब अपने आप को जब्त करना असम्भव हो गया। वह भरमुंह हंसकर बोला, 'एतराज़ भला नहीं कर रहे हैं? मगर एतराज़ उनका टिके भी? इसने जिद पकड़ ली, बच्चों को अच्छे स्कूल में पढ़ाना होगा।'

उसके उद्भासित मुखड़े को देख उस पर एक गहरा स्नेह महसूस किया उन्होंने। नवकुमार को अन्दर भेज दिया।

भीतर उस समय कहकहे लग रहे थे। सत्य के बच्चों से दादियों का हंसी-मजाक चल रहा था। घर की अन्य स्त्रिया सत्य को घेरे बैठी थी।

रासू की नयी स्त्री, शिवजाया की कुमारी पोतियां, रासू की दो भानजिया, भाई की स्त्रियां और अड़ोस-पड़ोस की जवान-बूढ़िया। मोक्षदा को अब ज्यादा बोलने का दम नही है। फिर भी महफिल में एक ओर दीवाल से लगी बैठी है। सिर्फ शारदा यहां नही है। उसे मरने की भी फुर्सत नही है।

उसकी उदासीनता से सत्य का नयापन, अनोखापन, बहुमुखिता सब कुछ हार मान गयी है।

लेकिन और सभी तो शारदा नही है। सवालो का जवाब देते-देते दूसरे किसी से कुछ पूछने का मौका ही नहीं पा रही है सत्य। गोकि वह दिखाने नही, सबको देखने के लिए आयी है।

किंतु कौतूहल जो अदम्य था। दो-दो बच्चे हो गए, बच्चे बड़े हो गए, मगर कभी आयी तो नहीं। बच्चे के अन्नप्राशन मे उन लोगों ने कहला जरूर भेजा था, लेकिन रामकाली तो तीर्थाटन में थे। आने के बाद भी तो···

सत्य इतने दिनों से आयी नही, परन्तु अचानक कैसे आ पड़ी—यह प्रश्न दब गया। अब सवाल था क़लकत्ता का। इसी मे कौतूहल के सैकड़ों सवाल थे। यह हिम्मत किसने दी? वहा उसकी देखभाल कौन करेगा? सास-ससुर के होते पति के साथ बाहर रहने की बात ही दिमाग मे कैसे आयी और उनकी इजाज़त ही किस अलौकिक उपाय से मिल गयी? इनके सिवाय भी, वहा जाने से जात जाएगी कि नही, म्लेच्छ का पानी पीना पड़ेगा या नहीं, जूते-मौजे पहनने पडेगे या नहीं, लैंडोफिटन पर चढ़कर मैदान मे हवाखोरी के लिए जाने की मजबूरी होगी या नही—बहुतेरे बेसिर-पैर के प्रश्न।

उत्तर देते-देते थककर आखिर सत्य बोली, 'बाप रे, अब तक अपनी ही 'पांचाली' गाती आयी, अपनी खबर भी तो सुनाओ!'

मोक्षदा ने थकी और दु.खी आवाज़ मे कहा, 'हमारी भी खबर! जो सब मरी नही हैं, वे विधाता के अन्न का श्राद्ध कर रही है, यही खबर है!'

'वाह, यह कैसी बात हुई?'

'ठीक ही कह रही हूं! तुझको सदा ही फटकारती रही थी कि तेरा हाल ह्याड़ी का होगा! अब देख रही हूं, तू ही बाजी मार ले गयी। तूने ही कमाल दिखाया। यह सोचा, खूब किया। अभी सब कह रहे है, अंगरेजी विद्या की जय-जयकार है। दोनों लड़कों को यदि कलकत्ता मे अंग्रेजी स्कूल में दाखिल

कर सकी…।'

शिवजाया हाल में विधवा हुई है। कुछ ही देर पहले उन्होंने सत्य को समझाया कि तुम्हारी मां पुण्यवती थी, मरकर पुण्य का परकोटा दिखा गयीं। दुनिया में जो भी स्त्री माग में सिंदूर का गौरव लिए जिन्दा है, उस गौरव के रहते ही दुनिया से जिसमें उठ जाए। अब शिवजाया अपना जला मुह किसी को नही दिखाएंगी, इसलिए मुह ढाककर पडी थी।

लेकिन सदा की प्रतिद्वंद्वी मोक्षदा की बात सुनकर उनका निर्वेद भंग हुआ। मुंह पर से कपड़ा हटाकर बोल उठी, 'ठीक ही कहा, ननद जी ! बच्चा खाते जनम बीता, आज कहते हैं डाईन ! मैं कहती हूं, यह युग वह युग, सब तो बंगला संसकिरत से ही चला, ज्यादा बड़ा विद्वान् हुआ तो फारसी—और अब यह म्लेच्छ भाषा नही सीखने से…।'

'फारसी भी म्लेच्छ भाषा ही है, संझली !'

'हाय राम, आजनम तो फारसी की सुनती आयी, यह तो नही सुना कभी कि मलेच्छ भाषा है।'

सत्य ने कहा, 'यह जात रहने जाने की गप्प रहने भी दो फुआ दादी। वह तो जाने वाली जो है, जाएगी ही ! उसे पकड़कर कौन रख सकता है ? तुम्हारा यह हाल कैसे हुआ, सो कहो ! इतना तीरथ-वरत करके हवा बदलकर आयी हो, सेहत तो अच्छी होनी चाहिए ?'

'खाक अच्छी !'

मोक्षदा ने जीभ से एक आवाज की—'मेरा अच्छा तो अब यमराज के ही जाने से होगा। पति को तो कभी आखों नही देखा, यमराज पति के चतुर्दोल पर ही चढ़कर जाऊंगी। लेकिन आजकल अब अच्छे कै लोग है ? अभी उस बार ही जो गांव तू देख गयी थी, वह अब नहीं है। लोगों की देवता-ब्राह्मण पर भक्ति नही रही, बड़े-छोटे का ज्ञान नही, आदमी की आदमियत ही चली जा रही है। अब घूम-फिरकर देखेगी न, देख लेना !'

सातेक दिन रहने के बाद लौटती बेर सत्य यही सोचती चली। मन ही मन कहने लगी, 'फुआ दादी, तुम्हारा कहना ही ठीक है ! आनन्द नही आया ! वह गाव नही रहा। पहले का सुख, आनन्द, तृप्ति नहीं है।'

इस बार भी सत्य ने खेलने की पुरानी जगहो को घूम-घूमकर देखा। बीते दिनो का सुर लाने की कोशिश की, कामयाब न हुई। लड़कों को दिखाने के लिए पेड़ पर चढ़ने गयी थी। बच्चे इस तरह से हा-हा कर उठे कि उतरना पड़ा। तैरने का पीठस्थान जो बड़ा तालाब था, वहा जाकर तैरी। मजा नहीं आया। सुख नहीं मिला।

सुख तो कुल मिलाकर है।

वह कुल, संपूर्ण, अखंड है कहां ? पहले की साथिनें कहा रही ?

सत्य को अव सुख कहां मिलेगा ? इसमें वह रामकाली चटर्जी की शरीर, घुमक्कड़ बेटी को खोजकर कहा पाएगी ? जिसे ढूंढ़ने के लिए इस तरह से लपककर आयी वह ?

और उस लड़की की मां ? उसकी छाह तक नही ? सब धुल-पुंछकर साफ !

वदल गया !

सब कुछ वदल गया !

सत्य की वह पहचानी दुनिया गायव हो गयी। सत्य का आसन निश्चिह्न हो गया। अपनी जन्मभूमि की माटी पर सत्य अब आगंतुक है, बाहर की है। अब यहा निगाह के सामने कुछ अन्याय भी होता हो तो चुप रह जाना पड़ता है। लगता है, 'छोड़ो ! दो दिन के लिए आयी हो—बेपरवाह होकर कहा नहीं जा सकता कि यह तुम लोगों का अन्याय है।'

नहीं तो इन्ही के दिनों में देखा भी तो कम नही। इस घर में वहुत गैर वाजिव हो रहा है। इसलिए कि उसके पिता ही कैसे तो उदासीन-से हो गए है। पहले टोले के लडकों को भी बेचाल करने की हिम्मत नही थी। अब घर के लडके भी सिर्फ उनकी नजर के सामने ही जो डरते है। ओट में कोई परवाह नही।

टोले में ही कितना देखा।

जटा-दा की स्त्री अव सास से लडती है। और जटा वीवी के आगे हाथ जोड़े रहता है। सत्य की ननिहाल में सभी भाई अलग हो गए है। सत्य को दो घर में दो दिन न्योता खाना पड़ा। तुष्टु ग्वाले को लकवा मार गया है, उसकी वीवी घर-घर रोती फिर रही है, मगर कोई उससे घी-दूध नही लेता। हीला-हवाला करता है। कहता है, 'हुंः ! तुष्टु की वीवी का जमाया दही ? मुह में रखना मुहाल ! तुष्टु की वहू घी वनाना कव-कव जानती है ?'

चीज़ थोडी दव ही हो तो क्या सदा के उस आदमी को दु.ख के समय न देखे ? तो फिर आदमी और जानवर मे फर्क क्या रहा ?

सत्य छिपाकर दो रुपये दे आयी थी तुष्टु को। तुष्टु की आखों से आसू ढुलक पड़े थे। वह बोला, 'तेरा मन अपने वाप जैसा ही है। कविराज जी हैं, इसीलिए जिन्दा हूं !'

कुम्हार चाचा, लुहार चाचा, धोबिन फुआ—किसी से मिलना सत्य ने वाकी नही रखा। लेकिन पहले की तरह किसी ने भी हंसकर नही कहा, 'अरे, आयी है। आ-आ, वैठ !'

सबने आसन डालकर कहा, 'आइए दीदीजी, वैठिए।'

गजब है, एक ही साथ सबके सब कैसे बदल गए ?

बदला नहीं सिर्फ गांव। बदले नहीं पेड़-पौधे, खेत, झाड़िया, तालाब-पोखरा। इन्हीं सबने उमगे आनन्द से सिर हिला-हिलाकर, कोलाहल करते हुए स्वागत किया। और विदा होते वक्त वही उदास विधुर दृष्टि से मौन वेदना की तरह ताकते रहे।

वही सिर्फ नही बदले।

लेकिन इन सबके पास आश्रय भी कितना ? आश्रय तो चाहिए हृदय में, प्राणो के उत्ताप में। कहां है वह उत्ताप ? सबने बड़ा जतन किया और कहा, 'अरे बाबा, दो दिन के लिए आयी है ! किसी ने यह नहीं कहा कि तू मेरी सदा की है।'

सत्य की मां जिंदा होती तो क्या और तरह का नही होता ? मां के पास सत्य का वह बचपन सोने की डिबिया में रखा नही रहता ? सत्य आती तो मा उस डिबिया को खोलकर नही कहती, 'यह देख, तेरा कुछ भी नही खोया है। सब-कुछ है। मैंने सहेजकर रखा है।'

फिर तो सत्य अपने खिलौने के पिटारे को भी देख पाती। मा कहती, देख ले, यह है तेरे हाथ का कपड़ा पहनायी हुई बड़ी, मंझली और संझली वहू। उस बार आकर तू जैसे रख गयी थी, वैसी ही रखी हुई है।

दादी के श्राद्ध के समय आकर अपने फेंके हुए खिलौने के पिटारे को फिर से सजा गयी थी वह। उसके बाद तो उसके अपने ही जीवन मे खिलौना टूटने की घटना आ गयी।···फिर मिट्टी के खिलौने की कौन सोचे ?

सत्य शायद मां के बचपने से हंसती थी। फिर भी सुख मिलता था। मा के बिना मैके का सुख नही। उसने निःश्वास छोड़ते हुए सोचा। उतने बड़े घर में उसे, इतने लोगो में से एक के अलावा तो और कुछ नही सोचा कभी। आज एकाएक मालूम पड़ गया, उस एक के बिना यह अनेक बेमानी हैं।

तो भी फुआदादी के पास दो घड़ी बैठने से जी जुड़ाता था। लेकिन उसी प्रबल प्रतापी स्त्री की यह गत हो गयी, देखकर कलेजा फटता है।

सत्य ने कहा था, 'ज्यादा खट-खटकर कर ही आपने सेहत का यह हाल कर लिया फुआदादी ! आपकी वह तन्दुरुस्ती इन्ही कै सालों मे ऐसी हो गयी ?'

मोक्षदा धिक्कार की हंसी हंसकर बोली, 'ज्यादा खटती नही तो भूत जैसा वह समाग लेकर क्या करती, बता ? अन्दर का भूत ही रात-दिन दौड़ा मारता था मुझे।'

'और अब जो उसी भूत ने आपको हिला दिया ?'

'जाने दे ! जो कुछ दिन दुनिया का अन्न-पानी लिखा है, घिसटती हुई, जी ही जाऊंगी। उसके बाद जिससे बनेगा, मुह में आग देकर चिता पर रख देगा। जिसे श्रद्धा होगी, वह पिंड दे देगा। जिसके लिए एक दिन का भी छुत्तक माननेवाला कोई नहीं है, उसका जीना और मरना…!'

सत्य ने दु:खी होकर कहा था, 'बाबूजी ही आपका सब-कुछ करेंगे, फुआ दादी !'

मोक्षदा ने उदास-सी होकर कहा, 'सो करेंगे ! रामकाली महत् है। शायद हो कि अपनी मा जैसा ही फुआ का श्राद्ध करें, फिर भी मन मे तो सोचेंगे, जो कर रहा हूं, फिजूल कर रहा हूं।'

आश्चर्य !

मोक्षदा को देखकर कभी कोई सोच भी पाया था कि यह घर उनका अपना नहीं है। यहां उनके लिए तीन रात का छुत्तका पालनेवाला भी कोई नही ! मोक्षदा के मरने से जो कोई आग देगा, पिंडदान करेगा, वह दया करके ही करेगा !

उनका उतना रौब फिर किस बुनियाद पर था ? या कि कोई बुनियाद नही थी, इसीलिए खोखले रौब को उतना बड़ा करके सामने रखती थी वह ? जानती थी कि हाथ ढीला हुआ नही कि यह बेबुनियाद इमारत पल मे जमीन पर जा रहेगी !

सोचते-सोचते—दोनों लड़कों को सत्य ने और करीब खीच लिया। यही बल है, यही इमारत की बुनियाद है।

शारदा को सत्य समझ नहीं सकी।

उसकी थाह नही मिली।

अवश्य शारदा ने ही सदा खिलाया-पिलाया, जतन किया। बचपन में सत्य जो-जो खाना पसद करती थी, शारदा ने याद कर-करके उसके लिए पकाया। हंसकर उसने कहा, 'सुनते हो तुड्, तुम्हारे नाना के घर में इतनी-इतनी चीजों के होते तेरी मा को खीरा के पत्ते का वड़ा, तीती पोठिया की खटाई पसंद थी।''

लेकिन सत्य जब कहने गयी, 'जो भी कहो भाभी, तुमने महिमा खूब दिखाई ! नयी वहू कह रही थी, तुम देवी ही हो !' तो शारदा कैसी तो कठिन-सी हो उठी थी। एक बड़ी ही भयानक तीखी हंसी हंसकर बोली थी, 'तुम्हारे तो बुद्धि-सुद्धि है ननदजी, दूसरे के मुह से तोता क्यों खाती हो ?'

बुद्धि-सुद्धि काफी होते हुए भी इस बात के भीतरी मतलब को सत्य नहीं समझ सकी। उसने हर वक्त यह ग़ौर किया कि शारदा पुरानी अंतरंगता का

दरवाजा खोलने को हरगिज तैयार नहीं है।

और बड़े भैया ?

उससे तो सत्य को बात करने की ही इच्छा नहीं हुई। उतनी बड़ी घरनी-सी शारदा का वह पति है, दो-दो उतने बड़े लड़कों का बाप है, इसका मानो ख्याल ही नहीं है भैया को। वह जैसे नयी बहू का नया दूलहा हो। उसी को लेकर सत्य से हंसी-मजाक ! छि: !

किसी से बात करके कोई सुख नहीं मिला।

हां, बिदाई के वक्त सबने व्याकुलता दिखाई, आसू बहाया, फिर कब भेंट होगी, यह कहकर हा-हुताश किया। कोई-कोई फुक्का फाड़कर भी रोयी, पर सत्य की अपनी जड़ ही मानो टूट गई है। इसलिए उसने आसू बहाया, पर जो प्राण लेकर वह आयी थी, वह प्राण लिए लौट नहीं रही है।

रामकाली तो सदा के सबके दूर के आदमी हैं। उनके दूरत्व का वह कवच एकमात्र सत्य ही तोड़ पाती थी। लेकिन वह लाड़ सत्य खुद ही नहीं कर पायी। समय भी नहीं मिला। रामकाली ने हरदम नवकुमार को पास-पास रखा। नवकुमार को उन्होंने स्नेह किया, यही बहुत बड़ा सन्तोष है।

आने के समय बाप को प्रणाम करके पति की मौजूदगी को भुला करके उसने रुंधे गले से कहा, 'अपनी इस दुस्साहसी, हिमाकतवाली बेटी को आपने क्षमा कर दिया बाबूजी, इसी हिम्मत से कह रही हू—मैं आपकी इकलौती हूं, समय पर जिसमें आपकी सेवा करने का अधिकार मिले।'

रामकाली का गला क्या कुछ कांप उठा था ?

चारों ओर के हा-हुताश में सत्य पकड़ नहीं पायी। सिर्फ बात ही सुन पायी। बिटिया के सिर को जरा हिलाकर वे बोल उठे थे, 'सदा की पुरखिन ! बाप को खूब तो बता रही है ! अरे, मैं सेवा लेने का पात्र ही क्यों बनूं !'

सत्य से इस बात का जवाब देते नहीं बना। उस गहरे स्नेह के थोड़े-से स्पर्श से अंदर से रुलाई उमड़ आयी। रोते-रोते और रुलाई को दबाते-दबाते वह पालकी पर सवार हो गयी।

पालकी पर भी बड़ी देर तक वह बोल नहीं पायी।

नवकुमार ही अचानक बोल उठा, 'तुम्हारे पिताजी हम लोगों की इस मामूली दुनिया के जीव नहीं हैं।'

सत्य ने चकित होकर पति की ओर निहारा।

हवा लग-लगकर इतनी देर में गाल पर के आसू सूख चुके थे, सूखकर आखें भारी और बोझिल हो उठी थीं।

नवकुमार ने फिर कहा, 'उन दिनों के राजे-रजवाड़ों का जो हाल था, वही। जितना डर लगता है, उतनी ही भक्ति होती है। ऐसा बाप मिलना

'जाने दे ! जो कुछ दिन दुनिया का अन्न-पानी लिखा है, घिसटती हुई, जी ही जाऊंगी। उसके बाद जिससे बनेगा, मुंह में आग देकर चिता पर रख देगा। जिसे श्रद्धा होगी, वह पिंड दे देगा। जिसके लिए एक दिन का भी छुत्तक माननेवाला कोई नहीं है, उसका जीना और मरना···!'

सत्य ने दु:खी होकर कहा था, 'बाबूजी ही आपका सब-कुछ करेंगे, फुआ दादी !'

मोक्षदा ने उदास-सी होकर कहा, 'सो करेंगे ! रामकाली महत् है। शायद हो कि अपनी मां जैसा ही फुआ का श्राद्ध करें, फिर भी मन में तो सोचेंगे, जो कर रहा हूं, फिजूल कर रहा हूं।'

आश्चर्य !

मोक्षदा को देखकर कभी कोई सोच भी पाया था कि यह घर उनका अपना नहीं है। यहां उनके लिए तीन रात का छुत्तका पालनेवाला भी कोई नहीं ! मोक्षदा के मरने से जो कोई आग देगा, पिंडदान करेगा, वह दया करके ही करेगा !

उनका उतना रौब फिर किस बुनियाद पर था ? या कि कोई बुनियाद नहीं थी, इसीलिए खोखले रौब को उतना बड़ा करके सामने रखती थी वह ? जानती थी कि हाथ ढीला हुआ नहीं कि यह बेबुनियाद इमारत पल में जमीन पर जा रहेगी !

सोचते-सोचते—दोनों लड़कों को सत्य ने और करीब खींच लिया। यही बल है, यही इमारत की बुनियाद है।

शारदा को सत्य समझ नहीं सकी।

उसकी थाह नहीं मिली।

अवश्य शारदा ने ही सदा खिलाया-पिलाया, जतन किया। बचपन में सत्य जो-जो खाना पसंद करती थी, शारदा ने याद कर-करके उसके लिए पकाया। हंसकर उसने कहा, 'सुनते हो तुड़ू, तुम्हारे नाना के घर में इतनी-इतनी चीजों के होते तेरी मां को खीरा के पत्ते का बड़ा, तीतो पोठिया की खटाई पसंद थी।''

लेकिन सत्य जब कहने गयी, 'जो भी कहो भाभी, तुमने महिमा खूब दिखाई ! नयी बहू कह रही थी, तुम देवी ही हो !' तो शारदा कैसी तो कठिन-सी हो उठी थी। एक बड़ी ही भयानक तीखी हंसी हंसकर बोली थी, 'तुम्हारे तो बुद्धि-सुद्धि है ननदजी, दूसरे के मुंह से तोता क्यों खाती हो ?'

बुद्धि-सुद्धि काफी होते हुए भी इस बात के भीतरी मतलब को सत्य नहीं समझ सकी। उसने हर वक्त यह गौर किया कि शारदा पुरानी अंतरंगता का

दरवाजा खोलने को हरगिज तैयार नहीं है।

और बड़े भैया ?

उससे तो सत्य को बात करने की ही इच्छा नहीं हुई। उतनी बड़ी घरनी-सी शारदा का वह पति है, दो-दो उतने बड़े लड़कों का बाप है, इसका मानो ख्याल ही नहीं है भैया को। वह जैसे नयी वहू का नया दूलहा हो। उसी को लेकर सत्य से हंसी-मजाक ! छि: !

किसी से बात करके कोई सुख नहीं मिला।

हां, विदाई के वक्त सबने व्याकुलता दिखाई, आंसू बहाया, फिर कब भेंट होगी, यह कहकर हा-हुताश किया। कोई-कोई फुक्का फाड़कर भी रोयी, पर सत्य की अपनी जड़ ही मानो टूट गई है। इसलिए उसने आसू बहाया, पर जो प्राण लेकर वह आयी थी, वह प्राण लिए लौट नहीं रही है।

रामकाली तो सदा के सबके दूर के आदमी है। उनके दूरत्व का वह कवच एकमात्र सत्य ही तोड़ पाती थी। लेकिन वह लाड़ सत्य खुद ही नहीं कर पायी। समय भी नहीं मिला। रामकाली ने हरदम नवकुमार को पास-पास रखा। नवकुमार को उन्होंने स्नेह किया, यही बहुत बड़ा सन्तोष है।

आने के समय बाप को प्रणाम करके पति की मौजूदगी को भुला करके उसने रुंधे गले से कहा, 'अपनी इस दुस्साहसी, हिमाकतवाली बेटी को आपने क्षमा कर दिया बाबूजी, इसी हिम्मत से कह रही हू—मैं ग्रापकी इकलौती हूं, समय पर जिसमें आपकी सेवा करने का अधिकार मिले।'

रामकाली का गला क्या कुछ काप उठा था ?

चारो ओर के हा-हुताश में सत्य पकड़ नहीं पायी। सिर्फ बात ही सुन पायी। बिटिया के सिर को जरा हिलाकर वे बोल उठे थे, 'सदा की पुरखिन ! बाप को खूब तो बता रही है ! अरे, मैं सेवा लेने का पात्र ही क्यों बनूं !'

सत्य से इस बात का जवाब देते नहीं बना। उस गहरे स्नेह के थोड़े-से स्पर्श से अंदर से रुलाई उमड़ आयी। रोते-रोते और रुलाई को दबाते-दबाते वह पालकी पर सवार हो गयी।

पालकी पर भी बड़ी देर तक वह बोल नहीं पायी।

नवकुमार ही अचानक बोल उठा, 'तुम्हारे पिताजी हम लोगों की इस मामूली दुनिया के जीव नहीं हे।'

सत्य ने चकित होकर पति की ओर निहारा।

हवा लग-लगकर इतनी देर में गाल पर के आसू सूख चुके थे, सूखकर आखें भारी और बोझिल हो उठी थी।

नवकुमार ने फिर कहा, 'उन दिनों के राजे-रजवाड़ों का जो हाल था, वही। जितना डर लगता है, उतनी ही भक्ति होती है। ऐसा बाप मिलना

बहुत बड़े पुण्य से होता है।'

सत्य की ज़बान पर आ गया था—'तो भी तो तुम टूटी रास के देवता को देख रहे हो। पहले के आदमी को देखा होता! अब तो मन टूट चुका है, शरीर भी टूट चुका है!' लेकिन वेदना-विधुर मन से इतना कहने की इच्छा नहीं हुई। धीरे से इतना ही कहा—'मा के रहते हुए तो नही देखा न! मा को भी नहीं देखा। इसी बात का अफसोस रह गया।'

बाप के लिए यह गर्व सिर्फ मन में पालने का है। उस गौरव में अधिकार नहीं, भोग का दावा नहीं। छोड़कर जाना पड़ा है, छोड़कर रहना पड़ेगा। उस गौरव की छाया में बैठकर जीवन को धन्य करने का उपाय नही है, जीवन को नियंत्रण करने का रास्ता नही है। भगवान! ऐसे सड़े समाज की क्यों रचना की थी?

समाज के मामले में सत्य ने भगवान को ही दोष दिया। उसके बाद प्रकृति की ओर देखकर मन ही मन कहा, 'तुम लोगों से विदा ले रही हूं। शायद सदा के लिए। अपार की ओर कदम बढ़ा रही हूं। देखती हूं, जीतती कि हारती हूं। रामकाली की बेटी। हारे भी तो हार नही मानेगी।'

बारुईपुर लौटकर कलकत्ता जाने की तैयारी। जाते वक्त न मां ने, न बाप ने—किसीने बात नही की। ऐन वक्त पर वे घर से निकल गए। जो कुछ किया-दिया सौदा ने।

लेकिन अजीब है कि नवकुमार इस इतने बड़े नुकसान को नुकसान ही नहीं समझ रहा है। रामकाली को देखने के बाद से बाप के बारे में उसे जो एक ऊंची धारणा हुई, उसकी तुलना में नीलाबर की औरत जैसी संकीर्णता उसकी नज़र को अखर गयी। मां-बाप के दुर्व्यवहार के बारे में सत्य से कुछ कहने की इच्छा हुई, पर सत्य के डर से ही हिम्मत नही हुई। नये जीवन की ओर चल पड़ा।

३२

एक अनोखा ही सवेरा!

जैसे इस सवेरे के आसमान के किसी छिपे पन्ने में बहुतेरा रहस्य जमा है, जमा है बहुतेरा आनन्द, बहुतेरा भय। वही रहस्य धीरे-धीरे खुलेगा, वही आनन्द धीरे-धीरे प्रसन्न हंसी हंसेगा, और वह भय सारी सत्ता को अपनी मुट्ठी में दबाए रहेगा। इसलिए उमगने में दुविधा होगी, उल्लसित होने में संकोच

होगा, जितना मिल रहा है, उसके सब-कुछ को अपनाने में झिझक होगी।

वह अनोखा नया सवेरा उस अजाने का संकेत लिए सत्यवती की ओर ताकता रहा।

और सत्यवती अवाक् होकर उसकी ओर ताकती रही। सोचा, आसमान कैसा नया-सा है।

यह नहीं कि सत्य ने अभी-अभी सपने के इस शहर की माटी पर पैर रखा, उसके आसमान की ओर नज़रें दौड़ायीं। वह पथरियाघाटा के इस इकतल्ले मकान में कल ही तीसरे पहर आयी है।

तड़के ही नींद खुली तो कमरे से निकलकर विमूढ़ की नाई देर तक बरामदे पर आकर खड़ी रही।

याद नहीं आया कि इस समय उसे कोई काम है।

जिस जीवन की वह आदी थी, उसके काम स्वयं सजीव होकर एक के बाद दूसरा, उसके सामने आ खड़ा होता था, लेकिन सदा के जाने-चीन्हे दायरे के वे सारे काम धुंधले हो गए। एलोकेशी की निकाली हुई नहर से अब सत्य की डोंगी नहीं चलेगी। अब उसे अपने ही हाथों नहर निकालनी पड़ेगी।

जाने कहां सुबह की चिड़ियां बोल उठीं। सत्य को लगा, ये क्या नित्यानंदपुर से सत्य की खोज में उड़कर आयी हैं या बारुईपुर के किसी अजाने पेड़ की डाल पर बैठी सत्य को पुकार रही हैं? कह रही हैं, सत्य, तुम भूल करने को तुली हो। देखो, सोच देखो, अभी भी शायद लौटने का समय है।

सत्य ने क्या वास्तव में भूल की है?

नहीं तो अंदर से उसे डर-डर-सा क्यों लग रहा है। अपने को कैसी तो असहाय अनुभव कर रही है?

खड़े होने का बल नहीं मिल रहा था, इसलिए बरामदे पर बैठ पड़ी। सोचा, तुरत जगकर आयी, इसलिए शायद दिमाग हलका लग रहा है। जरा देर बैठकर तब नहाने जाएगी। आज का दिन मनमाना—कल से नवकुमार काम पर जाएगा।

गांव-घर की कचहरी की नौकरी नहीं, यह एकबारगी शहर कलकत्ता के दफ्तर की नौकरी है। रसोई में जरा भी देर करने से काम नहीं चलने का। सत्य को सुना-सुनाकर एलोकेशी की एक सखी ने कहा था—'मजा मालूम होगा! अलग गिरस्ती का स्वाद समझ जाएंगी! दफ्तर की रसोई क्या होती है, यह तो जानती नहीं है न! मैं उस बार कालीघाट में अपने फुफेरे भाइयों के यहां देख आयी थी। एक आदमी को खिलाने के लिए तीन-तीन बहुओं की नाक में दम। तुम्हारी बहू अवश्य चुस्त है, लेकिन सास-ननद के सहयोग से काम

और अकेले हाथ हरिद्वार—गंगासागर—बड़ा फर्क है !'

एलोकेशी ने कहा था, 'कर लेगी ! कलेजे के जोर से ही कर लेगी ! दुर्गत मेरे बेटे की ही होगी ! बेचारा दुनिया का कुछ भी नही जानता और उसके गले में गमछा बाधकर खीचते हुए गाड़ी में जोत दिया। खैर ! भगवान देख रहे हैं।'

सखी ने कहा, 'बात तो सही है ! जो गलत रास्ते से सुख उठाना चाहेगा, उसका विचार भगवान करेंगे ! गिरस्ती का मतलब मछली की पूछ और भात खाना नही, उसकी बला भी बहुत है ! कहावत है, अकेले घर में चारो हाथों खाने का बडा मजा है, मारने आए तो पकड़ो मत, यही बड़ा कष्ट !'

इसके बाद भविष्यवाणी की गयी—'देख लेना, भागने का रास्ता जो मिले उसे !'

उस दिन सत्य ने लापरवाही की हंसी हंसी थी। लेकिन आज मानो कुछ डर रही है। सोचती है, इस शहर को समझ तो सकूगी ? अपना बना सकूंगी ? यह शहर 'आओ' कहकर मुझको अपने करीब खीचेगा ? यहा मुझे पराई-सा, बेचारी-सा तो नही रहना पड़ेगा ?

न, सत्य को दफ्तर की रसोई का डर नही, अकेले हाथ का डर नही, डर है बस अनजान होने का।

मा !

बडा लडका तुडू पीछे आ खड़ा हुआ। नीलाम्बर ने नाम रखा था—तुडक सवार। उसी से हुआ यह तुडू। अच्छा नाम साधन है। पहली संतान जाती रही। इसलिए यह बडी साधना का धन है। उसी से मिलता-जुलता नाम।

तुडू की सूजी-सूजी-सी आखों में विस्मय था।

सत्य ने झट पलटकर कहा, 'जग गया ? भाई नही जगा ?'

'नही !'

'और तेरे बाबूजी ?'

'नही !'

'हा, क्यों उठने लगे ! नवाबी मिजाज। कल से मजा मालूम होगा !'

सत्य आलस छोड़कर उठ खड़ी हुई।

कैसी बेवकूफ-सी बैठी थी अब तक ! क्या ऊल-जलूल सोच रही थी। नयी जगह में सब ठीक-ठाक करने मे कम देरी नही होगी।

बीते दिन सांझ को रसोई नही बनी।

घर-द्वार दिखा-सुनाकर भवतोष मास्टर ने कहा, 'तो तुम अब इन लोगों को सम्हालकर बैठो नवकुमार ! बहू को कहो, बेर रहते ही दिया जला लें।

नयी जगह है ! मैं तुम लोगों के खाने के लिए कुछ ले आता हूं ! आज अब रसोई-बसोई रहने दो !'

सत्य ने कमरे के अंदर से जंजीर बजायी।

नवकुमार उधर से हो आया। झिझकते हुए बोला, 'जी, आप नाहक ही क्यों तकलीफ करेंगे ? जैसे-तैसे थोड़ा-सा चावल उबाल लेगी।'

भवतोष ने एकबार दरवाजे की तरफ ताककर सीधे ओट में खड़ी रहने-वाली से ही कहा, 'जैसे-तैसे करने में भी बडा बखेडा है बहूरानी ! कल सबेरे से ही कीजिएगा। कल मैं कोई नौकरानी ठीक कर लाऊंगा। आज बाजार से पूरी-तरकारी, मिठाई…'

नवकुमार एकाएक बोल उठा, 'बाजार की पूरी तरकारी ! कलकत्ता आते ही जात गंवाने की नौबत !'

भवतोष मास्टर हंस पड़े थे !

बोले, 'न: ! तुम बिलकुल मान्धाता के जमाने में हो नवकुमार ! जात कैसे जाने लगी। मैं क्या म्लेच्छ होटल का खाना खिलाने जा रहा हूं ? गाव पर तुम लोग हलवाई के यहा की जलेबी-मिठाई, बैंगनी-फुलौड़ी नहीं खाते हो ? *यहां भी हलवाई की ही दुकान से लाऊंगा।'*

नवकुमार ने सिर खुजाया। '…जी, तरकारी-वरकारी की कह रहे है न ! सिर्फ एक दिन के लिए खामखा…'

भवतोष ने बल देकर कहा, 'एक दिन के लिए क्यों, ऐसा बहुत दिन हो सकता है। बहूजी अकेली हैं ! कभी जी खराब हो। न पका-चुका सकें ! और फिर जलपान ! कलकत्ते में इतने प्रकार की चीजें है, बच्चे खाएगे नहीं ? भात खाने को थोड़े ही कह रहा हूं। हां, यदि बहूरानी को आपत्ति हो…'

फिर जंजीर बजी।

नवकुमार अंदर से हो आया—'जी नहीं, उन्हें कोई आपत्ति नहीं। आप जो भी कहें, सिर-आखों पर ! आप हितैषी हैं, गुरु हैं !'

'हां-हां, बहुत हुआ। इतनी अच्छी बातें ज्यादा नही खर्च करनी चाहिए। तुम लोग खा-पी लो। निश्चित हो लो, तो मैं जाऊं !'

अपने पैसे से भवतोष बाबू बहुत सारा सामान ले आए। पूरी, सब्जी, चमचम, रबड़ी। पान भी ले आए थे। दोनों बच्चे निहाल हो गए। कैसे सोने के देश में आए।

निताई को साथ ही रहने की बात हुई है। लेकिन निताई इनके साथ-साथ नहीं आ सका। कई दिन के बाद आएगा। इसलिए भवतोष ने कहा, 'अकेले डर तो नहीं लगेगा ? नई जगह है ! कहो तो जब तक निताई नहीं आ जाता है, मैं ही रहकर पहरा दू ?'

नवकुमार को हथेली पर चाद मिल रहा था।

लेकिन सत्य ने उसे वह चाद नहीं पाने दिया। जंजीर हिलाकर उसने जताया, 'मास्टर साहब को तकलीफ नही करनी होगी। ठीक से बंद-बंद करके हम रह लेंगे।'

भवतोष के चले जाने के बाद नवकुमार ने सत्य को आड़े हाथों लिया। जो सदा कहा करता है, वही बोला, 'हर बात में दुस्साहस! भगवान ने तुम्हे मर्द न बनाकर औरत क्यों बनाया, यही सोचता हूं!'

सत्य इस पर हंस पड़ी। जी खोलकर। अपनी उस खुली हंसी की आवाज उसके अपने ही कानों को अनचीन्ही लग रही थी।

वह बोली, 'फिक्र की क्या पड़ी है! ईश्वर ने तुम्हें तो मर्द बनाकर जन्म दिया है! दूसरे के भरोसे कैसे चलेगा? बारहों महीने दूसरा कोई तो नहीं कर देगा? शुरू से ही अपने पावों खड़े होने की कोशिश करनी चाहिए!'

साझ के अंधेरे में चिराग की टिमटिम रोशनी में सत्य को वह ढाढ़स मिला था और सुबह की इस हीरक-जोत मे नही मिलेगा?

सत्य ने कमर मे फेंटा बाधा और काम-काज में जुट गयी। उतर पड़ी अपने नये जीवन-संग्राम में।

यह गिरस्ती उसकी अपनी है। अपने साचे में, अपने सपने जैसा, जैसा वह चाहती है, इसे गढेगी।

भवतोष ने घर को धुलवा-पुंछवाकर चूल्हा बनवा दिया था रसोई मे। गोंयठा-कोयला मंगवाकर रख दिया था। कल नवकुमार के माध्यम से चूल्हा सुलगाने का तरीका भी बता दिया। उसी तरीके से चूल्हे मे आच देते हुए एकाएक सत्य को बड़ा अजीब-सा लगा। यहां जैसा चाहे, कर सकती है वह। कोई टोकने वाला नही, रोकने वाला नही। कैसी अनोखी अनुभूति!

कैसा अनोखा सुख!

इस सुख के ख्याल से तो आजादी की लड़ाई सत्य ने लड़ी नही थी। उसने तो सिर्फ ऐसी किसी जगह में आना चाहा था, जहां बीमारी में डॉक्टर मिले, बच्चों के लिए अच्छा स्कूल हो, पुरुषों के लिए काम हो।

अपने लिए क्या अच्छा है, सत्य ने यह नही सोचा था। वह तो इतना ही जानती थी कि इसमें निंदा है, धिक्कार है। अब देख रही है कि और भी बहुत कुछ है। यानी स्वाधीनता का सुख यह है—सिर पर सदा तलवार तने रहने के बदले ऊंचे पर जोत से जगमग आसमान का रहना।

शहर की स्त्रिया विद्या-बुद्धि मे इतना आगे क्यों हैं, सत्य ने यह समझा। जिन्हें इतना मिलता है, वे उसका प्रतिदान तो देंगी ही!

कि एकाएक स्तब्ध-सी हो गयी।

'मैं भी तो बहुत कुछ पाऊंगी, बदले में दे तो पाऊंगी कुछ !'

रसोई से निकल रही थी, हड़बड़ाकर फिर अंदर चला जाना पड़ा। देखा, आंगन में भवतोष खड़े हैं !

भवतोष ने खासकर कहा, 'नवकुमार ?'

बड़े लड़के ने कहा, 'बाबूजी सो रहे हैं।'

भवतोष बोले, 'अभी तक सो रहा है ? कल से दस बजे दफ्तर जाना पड़ेगा ! मैं एक नौकरानी ले आया हूं ! तो मुन्ने, अपनी मां से ही कहो, इससे बात कर लें ! यों मोटा-मोटा मैंने सब बता दिया है। बर्तन मलना, घर पोंछना, कपड़े फींचना, चूल्हा सुलगाना, मसाला पीसना—यह सब करना होगा। महीने में बारह आने देंगे। चार आना जलपान के लिए। हां, सिर मे डालने के लिए थोड़ा तेल लेकिन देना पड़ेगा ! नहाए बिना तो मसाला पीसना नही चलेगा !'

नवकुमार की चू भी नहीं सुनायी पड़ी। कमरे में उतने सवेरे भी सत्य को पसीना छूटता रहा !

सब कुछ अगर नौकरानी ही करेगी, तो सत्य क्या करेगी ?

सिर्फ बर्तन माजने के लिए ही होती !

भवतोष ने साथ लायी नौकरानी से कहा, 'क्यों जी, वहां मां जी है, उनसे बातचीत कर लो और अभी से ही काम शुरू कर दो ! रात के जूठे बर्तन वह पड़े हैं !'

सत्य के लिए और अधिक देर तक लज्जावती की भूमिका में रहना संभव नही हो सका। घूंघट काढ़कर वह दरवाजे के पास आयी। नम्र स्वर में बोली, 'इतना कुछ करने की जरूरत नहीं थी ! घर का काम मैं खुद ही कर लूंगी !'

भवतोष पहले तो सकपकाए। क्योंकि उन्हें यह उम्मीद नहीं थी कि सत्य उनसे बात करेगी। लेकिन अपने को सम्हालकर बोले, 'जब दाई रखी ही जा रही है, तो सब-कुछ करेगी ! सिर्फ बर्तन मलने के लिए भी तो आठ आने से कम पर राजी नही हो रही है'''सिर्फ चार ही आने और देने से तो''''

'जी, पैसे के लिए नही'''' सत्य ने कहा, 'अपनी आदत बिगड़ेगी इसलिए कह रही हूं। सब काम कोई और ही करेगी, तो आराम-तलब हो जाऊंगी। समय भी कैसे कटेगा ?'

भवतोष कुछ अचकचाए। ससुराल में जी तोड़ मेहनत करने वाली लड़की अपने डेरे पर आकर आराम नही चाहे, यह बात उन्हें नयी-सी लगी।

बोले, 'स्त्रियों के लिए और भी बहुतेरे अच्छे-अच्छे काम हैं बहूरानी,

उसमे भी समय कटेगा। और फिर फुरसत के समय घर पर पढ़ने-लिखने से···'

वात अधूरी ही रही। आंख मलते हुए नवकुमार कमरे से निकला। वोला, 'मास्टर साहव ने फिर इतने सवेरे तकलीफ···'

'नहीं-नही, तकलीफ क्या ? नौकरानी ले आया हूं ! इसे समझा-बुझा दो ! अब एक दूध देनेवाले को ठीक कर देने से ही निश्चित।'

'आप खामखा कितना कष्ट करेंगे ?' सत्य वोल उठी।

नवकुमार चौक उठा। किवाड की जंज़ीर का वजाना कव का खत्म हो गया—अव आमने-सामने वात ! आश्चर्य !

भवतोष ने कहा, 'मुझे विराना मानोगे तो हिचक होगी, नवकुमार ! मैं लेकिन तुम लोगों को विराना नहीं मानता !'

'जी नही ! विराना क्या ?'

नवकुमार की वात का छोर जैसे खो गया। और 'अपना' मानने का सबूत देने के लिए झट वोल उठा, 'मै तो सोच ही रहा था कि आपके साथ ज़रा हाट घूम आऊं। यहा किस-किस रोज़ हाट लगती है ?'

भवतोष हसने लगे।

बोले, 'कलकत्ते मे रोज ही हाट है !'

'अच्छा ! रोज़ ही वाजार लगता है !'

'हां, रोज ! एक नही, अनेक वाजार ! खैर, तुम्हे नही जाना पडेगा ! मैं ही किए देता हूं ! तुम वल्कि घर का काम-काज···'

'घर के काम में कोई असुविधा नही होगी !' सत्य का धीर स्वर गूजा। अंदर से निकालकर एक टोकरी रखकर वह चली गयी। सत्य की शहर की गिरस्ती इसी तरह से शुरू हुई।

अपनी गिरस्ती।

कई दिनो के वाद निताई आया।

नवकुमार ने कहा, 'निताई से परदा करने से नही चलेगा। एक साथ रहना ! भाई जैसा ! घर में दूसरी कोई स्त्री नही है ! तुम ही परोस देना···'

सत्य ने मुसकराकर कहा, 'इतना कहने की क्या ज़रूरत है ! मैं क्या वहुत लाजवती लगती हू ?'

'अह-ह, वह नही। लाज कहा है ? तुम तो मास्टर साहव से ही धड़ल्ले से वोल रही हो।···समझा निताई, पहले दिन तो मै दग रह गया। गनीमत कि मा नही हैं। वडी हिम्मती हैं। मास्टर साहव से वोलने मे मुझे ही तो···'

निताई ने सत्य को एक नज़र देखा। वोला, 'नोवू, तुम इतने दिनों में भी भाभी को पहचान न सके ? ये तुम्हारी-मेरी मिट्टी की नही वनी है। बड़े गुन

किस्मत हो तुम कि···'

उन्हें हठात् चौंकाकर सत्य हंस उठी, 'लो-लो, नहाना-खाना छोड़कर दोनों दोस्तों में भाग्य का विचार शुरू हो गया। अच्छा, भाई साहब, आप ही कहिए, मास्टर यानी गुरु! है कि नहीं? तो गुरु से शर्माने से कैसे चले? उनकी श्रद्धा-भक्ति करूंगी, शर्माने क्यों लगी? मैंने तो सोचा है, उनसे अंगरेजी पढ़ूंगी।'

'क्या कहा?'

धनुष की छूटी प्रत्यंचा-सा छिटक पड़ा नवकुमार, 'क्या सीखोगी?'

'कहा तो!'

'पागलपन मत करो! अति ठीक नहीं! जितना रहे-सहे, उतना ही ठीक है। कलकत्ता आयी हो, परदेस की गिरस्ती है, यहां तक तो गनीमत है, लेकिन···'

'अंगरेजी सीखने की ही तो कही है! गाउन पहनकर होटल मे खाने जाने की तो नहीं कही है!'

कौतुक की हंसी से सत्य की जुड़ी भौहें नाच उठीं, खिला हुआ चेहरा लाल हो उठा। निताई की ओर देखती हुई बोली, 'आपके मित्र को हर बात में डर है। घर बैठे पढ़कर यदि थोड़ी-सी ज्ञान-विद्या हासिल की जाए तो इसमें दोष क्या है? या कि म्लेच्छ अक्षरों के छूने से भी जात जाएगी?'

नवकुमार ने गंभीर होकर कहा, 'वैसे ही समझो! जो भी हो चाहे, हिन्दू स्त्री हो न?'

'और आप हिन्दू पुरुष नहीं है?'

'मर्दों की बात जुदा है!'

'जुदा कुछ नहीं है! धर्म के लिए सब समान है! और यदि जात जाने की कहो···' सत्य के चेहरे पर फिर कौतुक की चमक निखर आयी, 'तो, वह तो कब की जा चुकी है!'

'ऐं!'

'ऐं!'

एक ही साथ दोनों मित्रों के मुंह हा हो गए। मुंह बन्द करना वे भूल गए।

सत्य मुसकराती ही रही।

थोड़ा सजग होने पर नवकुमार ने कहा, 'अंगरेजी पढ़ी है तुमने?'

'थोड़ी-थोड़ी! अपनी कोशिश से जितनी बन सकती है। तुम्हारी किताबें घर में थी न!'

'अजीब है!' निताई के गले से सिर्फ इतना ही निकला।

'क्यों भाई साहब, मेरा पकाया तो चलेगा न ? कि जात गयी हुई के हाथ का नहीं खाएंगे आप ?'

बात नहीं, चीत नहीं, निताई अचानक एक हास्यकर काम कर बैठा। सत्य के सवाल का जवाब न देकर वह पैरों के पास लंबा पड़कर उसे प्रणाम कर बैठा।

सत्य अवश्य इसके लिए तैयार नहीं थी। वह दो डग हट गयी। बोली, 'खैर भाई साहब, आपने गुरुजन तो माना ! ठीक है ! तो अब हुक्म बजाइए ! आपको तो अभी भी दो दिन की छुट्टी है। नहा लीजिए और अपने भतीजों को स्कूल में दाखिल तो करा आइए ! कै दिन हो गए आए, ये सिर्फ खेल-खा रहे हैं ! और इसी के लिए इतना हंगामा करके कलकत्ता आया गया है !'

३३

काल की बही से कई एक पन्ने बाएं से दाएं आ गए, बहुत दिन बीत गए।

नवकुमार इस नयी ज़िंदगी का आदी हो आया। गति में तेज़ी आयी। घर में दफ्तर की बातें करना सीख गया। दफ्तर जाते वक्त डब्बा भरकर पान और पान के साथ ज़र्दा लेना सीखा।

इस बीच लड़कों ने स्कूल में कई बार क्लास बदला और सत्यवती ने एक-बार डेरा बदला।

डेरा बदलने का एक छोटा-सा गुप्त इतिहास है। वह इतिहास सत्य और भवतोष मास्टर तक ही महदूद है।

गिरहस्ती मजे से चल रही थी।

सत्य पति और पति के मित्र के लिए दफ्तर के समय तक रसोई करती थी। दो डब्बे पान लगाती। उनके घर से निकलते न निकलते लड़कों को नहलाने-खिलाने में जुट जाती, दुर्गा-दुर्गा कहकर उन्हें स्कूल भेजा करती, उसके बाद बाकी काम-काज चुकाकर जी लगाकर अंगरेज़ी, बंगला सीखा करती।

किताबें भवतोष ला दिया करते, पढ़ाते भी वही थे। नियमित नहीं, कभी-कभी कठिन स्थलों को समझ लिया करती थी वह। कमरे में एक ऊंची चौकी पर मास्टर, नीचे चटाई पर अपनी-अपनी बही-किताब लिए सत्य के दोनों लड़के और चटाई से कुछ दूरी रखकर घूंघट काढ़े सत्य।

लेकिन बात सत्य सदा साफ ही कहती।

इसीलिए दूरी रहते हुए भी भवतोष को उसका प्रश्न समझने में कठिनाई

नहीं होती।

इसी पढ़ने-पढ़ाने में सत्य एक दिन बोल उठी, 'हम सबों के लिए आपने बहुत तो किया, थोड़ा कष्ट और करना होगा ?'

भवतोष चौंके, 'कष्ट कैसा ? कष्ट माने ?'

'कष्ट ही तो ! अब तक बहुत कष्ट किया ! जो भी हो, आप पिता सरीखे हैं, मैं आपकी बेटी जैसी हूं ! इसीलिए 'किन्तु' मैं नहीं होती···'

सत्य के बड़े बेटे ने गौर किया, मास्टर साहब का चेहरा कैसा तो बदल गया। कैसा तो डरा हुआ-सा लगा।

सत्य के माथे पर अवश्य घूंघट था, आंखें झुकी हुई थीं।

भवतोष ने धीमे-से क्या तो कहा। सत्य ने साफ गले से कहा—'जी, वही कह रही हूं, 'किन्तु' मैं नही होती। आप कायथ भाई साहब के लिए दूसरा कोई इंतजाम कर दीजिए ! मैंने सुना है, यहा मेस या क्या तो कहते हैं, अपना-अपना खर्च देकर लोग एक-साथ रहते है, दफ्तर-कचहरी जाते हैं !'

कायथ भाई साहब, मानी निताई।

नवकुमार के साथ भाई जैसा तो रहता था। सिर्फ भात की छूत-छात के सिवाय ब्राह्मण-कायस्थ का कोई भेद-भाव नही था। दोनों में खूब सौहार्द ही था।

अचानक हो क्या गया ?

भवतोष ने अनमना-सा होकर कहा, 'वह तो है !'

'जी ! आपको उनके रहने के लिए इंतजाम कर ही देना होगा।'

भवतोष ने सिर खुजाकर कहा, 'माना कि वह कर दिया, लेकिन हठात् ? उसने कुछ कहा है क्या ? यानी यहा नहीं रहेगा, ऐसा···'

'जी नही ! उन्होने कुछ नहीं कहा ! मैं ही कह रही हूं ! यह आपको कर ही देना पड़ेगा।'

भवतोष कुछ क्षण चुप रहकर धीरे से बोले, 'जब तुम ऐसा कह रही हो बहूरानी, तो जरूर ही कोई कारण होगा। लेकिन चूंकि समझ नहीं पा रहा हूं, इसीलिए सोच में पड गया हूं।'

इस बार सत्य की ओर से जवाब नहीं आया।

भवतोष उठ खड़े हुए। बोले, 'नवकुमार की भी यही राय है न ?'

सत्य ने कहा, 'घर-गिरहस्ती की सुविधा-असुविधा में मर्दों की राय नहीं चलती ! इंतजाम हो जाने के बाद कहने से ही काम चल जाएगा !'

भवतोष समझ गए। समझ गए कि ऐसा कोई गोलमाल हुआ है। लेकिन आदमी तो निताई···क्या हुआ ?'

'अच्छा, कुछ बात नही चीत नही, एकाएक निताई को वे यह कैसे कहेंगे

कि निताई तुम्हारे लिए मैंने मेस ठीक कर दिया है, कल से तुम वही जाकर रहो।'

वोल भी पड़े, 'निताई को पहले से विना जताए···'

'हा, यह वात सोचने की है। मगर किया क्या जाए, जब कहना ही है। वह व्यवस्था मैं ही कर लूगी।'

लाचार भवतोप चल दिए।

बड़े बेटे ने पूछा, 'चाचाजी यहां क्यों नही रहेंगे, मां ?'

सत्य ने गंभीर होकर कहा, 'वच्चों को सभी वातों में दखल नही देना चाहिए। जब जो होगा, देखो ही गे। क्यों, किसलिए—यह सब मत सोचा करो।'

और, उन लोगों ने सिर्फ़ देखा ही।

देखा कि वावूजी कहीं भागे रहे, मा चुपचाप दरवाज़ा पकड़े खड़ी रही और निताई चाचा अपना वक्स-विस्तर लिए किराए की वग्गी पर जा वैठे।

भाव कुछ ऐसा थमथम-सा था कि कुछ पूछने की हिम्मत ही नही हुई।

हिम्मत पहले नवकुमार को भी नही हुई। इसीलिए वह सवेरे से भागता फिर रहा था। काफी रात होने पर घर लौटा। चोर की तरह चुपचाप ताककर निताई के कमरे की तरफ देखा। दरवाज़े मे जंज़ीर चढ़ी थी।

कलेजा धक् से कर उठा।

लगा, उसके अंतर नाम की जगह में भी मानो वैसा ही जंज़ीर लगा दरवाज़ा मुंह लटकाए खड़ा है। वह दरवाज़ा अव शायद कभी नही खुलेगा। उसी वंद कमरे मे नवकुमार का वहुत-सा सुख, वहुत-सा आनन्द रह गया।

ईश्वर जाने, सत्य को अचानक यह धुन क्यों सवार हुई।

यह भी तो नही लगता कि निताई के किसी व्यवहार से वह नाराज हुई है। उसने अपनी आखों कल देखा, रसोई में निताई की थाली परोसते हुए सत्य की आखो से टप्-टप् आमू टपक रहा था यह भी गौर किया, निताई को जो-जो चीज़ें पसंद हैं, आज कई दिनो से वह वही सव पकाती रही।

तो ?

हिसाव मिलता कहा है ?

क्या वह ख़र्च-वर्च की सोच रही है ?

लेकिन ख़र्च तो निताई देकर ही रहता है।

उधेड़वुन मे ही रहना पड़ा। सत्य से ठीक-ठीक जवाव नहीं मिलता। उसने कहा, 'यह तो अच्छी ही व्यवस्या हो रही है। दोनो जून सामने परोसी हुई

थाली मिलती रहेगी, तो भाई साहब को *अपनी स्त्री को लाने की कोशिश ही* नहीं रहेगी।'

नवकुमार झुंझला उठा था, 'अपनी स्त्री की बात वह समझेगा ! वह कोशिश करनी ही होगी, इसका भी कोई माने है ? गाव भर की बहुएं क्या तुम्हारी ही तरह परदेस जाने को पांव उठाए बैठी है !'

इस बात की चोट खाकर सत्य निढाल नही हुई। जैसा कि पहले हो जाया करती थी। क्योंकि बात-बात मे परदेस आने का उलाहना देने की आदत नवकुमार को शुरू से थी। सुख-स्वच्छंदता का स्वाद पाने के बावजूद, मन-ही-मन बहुत बार उसकी तारीफ करते हुए भी यह मानो उसका एक शकुनतकिया हो गया था।

पहले-पहल सत्य अभिमान से गुम-सुम पत्थर बन जाती थी। वह बुत जब बर्दाश्त से बाहर हो जाता तो आखिर नवकुमार ही समझौता करता। उसे कहना पडता, 'गलती हो गयी बाबा, हजार बार गलती हो गयी ! लो, नाक रगड़ता हूं, कान मलता हूं, फिर जो वह बात जबान पर लाऊं ! मजाक भी नहीं समझती, यही आश्चर्य है !'

मजाक कह-कह के ही नवकुमार ने उसे सहने का आदी कर दिया था। अब ऐसा हो गया है कि सत्य इसकी परवाह ही नही करती। उस रोज भी न की।

सिर्फ़ त्योरी पर बल डालकर कहा था, 'बहुएं पाव बढ़ाए बैठी है या नही, यह तो तब तक नही जानोगे जब तक कि अंतर्यामी नहीं बन जाते। लेकिन लोगों की घर-गिरस्ती का भी कुछ कानून-कायदा होता है। आखिर ब्याह तो लोग घर-गिरस्ती के लिए ही करते है !'

नवकुमार ने और भी एकतरफा बात की थी। फिर भी उसे यह उम्मीद थी कि अंत तक निताई के जाने की बात हवा हो जाएगी। लेकिन देखा, बात क्रमशः पकती ही गयी।

कोई कुछ नही कहता, तो भी मानो कही क्या होता रहता। खाते समय दोनों मित्रों में बातें नही होती, सो भी नही। लेकिन कैसी तो सूखी-सूखी, रस नही। निताई से साफ पूछने की भी हिम्मत नही होती।

सत्य से भी नही।

लेकिन आज दु:ख के आवेग से उसका साहस जग उठा। वहा से झटपट खिसक आकर तीखे स्वर में बोला, 'बिना कसूर के उस निरपराध आदमी को घर से बिदा कर देने मे मन रोया भी नही ? धन्य स्त्री हो तुम !'

सत्य दीए के पास सिर झुकाए बैठी किसी किताब के पन्ने उलट रही थी। पति के इस मंतव्य से महज एक बार सिर उठाया उसने और चुपचाप ही फिर

झुका लिया।

नवकुमार के अंदर उस समय उथल-पुथल मची हुई थी, इसलिए उसे सब-कुछ बुरा लग रहा था। लिहाजा, किताब के पन्ने उलटने से ही उसका जी जल गया। कहा, 'मां जो कहती है, ठीक ही कहती है। स्त्रियों की ज्यादा विद्या-बुद्धि सर्वनाश की जड़ है।'

सत्य ने झट किताब फेंक दी। खड़ी हो गयी। बोली, 'मां का वाक्य बेशक वेद वाक्य है। मैं ही बैठी-बैठी तुम्हारा सर्वनाश कर रही हूं। मगर अब तो कोई चारा नहीं। विद्या कुछ लोटा-कटोरा नहीं कि असुविधा हो रही है, इस-लिए हटाकर रख दूं। लेकिन बिना किसी कसूर के कि नहीं और मेरा मन रो रहा है या नहीं, इसकी तुम्हें सही खबर है?'

'मन! हूं। पत्थर के भी बल्कि प्राण है, तुम्हें नहीं है।'

मित्र को नवकुमार कितना चाहता है, यह बात सत्य नहीं जानती है, सो नहीं! इसीलिए इतनी बड़ी तोहमत लगाए जाने पर भी वह विचलित नहीं हुई। समझ गयी कि गम से, गुस्से से कह दिया। और नवकुमार का स्वभाव भी तो यही है। गुस्से में कड़ी-कड़ी सुना देता है, गुस्सा उतरने पर खुशामद करने लग जाता है।

सो वह दृढ़ रहकर ही बोली, 'जब पत्थर ही हूं, तो मन के रोने का सवाल ही कैसे उठता है? लेकिन 'बिना कसूर के' सोचने का कारण क्या है? जो आदमी गुरु के नाम पर कलंक लगा सकता है, कम-से-कम मैं तो उसे बेकसूर नहीं कह सकती।'

गुरु के नाम पर!

स्तंभित होकर नवकुमार ने कहा, 'मतलब?'

'मतलब तुम्हें नहीं समझा सकूंगी। तुम औरतों से भी ज्यादा मुंह खुले हो। सारी दुनिया जान जाएगी। लेकिन इतना विश्वास मुझपर रखो कि मुझसे कभी अन्याय नहीं होगा।'

इससे ज्यादा नवकुमार को मालूम न हो सका।

उपाय भी नहीं था।

अक्ल से भांप ले, इतनी जुर्रत उसमें नहीं। फिर सत्य ने तो हाथ जोड़कर कहा है, 'मुझसे कुछ न पूछो। मैं वह बात जबान पर नहीं ला सकती।'

हां, नहीं ला सकती।

जबान पर लाने की बात नहीं।

निताई ने एक दिन लेकिन जबान पर लायी थी। सत्य को पाठ देकर ज्यों ही भवतोष मास्टर गए, निताई बोल उठा, 'मास्टर ने नाता अच्छा जोड़ा है। गुरु

और शिप्पा ! लेकिन जब तक बैठे पढ़ाते रहते हैं, गुरुजी तो शिप्पा को आखों से निगलते रहते हैं !'

सत्य ने तीखी आवाज में कहा, 'भाई साहब !'

'बिगड़ने से क्या होगा ? जो वाजिब है, वही कह रहा हूं। मास्टर साहब के रवैये आजकल मुझे अच्छे नहीं लगते। किसी न किसी बहाने हर घड़ी यहां आने का मौक़ा ढूंढ़ने से समझती नहीं हैं ? सिर्फ़ भलाई की नियत से ही नहीं आते, कारण और है। मैं भविष्यवाणी करता हूं, अभी से सावधान न हुईं तो इनसे एक दिन मुसीबत मे पड़ना होगा !'

सत्य ने सख्त गले से कहा, 'यदि यही कहते हैं भाई साहब, तो सुनिए, वह मुसीबत आपसे नही आएगी, इसी का क्या ठिकाना है ?'

'मुझसे ? मतलब ?' निताई सिंदूरिया आम जैसा सुर्ख हो उठा।

लेकिन सत्य सख्त बनी रही।

'मतलब कमरे में बैठकर समझिए ! अपने मन से पूछिए ! कौन किसे आखों से निगल रहा है, यह आपकी निगाहों कैसे आयी, यह कहिए।'

'आएगी नहीं ?'

निताई ने जोश में आकर कहा, 'नोवू जैसे अंधे को छोड़कर सभी की निगाहों में आता है !'

'खुद भी नजर न डालिए तो नही आता, सादी भाषा में मैं भी कहती हूं। आपके मन मे जब ऐसी बुरी बात आ सकती है भाई साहब, तो मुझे लगता है, अब हमारा साथ रहना ठीक नहीं है !'

'ठीक नहीं है ? साथ रहना ?'

'हां !'

निताई फुफकार उठा, 'मुझे खिसकाने से ही आप लोगो की मुसीबत टलेगी ?'

'मुसीबत !' सत्य हंस पड़ी, 'मुझे मुसीबत कैसी ? कोई यदि आग में हाथ डालने आए, तो मुसीबत आग की है कि हाथ की ? रामायण-महाभारत की भी कहानी कभी नही सुनी ? सती-नारी के उपाख्यान ? आपकी यह जो चले जाने को कह रही हूं, आप ही की भलाई के लिए !'

निताई को ढूंढे कोई जवाब नही मिला। बोला, 'खूब ! अच्छा फैसला है !'

सत्य ने कहा, 'आप अभी अनेक कारणों से अंधे हो रहे है, भाई साहब ! कुछ समझ-बूझ नही रही। बाद में समझेंगे। लेकिन इस विषय मे ज्यादा कहने-सुनने की जरूरत नहीं ! बुरी बात खटमल का खानदान होती है, एक से सौ पैदा होती है ! इसे जड़ से मिटा डालना ही अक्लमंदी है।'

इसी के वाद भवतोप से उसने मेस खोज देने का प्रस्ताव किया था। किन्तु निताई की शिकायत क्या वास्तव में बेबुनियाद थी ?

बिलकुल बेबुनियाद कहना गलत होगा।

भवतोप की आखो की स्नेह-श्रद्धा से विह्वल दृष्टि सत्यवती के झुके मुखड़े पर टिकी होती है, यह क्या सत्यवती समझ नही सकती ?

समझती है। पत्थर का देवता भी भक्त के निवेदन को समझता है। सत्यवती लेकिन परवाह नही करती। समझती है, इस नजर से अनिष्ट की आशंका नही। वह समझती है, यह नज़र उसका वाल भी वाका नही कर सकती। जैसा वाल वांका निताई की ईर्ष्या से जलती हुई नजर नहीं कर सकती। उसने दोनों को टाल रखा था। लेकिन निताई ने यह जो साफ-साफ कहा, उससे उसने विचार से काम लिया। क्या पता, इस नीच संदेह की बात यह कभी निर्वोध नवकुमार के कानों पहुंचा दे !

कही, मास्टर साहब सुनें ?

छि:-छि: !

वे स्नेह करते हैं !

गुरु हैं !

वे खुद भी नही जानते, इसमें कोई दोप है।

लेकिन निताई की वात और है। उसकी श्रद्धा विशुद्ध नही है।

वह आपही अपना नुकसान कर सकता है।

उसके लिए व्यवस्था जरूरी है।

निताई के चले जाते ही नवकुमार ने कहना शुरू किया, 'घर मानो निगलने आ रहा है।'

कहने लगा, 'चार-चार कमरों की क्या जरूरत है ?'

जजीर लगा वह कमरा शूल-सा उसके कलेजे में चुभ रहा है, सत्य यह समझती है। इसीलिए एक दिन उसने नर्म स्वर मे कहा, 'कोई दूसरा डेरा देखें तो कैसा रहे ?'

'क्यों ? और एक डेरे की जरूरत है ?' नवकुमार खफ़ा हो उठा।

'ज़रूरत क्या है। ज़रा वायु-परिवर्तन ! और फिर इस डेरे का किराया भी तो कम नहीं है। इधर चीज़ों की कीमत आग होती जा रही है। उधर लड़कों की वही-किताब, स्कूल शुल्क बढ़ रहा है।'

'यह तो तुम्हारे लिए अच्छा ही है। एक आदमी दोनों जून एक-एक मुट्ठी भात के लिए मुट्ठी भर रुपया दिया करता था···'

सत्य कुछ बोले बिना उठ गयी थी। उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली—

ठीक है, अब नवकुमार से नहीं कहना, भवतोष मास्टर से भी अनुरोध नहीं करना, वह खुद ही पतवार थामेगी। नौकरानी के जरिए डेरे का इंतजाम करेगी। वह दस घर में जाती है। बहुत खबर रखती है।

सत्य का सोचना गलत नहीं हुआ।

मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट वाला डेरा पंचू की मां ने ही ठीक कर दिया है। मकान मालिक बहुत धनी आदमी हैं। खानदानी ! पहले जब उनका और भी बोलबाला था, उस समय अमले-फैलों के लिए बहुत-से निवास बनवा रखे थे। अब कर्मचारी कम रह गए हैं, इसलिए वैसे कुछ मकान किराए पर लगने लगे हैं।

पंचू की मां ने खबर दी। नवकुमार देख आया। असंतोष नहीं हुआ। घर छोटा तो था, पर अच्छा था। रास्ते के किनारे। भवतोष बाबू ने कुछ असंतुष्ट होकर कहा, 'बताया तो नहीं कि डेरा बदलने की जरूरत है ?'

नवकुमार ने घर के सिखावन के अनुसार कहा, 'जी, आप पर और कितना बोझा दूं ? हम लोगों के लिए तो आपके काम का अंत नहीं। जब नौकरानी से ही इसका जुगाड़ बैठ गया...'

'मेरे डेरे से जरा दूर हो गया, नहीं...'

भवतोष ने एक निःश्वास छोड़ा।

फिर भी डेरा बदला गया।

सत्य कुछ और स्वावलंबी बनी। बात-बात में मास्टर साहब का मुंह ताकने की आदत घटने लगी।

इस घर की लेकिन एक असुविधा थी। घरवाला है तो धनी, पर जात का छोटा। इसलिए ब्राह्मण पर बेहद भक्ति। पर्व-त्योहार आते ही कुछ न कुछ भेंट भेजते। पान-सुपारी, मिठाई, लालकोर की साड़ी।

लौटाना भी मुश्किल। लेना ही लेना भी मुश्किल। कहना शर्म की बात। नवकुमार लेकिन शर्म की नहीं कहता। कहता, 'इसमें इतना किन्तु क्यों ?' कहावत है, लाख भी हो तो बाम्हन भिखमंगा। तिसपर ये लोग सुनार-बनिया हैं। ब्राह्मण को दान देकर पुण्य कमा रहे हैं।

'तो क्या ! बदले में हम तो कुछ दे नहीं पाते हैं। लेने में शर्म से मेरा सिर झुक जाता है।'

'तुम्हारा सब उलटा ही है ! अरे, बदले में आशीर्वाद तो दे रही हो !'

'आशीर्वाद !'

सत्य ही-ही करके हंस उठी, 'हुं ! हमारे ही आशीर्वाद के इंतजार में तो अब तक बैठे थे ये। इनका यह राज-पाट हमारे ही आशीर्वाद से है ! जो भी कहो, मुसीबत है यह !'

'लोगों के लिए जो प्रार्थना का है, तुम्हारे लिए उसी मे मुसीबत, और लोगों को जिसमें डर होता है, उसमें तुम्हें आनन्द'। यही तो सदा देखता आया हूं। तुम्हें किस विधाता ने बनाया, यही सोचता हूं।'

ऐसी ही बातें अक्सर होतीं।

बीच-बीच में पंचू की मा कहती, 'बड़े घर की घरनी सदा कहा करती है—हां री, सभी तो मुझसे मिलने आती हैं, सात नम्बर डेरे वाली तो एक दिन भी नही आती। मैंने कहा, रानी जी, डेरे वाली तो निरी बच्ची बहू है। सो जो कहिए, एक बार आपको जाना चाहिए। सभी प्रजा जब जाती है'''।'

सत्य दप् से जल उठी। बोली, 'मगर मैं तो उनकी प्रजा नही हूं। किराया देती हूं, रहती हूं!'

'बात एक ही है!' पंचू की मा बोली, 'लगान दो तो रैयत, किराया दो तो किराएदार। रानी जी का भाव जरा गुसाया-गुसाया-सा लगा, इसी से कहती हूं। बड़े आदमी हैं न? रात-दिन खुशामद मिलती है, इसी से अहंकार है। सोचती है, सात नम्बर वाली खुशामद में क्यों नहीं आयी। किसी दिन जाने से यह गुस्सा जाता रहेगा।'

'फुर्सत कहां है!'

'हाय राम!' पंचू की मां को आश्चर्य रखने की जगह नही रही, 'इस गली के इसपार-उसपार। इतनी दूर जाने का समय नही है; तो फिर कहूं, आपको भी कम अहंकार नहीं है, दीदी जी!'

'तो समझ गयी?' सत्य हंस पड़ी।

'समझ गयी! समझे ही हुए हैं। मगर आपके भले के लिए ही कहती हूं। पानी में जब रहना है, मगर से मिलकर रहना ही ठीक है।'

'यह खुशामद-बरामद मुझ से नहीं होने की, मगर की चपेट सहनी पड़े, सो कबूल!'

'अह्-ह्, चपेट की बात नही! आप ब्राह्मण हैं, दुनिया में श्रेष्ठ! आपकी इज्जत के आगे पैसे की इज्जत? लेकिन यह कलजुग है! कलजुग में पैसा ही मोक्ष है! नही तो भला ग्यारह नम्बर वाली चक्रवर्ती-घरनी इस तरह से दत्त-पत्नी के पांवों तेल लगाती?'

'खैर! छोड़ो पंचू की मां! बड़े आदमी के यहां जाना मुझ से न होगा! यहां से डेरा-डंडा उठाना पड़े, सो भी'''।'

पंचू की मा यों औरत भली है। लाग-डाट में नही रहती। और शायद सत्य की इस तेजी से दबी रहती है। इसीलिए उसने बड़े घर की मालकिन से यह सब कहा-सुना नहीं।

काम चाहे नौकरानी का करे, पंचू की मां है लेकिन माली की लड़की।

उसकी बहिन-बेटी ही वहां फूल दिया करती है। उसकी वहां बड़ी कदर है। उसी नाते पंचू की मां वहां जाती-आती है।

और मालकिन की महफिल भी तो मालिन-तातिनों से ही जमी रहती है।

इसी से वह सोचती है, किसी दिन सत्य के जाने से शायद मालकिन का मन प्रसन्न हो। जाने में हर्ज भी क्या है? परन्तु सत्य परवाह नहीं करती। बोली, 'बड़ों का चौखट नहीं पार होना चाहिए! बाप रे!'

लेकिन सत्य को चौखट एक दिन पार करना ही पड़ा।

मकान मालकिन की रसोईदारिन और खास दाई आयीं। मालिक के नाती के अन्नप्राशन का न्योता कर गयी। कांसे की नयी रिकाबी में चार जोड़ा संदेश, और पीतल के नए लोटे मे कोई सेरभर तेल बरामदे पर रखकर बोली, 'नाती के मुंह में प्रसाद पड़ने का न्योता। सब का न्योता। घर में चूल्हा नही जले।'

सत्य ने पूछा, 'अन्नप्राशन कब है?'

'यही परसों!'

सत्य ने और भी अवाक् होकर कहा, 'उस दिन तो छुट्टी का दिन नही है! बाबू को दस बजे दफ्तर जाना पड़ेगा! चूल्हा जलाए बिना काम कैसे चलेगा? उतना सवेरे तो भोज-घर मे खाना नहीं मिलेगा!'

रसोईदारिन ने खरी आवाज में कहा, 'सो नहीं जानती! टोले के किसी घर से धुआ उठते देखें तो मालकिन खैर नही रहने देंगी!'

'तो फिर बाबू को उस दिन बासी भात खाना पड़ेगा!'

रसोईदारिन तो गाल पर हाथ रखकर अवाक् खड़ी रह गयी—'हाय मेरी मा, कैसी ग़जब की औरत है! रानी जी ने तो ठीक ही कहा, औरों के यहां तो सिर्फ नौकरानी के ही जाने से काम चल जाता, लेकिन बाम्हन दीदी, सात नम्बर में तुम साथ जाओ! बड़ी मिज़ाज वाली हैं! क्या पता, शूद्र के मुंह का न्योता न मानें!'

'तुम्हारी रानी मां तो बड़ी गुणवंती है, बिना देखे ही आदमी को पहचान लेती हैं!'

रसोईदारिन शायद कहने का मतलब नहीं समझ सकी। बोली, 'इसमें भी कोई शक है! जाने पर ही मालूम होगा! दया-दान का क्या कहना! वैसा ही रूप! जगद्धात्री प्रतिमा हो मानो!'

सत्य बोली, 'जरा रुक जाओ, लोटा-रिकाबी लेती ही जाओ!'

यह सुनकर रसोईदारिन और नौकरानी दोनों हंस पड़ी, 'हाय राम, वापस क्या ले जाऊंगी! यह तो बांटने के लिए ही हैं! एक ही आकार के ऐसे करीब एक हजार इसीलिए बनवाए ही गए है! लगता है, ऐसा कभी देखा नहीं है!'

सत्य ने दुहराया नही। लोटा-रिकाबी उठाकर रख ली। वह हंसी उसे छुरी-सी चुभती रही।

'देखा कैसे नही है। रामकाली चटर्जी की बेटी सत्यवती ने बहुत-कुछ देखा है। लेकिन यह कब और कैसे बांटा जाता है, नही जानती थी।'

सोचा, आफत है।

पाच रुपए में ऐसा खासा डेरा मिला तो चीटे की यह चिकोटी! अब उसके यहां गए बिना नहीं चलेगा! न्योता है!

रास्ता गाड़ी-पालकी से जाने का नही है, मगर ऐसे कामों में पालकी से जाने का ही रिवाज है। पंचू की मां ने कहा, 'ये कई बर्तन धो-धवाकर मैं कपड़ा बदल आती हूं, इतने मे आप तैयार हो लें, मुन्नों को भी तैयार कर दें!'

'मुन्ने तो अभी स्कूल जा रहे हैं!'

'हाय राम, ये लोग न्योता खाने नहीं जाएगे?'

'स्कूल से गैरहाजिर रहकर?'

पंचू की मां अवाक् होकर बोली, 'एक दिन स्कूल न जाने में प्रलय हो जाएगा? टोले का कोई भी लड़का आज स्कूल जाएगा? बीस दिन से दिन गिन रहे है सब! बड़े घर का न्योता है, जाने कितनी चीजें बन रही है। रोज-रोज वे चीजें आखों देखना भी नसीब नहीं होता!'

सत्य ने ज़रा रूखे स्वर से कहा, 'जब रोज़-रोज देखना नसीब नहीं होता, तो एक दिन देखने से कौन-सा राज-पाट मिल जाएगा। तू घर से हो आ, मैं अकेली ही जाऊंगी!'

'आपकी मति-गति जानने से रही! मै कहती हूं, बच्चे नही जाएंगे तो इतने लोगो का छन्ना भी तो जाता रहेगा! वे स्कूल से आकर भी तो जा सकते है! वहा तो साझ-सांझ तक खान-पान चलता रहेगा!'

'अरे बाबा, थमेगी भी तू?'

पान वाले डब्बे को कोट की जेब में भरते हुए नवकुमार ने कहा, 'बच्चों को ले ही जाती!'

'क्यों?'

'क्यों क्या! न्योता है!'

'नही! बड़ो के यहां नही जाना ही ठीक है। बच्चो की बुद्धि, वहा इतनी शान-शौकत देखकर अपने को तुच्छ समझना सीखेगा।'

'तुम्हारी बाते अजीब होती है! जाने खोपड़ी मे कैसे आती है! खैर! जाते समय एक रुपया साथ ले जाना! आशीर्वाद देना होगा न?'

सत्य की जुड़ी भौंहें नाच उठी।

'एक रुपया ! धत्त ! इतने दिनों से कपड़े, मिठाई की भेंट मिलती रही है, एक बार उसका बदला चुकाने का मौका मिल रहा है तो एक रुपये से क्यों !'

'तो क्या दोगी, गिन्नियों की माला ?' नवकुमार ने मजाक किया।

'गिन्नी की माला नहीं ! यह दूंगी !'

सत्य ने बक्स खोलकर एक चीज निकाली। मुट्ठी बंद करके बोली, 'बताओ तो क्या है ?'

'अंतर-मंतर नहीं जानता। दफ्तर का वक्त हो रहा है। दिखाना हो तो दिखाओ।'

सत्य ने मुट्ठी खोली कि सोना दमक उठा।

सोने का हार। पांचेक भरी से कम का नहीं।

नवकुमार हंसा—'हुं ! जी से दे सकोगी ?'

'बेशक ! मेरा जी इतना छोटा नहीं है !'

'पागलपन मत करो !'

'पागलपन नहीं, सचमुच ही दूंगी !'

'इतना बड़ा हार दे दोगी ? धनी से होड़ की साध ?'

'होड़ नहीं ! इज्जत बचाना ! हमें प्रजा कहते हैं न !'

'उनके सामने तुम्हारी इज्जत ! वे लखपति हैं !'

'हैं तो मेरा क्या !'

नवकुमार समझ गया, यह मजाक नहीं, सत्य है। खफा हो उठा। बोला, 'अकल मारी नहीं गयी हो तो कोई ऐसा काम नहीं करता। जहां एक रुपए से काम चल जाता, वहां इतना बड़ा सोने का हार ! यह काम घोर पागल ही करता है ! और सोना-दाना गंवाने का तुम्हारा अधिकार भी क्या ? मां को पता चले तो जिंदा छोड़ेगी ?'

सत्य ने कहा, 'यह तुम्हारी मां का नहीं है।'

'नहीं है ? मतलब ? तुम्हारे पिता ने जब सालंकारा कन्यादान किया…'

'यह गहना मेरे ब्याह के समय का नहीं है। तुम्हारी मां ने वह सब दिया भी नहीं है। इस बार जब नित्यानंदपुर गयी थी तो फुआ-दादी ने छोटे मुन्ना के नाम से दिया था।'

'दिया है तो क्या लुटाना होगा ? न-न, यह ख्याल छोड़ो !'

'फिर तो मैं नहीं जाऊंगी !'

'नहीं जाऊंगी ! वाह रे ! यदि तुम्हें उनसे होड़ ही लेनी है, तो फिर अपने लिए भी हीरा-मोती, बनारसी साड़ी का इंतजाम करो !'

सत्य ने कहा, 'बाम्हन की बेटी हूं ! शंख की चूड़ियां और लाल कोर की

साड़ी ही बहुत है !'

आखिरकार पंचू की मा के साथ वह उसी थाने में जाकर हाजिर हुई। कांसे की एक नयी रिकावी में वह हार रखा, साथ में थोड़ी-सी धान-दूव रख ली।

देखकर पंचू की मा भी हैरान रह गयी। बोली, 'बड़े-बड़े कुटुंबों की ओर से भी तो रुपया-दो रुपया ही आता है। और आप जैसी पड़ोसिन प्रजा के यहां से बहुत जोर तो चार आना-आठ आना। एक रुपया हुआ तो बहुत हुआ ! और आप···

'चल-चल !'

'बच्चा कहां है ?' सत्य ने एक से पूछा।

दासी थी शायद। क्योंकि पंचू की मां झट आगे बढ़कर भरमुंह हंसती हुई बोली, 'सुखदा की फुआ ! ले आयी अपनी मालकिन को। सात नंबर घर···'

'ओ !' वह भौहों के इशारे से बोली, 'उधरवाले दालान में ले जाकर बिठाओ।'

'बैठेगी ! पहले मुन्ने को आशीर्वाद···'

इतनी देर में सुखदा की फुआ की नजर हार पर पड़ी। बोली, 'तो ऊपर-तल्ले मे ले जाओ। मुन्ना मोक्षदा के पास है।'

मोक्षदा इस घर की खास नौकरानी है।

मालकिन के बाद का दरजा उसी का है।

घर की बहू-बेटियां तक उससे डरती हैं। दूसरी दाई-नौकरानियों के तो वह स्याह-सफेद की मालकिन। बच्चा उसी के जिम्मे है। क्योंकि आज बच्चे का सर्वांग गहनों से लदा है।

घुटा सिर, सारे बदन पर गहने, सलमा-चुमकी का कामवाला मखमल का कपड़ा—लड़का जोर-जोर से रो रहा था।

उपहारवाली थाली सामने रखे मोक्षदा बच्चे को गोद मे दबाए काली भैंस-सी बैठी थी।

पचू की मा को सत्य के साथ देखकर ऊसट गले से बोली, 'यही तेरी मालकिन है, न ? खैर, चरणो की धूल पड़ी आखिर !'

सत्य की भौंहें सिकुड़ आयी।

फिर भी उसने दूब-धान बच्चे के माथे पर देकर हारवाली रिकाबी सामने रख दी—उस थाली के पास जिसमें रुपए से अठन्नी और अठन्नी से चवन्नी की संख्या ज्यादा थी।

मोक्षदा की भवें भी सिकुड़ गयीं।

'यह क्या है पंचा की मां ?'

पंचा की मां बोली, 'मुन्ने के लिए आशीर्वाद है मोक्षदा दी! मालकिन ने कहा, बड़ों की बात ठहरी, एक रुपया लेकर क्या जाऊं, समंदर में बूंद ! इसी-लिए...'

'नाहक क्यों बक-बक कर रही है !' सत्यवती ने धीमे-से डांटा।

मोक्षदा ने एक बार सत्यवती को एड़ी-चोटी देखा, फिर हार को हाथ में लेकर घुमा-फिराकर देखा, उसके बाद सूखे गले से कहा, 'सात नंबर वाली, आप अपना हार उठा ले जाइए। इस घर के बच्चे गिल्लट का गहना नहीं पहनते !'

'गिल्लट का गहना !'

पंचू की मा का कलेजा बैठ गया।

अब तक इस नासमझ छोकरी की बेवकूफी पर वह मन ही मन हंस रही थी। सोच रही थी, शहरी बड़े आदमी को कभी देखा नहीं, इसीलिए भय से त्रास से बेअंदाजी भेंट ले आयी है। खैर लाए ! इससे बहिन-बेटी की मालकिन के सामने पंचू की मा का सिर ऊंचा होगा।

लेकिन यह क्या !

यह तो चेहरे पर कालिख पुत गयी !

छि:-छि: ! यह कैसी बेयकूफी ! दत्त परिवार के न्यौते में तू गिल्लट का गहना ले आयी !

वह प्रायः हक्की-बक्की-सी ताकने लगी। किंतु तब तक सत्य ने जवाब दिया। बड़ा तीखा, तेज, मृदु।

'तुम लगता है यहा नयी-नयी आयी हो ?'

'नयी ? मैं नयी आयी हूं ?' मोक्षदा आग-सी भनभना उठी, 'हाय रे, मेरी कौन रे ! आप आज नयी पधारी है, इसलिए मोक्षदा भी नयी हो गयी ! इसी घर मे काम करते-करते मैंने सिर सफेद किया ! ऐसा सवाल !'

'सवाल तुमने ही कराया। इतने दिनों से यहा काम कर रही हो और सोना नही पहचानती ?'

मोक्षदा ने अपने स्याह चेहरे को और भी स्याह करके कहा, 'आपकी बात तो बड़ी तेज-तर्रार है। पंचू की मां, इन्हें रानी मा के पास ले जा। लेकिन वहां जरा जबान पर लगाम रखकर बात कीजिएगा भले मानस की बेटी ! वह कुछ दासी-बांदी का इजलास नहीं है !'

पंचू की मा जरा आगे बढ़कर फुसफुसाकर बोली, 'मोक्षदा का बड़ा रौब है दीदी। उससे जरा खुशामद से बात करनी होती है। देखती हूं, मेरी बहन-बेटी कहा है। वह मिल जाए तो कलेजे मे जरा जोर आए। इस इतने बड़े

महल की सभी स्त्रियों के लिए फूल, माला, ज़री के फूल, पन्नी का चांदतारा—सब-कुछ वही देती है।'''अरी ओ शैल, कहां है'''

पंचू की मां टप् से आगे बढ़ जाती है।

और सत्यवती दालान के एक पाए के पास खड़ी-खड़ी घर की बहार, साज-सज्जा, खुशनुमा काम देखने लगी।

छत कितनी ऊंची !

गोया कहा रुकना है, यह भूलकर मनमाना ऊपर को उठ गयी है। उस छत में झूलते हुए बड़े-बड़े झाड़-फानूस ! सत्य ने गिन लिया। दालान के चार कोने में चार और बीच-बीच में एक-एक। कुल मिलाकर आठ।

शुरू से अंत तक दालान सफेद संगमरमर का, सिर्फ किनारे-किनारे काली कोर। पाए के बीच हर खिलान के ऊपर अनेक आकार के पिंजड़े, चिड़ियों के लिए डंडे। तरह-तरह की चिड़ियां। गज़ब ! इतनी चिड़िया किस लिए ? इतनी चिड़ियां पालकर क्या होता है ?

दालान के कोने-कोने पत्थर की एक-एक नंगी नारी-मूर्ति। उधर देखकर सत्य ने झट आखें फेर ली। बाप रे, बिलकुल जीती-जागती-सी लगती है। फिर फिक् से हंसी। सोचा, शायद हो कि हाड-मास की ही थी, हज़ारों लोगों की नज़रों के सामने ऐसे खड़े रहने की शर्म से पत्थर बन गयी।

बाहर से घर की इस खूबसूरती का अंदाज़ नही लगता। अंदर आने पर हैरान रह जाना पड़ता है। छुटपन में अपने पिता से नवाब-महल की बहुतेरी कहानिया सत्य ने सुनी हैं, उसके असीम कौतूहलभरे मन के अनगिनती सवालों के तीरों से परेशान होकर रामकाली को विस्तार से बहुत कुछ सुनाना ही पड़ता था। दत्त की हवेली में आने पर सत्य को उन पुरानी कहानियों की याद आयी। सुनी कहानियों पर मन और कल्पना का रंग चढ़ाकर अपनी धारणा की दुनिया मे उसने ऐसी ही तसवीर बना रखी थी।

सोचा, उफ्, यह तो बिलकुल नवाबी शान !

'चलिए-चलिए,' पंचू की मां हांफती हुई आयी, 'इस समय भीड़ ज़रा कम है।'

सत्य ने धीमे से पूछा, 'घर में इतना बड़ा आयोजन, लेकिन इतने बड़े दालान में लोग क्यों नहीं नज़र आते ? घर की स्त्रिया ही कहा हैं ?'

'हाय राम !' पंचू की मां ने अचरज की चरम अभिव्यक्ति के लिए गाल पर हाथ रखा।

'क्या हो गया, मूर्च्छित हो पड़ी !'

'मूर्च्छित हो पड़ने जैसी बात ही तो कही। यह कुछ आप-हम जैसे ग़रीब-

गुरबों का घर है कि पोते के अन्नप्राशन में दादीजी कमर में फेंटा बांधकर काम करती फिरेंगी ? इस घर की स्त्रियां निचले तल्ले में उतरती भी हैं ?'

'नीचे तल्ले मे नहीं उतरती ?' सत्य हंस पड़ी—'क्यों, पैरों में गठिया है, न ?'

'हंसाइए मत ! निचले तल्ले में उतरने की उन्हें पड़ी क्या है ? बारह-गंडे दासी-बांदी नही लगी हैं ? फिर कितनी अबीरा विधवाएं यहां पलती हैं, वही काम-काज करती हैं। फिर सरकार तो हैं ही ! हां, बिलकुल ही नहीं उतरती, सो नहीं ! पर्व-तेहवार में ठाकुर दालान तक आती हैं। उसके लिए महल के अंदर से अलग ही सीढ़ी है। इधर जो है, यह न सदर है, न अंदर ! दोनों के बीच-बीच ! लोग बाग ? लोग-बाग इधर खास नहीं हैं। भीड़ देखनी हो तो जाकर अंदर के आगन में देखिए। जिस पक्के के लम्बे चूल्हाघर में पक-चुक रहा है, नीचे मछेरिनें मछली बना रही है। भगवान् जाने, कितने मन मछली ! हंसियां देखकर गश आ जाता है। घुमा-फिराकर सब दिखा दूंगी। मैं शैल की मौसी हूं, इसलिए मुझे कोई कुछ नही कहता। और, बोलेगा भी क्यों, मैं कहूंगी, मेरी मालकिन हैं ! गांव-घर की है, ऐसा साहबी तौर-तरीका, शहरी रंग-ढंग कभी देखा नही है न, इसीलिए···'

दालान के इसपार- उसपार होने में बातें हो रही थीं। तीन हिस्सा पार करके छोर पर सीढ़ी, सीढ़ी के करीब पहुंच भी चुकी थीं कि अचानक खड़ी होकर सत्य ने दबे गले से कहा, 'पंचू की मां !'

'क्या हो गया ?'

'देख, बोलना जब नहीं जानती, ह्रस्व-दीर्घ की जब जानकारी नहीं है, तो ज्यादा बोला मत कर !'

'हाय राम, बोलने में भूल कब हुई ?'

'वह अक्ल हो, जब तो समझेगी। खैर, मैं कहे देती हूं, मेरे बारे में खामखा ज्यादा बक-बक मत करना। जिस काम के लिए आयी है, वही कर !'

'बाप रे ! मिजाज में आप भी राजा-रजवाड़ों से कुछ कम नहीं ! इनके घर-द्वार, बैठकखाना, बाबुओं का दबदबा। एक दिन शहर कलकत्ता में ऐसा था कि सुना है, खास विलायती साहब तक देखने आते थे। और आप क्या तो···'

'हां मैं ऐसी ही हूं। अरे बाप रे, यह कौन ?'

सत्य यकबयक रुक गयी। जरा आगे बढ़कर गौर किया और धीमे से हंसकर बोल उठी, 'जरा मजा देख लो, कौन कहेगा कि यह वास्तविक सिपाही नहीं है ?'

पंचू की मां ने जरा गौरव का अनुभव किया, 'खैर, घमंडी को समझ आयी ! माना कि अवाक् हुई।'

सीढ़ी से ऊपर उठने की ऐन जगह पर कंधे पर बंदूक लिए जो सिपाही वीर के ढंग से खड़ा है, उसे देखकर पहले दिन पंचू की मा भी घबड़ाकर दस डग पीछे हट आयी थी और नाम जप करने लगी थी। यह देखकर 'शैल की हंसी की मत पूछो। पंचू की मा को वही हंसी हंसने को जी चाह रहा था, लेकिन औरत यह बड़ी बदमिजाज है, इसी से हिम्मत नही पड़ी। सिर्फ मुसकराकर बोली—'देख लीजिए! जितना देखेगी, उतनी ही हैरान रह जाएंगी। इनके एक कुटुंब के यहा सौगात लेकर गयी थी। कहूं तो यकीन नहीं करेंगी, उनके बगीचे में फुहारे के पास ऐसी एक औरत की मूर्ति खड़ी है कि देखकर शर्म के मारे जीभ काटकर भाग जाना पड़ता है! मैं तो बोल भी पड़ी थी, दईमारी का मरण, ऐसे बड़े आदमी के यहा बे-वस्तर होकर नहाने क्यो आयी है? सफेद संगमरमर की बनी थी न, मैंने समझा, मेम बाई जी होगी! सो मेरी बात सुनकर हंसते-हंसते एक दाई के हाथ से मिठाई की टोकरी ही छूट गयी। मिठाइयां सड़क पर लुढ़कने लगी।'

सत्य ने लेकिन हंसी के इस नाटक मे हिस्सा नही लिया। ज़रा सख्त गले से कहा, 'वैसी मूर्तियो की यहा भी तो कमी नही देख रही हूं! मुझे भी तो शर्म से जीभ काटनी पड़ी। यही शहर के बड़े लोगो के घर की बहार है! इनकी रुचि की बलिहारी! पैसे है, देवी-देवता की मूर्ति बनवाकर लगाइए। नही, सो यह असभ्यता! बाप-बेटा, मा-बेटी को साथ-साथ इधर से जाना-आना नही पड़ता? शर्म नही लगती?'

पंचू की मा सत्यवती के निर्बोध नीतिज्ञान पर अवहेलना मिली परितृप्ति की हंसी हंसकर बोली—'आखिर यह सब-कुछ जो-सो लोगो का किया तो नही है। यह सब खास विलायत के साहब कारीगरों की बनायी हुई है। इसकी क़दर ही कुछ और है!'

'अच्छा! खैर! क़दर के नमूने तो खूब देख लिए। अब चल तो न्योता पूरकर घर पहुंचे तो जान बचे!'

सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते पंचू की मां ने फिस-फिस करके कहा, 'कहने से आप सुनेंगी नही, फिर भी अपना फर्ज मैं अदा करूं, आप लाख बाम्हन की बेटी हैं, पर मालकिन को ज़रा आदर-मान दीजिएगा। उन्हे तो जुड़े हाथ ही देखने की आदत है, इसका व्यतिक्रम देखकर नाराज हो जाएगी।'

सत्य फिर ठिठक गयी। वैसे ही तीखे गले से कहा, 'ज़रा दिखा ही दे, जुड़े हाथ कैसे करने होगे? या कि गले में आंचल डालूं? धन्य है पैसे की महिमा! मैं पूछती हूं, इतना जो इन लोगो का स्तोत्र पढ़ती है, तेरी हालत कुछ सुधरी? बर्तन मलकर तो पेट पालती है। हाथ भगवान के सामने जोड़ाकर, आदमी जैसे आदमी को जोड़ाकर, पैसे के सामने क्यों मरने जाती है?'

सत्य बुद्धिमती है। फिर भी सत्य निरी नासमझ है। उसने जिस मरने की बात कही, वह मरना क्या सिर्फ पंचू की मां का ही है? वैसा मरने कौन नहीं जाता? उस मरण-सागर में कौन नहीं डूबना चाहता?

नहीं तो चक्रवर्ती की बीवी दत्त-घरनी के पैरों हरदम तेल क्यों लगाती है? ये दत्त जात के सुनार-बनिया है, इनके हाथ का पानी नहीं चलता, यह क्या नहीं जानती है वे?

सीढ़ियां चढ़कर सत्य जब बड़ी मालकिन के दरवाजे पर पहुंची, तो चक्रवर्ती की पत्नी विनीत विनय से, चेहरे पर हाथ जोड़ने की भंगिमा निखारकर कह रही थीं, 'वही तो कह रही हूं रानी जी, आप जैसी ऊंची निगाह कितनों के है?'

सत्य के आकर खड़ी होते ही बाधा पड़ी। अंदर जो भी थीं, सबकी नजर उसपर पड़ी। मुसाहिब का स्त्रीलिंग क्या होता है, पता नहीं, यदि कुछ होता हो तो दत्त-पत्नी की ये सब वही है। वही सवेरे से यानी जब से दत्त-पत्नी सभा लगाए बैठी हैं, तब से ये सब उन्हें घेरे बैठी हैं और चाटुकारिता की होड़ लगाए हुए है।

काम-काज के दिन दत्त-पत्नी ऐसे ही जमकर बैठती हैं, या दूसरे बड़े लोगों की पत्नियां भी बैठती है—चाटुकारों से घिरी-घिराई। जो आमन्त्रिताएं आती है, भोजन के पत्तल पर बैठने से पहले एक-एक, दो-दो करके आकर भेंट कर जाती है। ये आदमी पहचानकर वजन के मुताबिक बात करती हैं।

यहां भी आज वही पर्व चल रहा था।

सत्य ने सारे दृश्य पर एक बार नजर फेर ली।

देखा, बड़ा-सा चौकोर कमरा, सतह शतरंज के खानों-सी—सादे-काले चौकोर पत्थरों की। समूची दीवार पर कालापन लिए हुए एक हरा रंग, नीचे से तीनेक हाथ ऊंचाई पर एक पंचरंगा नक्शा। छत से झूलते झाड़-फानूस। खिड़की-दरवाजे बेहद चौड़े और ऊंचे, उनमें खड़खड़ी वाले पलड़े, नीचे फीके नीले रंग के कांच।

दीवाल के किनारे-किनारे आलमारी, मेज, स्टैंड वाला विशाल आईना, खड़े आकार की घड़ी। आलमारी के सामने मेज पर दीवाल के ब्रैकेट में तरह-तरह के खिलौने, टाईमपीस, फूलदान, ऊंचाई पर दीवाल में तैलचित्र।

इतना बड़ा कमरा, तमाम चीजों से भरा। कमरे के ठीक बीच में एक पलंग, पलंग की गद्दी प्रायः एक हाथ मोटी, धप्-धप् धुली एक साफ चादर गद्दी के नीचे डालकर तनी हुई-सी बिछायी। उसी पलंग पर चारों तरफ तकिया डाले घर की बड़ी मालकिन सफेद हाथी जैसा शरीर लिए बैठी थी।

बड़ी मालकिन विधवा हैं, यह सत्य को मालूम न था। मगर यह कैसी

विधवा ? सत्य के मन में ज़ोरों का प्रश्न। यह कैसा साज-सिंगार ! दर्शकों की दृष्टि को दुखाने वाली चंद्रकोना की बारीक सफेद साड़ी, उसके आंचल के कोने में कुंजियों का झब्बा, सामने का बाल अलवर्ट फैशन का, पीछे बरी जैसा खोंपा।

हाथ का निचला हिस्सा खाली, बाह पर खांटी सोने के मोटे-मोटे प्लेन तागे। गले में हार की लड़ियां। पास में चांदी के डब्बे में पान।

पलंग के किनारे खड़ी कोई दासी या आश्रिता एक झालरदार पंखे से हवा कर रही थी। पलंग के नीचे पांव के पास एक छोटी-सी चौकी पर सोने-सा झकमक पीतल का पीकदान। उम्र के हिसाब से और मर्यादा के लिहाज से कोई तो बड़ी मालकिन के पास ही पलंग पर बैठी, कोई पलंग का सहारा-भर लिए किनारे, कोई-कोई पलंग के आस-पास खड़ी। उनमें सधवा, विधवा, वयस्का, तरुणी—सब।

मन कैसा तो विमुख हो उठा। उसने सोचने की कोशिश ज़रूर की कि जहन्नुम में जाए, कलकत्ता शहर का अगर यही चाल-चलन है, तो मेरा क्या ? लेकिन कोशिश कारगर नहीं हुई। मन उस मोटा तागा वाले बच्चों के बगल-तकिए जैसे मोटे और सूने हाथों को ताकते हुए सिटपिटा रहा।

बड़ी मालकिन ने आंखों का कैसा तो इशारा किया। इशारा करना था कि एक ने झट उगालदान उठाकर उनके मुंह के सामने रखा। मालकिन ने पिच् से एक बार थूका। कहा, 'वह कौन आकर खड़ी हुई री ? पहचान नहीं रही हूं !'

पंचू की मां ने आगे बढ़कर कहा, 'जी, आपके सात नम्बर वाले घर…?'

'ओ ! जभी सोचूं, पहचान क्यों नहीं पा रही हूं ? कभी आयी तो नहीं है न ! अच्छा, आगे आओ ! पैरों की धूल दो !'

पैरों की धूल नाम की चीज खुद से दी जाती है, यह अभिनव बात सत्य ने अपनी जिन्दगी में यही पहली बार सुनी। अपने जाने हुए जगत में उसे यही मालूम है कि उसे लेने की जिसे इच्छा होती है, वह आकर सिर झुकाकर ले लेता है।

किंकर्त्तव्य विमूढ़-सी खड़ी रही वह।

'अरे भई, दो !'

एक कोई जोर से बोल उठी, 'पैरों तले से जरा-सी धूल लेकर इनके माथे पर दे दो !'

सत्य ने गंभीर होकर कहा, 'पैरों में धूल नहीं है !'

पैरों में धूल नहीं है !

यह भी कोई बात हुई !

फिर जिस चीज की दत्त-पत्नी ने याचना की—सोना-दाना नहीं, निहायत नाचीज-सी चीज। उस चीज की याचना को इस तरह से ठुकराया जा सकता है, यह सोचने से परे है !

दत्त-पत्नी ने गाल पर हाथ रखकर किसी प्रकार से विस्मय और अवहेलना के भाव को कम करके व्यंग्य की हंसी हंसकर कहा, 'कैसे तो कहते है न, अभागा अगर चाहे, सागर सूख जाए—मेरे भाग्य में देखती हूं, वही हुआ ! जरा-सी पद-धूलि भी दुर्लभ हो गयी !'

सत्य ने अवाक् होकर आकार-अवयव वर्णित भेद-पिंड के उस मुखड़े की ओर देखा। मास के उस लौंदे से उम्र का पता लगाना मुश्किल है, लेकिन जो पोते का अन्न-प्राशन कर रही हैं, वे कुछ बच्ची तो नहीं, सत्य की नानी की उम्र की क्यों न होंगी ! सत्य से उनकी यह किस ढंग की दिल्लगी।

आंधी के आगे जूठे पत्तल जैसी एक महिला बोल उठीं—'आदमी को समझ-कर बात करनी चाहिए। कहने के पहले डूबकर देख लेना चाहिए कि किसे क्या कह रही हूं !'

कहना न होगा, सत्य चुप थी।

तो भी जैसा उसका स्वभाव है, जबड़े की पेशियां सख्त हो उठीं।

'सोने के हार से न्योता तुम्हीं ने पूरा है न ?'

नर्म गले से सत्य ने कहा, 'इसे न्योता पूरना क्यों कहती हैं ? मुन्ने को आशीर्वाद के सिवाय और क्या है ?'

सो जो भी हो—दत्त-पत्नी ने असंतुष्ट होकर कहा, 'वह हार तुम्हें वापस ले जाना होगा !'

सत्य ने कहा, 'बच्चे को दी हुई चीज ले जाकर क्या करूंगी ?'

'क्या करोगी, सो तुम जानो ! लेकिन परजा के दान का सोना हम नहीं लेते !'

फिर वही 'प्रजा' !

सत्य के सर्वांग में बिजली की एक लहर-सी दौड़ गयी, फिर भी किसी तरह उसने अपने को जब्त किया। कहा, 'फिर तो प्रजा-पाठक लोगों को आपको न्योता ही नहीं देना चाहिए। न्योता पूरे बिना कौन किस काम में खाता है, कहिए ? और ब्राह्मण भला आशीर्वादी लौटा सकता है !'

'ब्राह्मण !'

दत्त-गृहिणी जरा मुरझायी।

'हाय मेरी मा, बड़ी रूखी-रूखी बात ! जलमुंही मोक्षदा ने फिर तो ठीक ही कहा था। खैर, तुम्हीं जीती। अतिथि नारायण हैं। जो कहोगी सुनना ही पड़ेगा। लेकिन यह काम तुम्हारा अच्छा नहीं हुआ। ब्राह्मण की लड़की हो,

तुम्हारे चरणों की धूल हमारे माथे की शोभा है। मैं तुम्हें कुछ कहूंगी नहीं, सिर्फ इतना ही कहूंगी, पोठिया भी मछली है, रोहू भी मछली है। मगर तो भी उन्हें बराबर कौन कहेगा, कहो ? खैर, अतिथि नारायण तो कहा न ! अरी ओ सुवास, इन्हें साथ लेजाकर ब्राह्मणों की पंगत में बिठा दो !'

यानी बोलने की यही इति।

सत्य धीरे-धीरे वहां से हट आयी। हठात् उसे लगा, कहीं जैसे उसकी हार हुई है।

तो, वह क्या नहीं खाएगी ?

चली जाएगी ?

कह देगी, तबीयत खराब है ?

लेकिन कुछ कहने से पहले ही दत्त-गृहिणी बोली, 'अपने बच्चों को नहीं लायी ?'

'नहीं !'

'क्यों ? सबका न्योता नहीं किया गया था, पूरे परिवार का ?'

सत्य की जुडी भौहें आदत के मुताबिक सिकुड़ आयी और गले में धीमा कठिन स्वर लौट आया। उसी स्वर में उसने जवाब दिया—'जी नहीं, न्योते में कोई त्रुटि आपकी ओर से नहीं हुई है। लेकिन पूरे परिवार को आकर सिर मुड़ाने का समय न हो तो क्या उपाय है ? खैर, मैं आयी हूं। इसीसे हो जाएगा। कहावत है, माथे पर पानी डालने से सारे शरीर पर पड़ता है।'

कमरे में जो भी थीं, सात नंबरवाली की ऐसी हिमाकत की बात सुनकर दंग रह गयी और भावविहीन उस मेदपिंड में भी एक कठोर भाव का कौतुक निखरा। वह भी आखिर दत्त-परिवार की बड़ी मालकिन ठहरीं। सो अपने को सम्हालकर बोलीं, 'बाम्हन दीदी की बातों की कसावट तो खूब है ! पढ़ी-लिखी हैं, क्यों ! बहुत अच्छा ! इसके पहले देखा तो नहीं था न, देखकर बड़ी खुशी हुई। खैर ! अच्छी तरह खाओ और बच्चों के लिए छन्ना ले जाना।'

सुवास या कौन थी, सत्य उसके साथ चली जा रही थी कि मुंह फेरकर खड़ी हो गयी। तीखी हंसी हंसकर बोली, 'मैं गवई गाव की लड़की हूं, शहरी तौर-तरीके का कुछ नहीं जानती। न्योता देकर अपने यहां अपमान करना ही क्या कलकत्ता का रिवाज है ?'

'हाय राम ! यह कैसी बात !'

दत्त-पत्नी के दूध-से सफेद मुखड़े पर भी स्याही-सी पुत गयी। लड़खड़ाकर बोली, 'तुम लोग श्रेष्ठ कुलीन हो, सभी बाम्हनों में श्रेष्ठ। जिसे जात गेहुंअन कहते हैं। तुम्हारा अपमान करे, इतनी मजाल किसमें है बाम्हन दीदी ? यदि भूल-चूक हुई हो तो अपने गुण से माफ करके मेरे मुन्ने को आशीर्वाद देती

जाओ !'

सत्य ने स्थिर स्वर से कहा, 'आशीर्वाद तो हर-हमेशा करूंगी। किंतु मुझे जरा जल्दी फुर्सत देनी होगी। जल्दी है !'

शूद्र के यहां ब्राह्मण का भोजन।

दोपहर में मोटी-मोटी कुछ पूरियां, कोहड़े की अलोनी तरकारी, तला हुआ अलोना बैंगन। हा, मिठाइया हैं, दही है, खीर है।

सत्य के लिए कोई भी खिचाव का न था। तो भी खाकर दाप मिटाकर उसने पंचू की मा की तलाश की। मगर कहा पंचू की मा ! वह तो ढप की महफिल मे जा बैठी थी। तीनतल्ले पर बड़े-से हॉल मे वह महफिल थी। पोते के अन्नप्राशन में ढप-कीर्तन का इंतजाम किया है दत्त-गृहिणी ने।

ढप की महफिल में मानदा ने नकियाए सुर में किसी गीत का श्रीगणेश कर दिया था।

पंचू की मा की खोज मे उसकी बहिन-बेटी शैल आयी।

मैला रंग, पहनावे मे काली फीताकोर की साड़ी, सफेद धप्धप् पतली मांग के दोनो ओर पत्ते की तरह चिकनाए बाल, बदन पर कहीं गहना नही, तो भी लगता है, खूब बनी-ठनी है तो ! यह शायद उसकी साफ-सुथरी बनावट की वजह से लगता हो, या पान से रंगे होठों की वजह से लगता हो !

शैल ने सुना और अवाक् हो गई—'हाय राम, चली जाएंगी, ढप नही सुनेंगी ?'

'नहीं !'

'ताज्जुब ! सुनने के लिए लोग जान देते हैं और आपकी ऐसी उपेक्षा ? शायद सोचती हो कि सुनने से कुछ देना पड़ेगा। लेकिन चाहे दीजिए, चाहे न दीजिए, यह अपनी इच्छा पर है।'

'तुम पंचू की मां को बुला दोगी ?'

'बाप रे ! देती हूं, बुला देती हूं। मौसी ठीक ही कह रही थी···'

'सुनो, अपनी मौसी से कहो, एकबारगी एक पालकी ही बुलाती आए !'

'पालकी ! हाय मेरी मां !' शैल पान लगे होंठ को अजीब ढंग से बिचकाकर उधर चली गयी।

तीखे और महीन गले का गीत यहा से भी सुनायी पड़ रहा था। यहीं से क्या, मुहल्ले के हर घर से सुनाई पड़ रहा था। सुर के लिए उतना नहीं, गले के लिए ही मानदा मशहूर है। धारवाला सुरीला गला, गीत बंद होने पर भी हवा में गूंजता है।

सत्य ने कभी ढप-कीर्तन नहीं सुना।

बचपन मे संझले दादाजी के साथ कभी-कभी हरि-सभा में कीर्तन सुनने

जाया करती थी। वह और तरह का था। उसमें गीत से ज्यादा झाल-मृदंग की कसरत थी। और भी छोटी थी तो पिताजी के साथ हालीशहर या कहा तो काली-कीर्तन सुनने गयी थी। कुछ-कुछ याद आता है। फिर कहां ?

बारुईपुर में पान की खेती बहुत है, गान की नहीं।

आज अगर मिजाज इतना बिगड़ नहीं गया होता, तो सत्य दो घड़ी कीर्तन सुन जाती। नहीं हुआ। मन-माया ऐसा हो गया।

अपने घर के छज्जे से खड़ी होकर सुनने की कोशिश की। सिर्फ सुर के सिवाय और कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा। एक निःश्वास छोड़कर छज्जे से हट आयी वह। निःश्वास गीत नहीं सुन पाने का नहीं था, उसका कारण दूसरा था।

दुनिया में पैसे की प्रधानता और पैसे की गरमी देखकर उसका मन उदास हो गया था। कैसा अजीब है यह कलकत्ता शहर! इसी शहर की छुटपन से वह खाहिश करती आयी है!

उदास बैठी-बैठी उसने यह भी सोचा, एक ही घर को देखकर, एक ही आदमी के रवैये को देखकर ऐसी निराश क्यों हो रही हूं मैं ? इतनी बड़ी पुरी में कितने तो लोग हैं, कितना रंग-ढंग। इसी शहर में राजा राममोहन थे, विद्यासागर हैं, बंकिमचन्द्र हैं, ठाकुरवाड़ी के महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर हैं, और भी कितने हैं।

भवतोष मास्टर ने उन सबकी जीवनी, उनकी महत्ता की कितनी ही बातें सत्य को सुनायी हैं, उन सबको भुलाकर सत्य दत्त-गृहिणी से कलकत्ता का विचार कर रही है।

मन से यह सब-कुछ झाड़-फेंककर उठ खड़ी हुई। आज पंचू की मा नहीं आएगी। उसका भी सब काम खुद ही कर लेना होगा।

खास कुछ कर भी नहीं पायी कि दुमदाम करते हुए बच्चे स्कूल से लौटे।

'खूब न्यौता खाया मा, न ? दोनों एक ही साथ बोल उठे—'भीषण !'

सत्य हंस पड़ी। बोली, 'हां ! सिर्फ भीषण ! बिल्कुल विभीषण !'

'ले, स्कूल के ही कपड़े से सब-कुछ फतह मत कर ! मुंह-हाथ धो !'

'मिठाइयां हैं ? खाजा, गाजा, इमरती ? हम सोचते-सोचते आ रहे हैं।' उनकी आवाज में असहिष्णुता थी।

सत्य के मन में माया-सी हो आयी। लड़कों का हाल देख लो। तमाम दिन पढ़ना भूलकर खाजा-गाजा की ताक में हैं। लेकिन अभी माया से काम नहीं चलने का। बोली, 'हाय राम, सपने देख रहा है क्या ? वह सब कहां से लाऊं मैं ?'

उन लोगों ने इस पर ध्यान नहीं दिया, मां का हाथ पकड़कर लटक गए—

'इस्! चालाकी! उस घर से छन्ना नहीं आया है?'

'छन्ना!'

सत्य का मायालु मुखड़ा कठिन हो आया। पूछा, 'छन्ने की किसने कही?'

'वाः! दफ्तर जाते हुए बाबूजी ने कहा था, तेरी मां कितना छन्ना लाएगी, देखना!'

'ग़लत कहा! या मजाक किया होगा।'

लेकिन तुड़् का मन मानने वाला न था। वह बोला, 'तुमने हमें खामखा ही स्कूल भेजा। आज कोई स्कूल गया है भला? टोले के उन लोगों ने भर-भर पेट खाया और हर आदमी छन्ना भी ले आया। और हम—हूं-ऊ-ऊ—सुना, सोलह प्रकार की मिठाई बनी थी!'

सत्य ने कहा, 'यह कैसे जाना? दफ्तर जाते हुए यह भी कहा था?'

'नहीं! बाबूजी को क्या मालूम, पंचू की मां ने कहा है।'

'ओ! यानी तुम्हारे दिमाग में आज छन्ना की ही बात चक्कर काट रही है। छिछोरे की तरह छन्ना क्या लाना? चल, घर मे जो है, खा ले!'

उम्र में बड़ा होने से क्या हुआ, तुड़् मुन्ना से भोंदू है। इसीलिए वह एका-एक कह उठा, 'मुझे मूढ़ी-मुड़की नहीं चाहिए। पंचू की मा ने ठीक ही कहा है...'

आप अपनी ही बात से सिहर उठा वह।

लेकिन सत्य चुप रहने देनेवाली नहीं। वह जिरह से सारी बातें पेट से निकाल लेने की कोशिश में लग गयी। तुड़् काठ-सा हो रहा, मगर मुन्ना बोल उठा, 'पंचू की मां ने कहा, एक दिन स्कूल हर्ज होता तो कौन-सा राज लोप हो जाता! ऐसे भोज से बच्चों को वंचित कर दिया! मा है कि राच्छसी...'

'क्या? क्या कहा? फिर से कह तो?'

सत्य का मानो होशो-हवास जाता रहा। अपने कानों पर उसे यकीन नहीं आ रहा था। आखिर यही हुआ! ऐसे बन रहे हैं उसके बच्चे! इन्हीं के लिए इतना हंगामा करके वह यहां आयी!

उसकी तो दिली ख़ाहिश थी, उसके बच्चे सभ्य होंगे, संस्कृत होंगे।

लेकिन सत्य ने बच्चो को पीटा नहीं। सिर्फ एक बार कड़ाई से पूछकर चुप हो गयी। चुप ही बैठी है। बच्चो ने मूढ़ी-मुड़की भी नहीं खाई, यह भी याद नहीं रही। वह सिर्फ यही सोचने लगी, घर-बाहर आफत, वह किस-किस के चंगुल से बच्चों को बचाए?

जरा देर मे नवकुमार आया।

आड़ी नजर से उसने एकबार सत्यवती के जलद गंभीर चेहरे को देख लिया। उसके बाद इशारे से मुन्ने को बाहर बुला ले गया। उससे पूछा कि

सत्य को क्या हुआ है ?

हाव-भाव ठिकाने का नही, यह समझ में आने पर नवकुमार इसी तरह से पूछताछ कर लिया करता है। मुन्ने से ही पूछता है ज्यादा करके। जानता है, तुड़ू भोंदू है। ठीक से बता नहीं पाता।

कारण सुनकर नवकुमार समझ नहीं सका कि मामूली-सी बात पर इतना विचलित होने का क्या हो गया ?

लड़कों ने तो मा को राक्षसी नही कहा, 'कहा है पंचू की मां ने।' सो अंदर जाकर सूखी हंसी हंसकर बोला, 'हुआ क्या है ?'

सत्य उसी तरह से बैठी रही, बोली नही।

नवकुमार ने कहा, 'बाप रे, सारी जिंदगी एक ही जैसी बीती ! तुम्हारे काठ-कठिन स्वभाव के लिए लड़कों को इतनी सज़ा ! स्कूल से उछलते-कूदते लौटे कि बड़े घर का भला-बुरा आज खाएंगे और यहां फाके की सज़ा ! बलिहारी !'

फाके की सज़ा ? यानी ? अरे हां, बच्चो को खाना नही दिया। पल मे ही मन अंदर ही अंदर गलकर हाय-हाय करने लगा। बच्चो को खाना दिए बिना बैठी है ? गुस्से में ख्याल ही नही हुआ। इस् ! देखती हूं, पंचू की मा ने निहायत बुरा नही कहा। नन्हे-नादान हैं। उन्हें भले-बुरे की समझ ही कितनी है ? जबकि उनका इतना बड़ा बाप ही उनकी नजरो के सामने बड़े आदमी के घर के खाने की मोहमयी तस्वीर धर देता है ? गुस्सा जाता रहा। मन मे हाय-हाय होने लगा, तो भी सत्य मुह से न हारी। गंभीर होकर बोली, 'मामूली मूढ़ी-मुड़की न ही दी तो क्या ? बच्चों से खाजा-गाजा की कहो न, खूब पेट भरेगा !'

बोली तो ! जान बची।

नवकुमार का डर बहुत कुछ गया।

सत्य ने जब मुह खोला, तो समझिए कि दशा बिलकुल जान लेवा नही है।

बिना बोले जबड़े की हड्डी को सख्त किए बैठे रहने से ही नवकुमार बड़ा डरता है। दफ्तर मे नवकुमार की सूझ-बूझ और कर्म कुशलता की इतनी तारीफ है, नीचे के लोग उसकी भय-भक्ति करते है, वहां तो अपने को एक आदमी-सा लगता है, यहा आते ही जाने क्या हो जाता है ? वही बेबसी !

खैर, सत्य ने ज़बान खोली है।

हिम्मत बटोरकर बोला, 'अहा, भूख से तड़प गए है बेचारे ! दफ्तर और स्कूल से लौटने पर जिस ज़ोर की भूख लगती है, जानता हूं न !'

यानी इसी मौके से उसने अपनी बात भी कह दी।

अब गुस्सा किए रहना नहीं चल सकता। सत्य उठी।

और नवकुमार ने भी देखा, ज्यादा समय नहीं है, बोल उठा, 'इतना गुस्सा क्यों दिखाया, मैं पूछता हूं, छन्ना से इतनी नफरत कैसी ? हम लोग तो बाबा इस छन्ने के लोभ से ही भोज खाने को जाया करते थे। छोटा-सा पेट ! खा ही कितना सकता था ? घर लौटकर दूसरे दिन उसी छन्ने का···'

'रहने भी दो ! रक्खो अपना किस्सा ! जाकर मुह-हाथ धोओ !' कहकर सत्य चली गयी। मन अचानक ही नर्म हो आया। सच तो, इसमें बिगड़ने का क्या था ? अपने बचपन में वह भी तो···। उसी के नैहर मे क्या चलन नही था ? कितने सकोरे, हांड़ी सजी-सजाई रखी रहती थीं। खा-पी चुकने के बाद लोग ले जाते थे। रामकाली खुद खडे रहकर निगरानी करते थे, हर आदमी को ठीक-ठीक मिल रहा है या नहीं। साथ के नौकर, चरवाहे, जन-मजूरे भी नहीं छूट पाते। और फिर सत्य भी तो फुआ-दादी के साथ न्योते में इस-उस घर गयी है। लोगों ने दिया है। लिया नही, सो भी नही।

आकर्षण का एक उत्सव और था। अठकौड़ी ! गांव में किसी के यहां बच्चा पैदा होता कि आठवें दिन दूसरे घर के बच्चों की सूप पीटने के लिए बुलाहट होती थी। यह सम्मान अवश्य सिर्फ लड़कों का था !

हा लावा-मुडकी से लड़किया जरूर वंचित नहीं होती थीं। सख्त करके बधी वेणी, कमर में कसा डोरिया साड़ी का आचल और टोले को चौकन्ना करते हुए जाने वाला अपना वह चेहरा मानो अपनी आखों में सत्य ने देख पाया।

कहा, तब तो अपने या किसी और को छिछोरा नहीं लगता था ? क्यों नही लगता था ? आज ही क्यों···

पति को, बेटों को खाना देते-देते उसने इसका कारण सोचा, एक निर्णय भी लिया। बोली, 'तुम कह रहे थे, नित्यानंदपुर में छन्ने का चलन था या नहीं ! था क्यों नहीं, खूब था। लेकिन बात यह है, उस देने में न्योता करनेवाले का अहंकार नहीं जाहिर होता था। बल्कि लगता था, देने से ही कृतार्थ हों। इसीलिए जो लोग लेते थे, उनमें मान-अपमान का लेश नहीं आता। और तुम्हारे इस दत्त परिवार मे सब-कुछ में अहंकार है ! आसन के पास किसी प्रकार की मिठाइयां सजा तो रखी थी, पालकी मे रखवा तो देतीं न। सो नहीं, कौन कहा है, कोई ठिकाना नही। काकस्य परिवेदना। एक ने, नौकरानी होगी शायद, टूटे कांसे की-सी आवाज में कहा, अजी ओ बाम्हन बिटिया, तुम्हारा छन्ना जो रही गया ! सुनो जरा, तो क्या मैं उठा लेती ?'

सत्य के पति-पूत के मन मे उस बीसों प्रकार की मिठाइयों ने कौन-सी प्रतिक्रिया लायी, क्या जानें ? नवकुमार को लेकिन 'ठीक ही तो' कहकर स्त्री की बात की ताईद करनी पड़ी। उसके बाद उसने खुद ही बात उठाई—'तो,

सचमुच ही सोने का हार दे दिया ?'

'सचमुच नही तो क्या झूठमूठ देती ? देने के लिए ले गयी'''

नवकुमार ने अफसोस की उसांस को छिपाकर उदास भाव से कहा, 'तुम्हारी चीज है, तुम लुटा सकती हो, फेंक दे सकती हो, उसकी बात नही—लेकिन सवेरे मैंने टोले के एकाध आदमी से पूछा था—किसी ने चवन्नी दी, किसी ने अठन्नी, एक रुपया से आगे कोई नहीं बढ़ा।'

इस बात पर यवनिका डालने की गरज से सत्य ने कहा, 'रहने भी दो! एक बच्चे को दी हुई चीज के लिए कच-कच करने की जरूरत नही। अब मर्द जैसा एक काम करो तो ? कोई डेरा खोजो।'

'डेरा ? फिर डेरा खोजू ? इसे बदलना है ?'

'तय तो यही किया है।'

'सोचा है, खाहिश की है, नही; सकल्प किया भी नही, एकबारगी तय किया है।'

अपनी हार निश्चित जानकर भी नवकुमार मैदान में उतरा—'तय क्यों नही करोगी, दिमाग ही तो अस्थिर है। जभी नित्य नया स्थिर करना। मैं पूछता हू, इस किराए मे ऐसा डेरा पाओगी ? दत्तों को पैसो का वैसा ध्यान नहीं, इसीलिए इतना सस्ता लगा दिया है। और कोई होता तो डेवढ़ा किराया कहता। यह इरादा दिमाग से निकाल दो।'

सत्य की जुड़ी भौंहों के नीचे को घनी काली आखों मे एकाएक कौतुक मिला एक विद्युत कटाक्ष खेल गया—'सत्य ने कभी अपना इरादा छोड़ा है ?'

नवकुमार उस मुखड़े की ओर हा किए ताकता रह गया। सत्य की हंसी दुर्लभ है, इसीलिए इतनी अनोखी है क्या ?

टकटकी लगाई आंखो को फेरकर खीजा-हुआ-सा बोला, 'क्यों इस डेरे ने कौन-सा कसूर किया ?'

'वह कहने से तुम नही समझोगे !'

'न, मैं तो कुछ भी नही समझूगा। सब-कुछ समझने का ठेका तुम्हारा ही है। डेरा-वेरा अब नही बदला जाएगा। बार-बार वही एक गीत ! चिड़िया-चुनमुन हैं क्या कि रोज-रोज बसेरा बदलना पड़ेगा। नही होगा यह, मैं कहे देता हूं।'

'खैर, न सही ! सच, मालिक का ही कहा बरकरार रहे !' कहकर सत्य वहा से चली गयी।

यह डेरा बदलने की खूब जो इच्छा सत्य की है, यह बात नही है। यह घर सब प्रकार से सुविधाजनक है। लेकिन सिर पर 'राजा' को लिए 'प्रजा' बनकर रहना

उसकी बर्दाश्त से बाहर है। तिसपर मजा यह कि अपने घर में मनमाना रहूंगी, सो नही, कम्बख्त दाई यह घर, वह घर करके आफत ले आया करती है। उसे छुड़ा देने से कुछ सहूलियत हो सकती है, पर वह भी ठीक नहीं जंचता। औरत यह बदमाश नहीं है। उपकारी भी है। बुराई है तो एक ही कि नासमझ है। नासमझ है इसलिए ज्यादा बोलती है। उसकी उन बातों से ही बच्चों पर बुरा असर पड़ता है।

पंचू की मा को यही बताकर हटाना पड़ेगा। उससे कहना होगा, मेरे बच्चों को तुम अगर यह सिखाया करोगी कि यह मां नही राक्षसी है, तो तुम्हे मैं कैसे रख सकती हूं। अगले महीने से तुम और कही काम देखो।

यही कहेगी। इस घर-उस घर की चर्चा नही करेगी। कल आने दो उसे।

लेकिन सत्य को कल सवेरे तक इंतज़ार नही करना पड़ा। पंचू की मां शाम को ही आ पहुंची और एक अप्रत्याशित खबर लेकर।

यह क्या ?

सत्य के लिए यह कैसी विपदा राह देख रही थी ?

तो फिर शाम से पहले दोपहर की बात कह लेनी चाहिए।

पिच् से पीक फेंककर दत्त-गृहिणी ने कहा, 'हां री' पंचा की मां, तेरी मालकिनी तो कच्ची उमर की है, उसे इतना घमंड किस बात का है, बता तो ?'

सदा की मुसाहब उसके भांजे की बहू ने हंसकर कहा, 'उस कच्ची उमर का ही घमंड है मामी, नहीं तो घमंड करने जैसा और कुछ तो नही देख रही हूं !'

बड़े घर की मालकिन ने कहा, 'उंह, यह घमंड भैया उमर का नही है, स्वभाव का है। उसका अपना और कौन है री पंचा की मां ?'

पंचू की मां ने इस घर में पंचा की मा के सिवा कभी पंचू की मां नहीं सुना। इस उपेक्षा की वह आदी हो चुकी है। विनय से झुके हुए स्वर में बोली—'और कौन होगा, उसका पति है, सात-आठ साल के दो लड़के है।'

'ओ, इसीलिए ! कहावत है, मेघछूटी धूप खूब चड़चड़ाती है और बहू होकर गृहिणी होनेवाली खूब फड़फड़ाती है। सास दईमारी मर चुकी है, क्यो ?'

पंचा की मा ने कहा—'मरने क्यों लगी ? सास है, ससुर है, सभी है ! गांव पर हैं ! पति-पूत लेकर ये यहां आयी हैं। स्वामी साहब के दफ्तर मे काम करता है !'

'अच्छा ! जभी तो ! इसी से तेज़ से फटी जा रही है। घर कहां है ?'

'यह उनसे कौन पूछे मां जी ?' पंचू की मां सत्य के लिए स्नेह रखती है,

तो भी बड़े घर की मालकिन की प्रिय होने के लिए अपनी मालकिन के प्रति उपेक्षा दिखाती हुई बोली—'बात करने की फुरसत भी हो उन्हे ? घर का काम चुका कि किताब खोलकर बैठीं···!'

'किताब !'

कमरे में व्यंग्य-हंसी की एक लहर दौड़ गयी—'अच्छा, हाय पंचा की मा, तूने तो बड़े अच्छे घर में नौकरी ली है ! देखना, मालकिन की हवा लगाकर तू भी पंडितानी मत बन जाना !'

पंचू की मां ने कहा, 'बने तो मुझे भी किताब पकड़ाएं ! बाप रे, दोनों लड़कों को 'पढ-पढ़' करके जो दिक करती है। फिर भी वे दोनो लड़के ही मुझ से जो थोड़ी-बहुत गपशप करते है । उन्ही लड़को से मैंने सुना है, बारुईपुर कि कहा तो घर है । दादी है, दादा है, फुआ है । और ननिहाल तिरबेनी के पास नित्यानन्दपुर या क्या है ! नाना कविराज हैं, बहुत बड़े आदमी···!'

एकाएक कमरे की एक स्त्री का चेहरा कैसा उदभ्रांत-सा तो हो उठा। वह दिवाल से सटी पीतल की एक चौकी पर बिछा-बिछाकर पान लगा रही थी । उसका हाथ अचानक रुक गया। वह हा किए पचू की मा की तरफ ताकने लगी, दत्त-पत्नी की बातें उसके कानो नही पहुंची ।

दत्त-पत्नी ने कहा—'बड़े बाप की बेटी है, इसीलिए सात नम्बर वाली को इतना घंमड है !'

पंचू की मां ने भी राय देकर बात की—'वही तो !'

भाजे की बहू ने आग पर लकड़ी डाली, 'सुना, छन्ना को छुआ नही, ढप नहीं सुना !'

'वही कहकर तो मर रही हूं मैं भाभी···!' पंचू की मां ने शिकायत की—'इतने-इतने लोगों को समय मिला, और तुझे नही ? टोले के सभी लड़के घर पड़े रहे, तेरे ही लड़कों के लिए स्कूल बड़ी बात हो गया ? उन लड़को के लिए मर रही हूं···!'

'खैर, ले जाना ! छन्ना की हाडी ले जाना ! उन छोरो को देना !' दूसरी एक महिला ने कहा ।

लेकिन पान बनानेवाली विधवा के कानों इन बातों का कतरा भी नही गया । वह वैसे ही हा किए पंचू की मा की ओर ताकती रही—आगे क्या कहती है, इस इन्तजार मे ।

पंचू की मा ने और बात नहीं की । सत्य के खिलाफ बोलने में उसका विवेक साथ नही दे रहा था । निहायत इसलिए कि यहां अभी पाल की हवा उलटी बह रही थी । बड़े आदमी की हां-मे-हा तो करना ही पड़ता है। तिस पर आज उसे सत्य पर बड़ा गुस्सा आया था ।

कहां तो उसने यह सोच रखा था कि सत्य को लाकर बड़े घर के ठाठ-बाट दिखाएगी और यह दिखाकर ही छोड़ेगी कि ऐसे घर में उसकी बहन, बेटी शैल की कितनी आदर-कदर है। किस मान वाली की मौसी-फुआ होना भी तो कम नाज की बात नहीं !

मानवाली ही कहिए।

दत्त-गृहिणी के बाल-बच्चों में शैल की पैठ तो कुछ ढंकी-छिपी नही है ? मझले बाबू पर तो खुलेआम उसका एकाधिपत्य है। मंझली बहू को दबाए रखने के लिए दत्त-गृहिणी इस आग में बदस्तूर ईंधन जुगाती रहती हैं। शैल के लिए फुलेल, खुशबूवाला साबुन उन्हीं के भंडार से दिया जाता है। शैल के लिए सबसे कीमती किमाम मालकिन के ही खर्च से आता है। शैल की फीता कोर वाली शांतिपुरी हाफ साड़ी बेशक मझले बाबू खुद ला देते है, लेकिन कहीं मैली या फटी दिखी कि दत्त-पत्नी बहू को सुना-सुनाकर शैल से कहती है, हां री, कपड़ा इतना गंदा क्यों है ? नहीं है ? अपने मंझले दादा बाबू से कहती नही है ?'

इतने लोगों के अछेते मंझले दादा बाबू से ही क्यो, यह सवाल अवश्य गौण रहता है।

ये कहानियां पंचू की मां अपनी मालकिन को तो नही सुना सकती, लेकिन शैल का दबदबा तो दिखाया जाता ! सो यह सब-कुछ न हो सका।

भाड़ में जाय !

जिसकी जैसी अकल !

आदमी अकल के दोष से ही ठगाता है। देवी जी इतनी तो अकलमंद है, पर जीत कहां सकी। हार ही तो गयीं। खुद ठीक से नहीं खाया, पति-पूत को नहीं खाने दिया, गीत नही सुना—सभी तरफ से तो ठगाईं ! धत्तेरे की !

मन से झुंझलाई पंचू की मां ने पान बनाने वाली की ओर बढ़कर कहा—'बाम्हन दीदी, दो बीड़ा खासा पान दो तो, खाएं···!'

दो बीड़े झटपट लगाकर पचू की मा को कापते हुए हाथो देते हुए बाम्हन दीदी ने कहा, 'मुझे तो तूने अपनी मालकिनी को नही दिखाया !'

'लो, इनकी सुनो ! अजी वह रही कै घड़ी ? आयी और गयी !'

'तुम सबकी बात से कौतूहल हो रहा है। ऐसी तेज-तर्रार है, मुझे दिखाएगी नही ?'

'दिखाने की भली कही ! वह क्या अब इस ओर को मुंह करेगी ? आएगी यहा ? हा, तुम यदि···!'

ब्राह्मण दीदी ने और भी धीमे गले से कहा—'अच्छा, वही कर। चल, देख आएं !'

'अरे, हमारी मालकिन पर एकाएक ऐसी नेक-नजर क्यों बाम्हन दीदी ?'

'आहिस्ते ! सुन लेंगी कि ना कह बैठेंगी !'

'ठीक है ! सांझ के बाद ले चलूंगी !'

जाने के समय बाम्हन दीदी कैसी तो विचलित हो उठी, उसका आग्रह धीमा पड गया। बोली, 'रहने दो पंचू की मा, छोड़ो !'

'हाय राम, छोड़ो क्यों ? उस समय इतनी खाहिश की !'

'हा ! झोक मे उस समय कहा था। सोचती हूं; जाने से कही यह गुस्सा हों !'

'तुम भी जैसी ! खबर किसे होगी ? हम तुम जैसी पिद्दियो की खबर से उन्हें खाक मतलब है। भोज-भात का घर, झमेले है, दस नए रसोइए नौकरानी जुटी है, घपला देने का यही तो मौका है !'

'नही, सोचती हू, जाकर भी क्या होगा ? सुना, घमंडी है ! रसोईदारिन-पान बनानेवाली से कही बात ही न करे !'

'राम-राम ऐसा न कहो ! उसे कोई तंग न करे तो कुछ नही करती। घर में कोई अतिथि जाए तो आदर-जतन ही करती है—रसोईदारिन और नौकरानी का विचार नही करती।'

बहुत आगा-पीछा के बाद आखिर जीत आगा की ही हुई।

सिल्क की चादर बदन पर डालकर साझ को पिछवाड़े का दरवाजा खोलकर पान बनानेवाली वह बाम्हन की बेटी पंचू की मां के साथ रास्ते पर उतरी।

कभी यह काम ढूंढ़ती हुई दत्तों के यहां आयी थी। इसे नौकरानी का काम तो दिया ही नही जा सकता था। इसीलिए यह पानवाला काम दिया गया। सुनने मे पान लगाने का काम बड़ा हल्का मालूम होता है, लेकिन इस घर मे यह काम हल्का नहीं है। रोजाना कम से कम तीन हजार खिल्लिया लगानी पड़ती हैं। उसी के लायक सुपारी भी काटनी पड़ती है। फिर हर खिल्ली एक-सी नही होती, उसकी भी श्रेणी है। किसी को मीठा पान चाहिए, किसी को दारचीनी, जायफल, जावित्री, कबाब चीनी, लायची, कपूर वाला राजकीय पान और किसी को ज़र्दा के लिए कत्था-सुपारी वाला पान चाहिए। सुपारी भी एक-सी नही, मोटी-महीन। पान का यह नैवेद्य सजाकर गुलाबजल से भीगे लत्ते में लपेटकर डब्बे में डालकर हर कमरे में पहुंचाना पड़ता है।

घर के सिवाय गुमाश्ते, अतिथि-फकीर, आए-गए आश्रित आदि के लिए मोटा बगला पान। पान बनाने मे ही तमाम दिन जान की नौबत। और कहीं घर मे भोज-भात हो, तो पूछना ही क्या ! वह भी तो लगा ही रहता है।

शादी-ब्याह, अन्नप्राशन, औरतों का व्रत-त्योहार सालोंभर चलता ही रहता है। खिलाना-पिलाना लगा ही हुआ है। दत्त-गृहिणी की देवरानी ने अनंत चतुर्दशी का व्रत किया, तीन-चार सौ लोगों ने खाया। पति-पूतहीन विधवा। फिर भी कुछ कम नहीं हुआ। बड़ी मालकिन उदार हैं। बोली, 'उसके कोई नहीं है, जब मैं हूं, तो उसका सब-कुछ कराऊंगी। यह जनम तो यों ही गया, परकाल बचा रहे।'

छोटी मालकिन बेशक बेईमान है।

आड़-ओट में कहती-फिरती है, लगता है, दत्तों की जायदाद में मेरा हिस्सा नही है। मैं शायद बाढ़ में बहकर आ गयी हूं। मुझे इसी घर का कोई गाठ जोड़कर नही ले आया है?

कोई-कोई उसे उकसाती भी रहती।

लेकिन पीठ पीछे ही। बड़ी मालकिन के सामने सब ठंडा।

खैर!

जाते-जाते रास्ते मे बाम्हन दीदी से पंचू की मा ने कहा, 'जो भी हो चाहे, तुम स्वजाति हो। तुम्हारा आदर करेगी।'

बाम्हन की बेटी लेकिन इससे खिली नहीं। उदास होकर बोली, 'बनिया का अन्न खानेवाली भी ब्राह्मण है! तू भी जैसी! तुम लोग बाम्हन दीदी-बाम्हन दीदी करती रहती हो, इसीलिए। नही तो यह परिचय देने की खाहिश भी नहीं होती। नौकरी करने आयी हूं, शूद्र समझकर पैर दबाने, कपड़ा फीचने, जूठन धोने को न कहें, इसीलिए यह परिचय दिया।'

'ऐसा क्यों कहती हो, तुम्हारा आचार-विचार तो सद्ब्राह्मण जैसा ही है। नही तो और जो रसोईदारिन, भंडारिन, तरकारी कूटनेवालिया हैं, उनका आचार तो पंचू की मां से छिपा नही है। घेंचा की मां तो उस दिन गरम-गरम भुनी हुई मछली खा रही थी, जीभ में काटा गड़ा और पकड़ी गयी रंगे हाथों—मगर हया-शरम है? बात असल में क्या है बाम्हन दीदी, सुभाव-चरित्तर जब तक अच्छा है, तब तक वह आचार-विचार हरगिज़ नहीं छोड़ेगी। आचार गया कि समझो मति-गति बदल गयी है। आचार-विचार धरम-काम नदी का बांध है—एकबार टूटा तो···'

बर्तन मलनेवाली पंचू की मां के जीवनदर्शन की व्याख्या का अंतिम अंश मुलतबी रह गया। दोनों सत्यवती के दरवाज़े पर पहुंच गयी थीं। पंचू की मा ने आवाज दी, 'कहा हैं दीदी जी, निकलकर देखिए, कोई दर्शन करने आयी है!'

३४

बहुत दिनों से निताई से भेंट-मुलाकात नहीं हुई। छाता हाथ में लिए नवकुमार धूप में निकल पड़ा। आज छुट्टी है। जरूर डेरे पर होगा। निताई के चले जाने के बाद शुरू-शुरू उसके सामने सिर उठाकर खड़े होने में शर्म आती थी। अपने को बड़ा अपराधी-सा लगता था। पर समय पर सब सहा जाता है। वह शर्म धीरे-धीरे कम हो आयी। सत्यवती ने उसे बार-बार जबर्दस्ती भेजा है न्योता करने के लिए। और मजा यह कि मजे मे सत्य ने निताई से बातें की, निताई जो-जो खाना पसंद करता है, याद करके वही-वही पकाया, आग्रह कर-करके खिलाया।

ऐसे असम साहसिक काम कैसे जो करती है सत्य! खैर। आज नवकुमार खुद ही जा रहा है। घर में आज जी नहीं लगा। परसों पंचू की मा कहा से तो एक विधवा को लाकर बक-बक करती रही। उसी के बाद से सत्य कैसी तो हो गयी है। बात नही, चीत नही, बच्चों से हंसना-बोलना नहीं, जाने किस दुनिया में रह रही है।

बात सच ही है। परसों से सत्यवती एक भूल-भुलैया की दुनिया में बस रही है।

पंचू की मा यह किसे ले आयी? यह दत्त-परिवार की पान लगानेवाली ही है? फिर वह आयी किस लिए?

सत्य के दर्शन की ऐसी प्रबल इच्छा का हेतु क्या है उसका? यही यदि हो, तो जी खोलकर बात भी कहा की? कैसी दबा-दबाकर बात, रह-रहकर निःश्वास, अंदर जाने कितना क्या है!

सत्य ने पहले उसे कही देखा है? वह क्या उसकी खूब जानी-चीन्ही-सी है? लेकिन उसकी तो ऐसी जली सूरत नहीं थी। तो क्या उसकी नियति ने आखिरकार आग होकर उसे झुलसाकर ही छोड़ा?

दोनों के अंदर जोरों की लहराती लहर, किंतु किसी ने भी आगे बढ़कर खप् से हाथ थामकर यह नहीं कहा, तुम वही हो न?

पंचू की मा बोल पड़ी थी, 'क्यों जी बाम्हन दीदी, इतने आग्रह से आयी, बोलचाल क्यों नही?'

बाम्हन दीदी ने धीरे-से कहा, 'बोलने तो आयी नहीं थी, आयी थी देखने!'

यह आवाज क्या सत्य की सुनी हुई नहीं है?

मानो बहुत सागर के पार, बहुत युग पहले सत्य ने यह आवाज सुनी हो!

फिर भी कह नहीं सकी, मेरी आंखों में धूल नहीं झोंक सकती, मैं बड़ी धुरंधर लड़की हूं।

बहुत बाधाएं थीं।

'हो कि नहीं, नहीं कि हो' इस दुविधा की बाधा, समाज-सामाजिक की बाधा, अवस्था के तारतम्य की बाधा, सबसे बड़ी पंचू की मां की मौजूदगी की बाधा। यही बाधा सबसे बड़ी थी। दोनों यदि अकेले में आमने-सामने खड़ी होतीं, तो शायद हो कि दूसरी बाधाएं पलभर में हट जातीं, शायद हो कि ज़रा भी बिना हिचकिचाए यह कहा जा सकता था—'अंत में यह हाल हुआ? बहुत अच्छा! अच्छा सुख किया।' पहले भी कहती—युगों पहले सत्य बच्ची थी, अब तो नहीं है।

इसीलिए वह सब नहीं हुआ। ज़रा देर में पंचू की मां ने जम्हाई लेते हुए कहा, 'तो अब चलो बाम्हन दीदी, तुम्हें दरवाज़े तक पहुंचाकर मैं घर जाऊं। दिनभर की हरारत है, जोरों की नींद आ रही है।'

'चलो' कहकर वह उठ पड़ी थी। यह नहीं कहा कि थोड़ी देर और रह लूं।

सत्य ने नहीं कहा, कुछ देर और बैठो।

तब से सत्य ऐसी विमना हो गई है।

नवकुमार ने कहा था, 'पंचू की मां के साथ वह औरत कौन आयी थी? कोई…'

बात वह पूरी नहीं कर सका। तीखी आवाज़ ने उसे रोक दिया—'बच्चों के सामने बेतौर क्यों बोलते हो?' उसके बाद से सत्य चिंतामग्न है।

छुट्टी के दिन सबेरे रसोईघर के दरवाज़े पर बैठकर दो घड़ी बात करना कितना अच्छा लगता है। मन-मिज़ाज ठीक रहे तो सत्य अनोखी लगती है। सच तो यह—मन-मिज़ाज अच्छा न भी हो, तो भी कैसा एक आकर्षण! नवकुमार को मानो रस्सी से बांधकर रखता है। दफ्तर के समय को छोड़कर घर से निकलने को ही जी नहीं चाहता। तुड़ू और मुन्ने की पढ़ाई भी देखनी होती है, क्योंकि मास्टर साहब आजकल नियमित नहीं आते। लेकिन यह कर्त्तव्य-कर्म खाक अच्छा नहीं लगता। बाद में इच्छा होती है, आमने-सामने बैठें। किंतु ऐसा होने का उपाय नहीं। वास्तव में गिरस्ती को इतना भारी कर लेने की ज़रूरत भी क्या है? हंसे, खाया, गपशप की, सो गए। बस, चुक गया। सो नहीं, रात-दिन दस जने में से एक होने की कोशिश करो, लड़कों को आदमी बनाने की कोशिश करो, मान इज़्ज़त रही कि गयी यह सोच-सोचकर दिमाग खराब करो। क्यों बाबा! तो फिर गांव-घर छोड़कर डेरे में आने का कौन-सा लाभ हुआ? मज़े से रहने के लिए ही तो परदेस आना!

उसी दिन तो सुना, दफ्तर के दोस्त रामरतन बाबू अपनी स्त्री को लेकर थिएटर देखने गए थे। 'निमाई संन्यास' हो रहा था। रामरतन की स्त्री बेचारी का रोते-रोते बुरा हाल। घर लौटकर तीन दिन तक रोती रही। नवकुमार ने सत्य को भी चलने की ज़िद की थी। नहीं गयी!

बोली, 'महीने का आखिर है, हाथ खाली है। थिएटर में पैसा तो लगेगा। फिर तुडू और मुन्ना का क्या हो? रात-रात तक कौन देखेगा?'

उन्हें भी साथ ले चलने की बात को तो उड़ा ही दिया। नवकुमार ने लड़कों को घुडदौड़ दिखाने ले जाना चाहा था। उसकी भी मनाही।

पता नहीं सत्य ऐसी क्यों है!

एक युग से नवकुमार मन से यही पूछता आ रहा है।

आज नसीब ही खराब है।

निताई से मुलाकात नहीं हुई। कहां तो गया है! उसके मेस के एक सज्जन ने कहा, 'नहीं कह सकता साहब, निताई बाबू तो किसी से मिलना ही नहीं चाहते। उनका रंग-ढंग अच्छा नहीं लगता। अपनी आखों देखे बिना किसी पर तोहमत नहीं लगानी चाहिए—उनके बगल वाली सीट के हारान बाबू ने जो कहा, वही कह रहा हूं—निताई बाबू का चरित्र अच्छा नहीं है।'

'एं!' नवकुमार प्राय: जमीन पर बैठ पड़ा।

'यह कैसी बुरी खबर!'

उस सज्जन ने कहा, 'आपके परम मित्र है शायद! तब तो आपको यह बताना ग़लत हुआ। एक प्रकार से अच्छा भी हुआ। देखिए, समझा-बुझाकर यदि उन्हें अच्छे रास्ते पर ला सके! अवश्य, उस रास्ते से लौटाना बड़ा कठिन काम है।'

मन में बड़ी पीड़ा लिए नवकुमार भवतोष मास्टर के पास गया। सम्भवतः यही पहली बार वह सत्य के निर्देश के बिना एक काम कर बैठा।

मास्टर उकड़ूं बैठकर सामने की एक खुली किताब से बही में कुछ उतार रहे थे। नवकुमार उनके पास जा बैठा और बिना भूमिका के ही बोल उठा—'एक बहुत बड़ी मुसीबत में पड़कर आपके पास आया हूं।'

भवतोष चौंके—'क्या हुआ?'

'किसी को कुछ हुआ-हवाया तो नहीं?'

भात का माड़ निकालने में सत्यवती जल तो नहीं गयी? आगन में गिर तो नहीं पड़ी? घबड़ाकर बोले, 'बैठो-बैठो, पहले ज़रा स्थिर हो लो। बात क्या है?'

'बात बहुत बड़ी है। निताई का चरित्र बिगड़ गया है।'

'क्या हुआ है ?'

धुन में कह जाने के बाद ही नवकुमार शर्मिंदा हुआ। सिर खुजाकर सिर नीचा करके बोला, 'जी, आज निताई के मेस में गया था। भेंट नहीं हुई। एक ने कहा, निताई कहां जाता है, कहा नहीं, कोई पता नहीं। उसका स्वभाव खराब हो गया है।'

भवतोष जरा देर चुप रहकर बोले, 'वह आदमी उसका शत्रु-वत्रु तो नहीं है ?'

'जी नहीं ! वैसा तो नहीं लगा !'

'फिर तो आफत है !' भवतोष आप ही आप बुदबुदाए—'इसी तरह का खतरा मुझे लग रहा था !'

नवकुमार ने कहा, 'जी ?'

'नहीं, तुमसे कुछ नहीं कहा !'

'आप जरा मिलकर उसे समझाइए मास्टर साहब !'

'समझाऊं ?' भवतोष हंसे—'इन मामलों में मास्टर की अक्ल किसी काम नहीं आती, नवकुमार !'

'लेकिन कुछ करना तो होगा ?'

सदा-सदा के इस निस्तेज नवकुमार की इस व्याकुलता ने भवतोष के हृदय को स्पर्श किया। वे स्नेह-गीले स्वर में बोले, 'अच्छा, कोशिश कर देखूंगा। लेकिन बात यों है···'

'जी ?'

'कहता हूं—यानी कह रहा था, मेरे कहने से कहीं ज्यादा काम हो, अगर बहूरानी एक बार···'

'बहूरानी !'

नवकुमार ने विमूढ़ की नाईं कहा, 'किसकी कह रहे हैं ? तुड़ू की मां ?'

'हां ! वह अगर निताई को कसम-वसम दें तो हो सकता है।'

नवकुमार ने कहा, 'आपके कहने से नहीं होगा, उसके कहने से होगा ?'

भवतोष के चेहरे पर रहस्य के जाल से घिरी हंसी की एक बारीक लकीर फूट उठी। धीरे से बोले—'होगा तो उसी की बात से होगा ! नहीं तो···'

'तो उसी से कहूंगा !' नवकुमार उठ खड़ा हुआ। मास्टर का यह प्रस्ताव उसकी समझ में न आया। सच पूछिए तो अच्छा भी नहीं लगा। निताई के सामने सत्य को उपस्थापित करने की बात अच्छी नहीं लगी। निताई लाख उसका दोस्त हो, जब उसका चरित्र बिगड़ गया है, तो विश्वास क्या ? कौन जाने, शराब की लत भी लगी है या नहीं। शराबी, बदचलन आदमी से औरतों को सौ गज़ दूर ही रखना चाहिए।

नवकुमार के बाप नीलाबर बाबू नाम के जो व्यक्ति हैं, वे भी इन्हीं दोषों के दोषी हैं और सब दिन वे समाज के ऊपर रहते आए हैं—यह बात नवकुमार को याद नहीं आयी।

निताई के इस अधःपतन का समाचार और भवतोष मास्टर का वह अजूबा प्रस्ताव सत्य के सामने कैसे रखेगा, यही सोचते-सोचते वह घर लौटा।

वेला भी काफ़ी हो चुकी थी। सत्य रसोई किए बैठी। जल्दी-जल्दी आकर नवकुमार ने किवाड़ में धक्का देना चाहा। लेकिन धक्का देने से पहले हाथ लगाते ही दरवाज़ा खुल गया। गर्ज कि अंदर से बन्द नहीं था।

अजीब है! दोपहर मे दरवाज़े को खुला छोड़ दिया है। यही कहने के लिए वह हड़बड़ाकर बढ़ा कि दो कदम पीछे हट आया।

छज्जे की खूंटी के पास सत्य एक आदमी का हाथ पकड़े खड़ी थी!

३५

नः हाथ पकड़ने के कसूर में जात नहीं जाएगी—मर्द नहीं, औरत थी! एक विधवा दुबली देह, जला हुआ रंग। नवकुमार भी विह्वल दृष्टि से ताकता रह गया। उसने सुना, सत्य अपने उसी सबल ढंग से कह रही है, 'जब मिल गयी हो, तो अब तुम्हें छोड़ सकती हूं मैं? बच्ची को लेकर मेरे पास चली आओ। मुझे यदि दोनो जून दो मुट्ठी नसीब होती रहेगी तो तुम्हे भी एक जून एक मुट्ठी जरूर नसीब होगी। मेरे लड़कों को अन्न-वस्त्र जुटेगा तो तुम्हारी बच्ची के लिए भी जुटेगा।'

सुनकर नवकुमार के बदन का लोहू हिम हो गया। ये क्या बातें हैं? कौन है यह? कहां है इसकी लड़की? सत्य से इसका क्या संबंध है? उसके बाद बर्फ़ हुआ लोहू फिर गरम हो उठा। मर्द का लोहू!

नवकुमार से राय-सलाह तक न करके दो-दो जने को खाने-पहनने का भरोसा देकर उन्हे घर में सत्य जगह देना चाह रही है। औरत को इतनी हिम्मत किस बात की? नवकुमार कुछ कहता नही, इसीलिए सिर चढ़ गयी है।

नवकुमार का जिगरी दोस्त निताई, उसे तो बिना कसूर के घर से निकाल दिया गया! जिसकी वजह से दुःख, घृणा और आन से उसने अपना चरित्र ही बिगाड़ लिया। नवकुमार के साथ रहा होता, तो ऐसा हरगिज़ नहीं होता। मेस में कितनी बुरी सोहबत है!

नवकुमार की आंखों मे आंसू आ गया। सोचा, अभी जाने कौन कहां की औरत, जिसे नवकुमार ने सात जनम में भी कभी आंखों नहीं देखा, उसको घर

में बसाने की साजिश चल रही है !

चालाकी ! नही चलेगी।

नवकुमार साफ जवाब दे देगा कि मेरे यहां यह सब चालाकी नहीं चलेगी।

हो न हो सत्य के नैहर की होगी कोई ! जभी इतना प्यार ! सच पूछिए तो नवकुमार ने ईर्ष्या का भी अनुभव किया। नवकुमार के बिलकुल किसी अजाने को सत्य अपने मन मे जगह दे, उसे यह बिलकुल बर्दाश्त नही। औरत हुई, तो क्या ?

मन की बात मन के सिवा और कोई नहीं जान पाता, इसीलिए यह धरती टिकी हुई है। नही तो अपने समाज, सभ्यता, शिक्षा, संस्कृति सब-कुछ को चढ़ाई लिए धरती कब की रसातल को चली गयी होती।

मन की बात को दूसरा कोई नही जान पाता !

नितांत मन का आदमी भी नही।

इस खुशी से आदमी मनमाना नाचता फिरता है, जी चाहे जितनी बड़ी-चढ़ी बातें करता है। स्नेह, प्यार-प्रेम की महिमा दिखाता है। इस रहस्य का आदमी खुद भी ख्याल नही करता, यही मज़ा है।

नवकुमार को भी ख्याल नही, विधाता से वह कितना बड़ा पावना पाए बैठा है। इसीलिए वह मन ही मन सत्य को ही वाक्यबाण से नही बेधा करता, विधाता को भी बेधता है कि उसने उसे पुरुष और सत्य को स्त्री क्यों बनाया ! नहीं सहा जाता। यों हाथ पकड़े खड़े रहने का दृश्य बर्दाश्त नहीं हो रहा।

उसने गला साफ करने की आवाज की

अब तक सत्य अपनी धुन मे थी, उसने ख्याल नहीं किया। दूसरी तो दरवाजे की तरफ पीठ किए हुए थी। गले की आवाज से दोनों सचेत हुए। वह विधवा जरा हट गयी।

सत्य ने उसका हाथ छोड़ दिया और माथे के घूंघट को ज़रा सरकाया।

समझदार सत्य ने तुरत ही पति को उस महिला का परिचय नही दिया। लाज-शरम नाम की भी तो चीज है। बड़ों के सामने पति से बात नहीं की जाती। इसलिए घूघट को जरा खीचकर बोली, 'बहू, चलकर उस कमरे में बैठो !'

. .

नवकुमार ने सोचा था, जो भी कहेगा, जोर-जोर से कहेगा, ताकि उस स्त्री के कानों तक पहुंचे। जिससे वह समझ सके कि घर का वास्तव मे मालिक कौन है। यह भी समझ सके कि नाहक की उम्मीद से लुभाने से कोई लाभ नही।

लेकिन गले में ज़ोर नहीं आया।

ज़ोर नहीं आया, वाक्य ही नहीं फूटा। गमगम करता हुआ गुस्सा लिए नहाकर वह खाने बैठा।

थाली उसके सामने रखकर सत्य ने पूछा, 'इतनी बेला तक गए कहां थे?'

नवकुमार ने पत्तल पर सारी दाल को एक ही बार में डालकर गंभीर स्वर में कहा, 'जहां कहीं भी गया होऊं, तुम्हें इसकी कैफ़ियत देनी होगी क्या?'

'क्या पूछती हूं, क्या जवाब है? कैफियत देनी होगी, यह किसने कहा!' नहाने-खाने में बड़ी देर हो गयी, इसीलिए पूछ रही हूं।'

'नहीं, पूछने की जरूरत नहीं' उसी ढंग से कहता गया—'पूछने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं! पूछोगी क्यों? तुम क्या मुझे पूछकर चलती हो? फिर, मैं क्यों मानकर चलूं?'

सत्य अवाक् हो गयी, धूप के ताप से एकाएक दिमाग गरम हो गया, 'क्या? अंट-शंट क्या बकने लगे?'

'अंट-शंट! मैं अंट-शंट बक रहा हूं! और खुद जब ...'

गला चढ़ाने में नवकुमार के गले में लग गया।

लाचार सत्य के इलाज में ही आना पड़ा सत्य के वीर पति को। पानी, हवा! माथे पर फूंक! सम्हलने में समय लगा।

वह सम्हला कि सत्य ने धीरे से कहा, 'गिरस्ती में दो आदमी बढ़ गए, पहले ही जता देती हूं। नहीं तो जैसी तुम्हारी मति है, एकाएक चीख-पुकार मचा दोगे—कौन है ये? कहां से आए? क्यों आए?'

नवकुमार कह सकता था, वह तो मैं पूछूंगा ही। सच तो, कौन हैं ये, कहां से आए? क्यों आए? और इन दो जने को खामखा मैं अपने घर में जगह क्यों दूं?

बोल नहीं सका।

गले में जो कौर अटक गया था, उसी से भारी हुए-से स्वर में जो बोला, 'वह यह कि—इसमें मुझसे क्या पूछना है, तुम जो अच्छा समझो...'

वहीं उस दिन पंचू की मा के साथ आकर जो ज़रा देर के लिए भेंट कर गयी, तब से दत्त-परिवार की उस पान लगानेवाली का जी दीवार से सिर पीटने को क्यों कर रहा था, भगवान ही जानते हैं और उसके गवाह भी सिर्फ वही हैं!

इसीलिए फिर जब आज दोपहर दिन में उसने पंचू की मां से कहा—'चुपचाप मुझे एक बार वहां ले चलेगी?' तो पंचू की मा अवाक् रह गयी।

बोली, 'अजी, उस दिन तो तुमने बात ही नहीं की। आज फिर जाने की

कह रही हो, मतलब ?'

'क्या पता पंचू की मां, क्यों तो जो हो रहा है ? मेरी एक छोटी बहन थी, देखने में बहुत कुछ ऐसी ही···'

पंचू की मां फिर भी एक मतलब पाकर शायद आश्वस्त हुई। पूछा—'दोपहर दिन में चुपचाप कैसे मुमकिन है ?'

वह सुझाव पान लगानेवाली ने ही दिया—'काली मंदिर जाने के बहाने ! ठनठनिया काली बड़ी जाग्रत है—समय असमय जाते भी है लोग। दूर भी ज्यादा नहीं, यहीं तो पास ही है !'

वह विधवा देवी-दर्शन के लिए ही निकली थी। वह दर्शन उसे मिला।

उसी के बाद नवकुमार का प्रवेश।

शंकरी ने कहा, 'ननदजी कहने का मुंह नहीं है बहन, मगर कहने की बड़ी ललक हो रही है, इसी से कहती हूं। नाहक ही बचपना मत करो ननदजी, तुम जो कह रही हो, वह होने का नहीं !'

'होने का नहीं !'

'क्यों होने का नहीं, तुम मुझे यही समझाओ, कटवा की बहू ! भूल-चूक इन्सान से ही होती है, तो क्या फिर कभी उस भूल को वह सुधार नहीं सकता ?'

'कहने से ही सुधार सकता है ? समाज सुनेगा ?' शंकरी ने एक निश्वास छोड़कर कहा, 'औरत जात मिट्टी का बर्तन है ननदजी, छुआ गया कि गया।'

'औरत जात मिट्टी का बर्तन है, विधाता ने क्या यह उसके बदन पर लिख-कर उसे धराधाम में भेजा था ?' सत्य ने तीखे स्वर में कहा—'और पुरुषों पर सोने के बर्तन की छाप मारकर भेजा था कि वह जो भी करे, वाह वा ! हां, तुमने अन्याय जरूर किया था, खूब ही अन्याय किया था ! तुम बड़ी हो, गुरु-जन का नाता, कहना मुझे सोहता नहीं, तो भी कहे बिना रह नहीं सकती, जो किया था, महापाप था। उस समय समझ-बूझ नहीं थी, पूरा समझ नहीं सकी थी कि किस लिए क्या ? बाद में तो समझा ! समझा तो झूठ नहीं कहूंगी, मन ही मन मैंने तुम्हें लोढ़े से चूरा किया। सिर्फ महापाप के लिए नहीं, पिताजी जैसे एक मान्य व्यक्ति के ऊंचे सिर को जो तुमने नीचा कर दिया था, उस घृणा के मारे तुम्हें मैंने बहुत धिक्कारा। लेकिन यह भी सत्य है, बहुत बड़े पाप का भी प्रायश्चित है। तुमने जैसा महापाप किया, वैसा ही उसका महाप्रायश्चित किया। भूस की आग में जल-जलकर खाक हुई।'

'ननदजी !'

शंकरी ने आवेग से कांपते स्वर में कहा—'सम्मान में छोटी हूं ! यह नहीं कहती, पर उमर की तुम मुझसे आधी हो, इसीलिए मैंने तुम्हारे पैरों को

धूल नहीं ली। मगर पूछती हूं, मैं रात-दिन भूस की आग में जल रही हूं, यह तुमने कैसे जाना ?'

'खूब कही ! इसमें जानने की क्या है ? प्रत्यक्ष देख नहीं रही हूं ? अंधी तो नहीं हूं ! भीतर ही भीतर जल रही हो, इसकी गवाह है तुम्हारी जली लकड़ी जैसी देह ! कैसा सोने का रंग था, कैसा मोम का बना बदन था तुम्हारा, वह तो नही भूली हूं ! खैर, रूप गया, बला गयी। होता तो क्या धोकर पानी पीती ? उसी रूप ने काल होकर तुम्हें काट खाया। जाने दो ! लेकिन शरीर-स्वास्थ्य का तो ख्याल रखना होगा, जबकि फांसी लगाकर इह-काल की बला को खत्म नही किया !'

शंकरी ने कातर कंठ से कहा, 'वह इरादा क्या हुआ नहीं, ननदजी ? रात-दिन वही इच्छा होती रही, पर बना नहीं। पेट की वह पाप ही पैरों की बेड़ी बनी। मैं ही महापापन हूं, उसे क्या दोष दू ? तीनो लोक मे उसका कोई नही है। मरकर उसे कहा बहा जाऊं ?'

सत्य झंकार देकर बोल उठी, 'खैर, यह सुमति हुई थी, गनीमत ! एक तो पाप का बोझा, ऊपर से आत्महत्या का पाप ! नर्क में भी स्थान नही होता ! जाने दो ! बीता सो बीता। अब सीधी बात यह है—अब तक जो किया सो किया, अब जब मेरी नज़र मे आ पड़ी तो अब शूद्र की दासीवृत्ति नही करनी होगी !'

शंकरी ने सूखी हंसी हंसकर कहा, 'उमर हुई, बालबच्चे हुए, मगर स्वभाव देखती हूं तुम्हारा वैसा ही है। लेकिन दुनिया को पहचानना बाकी है। मुझे घर मे स्थान दोगी तो तुम्हें कोई अपने घर में जगह देगा ?'

सत्य का चेहरा एकाएक चमक उठा। होंठ दबाकर वह ज़रा हंसी। बोली, 'घर में जगह कौन नहीं देगा ? तुम्हारा ननदोई ?'

'सो नहीं कह रही हूं ! वे तुम्हे सदा राजरानी माथे का मणि बनाकर रखें ! मैं समाज की कह रही हूं ! बात खुल जाने से···।'

'बात खुलने की बात ही क्या कटवा की बहू ? मैं लुका-छिपाकर थोड़े ही करूंगी ! मैंने तो तय किया है, आज ही बाबूजी को लिखूंगी—बाबूजी मैंने ऐसा किया है। अब मुझे मारना हो मारिए, काटना हो काटिए, रखना हो रखिए !'

'बाबूजी' सुनते ही शंकरी ने दोनों हाथ जोड़कर कपाल से लगाया। बाबूजी नाम के उस आदमी के लिए कि भगवान के लिए ?

शायद भगवान के लिए।

हिम्मत करके उस घर, उन लोगों, खास करके ओजमय उस देवोपम व्यक्ति के बारे में कुछ पूछने का साहस ही नहीं हो रहा था शंकरी को। लाज,

भय, गुनाह का संकोच, यह तो है ही, उन पर भी एक आतंक। कुछ पूछे और यदि मालूम हो कि वे नहीं रहे? वह बड़ा भयानक है।

लेकिन सत्य ने बाबूजी को पत्र लिखने का जिक्र किया। इसीलिए शंकरी ने कपाल से जुड़े हाथ को लगाया।

कुछ झिझकते हुए पूछ बैठी—'मामाजी का कुशल तो है? कैसे हैं?'

सत्य ने निःश्वास फेंकते हुए कहा, 'बहुत अच्छे नहीं! उस आदमी को तो जानती हो! टूटेंगे, लेकिन झुकेंगे नहीं! नहीं तो यों मां के मरने के बाद से भीतर ही भीतर टूट गए है। कलकत्ता आने से पहले मिलकर आयी हूं न!'

मां के मरने के बाद से!

शंकरी ने सोचा, मां माने रामकाली की मा, दीनतारिणी। सोचा, उनके मरने मे आश्चर्य क्या, दुःख भी नही। लेकिन रामकाली दिलवाले है। मातृ-शोक को उन्होंने मर्यादा दी है। फिर भी बोली, 'वे ज्ञानवान व्यक्ति हैं, तो भी इतने कातर हुए है? बड़ी नानी जी के मरे कितने दिन हुए?'

'बड़ी नानी जी?'

'दादी की पूछ रही हो? वह तो कई साल हुए, गुजरी! मैं अपनी मा की कह रही हूं! मा चल बसी न…!'

सत्य चुप हो गयी। गले का कांपना कोई ताड़ ले, इसकी बड़ी लाज है उसे। शंकरी ने अपलक ताककर पूछा, 'संझली मामी चल बसी?'

सत्य चुप! नज़र नीचे झुकी।

बड़ी देर के बाद अफ़सोस की उसास लेकर शंकरी ने पूछा, 'कितने दिन हुए?'

'मेरा बड़ा लड़का उस समय सौरी में था!'

धीरे-धीरे उठते निःश्वास शांत हुए और कब वे दोनों गप करने की स्थिति में आ गयी, उन्हें खुद ही ख्याल न रहा।

बीती स्मृतियों की जुगाली में समय का ज्ञान शायद नहीं रहता।

शंकरी पूछने वाली। सत्य जवाब देने वाली। शंकरी मानो गहरे समुद्र में टटोलकर कौन-सा खोया माणिक तो खोजना चाह रही है और सत्य उस टटोलने में अपने खोए बचपन को पा रही है।

नित्यानन्दपुर में रामकाली कविराज का अंतःपुर कभी शंकरी को हथियार-बन्द पहरेदारों से घिरा अंधेरा कारागार-सा लगता था न?

फिर आज वह जोतधुले स्वर्ग-सा क्यों लग रहा है?

शंकरी ने उस स्वर्ग को जानकर खोया है। मिट्टी के टूटे बर्तन की तरह धूल में पटककर शैतान के छलना-स्वर्ग को चली गयी।

चहुतेरी वातें। वहुतेरा निःश्वास।

हवा भारी हो उठी।

फिर भी एक गहरा नि.श्वास छोड़कर सत्य ने कहा, 'आज तुम इस दत्त के यहां पान लगानेवाली हो कटवा की वहू ! लेकिन इससे हज़ारगुनी मर्यादा थी, यदि तुम कविराजजी का आगन वुहारकर भी खाती।'

'वद दिमागी ! पिछले जनम का पाप ! और कोई जवाव नही है।'

'खैर, अव तुम झिझको मत ! वेटी के साथ जो कपड़ा पहने हो, मात वही पहने चली आओ ! पेट का अन्न तो एक ही वात में धुल-पुंछकर साफ नहीं होगा, लेकिन पहनावे के इन पतित कपड़ों को छोड़ना होगा। खैर ! वेटी कितनी वडी हुई ?'

शंकरी की आखो की छाया मे एक धुमैला सूनापन। उस सूनेपन की छूत उसके स्वर को लगी—'कितनी वड़ी यानी उमर क्या हुई ? तुमसे छिपाना क्या, इस माघ में चौदह पार कर गयी !'

'माघ में ! फिर तो पंद्रह ही कहो ! तो व्याह ?'

'व्याह !' शंकरी क्षुब्ध व्यग्य मनी हंसी हंसी। यह व्यंग्य भाग्य पर। यह क्षोभ सत्य के सवाल पर।

सत्य ज़रा चुप रहकर वोली, 'जिनके यहा है, वे कुछ कहते नही ? उन्हें क्या जवाव देती हो ?'

शंकरी ने उसी तरह की हंसी के साथ कहा, 'वह जवाव पहले से ही ठीक कर रखा था। कहा है, पाच की उम्र में शादी हुई, सात साल में विधवा हो गयी, ससुराल इसने आखों भी नही देखा।'

सत्य इस बीच सिहर उठी।

'हाय राम, कैसी राक्षसी मा हो तुम ! कुमारी वेटी को विधवा बताया ? दुनिया में ऐसी वात कभी किसी ने सुनी है ? मैं कहती हूं, यह कारनामा जो कर रखा है, उस वेचारी को तो अरवा चावल और कच्ची केला ठूसना पड़ता होगा ?'

'सो तो पड़ता है। जो हाल मेरा, वही उसका। इससे ज्यादा नसीव भी कहा से होगा ?'

सत्य ने दुखे दिल से कहा, 'खैर, हुआ सो हुआ। लेकिन अव उसका व्याह कैसे करोगी ?

शंकरी ने उसांस लेकर कहा, 'वह परिचय नही भी देती तो क्या व्याह कर सकती उसका ? जिसके वाप-दादे का परिचय नहीं, उस लड़की को अपने घर कौन ले जाएगा ?'

भवें सिकोड़कर सत्य कुछ देर बैठी रही। फिर बोली, 'नगेन या क्या नाम था, उससे तो तुम्हारा ब्याह हुआ था बताया…'

'धोखा ! धोखा ! सब धोखा था ननदजी ! नरक के उस कीड़े ने मुझे धोखा देकर…' रुंधे स्वर को साफ करके बोली, 'तुमसे कहूं क्या, उस धोखे में नहीं पड़ती तो मेरी यह दुर्गति होती ? कहा, कलकत्ता में अब विधवा-विवाह का रिवाज शुरू हुआ है। कितनी ही कम उमर की विधवाएं सुख से अपनी घर-गिरस्ती कर रही हैं। उसी धोखे में पड़कर मैंने पाताल की सीढ़ी पर पैर रख दिया।'

सत्य ने उदास होकर पूछा—'यानी, ब्याह नहीं किया ?'

'न:, झूठ नहीं बोलूंगी, किया था। विधवा-विवाह करानेवाले एक पुरोहित को बुलाकर अग्नि-नारायण को साक्षी रखकर एक ठाट तो दिखाई थी। लेकिन उस ब्याह को वह अगर मन-प्राण से सत्य मानता, तो मेरे पेट में संतान आयी है, यह सुनते ही फटे कपड़े-सा मुझे छोड़कर वह चला जाता ?'

'खैर, जाने दो !' सत्य ने चैन की सांस ली—'उसने अपने चरित्र के लायक ही काम किया है। लेकिन तुम तो अपने धर्म में ठीक हो। तुम्हारी संतान को भी अधर्म का नहीं कहा जा सकता। विधवा का विवाह मेरी नजरों में नहीं जंचता, तो भी बुरे का अच्छा ! बड़े-बड़े पंडितों ने जब शास्तर देखकर राय दी है तो, इसे एकबारगी ना तो नहीं किया जा सकता। मगर मैं फिर भी कहूंगी, बिटिया को विधवा बताना उचित नहीं हुआ है। उसके लिए भी तो जवाबदेही नहीं है ? वह जब बड़ी होगी, दूसरों का ब्याह, गहने-कपड़े देखेगी, तो उसके मन में क्या गुजरेगा ? तब तो वह कहेगी, मां, तुमने मां होकर ऐसा किया ?'

शंकरी उदास स्वर में बोली, "मैंने उस बात की भी जड़ काट रखी है ननदजी, उसे भी वही समझा दिया है। कहा है, जब तू पांच साल की थी, तब की घटना है। तुझे याद नहीं है !'

'भाभी !'

आवेग-कंपित स्वर मे सत्य ने यही एक शब्द कहा।

सत्य के उस क्षुब्ध और विस्मित मुखड़े की ओर देखकर शंकरी ने कहा, 'सो तुम मुझे सौ झाड़ू लगाओ ननदजी, इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय मुझे नजर नही आया। कह सकती हो, मैं मां नही, राक्षसी हूं ! लेकिन तो भी तो उस दुर्दिन में मैं डूबकर मर नही सकी ? उसी के लिए दर-दर की ठोकरें खायीं, झाड़-लात खायी, मान-अपमान की परवाह नहीं की। आज एक बनिया की चाकरी करके पेट पाल रही हूं। लेकिन घर यह अच्छा नहीं है। लोग कहते हैं, अन्नदाता की निंदा नहीं करनी चाहिए, लेकिन कहे बिना उपाय नहीं, जवान

लड़की को लेकर वहां सदा डरकर रहना! तुम यदि सिर्फ बिटिया को…'
शंकरी चुप हो गयी।

देर तक चुप रहने के बाद सत्य बोली, 'नाम क्या रखा है?'

'नाम!' शंकरी के गले में अपराध का सुर बज उठा—'दो ही महीने की उम्र से दईमारी की हंसी ऐसी जी चुराने वाली थी कि मैंने नाम रख दिया था—सुहासिनी!'

गले में अपराध का सुर बजना ही स्वाभाविक था। उस अभागी लड़की का नाम 'मलीना' या 'अश्रुमती' और नहीं तो 'छाया' या 'दासी', ऐसा ही कुछ होता, तो सोहता!

लेकिन सत्य ने यह सब-कुछ नहीं कहा। कहा, 'जाने दो! वह घर जब वैसा है, तब तो वहां रहना ठीक नहीं। बेटी को लेकर फौरन चली आओ!'

'हां, उन लोगों का घर वैसा ही है!' सत्य ने दबे गले से नवकुमार से कहा—'भले घर की स्त्रियों के लिए यह सब बात जबान पर लाना भी पाप है, लेकिन साफ-साफ कहे बिना स्थिति को तुम समझोगे भी तो नहीं। सोच देखो, वैसी रूपवती लड़की को लेकर ननदजी वहां किस सकते में रहती है। कहती है, निचले तल्ले में रसोई घर के पास एक छोटा-सा कमरा है, गोंयठा-लकड़ी रहती थी उसमें, उसी को साफ-सुथरा करके मां-बेटी रहती हैं। इसलिए कि किसी की नजर न पड़े। दिन में एक बार बेटी को नहाने-खाने के लिए निकलने देती है, वह भी अपने सख्त पहरे में। कुमारी बेटी को विधवा बता रखा है। तकलीफ की सोचो!'

नवकुमार लेकिन ज्यादा विचलित नहीं हुआ। खीजे हुए से स्वर में बोला, 'यह जिसका झमेला है, वह समझे। तुम्हें ऐसी क्या पड़ी है? अकेली अवीरा विधवा भाभी होती, तो बात थी। यह सब क्या? न-न, यह सब टंटा-बखेड़ा अपने यहां लाना न होगा। परदेस आकर डेरे में हूं, मगर बेवारिस तो नहीं हूं। कहीं मां सुने तो मेरा मुंह देखेगी? तुम्हारे हाथ का पानी पिएगी?'

सत्य ने धीरता से कहा, 'कहने की बातें बहुत थी। नहीं कहूंगी। सिर्फ यह कहूं, मैं अगर उन लोगों को राजी कर लूं?'

'हां, राजी कर सकती हो! यह तुम्हारा बेपेंदी का नवकुमार है कि तुम्हारी बात पर उठेगा-बैठेगा! वह बड़ा सख्त मोर्चा है।'

सत्य ने भंवें नचाकर कहा, 'अपने मुंह अपनी नहीं हांको। खैर! उनकी राय मिलने से तो होगा न!'

'तुम्हारा कोई ठिकाना नहीं, जो डाकू हो तुम! हो सकता है सास-ससुर के गले में गमछा लगाकर उनसे हां कहला लो। लेकिन इतने झमेले की जरूरत भी क्या! मैं कहता हूं, मेरे घर में यह सब नहीं चलेगा।'

सत्य ने भ्रूभंगिमा छोड़कर उदास गले से कहा, 'ठीक है! वही सही! भाभी से यही कह दूंगी। कह दूंगी, नहीं भाभी, इस घर में तुम्हें पनाह नहीं मिलेगी। गलती से सोचा था, यह घर मेरा है, सो हथौड़े की चोट से वह गलती टूट गयी। आखें खुल गयी। अच्छा ही हुआ, सबक सीख गयी।'

नवकुमार बैठ पड़ा।

उसकी आंखों मे सरसों फुलाया!

सारी बहादुरी छोड़कर वह वही कंठस्थ बात बोल गया, 'हुआ तो! गुस्सा हो गयी! मैंने गुस्से की कोई बात नहीं कही। यही तो कहा, मुख के दांतों पर भूत की मार किस लिए?'

सत्य के चेहरे की सख्ती कुछ ढीली पड़ी।

वह धीर स्वर में बोली, 'तुम्हारे इस सवाल का जवाब मैंने और एक दिन दिया था, आज फिर दे रही हूं। भूत की मार क्यो, मालूम है? इसलिए कि आदमी-आदमी है, बैल-गधा, पशु-पक्षी नहीं!'

'और उसके एक लड़की जो है···'

'है, यह बात तो हो ही चुकी है।'

'वह भी मां जैसी होगी कि नहीं···'

'न हो, यही कोशिश करनी होगी!'

सत्य चेहरे पर दृढ़ संकल्प का भाव लिए चली गयी।

सुहासिनी!

पुकार का नाम सुहास।

हां, उम्र के साथ-साथ रूप की बहार। शंकरी की वास्तुविहीन कैशोर-मूर्ति मानो उसमें आ बसी है। दुःख के इतने थपेड़े, इतनी लानत-मलामत, मा का इतना कठोर शासन, तो भी देह कला-कला से भर उठ रही है। पंद्रह कला—एक कला और होने से ही पूर्ण।

लड़की का मुह देखकर शंकरी का कलेजा भर जाता, रूप देखकर छाती कांप जाती। इसीलिए कभी बेटी को गोदी में लेकर रोती, कभी उस पर दांत पीसती।

जिस दिन सत्य ने उसका हाथ पकड़ लिया, उस दिन शंकरी ने बेटी की गत कर दी। कहा, 'तो थोड़ा-सा जहर ले आ, तू भी खा, मैं भी खाऊं। सब जलन जुड़ाए, सारी समस्या सुलझ जाए।'

बात इतनी ही थी, ना से सत्य का प्रस्ताव जो सुना, सुहास अड़ गयी। वह जाने को राजी न हुई। बहुत घाट का पानी पार करके, बहुत ठोकरें खाकर इतने दिनों के बाद पावों के नीचे जब थोड़ी-सी माटी मिली है, राजमहल में आश्रय मिला है, तो अब अनिश्चित समंदर में कूदने जाने की क्या जरूरत है?

अपना आदमी !

तीन कुल में कोई नहीं था, मुट्ठीभर जला दाना लेकर कभी कोई आगे नहीं आया, आज हठात् ज़मीन फोड़कर अपना आदमी निकल आया ! हो सकता है, कभी गांव-घर का आदमी था, लेकिन उससे क्या चार हाथ-पांव निकलते हैं ? एकाएक उनमें इतनी सहानुभूति उमड़ आने की वजह ही क्या है ? और कुछ नहीं, बिना पैसे की दाई-रसोईदारिन मिल जाने का भरोसा ! सोचा है, हमदर्दी की दो बात सुनाकर एक बार अपने यहां ले तो आएं'''! तुम जैसी सूधी हो मां, समझ नहीं पाती कि यह कुल भी जाएगा, वह कुल भी जाएगा।

हां, सुहास ने पहले इतना सुनाया था। इतना ही बोलती है वह। लेकिन और किसी से नहीं, मां से। मां पर उसकी फटकार का अंत नहीं। जन्म से ही जो दुःख कष्ट पाया है, अभाव-असुविधाएं झेली हैं, उसका कड़वापन मां पर झाड़ती रही है।

तो भी तो उसे पूरा इतिहास नहीं मालूम, सही इतिहास नहीं मालूम ! वह जानती है—गर्भ में संतान आते ही मां विधवा हुई, उस संतान को अपशकुन मानकर घरवालों ने दुरदुरा दिया, शंकरी उसी दुःख से, अपमान से रास्ते पर निकल पड़ी।

सुहास का यही अभियोग है।

मां के चलते ही यह दुर्गति।

खैर, हुआ सो हुआ ! अब फिर !

मां-बेटी में तर्क हुआ।

शंकरी ने बेहद लानत-मलामत की।

सुहास ने तेज़ी के साथ कहा, 'ठीक है ! मैं जब तुम्हारे गले का पत्थर हूं, तो उस पत्थर को हटा दूंगी।'

३६

कहते हैं, माटी गूंगी होती है।

लेकिन कलकत्ता की माटी शायद बोलती है ! शायद हो कि उसकी बुनियाद में हजारों स्तर की संस्कृति नहीं है, इसीलिए उसकी प्रकृति में उठती उमर की लड़की की चपलता और मुखरता है। अपनी उस मुखरता के झोंके से वह मूक को वाचाल कर सकता है। इसीलिए कलकत्ता के वाशिंदे बिना कुछ सीखे ही पंडित हैं, बिना कुछ समझे ही समझदार।

सत्य का कहना है, यह न केवल कलकत्ता की हवा का, बल्कि कल के पानी का भी गुण है।

हो भी सकता है।

आदि-अंतकाल तो लोगों ने धरती के गह्वर से ही अंजुरी भरकर प्यास मिटाई है, ज़िंदगी की जरूरत पूरी की है। जहां वैसा गड़ा मिला, ठीक! न मिला तो कुदाली से फोड़कर गढ़ा बनाया। उसके बाद उसके पास घड़ा लिए, कलसी लिए पहुंचे, असमय के लिए भर ले गए। माटी के नीचे नल लगाकर हर हाथ तक पानी पहुंचाने का यह तरीका, पानी को हुक्म का दास बनाने की विधि किसने कब निकाली? किसी ने नहीं! कलकत्ता यह सीख गया। पानी जैसी दुर्लभ चीज़, कल उमेठते ही हाज़िर! कम आश्चर्य है यह!

इस कल का असर शरीर पर तो पड़ेगा। और कुछ न सही, कल का पानी साहस जुगाता है।

नहीं तो भला नवकुमार को भवतोष मास्टर के मुंह पर सुना देने का साहस होता—'हम लोगों ने आपको छोड़ दिया मास्टर साहब। अब आप हमारे यहां दखल देने न आया करें!'

नवकुमार ने खुद ही निताई को यह बताया कि कहा है। कहा, 'बचा-छिपा के नहीं कहा, समझा? खूब कसकर सुना दिया। जब मानने योग्य थे, माना। अब उसकी मर्यादा खोकर वे खुद ही चेहरे पर कालिख-चूना पोत लें, तो हमारी क्या ज़िम्मेदारी है? इस उमर में यदि वे धरम खो बैठें तो लोगों की श्रद्धा, भक्ति, स्नेह सब-कुछ गंवाना पड़ेगा। छि:-छि:, ऐसी दुर्मति उन्हें कैसे हुई? सोच ही नहीं पाता। इस परदेस में एक अभिभावक जैसे थे, नहीं रहे।'

निताई ने तृप्ति की हंसी हंसकर कहा, 'तो अब उनसे कोई नाता नहीं रखेगा?'

'पागल हुआ है तू! वे तो पतित हैं। पतित से क्या नाता?'

नवकुमार ने लेकिन निताई को नहीं छोड़ा। हर रोज़ उसके मेस में जाकर परजा देता, हाथ-पांव जोड़ता और आखिरकार भवतोष मास्टर की सलाह के मुताबिक सत्य से कहलाकर उसे ठीक रास्ते पर ले आया।

इसके भी लेकिन बहुत दिन हो गए। नवकुमार का बड़ा लड़का जिसका अच्छा नाम साधनकुमार है, वह उस समय दर्जा चार में पढ़ता था, अब वह एंट्रेंस के इम्तहान की तैयारी कर रहा है। सत्य ने कहा है, स्कालरशिप लेना पड़ेगा। कहा है, स्कालरशिप नहीं लिया तो मेरे जीवन की साधना ही बेकार गयी।

गांव के लड़के पांच मील की दूरी तय करके ज़िला स्कूल में पढ़कर जो करते हैं, इतनी सुयोग-सुविधा पाकर भी साधन यदि उतना ही करे, तो सत्य के

इस संग्राम और शक्तिक्षय का क्या हुआ ?

लगता है, साधनकुमार वह आशा पूरी करेगा। कम-से-कम लोग-बाग, मास्टर तो यही कहते हैं, जिस मास्टर को हर महीने नक़द दस रुपये देकर नवकुमार पाल रहा है।

लेकिन नवकुमार का मास्टर जो इस तरह से नवकुमार के मुंह पर चूना फेरेगा, यह कौन जानता था ?

निताई की दुर्मति की ग्लानि में ही तो कितने दिन बीत गए। उसके मेस की कितनी बार खाक छाननी पड़ी, उससे कितनी निहोरा-विनती करनी पड़ी—निताई ने सब हंसकर उड़ा दिया। जलनभरी तीखी हंसी। कहा, 'मुझ जैसे निकम्मे-नाचीज़ के लिए भला चिंता ! हूं कि जहन्नुम मे गया, इससे त्रिभुवन में किसका क्या आता-जाता है ? मजे में हूं। खा-पी रहा हूं। रंगीन नशे में मस्त हूं। तुम लोग भैया 'गुड बॉय' हो, कीमती माल, दुनिया मे तुम्हारी जरूरत है, तुम भले बनो।'

लेकिन इस एक विषय मे नवकुमार ने हथियार नही डाल दिया, अडिग रहा। निताई को सही रास्ते पर लाना ही होगा।

अंत तक, जैसा कि भवतोष मास्टर ने बताया था, नवकुमार निताई को सत्यवती के ही सामने खींच लाया था। बोला, 'लो, अब देवरजी से निबटो ! समझाओ इसे कि दुनिया में इसका दाम है या नही !'

शकरी वाली घटना से सत्य का मन-प्राण ठीक नही था, सो उसने थमथम करते हुए चेहरे से कहा, 'दाम है या नहीं, यह बात मैं समझाऊंगी !'

नवकुमार ने सिर खुजाकर कहा, 'वह तो यही कह रहा है। माने, कह रहा है, उसके जहन्नुम में जाने से किसी का कुछ आता-जाता नही।'

सुनते ही सत्य ने साफ निगाहों से निताई की ओर ताका। ताककर कहा, 'किसी का कुछ आएगा-जाएगा नही, यह जान लिया है ? सर्वज्ञ हो ?'

उस निगाह के सामने निताई ने सिर झुका लिया था।

सत्य तीखे स्वर में बोल उठी थी, 'मैं कहती हूं, मेरा आएगा-जाएगा। मानोगे इसे ?'

नवकुमार को इस तीखेपन का अर्थ ढूंढे नही मिला था। उसका ख्याल था, सत्य आरजू-मिन्नत करेगी, कसम-वसम देगी। लेकिन कहां, वैसा तो कुछ नहीं नजर आया।

डांट बतायी क्या ?

लगता तो नही। लेकिन बात में जोर है, इसमें कोई शक नही। सत्य ने फिर उसी जोर के साथ कहा, 'मैं कहती हूं, आपको भला होना पड़ेगा, सभ्य-भव्य, सज्जन बनना पड़ेगा। याद रखना होगा कि आदमी जंगली जंतु-जानवर

नहीं है। दस दिन की छुट्टी लीजिए, घर जाइए, बीवी को लिवा आइए। मैं यहा डेरे का इंतजाम किए देती हूं।'

निताई ने धीरे-धीरे गरदन हिलाई, 'यह असंभव है!'

'असंभव! क्यों, असंभव क्यों है?'

'राजी नहीं होगी?'

'कौन नही राजी होगी, तुम्हारी स्त्री?'

'नहीं! मतलब वही समझिए। मामा-मामी राजी नहीं होंगे, लिहाजा वह भी···'

'लिहाजा वह भी? यह तो अच्छी खुदगर्ज लड़की है?'

'खुदगर्ज!' निताई आसमान से गिर पड़ा।

जहा स्वार्थपरता की पराकाष्ठा है, वहा खुदगर्जी का अपवाद! बोला, 'आपकी बात ठीक-ठीक समझ नही पाया, भाभी!'

नवकुमार ने भी ताईद की—'हां, तुम्हारी यह बात बेसिर-पैर की हुई।'

दिमाग लगाओ तो बेसिर-पैर की नहीं लगेगी। मैं पूछती हूं, जो बहू ऊपर वालों की हां-में-हा मिलाती है, वह श्रद्धा से? या कि प्रेम से? पति से उन्हें ज्यादा चाहती है? पति के साथ रहकर उन्हें पकाचुका करके खिला-पिलाकर, सेवा-जतन करके जो परितृप्ति पाएगी, उससे ज्यादा परितृप्ति क्या उनके सेवा-जतन से पाएगी?'

सवाल यह निताई से ही था, मगर जवाब नवकुमार ने दिया। बोला, 'अहा, यह भी कोई बात हुई? घर छोड़कर डेरे पर आना चाहेगी, तो लोग निंदा नही करेंगे? दस आदमी बुरा नही कहेंगे? तुम जैसी···'

'हा, मुझ जैसी डकैत और कौन है? खैर, छोड़ो! यह बात बहुत दिनों की है। मैं पूछती हूं, दस जने मुझे बुरा कहेंगे, इस डर से पति जैसी वस्तु को मैं छोड़ दू, होटल के भरोसे उसकी सेहत चौपट होने दूं, उसे जहन्नुम की राह पर छोड़ दूं, यह स्वार्थपरता नहीं है? दस जने बुरा कहेंगे तो क्या मेरे बदन में फोला पड़ जाएगा? मेरी अंतरात्मा समझेगी नहीं कि काम यह बुरा नहीं है? और फिर वह तो बांझ है। क्या लिए पड़ी है? सुबह से साझ तक ओछा काम लिए पड़ी है और उसके बदले लोग तारीफ करते हैं—यही क्या कोई जिंदगी हुई? मैं आप से कहती हूं देवरजी, अगर अपना भला चाहते हैं तो अपनी स्त्री को लाकर साथ रखिए। डेरा मैं खोज देती हूं।'

जैसा और एक दिन किया था, निताई वही कर बैठा। उसने झुककर सत्य के पैर छुए और वह हाथ माथे से लगाकर बोला, 'मैं अपना भला-बुरा नहीं जानता हू भाभी, जानता हूं सिर्फ आप को! आप हुक्म दें, तो···'

''हां, हुक्म ही देती हूं मैं!' सत्य ने दृढ़ स्वर में कहा, 'हुक्म देती हूं कि

इन्सान की तरह घर-गिरस्ती कीजिए, निरे सपनों के लिए दिमाग़ मत खपाइए!'

निताई चला गया।

सत्य भी काम में लग गयी। नवकुमार बुद्धू-सा टुकुर-टुकुर ताकता रहा। वास्तव में बात क्या हो गयी, ठीक-ठीक समझ नहीं पाया। गोकि उसकी नज़रों के सामने ही ऐसा कुछ हुआ, जो आम नहीं है, यह समझ में आ रहा था। सत्य और निताई ने मानो उर्दू-फ़ारसी जैसी और ही किसी भाषा में बात की।

मगर पूछकर सत्य को तंग भी नहीं किया जा सकता। शंकरी की करतूत से वह बेहद मायूस है।

सच ही तो, शंकरी सत्य से इतनी बड़ी दुश्मनी करेगी, यह क्या सत्य ने सपने में भी सोचा था? यह तो मानो पिछले जनम की दुश्मनी का कर्ज़ वसूल गयी शंकरी!

नहीं तो जो सदा के लिए खो गयी थी, जिसे एक दिन के लिए भी उसने मन के कोने में जगह नहीं दी, वह औचक ही ऐसे भेंट ही क्यों करती, पहचान ही क्यों करती?

कितने सुख के दिन गुजार रही थी सत्य। शंकरी ने मानो उसके उस सुखी प्राण में छुरी मारकर ज़ख्म कर दिया।

कहानी है न, कब्र से निकलकर प्रेतात्मा दु:ख दे जाता है, शंकरी ने वही किया।

सत्य ने शंकरी को पाने की खबर भेजी थी बाबूजी को। देखें, क्या कहते हैं वे? उसका जवाब आने से पहले ही शंकरी ने दूसरा गुल खिला दिया।

दो दिन भी सब्र नहीं कर सकी?

खबर सुनते ही सत्य सिर पर हाथ रखकर बैठ गयी थी। कहा था, 'जानती हूं! जानती थी! सदा की संगदिल है वह। औरत होकर ऐसी निष्ठुर! ओः!' और फिर बेसब्री से बोल पड़ी, 'हाय भाभी, बड़ी बुरी साइत में मुझसे भेंट हुई थी। बुरे क्षण में मैंने कहा था कि तुम्हारी बिटिया का भार मैं लूंगी। खामखा, क्यों कहने गयी मैं। नहीं कहा होता तो तुम इस तरह से उस जिम्मेदारी से छुटकारा नहीं लेतीं।'

बात भी गलत नहीं। सुहास के कारण ही तो अब तक वैसी शर्मनाक ज़िंदगी को ढोती आ रही थी वह।

उस भार से हल्की हो गयी, जभी तो···

या कि तात्कालिक उत्तेजना का नतीजा? बेटी ने जब कलह करके कह दिया, 'जब मैं तुम्हारे गले का पत्थर ही हूं, तो उस पत्थर को हटा ही दूंगी!'

इधर क्या शंकरी के होठों तीखे अफसोस की एक कड़वी हंसी फूट उठी थी ? सोच लिया था—'अच्छा, तरा मैं ही दबी रहूंगी ? मेरे पाप का प्रायश्चित नहीं होगा ? जनम से ही तुमने मुझे दबाकर रखा है, अब मरकर भी दबाना चाहती हो ? खैर, देखो, कौन किसे दबाता है ?'

कौन-सी बात सही है, कौन जाने ?

आत्महत्या करने से पहले कुछ लिख जाना होता है—मेरी मौत का कोई जिम्मेदार नहीं—यह भी नहीं जानती थी शंकरी। या कि उस समय यह रिवाज चालू नहीं हुआ था।

शायद उन्होंने लिखना नहीं सीखा था, इसलिए यह रिवाज चालू नहीं हुआ था।

रिवाज चालू नहीं हुआ था इसीलिए रात बीतते ही दत्त-परिवार में हलचल मच गयी—'पान लगानेवाली बाम्हनबीबी रसोईघर के पासवाले कमरे में गले में रस्सी लगाकर झूल गयी !'

हाय राम, क्यों ?

किस दुःख से ?

कल ही तो खुशी के समंदर में उतरा रही थी। नौकरी छोड़कर चल देने का संकल्प किया था। बोली थी, 'गांव-घर की है, सास की पोती-नतपाती, छोड़ नहीं रही है, बेटी तक का भार लेने को तैयार है। यह मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहती। दासी का काम तो काफी दिन कर लिया।'

लेकिन दिन-साइत की बताती हुई बोली थी, 'चैत, पूस और भादों में पाली हुई बिल्ली को भी घर से जाने नहीं देना चाहिए, इससे गृहस्थ का अमंगल होता है। इतने दिनों तक आपका नमक खाया। अमंगल नहीं करूंगी। इस महीने में अब नहीं जाऊंगी।'

अचानक शंकरी का यह सद्विचार जाता कैसे रहा ? नमक का ऋण वह बिसर कैसे गयी ?

हलचल हुई।

लेकिन बड़े आदमी के अंतःपुर की बात और गरीब नौकरानी की जिंदगी ! हलचल हुई और दब गयी। थाना-पुलिस की तो दूर रही, बाहर बैठकों के बाबुओं को भी पता चला कि नहीं चला ! कम-से-कम उनके आचरण से तो ऐसा पता नहीं चला।

हुक्के की लगातार गुड़-गुड़ शब्द का जरा-सा छंदपतन शायद हुआ हो, गले से एकबार आवाज हुई हो शायद, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

पिछवाड़े के दरवाजे से शंकरी की लाश निकल गयी। आगे दरवाजे पर

खड़ी, काठ की मारी-सी देखती रही सत्यवती। जब चली गयी लाश, आंखों से ओझल हो गयी, तो हाथ उठाकर एकबार नमस्कार करके मन-ही-मन बोली, 'इतने पतन में भी अंदर से तुम बेहद तेज़ थी, भाभी! छोटी ननद की दया की पात्री होकर नहीं रही। सभी कारण पूछ रहे है। मैं खूब समझ रही हूं, कारण मैं ही हूं। करूं भी क्या, नियति मेरी। ईश्वर जिसे जिसका निमित्त बना दें!'

ठीक इसी समय एक नौकरानी आयी—'मालकिन आपको बुला रही हैं।'

सत्य ने कुछ पूछा-आछा नहीं।

शायद इसी बुलाहट के इंतज़ार में ही थी।

बुलाकर दत्त-गृहिणी उसे मिठाई खिलाएंगी, इस उम्मीद की कोई वजह ज़रूर नहीं थी। लेकिन यह भी नहीं सोचा था उसने कि बुलाकर उसे दत्त-गृहिणी गाली-गलौज करेंगी। थाना पुलिस की भी धमकी दी। दस जने गवाही देंगे कि सत्य के बहकाए ही वह सीधी-सादी औरत कैसी बहक गयी थी।

तुम्ही उसकी मौत का कारण हो। यों अब तक ठीक ही तो थी।

सत्य ने सिर झुकाकर सारा कसूर मान लिया और कहा, 'जो होना था, सो तो हो चुका। अब उसकी लड़की को दे दीजिए।'

'तुम्हें? उसकी बेटी को तुम्हें दे दू?'

वैसी एक गुणवती और उठती उम्र की लड़की को कहते ही दे दें, दत्त-गृहिणी इतनी बेवकूफ नहीं। वह तो हाथ का एक हथियार है। उससे वक्त पर कितना काम बन सकता है। सो भौंहें सिकोड़कर बोली, 'तुम्हें दे दूं, मतलब? तुम कौन होती हो उसकी? वह मेरे ही यहा रहेगी? जैसे उसकी मां थी!'

सत्य ने सिर उठाकर पूछा, 'पान लगानेवाली नौकरानी बनकर?'

स्याह चेहरे और सख्त स्वर में दत्त-गृहिणी बोली, 'नौकरानी की बेटी नौकरानी नहीं तो क्या राजरानी होगी? मगर अपने यहा के पुरुष दयालु हैं, नज़र मे जंच जाए, तो वह भी मुमकिन है।'

यह ज़हरीली चिकोटी दत्त-गृहिणी ने जान-बूझकर ही चुभायी, इसमें क्या शुबहा! बात दरअसल यह है कि शंकरी की मौत की ज़िम्मेदार वह उसी को बनाए बैठी है—पता नहीं, कान में कौन-सा मंतर पढ़ दिया और जीती-जागती वैसी अच्छी नौकरानी कपूर की तरह उड़ गयी! और तुर्रा यह कि अब उसकी बेटी पर दावा करने आयी है।

'अहा रे, मेरी कौन रे!'

'तुम्हारा घमंड तोड़ने का मौका अब आ गया है। तुम्हारे भीतर के गूदे

को भाप लिया। सुहास की मां तुम्हारे गांव-घर की थी। अपनी ही होगी कोई। गर्ज कि तुम भी उसी तबके की हो। घमंड के दिखावे से मेरी बराबरी करने चली हो!'

सत्यवती ने मुह की बात से ही शायद दत्त-गृहिणी के मन की बात को ताड़ लिया। इसीलिए डावाडोल नहीं होने की प्रतिज्ञा करके ही बोली, 'फिर तो सुविधा ही हुई। आपके घर के मर्दों में जब इतनी दया है, तो उसकी कौन-सी गति होगी, यह सोचकर कातर क्यों होऊं। लगता है, सद्गति ही होगी!'

दत्त-गृहिणी के तेवर बदले, 'क्या कहा?'

'वही तो कहा!'

'सद्गति की क्या कही?'

'वही तो कहा! समझ नहीं पायी तो समझा नहीं पाऊंगी। आगे चलकर समझेंगी। खैर! तो जाने की इजाजत दीजिए!'

दत्त-घरनी ने अब अपना रूप धारण किया। बोली, 'मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर सकती हूं, पता है? मैं यह कह सकती हूं कि मेरी नौकरानी तुम्हारी वजह से मरी है?'

सत्य ने धीरे से मुस्कराकर कहा—'तो वही कीजिए! लेकिन अभी तो अपनी किसी दाई या छोटे बच्चे को मेरे साथ दीजिए कि मुझे बता दे, आपके यहां का बैठका कहां है!'

'बैठका? तुम बैठके में जाओगी? इरादा क्या है तुम्हारा, यह तो कहो!'

'उन दयावानों से थोड़ी-सी भीख मागूंगी! ब्राह्मण की बेटी हूं, इसमें कोई बुराई नहीं!'

'यह तो खूब जांबाज औरत है!' वह हड़बड़ाकर खाट से उतर आयी—'तुम्हारे लच्छन तो ठीक नहीं लगते! बैठके में जाकर मर्दों के आगे क्या छल-प्रपंच करोगी? शर्म नहीं लगेगी?'

सत्य के माथे का कपड़ा सरक गया था, सत्य का चेहरा लाल हो उठा था, दोनों को ही सम्हालकर उसने शांत स्वर से कहा—'शर्म की क्या है? शूद्र-भाव ही ब्राह्मणी की संतान जैसे होते हैं, संतान के सामने मां के लिए शर्म कैसी?'

उसके बाद क्या से क्या हुआ, दत्त-घरनी को पता नहीं। हां, सुहास को उन्हें सत्य के ही हवाले करना पड़ा।

मंझले बाबू, मानी मंझले देवर चप्पल फटफटाते हुए अंदर आकर बोले, 'उस बाम्हनी की बिटिया को सात नंबर मकान में भेज दो भाभी, वह शायद उन्हीं लोगों के गांव की है!'

विधुर देवर, सच पूछिए तो बड़ी बहू की मुट्ठी की दौलत, सो भंवें नचाकर पूछा, 'कौन कहां की है, यह खबर तुम्हारे कानों कहां से आयी ?'

'कहां से आयी ! अरे ! कानों ढाल देने से नहीं आएगी ? वह जो बनर्जी की बीवी है, वही तो खुद जाकर बोली···!'

'बोली !' तुमसे खुद कही उसने ?'

'अरे बाबा, सीधे मुझसे थोड़े ही बोली ? नौकरानी से कहलाया !'

'और, खूबसूरत शकल देखकर तुम गल गए ! बलिहारी ! तुम्हें अन्दर महल की इन बातों में पड़ने की जरूरत नहीं, मंझले बाबू ! मर्दों को मोहने वाली औरत को कैसे सिर किया जाता है, मैं जानती हूं।'

मंझले बाबू विचलित हुए। बोले, 'आह, क्या जो-सो कहती हो ! भले घर की है, यों कहो तो मेरी बेटी की उमर की है, छिः !'

बड़ी बहू ने दबे क्रोध से कहा, 'योगी के आगे धुरखेल ! बेटी की उमर की और औरत को देखा ही नहीं है मैंने ! चलो, चलो—जहां के हो, वहीं जाओ ! सुहास को मैं कहीं नहीं भेजती ! बस !'

बेबस-से हो मंझले बाबू बोले, 'लेकिन मैंने जो उसे बात दे दी है। मेरी बात की आखिर कीमत है न !'

'और मेरी बात की कीमत नहीं है, न ?'

'अजीब मुसीबत है ! यह कौन कह रहा है !' मंझले बाबू ने कूट कौशल की शरण ली—'मेरी सुनो, बिना कुछ किए जब आफ़त विदा हो रही है, तो होने दो ! जानती तो हो कि फांसी लगाकर मरे हुए को सद्गति नहीं होती ? सो, धरती पर जिसके लिए ज्यादा खिंचाव होता है, उसी के आस-पास चक्कर काटा करती है। लड़की उसकी इकलौती है, लिहाजा उस पर बड़ा मोह होगा !'

बड़ी बहू सिहरकर राम-नाम ले बैठीं।

खैर ! ज्यादा कुछ नहीं करना पड़ा। एक ही दाव में बाजी रह गयी मंझले बाबू की।

हजार अनिच्छा होते हुए भी सुहासिनी सत्य की गिरस्ती में जा रही।

अनिच्छा सब की थी।

नवकुमार की तो सोलहों आने अनिच्छा थी। सत्य को भी पहले वाले कर्तव्य का मधुर आनन्द नहीं रहा। लाचारी ही लाना पड़ा। शंकरी को वह बात दे चुकी थी।

ये बातें तो चारेक साल पहले की हैं।

अब तो सुहासिनी की बेथुन स्कूल में तीन दर्जे की पढ़ाई भी हो चुकी।

स्कूल की सुविधा के लिए हो, चाहे दत्त-परिवार के दायरे से छुटकारा के नाते हो, सत्य मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट का वह मकान छोड़कर बाग बाजार आ गयी थी। इस घर में असुविधाएं बहुत थीं, किराया भी ज्यादा था, मगर एक बहुत बड़ा लाभ था कि गंगाजी करीब हैं। रोज गंगा नहाने का पुण्य।

और?

एक आकर्षण और भी है, जो नवकुमार का अजाना है। नवकुमार के अजानते ही सत्य ने दोपहर को एक जगह आना-जाना शुरू किया है।

खैर! नवकुमार को मालूम ही नहीं। उसके लिए उसे सुख-दुःख नही, मोटा-मोटी मजे में ही रहने की बात है। मकान का किराया बढ़ा तो उधर उसकी तनखा भी बढ़ गयी काफी। लड़के दोनों हर साल दर्जे में पहला-दूसरा आता है। एक ने तो पास भी कर लिया। सत्य की एक-सी बनी तन्दुरुस्ती और काम करने की अपार क्षमता ने गिरस्ती को मोती-सा स्वच्छ कर रखा है।

गांव में मां-बाप भी सकुशल हैं।

निताई की भी मति-गति बदली। और क्या चाहे वह?

चाहने को कुछ नहीं था। लेकिन अचानक एक नुकसान हो गया।

हां, अचानक ही! और जो हो गया, उसका कोई उपाय नहीं। बिना बादलों के बिजली गिर पड़ी! सब सुख के बीच विषाद!

भवतोष मास्टर ने ब्राह्मणधर्म कबूल कर लिया।

'पतित' हो गए!

३७

गांव पर ससुराल में और ही शकल थी भाविनी की। दिनभर गधे जैसी मशक्कत और तमाम रात भैंस जैसी नींद। लाख बकझक हो, चूं नहीं। मामा-ससुर के यहां के हर किसी से यम की तरह डरती।

कलकत्ता के इस डेरे में आने से पहले इतनी उमर तक निताई से कितने शब्द कहे, अंगुलियों पर गिनकर बता सकता है निताई। सिर्फ उसी बार, जब कलकत्ता आने की चर्चा चली थी, जरा साफ गला सुनाई पड़ा था उसका।

बोली थी, 'चुल्लूभर पानी में डूब मरूं? लोक-लाज खोकर मुंह में कालिख-चूना लगाकर तुम्हारे साथ कलकत्ता जाऊं?'

अगल-बगल कोई कान लगाए है, यह जानकारी होने की वजह से ही शायद वह ऐसी ऊंची आवाज में बोली।

निताई का उतरा हुआ चेहरा और उतर गया।

दूसरे दिन मामी बोली, 'क्यों रे निताई, अपने उस जिगरी दोस्त की तरह तू भी बहू को कलकत्ता ले जाएगा ?'

निताई ने कहा, 'तुम भी जैसी ! पागल हुई हो ?'

मामी ने कहा, 'देखो भैया, आगे चलकर मुझे दोष मत देना ! मैंने तो बहू से कहा, मन को दबाकर यहा पड़े रहने की जरूरत नहीं, जाना चाहो तो जाओ। मगर वह कहती क्या है, आप लोगों के पैर पकड़े पड़ी रहूंगी। देखती हूं, इस आश्रय से मुझे कौन ले जाता है !'

मामी के गले से परितृप्ति का स्वर झड़ पड़ा था।

और निताई अपनी स्त्री के धर्मज्ञान के परिचय से ही परितृप्त होकर नवकुमार के डेरे पर आ रहा था।

खैर ! यह तो शुरू की बात है।

उसके बाद तो कितना पानी बह निकला, कितना पानी गंदला हुआ। निताई की दसों दशा गुजरी। अन्त मे मित्र की स्त्री के निर्देश या आदेश से फिर वही पुराना प्रस्ताव लेकर घर गया।

सोचा था, झगड़ना पड़े शायद।

मगर ताज्जुब है, इस बार बिना लड़े ही किला फतह हो गया। ईश्वर जानें, किसने कहा कल-पुर्जा चलाया था, कि निताई के कुछ कहने के पहले ही मामी बोली, 'मेस का खाना आखिर कब तक खाता रहेगा ? अबकी बहू को साथ लेता जा !'

मामा ने भी यही कहा।

और उसने देखा, उसकी स्त्री बगैर कुछ कहे चुपचाप उसके पीछे हो ली। देखकर यह तो नही लगा कि उसके गाल पर कालिख-चूना लगा है।

बात दरअसल यह थी—

निताई की बदचलनी की खबर गांव तक पहुंच गयी थी। 'निन्दा और बुरी खबर के पंख होते हैं।' वे पंख अनेक अश्वशक्ति वाले होते हैं।

सुना कि उसकी बीवी तो जमीन पर पड़ गयी। अभिभावक चिंतित हुए। तय किया, घांटी की चौकसी के लिए सेनापति को भेजना जरूरी है। इस बीच में गांव की कई बहुएं गांव से परदेस जा चुकी थीं। मामी के अपने ही गांव की चार-चार बहुएं जमालपुर चली गयी थीं। यहां की एक कचरा पाड़ा और दूसरी साहबगंज गयी। रेल की नौकरी हुई और छोकरों ने साप के पांव देख लिए—लाज-शरम की खोपड़ी खाकर बीवी के साथ परदेस जाने लगे।

सो निताई की स्त्री कलकत्ता जाए, तो जात नही जाएगी। और फिर वह स्थान भी गंगाविहीन नही। कालीघाट में कालीमैया भी हैं।

अपने आप जमीन तैयार हो गयी थी।

निताई को यह सब मालूम नहीं था। तुरत राजी हो जाने से वह अवाक् रह गया था।

लेकिन वह अवाक् होना था भी कितना ?

अभी तो भाविनी उसे घड़ी-घड़ी अवाक् कर रही है।

दूसरा रूप ही धर लिया है उसने।

निताई ने सपने में भी न सोचा था, ऐसी जबर है वह मुंह की।

लेकिन भाविनी को भी दोष नहीं दिया जा सकता। पहली बात तो यह कि वह घाटी की पहरेदारी को आयी है, आयी है अपने पति को दुरुस्त करने का व्रत लेकर। दूसरी कि इतने दिनों के विवाहित जीवन में अपने मुह को वह चुप ही रखती आयी है, चाहे डर से ही हो, चाहे अपनी तारीफ कराने के लिए। उसकी प्रतिक्रिया तो कुछ होगी ही।

तीसरी बात कि अब उस मुह को चुप रखने की कोई जरूरत नहीं है। लिहाजा बाध तोड़कर इतने दिनों के बधे पानी ने जोरों से कल्-कल के साथ अपने को बढाना शुरू किया है।

उठते-बैठते वाक्यवाण से निताई का बुरा हाल। लेकिन पलटा जवाब का मुह नहीं था। कहीं जैसे हार हुई है उसकी। समझ में नहीं आता, हार हुई कहां है, पर कोई एक शर्म उसे सिर नहीं उठाने देती।

और, सबसे दुखद यह कि जहा पर निताई की पूजा की वेदी है, हृदय का नैवेद्य है, भाविनी का जितना भी आक्रोश है, वहीं पर। सत्यवती के नाम से वह जल-भुन उठती। यह जलन आखिर किस लिए, निताई यह समझ नहीं पाता। आदमी क्या इतना एहसान फरामोश होता है ?

निताई सोचता, तुम किसकी कृपा से कलकत्ता आ पायी ? तेरे लिए गिरस्ती किसने सजा-संवार रखी थी ? तेरे पति को गलत रास्ते से सुपथ में कौन ले आयी ? सत्यवती ने सिफारिश नहीं की होती, तो इतनी आजादी, इतनी बाबू-गिरी तेरी कहां रहती ? धान उबालते-उबालते, कपड़ा फींचते-फींचते, ढेंकी कूटते-कूटते ही तो जिंदगी गुजर रही थी, गुजरती भी।

लेकिन इसके लिए कृतज्ञता की बला ही नहीं जानती नहीं है क्या ?

कलकत्ता के डेरे में कदम रखते ही निताई ने कहा था, 'मालिकपने की यह जो आजादी तुम्हें मिली, उसका कारण स्वरूप वही है। भाभीजी ने हुकुम नहीं दिया होता तो कौन साला इतना झमेला झेलने जाता।'

भाविनी के 'मुंह' नाम की एक चीज है, निताई को अचानक उसी दिन इसकी जरा-सी झलक मिली। वह टप् से बोल उठी, 'सभ्य शहर में रहने से बातचीत शायद ऐसी ही ऊसट होती है ?'

निताई की बोलचाल इधर कुछ असभ्य-सी हो गयी थी। सोहबत का

असर ! जो यार-दोस्त उसे जहन्नुम की राह लिए जा रहा था, वह जैसा था, उसका चाल-चलन भी वैसा ही था। इसलिए उसका असर पड़े बिना कैसे रहता ?

'साला' शब्द मुंह से निकलते ही निताई कुछ शर्मिंदा हुआ था। भाविनी की टिप्पणी से और ज़रा दुबका। बोला, 'लो, यहां कदम रखते ही तुमने मालिकपना शुरू कर दिया !'

उस दिन यहीं तक रहा।

चांद दिन-दिन कला-कला बढ़ता है। भाविनी अब सोलहों कला से विकसित हो उठी।

आज सबेरे ही एक चोट हो चुकी !

रात से ही निताई का सिर भारी था। सर्दी-बुखार-सा लग रहा था। बोला, 'आज खाना भी नहीं खाऊंगा, दफ्तर भी नहीं जाऊंगा !'

भाविनी सुनकर प्रसन्न ही हुई। बांझ औरत। तमाम दिन घर में अकेले ही कटता है। आज तो कम-से-कम यह रहेगा ! चोर का रात रहना ! एक दिन तो वही सही ! आजकल तो छुट्टी के दिन भी निताई के नए नशे में बीत रहे थे ! ठीक नया नहीं, पुराने की मंजाई। गांव पर तो महज यही एक आनन्द था। आजकल नवकुमार के साथ हर रविवार को मछली का शिकार शुरू कर दिया है।

दफ्तर के सहयोगियों में से बहुतों के यहां-वहां बाग-बगीचा तालाब-पोखरा है। मछली मारने का न्योता मिलता है। सो शनिवार की दोपहर से ही दोनों घर में उसी की तैयारी शुरू हो जाती।

खैर ! आज इतवार नहीं है, इसी से भाविनी खुश हुई। शहर में कम काम करते-करते कुछ आरामतलब भी हो गयी थी—सोचा, 'ठीक है, आज रसोई ही नहीं करूंगी। मूढ़ी-चूड़ा खाकर ही रह लूंगी। लेकिन आज की तिथि अच्छी नहीं। दशमी है। सधवा के लिए आज मछली-मुंह करना जरूरी है। खैर, रात को भी नियम कर लेने से चल जाएगा। घड़े में जिंदा कवै मछली है।

यही सोचकर अधसिली कथरी और सुई-धागा लिए वह बैठी थी। निताई कमरे में लेटे-लेटे पांव नचा रहा था। अचानक उठकर आया—'अरे, रसोई नहीं, कथरी लिए बैठी हो ?'

भाविनी बोली, 'तुम्हीं जब नहीं खाओगे, तो अपने लिए कौन चूल्हा-चक्की करे ?'

निताई ने अवाक् होकर कहा, 'मतलब ? मैं नहीं खाऊंगा तो तुम भी सूख-कर सोंठ होगी ? छिः, यह भी कोई बात हुई ? खाओगी क्या ?'

भाविनी ने ऊंची किस्म के दार्शनिक ढंग से कहा—'औरतों का खाना !

तुम्हारे साथ लावा-मूढ़ी ही खा लूंगी !'

'चूल्हा ही नहीं जलाओगी ?'

'जरूरत तो नहीं समझ रही हूं···'

निताई ने आगा-पीछा करके कहा—'फिर तो कहना ही नहीं, नहीं तो सोच रहा था···'

'क्या सोच रहे थे ?'

'न:, रहने दो !'

भाविनी ने कथरी समेट दी। बोली, 'रहने क्यों दूं, कहो न !'

निताई ने कहा, 'यानी कह रहा था, खास कुछ बुखार तो है नही, आलू-काली मिर्च के साथ दो-एक रोटी खा लेता तो, बुरा नहीं था।'

'रोटी !'

रोटी के नाम से ही भाविनी के माथे पर गाज गिर गयी। रोटी का वह नाम ही सुनती आयी है, अपने हाथ से उसने कभी बनाई नही है। गांव-घर में इसका रिवाज ही नहीं है। भात खाओ तो खाओ, नहीं तो मूढ़ी है, चूड़ा है, लावा-बताशा है, फुलौड़ी-घुघनी है। जो चाहे खाओ। रोटी की बात ही नही आती।

निताई ने कलकत्ता में यह शहरी चाल सीखी है। और भी एक दिन शाम को ऐसा ही कहा था, 'आज बदन-हाथ में दर्द-सा हो रहा है। दो रोटियां सेंक दो न ! आटा लेता ही आया हूं !'

भाविनी को उस दिन झूठ बोलना पड़ा था। पति से झूठ बोलने के पाप के लिए छिपकर नाक-कान मलकर वह बोली, 'हाय राम, यह मालूम थोड़े ही था ! मैंने तो भात चढ़ा दिया है !'

निताई ने रसोईघर की तलाशी नहीं ली। 'तो फिर रहने दो !' कहकर उसने आटे के ठोंगे को उतार कर रख दिया था। निताई को याद था कि वह आटा रखा हुआ है, इसलिए उसने रोटी की खाहिश ज़ाहिर कर दी।

लेकिन भाविनी के सिर पर सोच का पहाड़ टूट पड़ा।

'रोटी नही पका सकूंगी' यह कहना जैसा कठिन था, रोटी बनाना नहीं जानती, यह कहना भी वैसा ही कठिन था।

इसलिए उसने आखिरी कोशिश की—'दिन-दोपहर को रूखी रोटिया क्या खाओगे, बल्कि मैं खिचड़ी चढ़ा देती हूं, गरम-गरम खिचड़ी···!'

'नही, नही, खिचड़ी नही !' निताई ने उसकी आशा की जड़ पर कुल्हाड़ी मारी—'अन्न छोड़ो, उससे रस होता है ! रोटियां बिलकुल रूखी न रहे, गाय का घी लगा देना ! ज्यादा भी मत बनाना—बारह-चौदह ? अल्पाहार ही दवा है !'

लाचार भाग्य को धिक्कारते हुए आटे के ठोंगे को लेकर भाविनी को रसोई में जाना पड़ा। कहां तो सोचा कि आज कथरी का काम चुका ही देगी, रसोई के हंगामे से बचेगी, लेकिन बदले में आसमान ही टूट पड़ा सिर पर।

कहना फिजूल होगा, रोटी बनाने की कोशिश कामयाब न हुई। क्योंकि पहले ही ज़रूरत से ज्यादा पानी डालकर आटे को उसने शिरनी बना डाला। उसके बाद किसी तरह यदि कई कोने वाली कुछ रोटिया बेली भी तो चूल्हे से निकालते-निकालते सब जल गयी। जगह-जगह कच्ची भी रह गयीं।

उधर दोपहर ढलने लगी।

निताई ने सोचा, भाविनी अपने लिए भी रोटी बना रही होगी। और रोटी की तादाद की सोच मन ही मन हंसकर वह धीरज धरे बैठा रहा।

लेकिन धीरज की भी तो कोई सीमा है। पेट में चूहे कूदने लगे थे।

बार-बार आवाज़ दी, आखिर रसोई के दरवाज़े पर ही जा खड़ा हुआ—'आखिर कौन हज़ार व्यंजन बना रही हो? मैंने तो कहा, सिर्फ दो रोटियां और आलू-काली मिर्च का दम ही बहुत है!'

भाविनी ने आज भी मन ही मन नाक-कान मलकर कहा—'हाय राम, ऐसा भी भला आदमी खा सकता है। मूंग की दाल चढ़ा दी है···!'

'लो! झमेला बढ़ा दिया! अभी इतनी देर हो रही है! कोई ज़रूरत नहीं, जो बना है, वही दे दो!'

दे तो दे, मगर आलू-मिर्च का दम कहां है?

आलू तो अभी टोकरी में ही पड़े है।

लाचार, भाविनी को राज़ खोलना पड़ा। बोली, 'ज़रा इंतज़ार करो, अभी देरी है!'

निताई छटपट करने लगा। बोला, 'वह सब फिर होता रहेगा। गुड़-रोटी भी बुरी नही!'

भाविनी को गुड़-रोटी ही लानी पड़ी।

और ज़ोरों की भूख में गुड़ का ढेला और आटे का पिंड देखकर निताई के लोहू के सारे कण आग की चिनगी बन गए।

थाली सामने रखकर ही भाविनी रसोई में जा घुसी थी। हठात् थाली पटक देने की आवाज़ से वह बाहर निकलकर खड़ी हो गयी। इतना नहीं सोचा था उसने। देखा, थाली ज़रा दूर में पड़ी है।

रोटियों को हाथ से मसलते हुए निताई चीख रहा था—'यह क्या बना है, मेरे श्राद्ध का पिंड? दो रोटिया सेंकने की भी जुर्रत नही थी तो पहले क्यों नही बताया? फिर कौन साला तुमसे कहता? मेरी भी बेवकूफी, बाज़ार से दो आने की पूरी-तरकारी लाकर खा लेने से ही चुक जाता। सो नहीं,

अपनी कुशल बीवी से मैंने रोटियों की फरमाइश की । हुं ! समझना चाहिए था, ये सब सभ्य काम सबके बूते का नही । कहावत है न, बाप के जन्म में धान की खेती नही देखी, धान को दूब समझा ! वही हुआ ! अरे बाबा, जब शहर मे आयी हो तो थोड़ा-बहुत सभ्य काम सीखना ही चाहिए । यहां तो धान सिझाना और ढेंकी कूटना नहीं चलेगा ! एकाधबार भाभी के पास जाकर कुछ-कुछ सीख-सिखा आओ…!'

बेहद भूख लगी थी और हद्द की निराशा हुई—इसी से निताई मिजाज पर लगाम नहीं लगा सका । मगर धीरज की सीमा तो हर किसी की होती है।

बड़ी अप्रतिभ हो गयी थी, इसीलिए भाविनी ने इतनी बातें चुपचाप सुन लीं । जवाब नही देने की सोची । सोचा, गुस्सा कुछ नर्म पड़े तो कह-सुनकर लावा-दूध…।

लेकिन अंत तक निभा नही ।

साज का तार अन्तिम तनाव को झेल नहीं सका ।

झनझना कर टूट गया ।

क्यों न टूटे ? तुम्हारे बदन में जरा-सा मेरा पैर लग गया और तुम मुझे लतियाओगे तो मैं सह लूंगा ? मेरे चिलम से छिटककर एक कोयला तुम्हारे गुहाल में जा गिरा तो तुम मेरे घर में आग लगा दोगे और मैं चुप बना रहूंगा ?…मेरी बकरी ने तुम्हारे बगीचे में जरा मुंह लगाया और तुम अपनी सारी गाएं छोड़कर मेरा बगीचा मुड़वा डालोगे, मैं टुकुर-टुकुर ताकता रहूंगा ?

मजाक है ?

आदमी का मतलब पत्थर नही होता ।

निताई की बात खत्म होने से पहले ही वह भी टूट पड़ी—'क्या ! क्या कहा ? फिर से कहो तो सुनें ? तुम्हारी प्यारी भाभीजी के पास मैं रसोई सीखने जाऊं ? मैं पूछती हूं, मेरे लिए और कितना अपमान सहेजकर रखा है तुमने ? जितना रखा है, सब एक बारगी ही उगल डालो ! सबको छाती में संजोए गंगा मैया की गोद में जाकर पनाह लूं ।…चलो, आज ही मुझे बारुईपुर पहुंचा दो ! इतना अपमान मैं सह नही सकती, कहे देती हूं ! हाय मेरी मां—तुम मुझे इसी सुख के लिए शहर ले आए थे ? ऐसे सुख के माथे मैं झाड़ू मारूं ! सोचा, गलती हुई, मान लूंगी । बला चुक जाएगी । बात नही बढ़ेगी । हाय राम, यहां तो थमने का नाम ही नहीं । तुम सख्त के भक्त और नर्म के यम हो, क्यों ? उठते-बैठते बस भाभी और भाभी ! भाभी ने तुम्हें मतर से ऐसा ही भेड़ा बना रखा था तो मुझे ले आने की क्या जरूरत थी ? लोगों के सामने लाज बचाने को ? साग डालकर मछली ढंकने के लिए ? तुम्हारे…।'

फिर आखिरी घाट पर धक्का ।

फिर बात पर हथौड़ा।

निताई उठ खड़ा हुआ। ज़ोर से चीखा—'क्या कहा तू ने ?'

'ऐ! तू! तू कहा ? यह भी शायद शहरी सभ्यता है ?' भाविनी उछलने लगी—'मैं तुम्हें कानी उंगली जितनी भी श्रद्धा नही करती। कानी कौड़ी भर भी नहीं! बदचलन पति भी पति है! हूं! मैं उस मायाविनी डाकिनी के पास सीखने के लिए जाऊं ? डूब मरने को चुल्लूभर पानी नहीं मिलेगा मुझे ? तुम्ही दोनों शाम उनका पादोदक पीओ जाकर, जाओ!'

निताई एकाएक गंभीर हो गया। दोनों हाथ छाती पर आड़े-आड़े रखकर दो-एक बार चहलकदमी करके सहसा रुक पड़ा। बोला, 'पादोदक नसीब ही होगा तो सिर्फ पीना क्या, माथे लगाकर भी धन्य हो जाऊंगा। तुम जैसी औरत को भी वही करना चाहिए। बीस साल उनके चरणों बैठकर सीखने और दोनों शाम उनका पैर पखारा पानी पीकर भी अगर उनकी कानी उंगली बराबर हो सको!'

अपने हृदय की श्रद्धा निताई चरम रूप से प्रकट कर सकता है, लेकिन पराई स्त्री के प्रति श्रद्धा स्त्री के लिए कटे पर नमक के समान होता है, इसमें तो संदेह नहीं। इसलिए इस पर भाविनी यदि कमर कस ले, तो उसे दोष नही दिया जा सकता। उसने आज तक जो देखा, वही सीखा। देखने से परे की सीखने की अनुभूति कितनी स्त्रियों मे होती है ?

इसके सिवाय औरत जितनी ही उजड्डु, जितनी ही नासमझ हो चाहे, पति का मन पाया या नही, यह समझने में उसे दिक्कत नहीं होती। और, उस मन की मालकिन कोई और होती है, तो उसे पहचानने में भी देर नही लगती। कलकत्ता की माटी पर पैर रखते ही भाविनी ने उसे पहचान लिया है। उस तीखी जलनवाली सत्य को समझ लिया है।

सो तुनककर वह करीब छिटक आयी। बोली, 'अच्छा, अच्छा! कानी उंगली बराबर! चरित्रहीन मर्द जैसी ही बात कही है तुमने! जिन्हें पराई स्त्री का ही सब-कुछ मीठा लगता है! मैं पूछती हूं, तुम्हारी प्राणोपम भाभी की सारी करतूतें जानते हो तुम ? वह चर्चा मैं नही छेड़ती, छेड़ने को जी नहीं चाहता। छेड़ते ही तो मर्द का मुंह, कलेजा सब खुल जाएगा। जो भी देखेगा, अच्छी नज़र से देखेगा। नहीं तो मैंने जाना तो बहुत पहले है। अब तुम्हें बताऊं—'पति से छिपाकर रोज दोपहर को बन-ठनकर देवीजी कहां जाती हैं, मालूम है ?'

'पति से छिपाकर, मतलब ?'

निताई का पलड़ा जैसे नीचे झुक गया। लिहाज़ा ऊंचे पलड़े की भाविनी कुटिल हंसी हंसकर बोली, 'छिपाकर माने छिपाकर! उसकी दाई ने ही अपनी

दाई को बताया है ! बच्चों को सिखा दिया गया है, बोलना मत ।'

निताई को यकीन नहीं आया कि सत्यवती भी लुक-छिपकर कुछ कर सकती है । बोला, 'मैं नहीं मानता ।'

'ओ, अच्छा ! इतना भी नहीं मानते ? और भी सुनोगे तो जाने क्या कहोगे ? तुम लोगों के वह जात गंवाए मास्टर हैं न, अंदर ही अंदर उनसे कितनी घनिष्ठता है, पता है ? उनके साथ तो ब्रह्म धरम के आफिस तक गयी थी । उसकी बात तुमसे कहने मे घिन लगती है, इसी से नहीं कही । मैं कहती हूं, वह औरत एक दिन···'

'खबरदार !' निताई चीखकर आगे बढ आया—'झूठी कहीं की ! और कुछ बोलेगी तो जीभ गल जाएगी । चुप ! बिलकुल चुप !'

निताई को कुछ सूझ नहीं रहा था ।

एक तो ये दोनों ही तोहमतें जानलेवा थीं, फिर ऐसी अजीब सत्यगंधी कि बिलकुल उड़ा देने को भी कलेजे में ज़ोर नहीं मिलता । वही भवतोष मास्टर ! जात गंवाकर वह ब्राह्म बना, निताई का जी जुड़ाया । सोचा, नवकुमार के यहां जाने-आने की राह मे काटे बिछे ।

मगर मंथरा के मुह से यह क्या सुन रहा है वह ? वह हक्का-बक्का-सा हो रहा ।

इसी मौके से भाविनी ने कमर के फेंटे को और ज़रा सख्त किया—'अजी, बदन के ज़ोर से चुपा देने से सच तो झूठ नहीं हो जाएगा ? तुम लिख रखो, तुम्हारे प्यार की भाभी जी ब्राह्म बनकर रहेंगी, बनकर रहेंगी, बनकर रहेंगी ! वह जो एक लंबी धतिंग लड़की को पाल रही है, झूठमूठ की भतीजी बताती है, भगवान जानें, कुमारी है या विधवा, उमर के तो गाछ-पत्थर नहीं, उस लड़की को तो किसी हिंदू घर में नहीं ब्याह सकती ? इसीलिए ब्राह्म बनकर···'

'चुप भी रहोगी ?'

होंठों पर एक उंगली रखकर बोली—'लो, चुप हो गयी । मगर मेरे चुप रहने से दुनिया तो चुप नहीं रहेगी ? सभी मालूम होगा ।'

भाविनी उस समय सचमुच ही चुप हो गयी थी ।

शायद बिना नहाए-खाए पति उसे हारे हुए दुश्मन से ही देखने में लगे थे, इसलिए उसने हथियार रोक लिया ।

लेकिन निताई पागल की तरह छटपट करता फिरा ।

भाभीजी के लिए यह सब संभव है ?

लुकाछिपी, अभिसार, ब्राह्म समाज में जाना-आना, भवतोष से छिप-छिपाकर मिलना-जुलना । भाविनी का आरोप यदि सच है, फिर तो भगवान झूठ

हैं, धर्म झूठ है, दुनिया में जो भी वस्तु है सब झूठ है।

नासाज तबीयत, फिर न नहाना, न खाना—इससे और भी बेचैनी आ रही थी। भाविनी ने बाद में पांव पकड़कर माफी मांगी, नारियल के दो लड्डू और एक लोटा पानी लाकर खाने के लिए बड़ी खुशामद-बरामद की, लेकिन निताई के गले से नीचे न उतर सका। 'पीछे खा लूंगा' कहकर उसे हटा दिया और तकिए में सिर घीसते हुए एक समय सो भी गया।

यह घटना उस बेला घटी थी।

नींद निताई की बेला झुकने पर टूटी और टूटी नवकुमार के पुकारने पर।

नवकुमार ने घबराकर, हड़बड़ाकर पूछा—'निताई, तेरी भाभी यहा आयी है?'

निताई फड़फड़ाकर उठ बैठा।

उपवास से माथा झनझना उठा। उसका सवाल झट से समझ में नहीं आया। सो जवाब के बदले उसने सवाल ही किया—'कौन? कौन आयी है?'

'अरे बाबा, तेरी भाभी के सिवा और कौन? मैं और किसे खोजता-फिरूंगा? जरा अंदर से पूछ तो आ, बहू के पास आयी है या नहीं?'

निताई ने अचंभे से आखें फैलाकर सिर हिलाया।

'अजीब है! अरे, बैठा-बैठा हाथ क्या देख रहा है! तू तो सो रहा था कबख्त। इस बीच आयी है या नहीं ...'

अब सोच-विचार कर निताई ने पूछा, 'क्यों, घर पर नहीं हैं?'

'अरे, घर ही होती तो मैं यहा दौड़कर क्यों हमला करने आता? जरा उठकर एक बार...'

लाचार निताई को उठना पड़ा।

और घर पर तीसरे किसी के न होने की असुविधा एकाएक स्पष्ट रूप से उपलब्ध हुई उसे।

अंदर जाकर भाविनी से ही पूछना पड़ेगा। खुद ही मुंह खोलकर पूछना पड़ेगा—'भाभी आयी है?'

जो जवाब मिलेगा, वह तो निताई को मालूम ही है। नितांत नवकुमार की जिद से जाना। वरना सत्यवती आयी और निताई को भनक भी नहीं? सोया ही था, मर तो नहीं गया था?

दोनों के मकानों में दो ही चार मकानों की दूरी। आना-जाना तो लगा ही रहता है। भाविनी के आने के बाद उसकी सुविधा-असुविधा देखने के लिए सत्य रोज ही आती रही, लेकिन भाविनी में वैसा आग्रह नहीं पाकर आना बन्द कर दिया।

लेकिन वह आना ज्यादातर निताई की गैरहाजिरी में होता था। उसके

रहते शायद ही कभी। तो क्या, 'वह खुशनसीबी हठात् आज ही...'

नवकुमार की अधीरता से निताई उठकर गया। अंदर जाकर इधर-उधर ताका और आकर सिर हिला दिया।

मान गंवाकर पूछना नहीं पड़ा।

देखा, सांझ के अंधेरे की परवाह न करके भाविनी बैठकर वही कथरी-सी रही है। सांझ को सुई-धागा नहीं छूना चाहिए, यह भी मानो भूल गयी है वह।

'क्या होगा निताई ?' नवकुमार भक् से प्रायः रो पड़ा।

निताई ने सूखे गले से कहा, 'और कहीं गयी होंगी !'

'और कहा जाएगी ? अकेली और कहां जाएगी ?' नवकुमार ने कातर होकर कहा—'नसीब के फेर से ऐन इसी मौके पर तुड़ू और मुन्ना अपनी दादा-दादी से मिलने के लिए गांव गया हुआ है।'

'अकेले गए हैं दोनों ?' निताई चौंक उठा।

'नहीं-नहीं ! अपना अवनी है न, जा रहा था। सोचा, इन्हें तो छुट्टी है, दो दिन घूम आएं। गाव-घर का कुछ भी तो मालूम नहीं है इन्हें ! क्या पता था कि ऐसे ही वक्त यह मुसीबत आएगी !'

निताई ने और भी सूखे गले से कहा—'तुमसे कुछ कहा-सुनी तो नहीं हुई है न ? मतलब गंगा-वंगा की तरफ...'

'नहीं-नहीं, वैसी कोई बात नहीं। लेकिन मुझ से कहे बिना तो वह कहीं...'

निताई के होठों पर आवेग से लगभग आ ही गया था—'सो वह जाती हैं ! मैंने सुना है !'

लेकिन जब्त कर गया। धीरे से दूसरी बात बोला—'वह जो लड़की थी यानी सुहास—वह नहीं है ?'

'वह तो स्कूल से लौटकर जबसे आयी, उसे न देखकर खुद सोच में पड़ गयी है। क्या होगा निताई ?'

क्या होगा, क्या हो रहा है, क्या होने वाला है—इनकी खाक जानता है निताई ! उसके खाली दिमाग में मानो हज़ारों बर्रें भनभना उठे। माथे का बोझा गरदन ढोना नहीं चाहने लगी। धप् से तकिए पर माथा रखकर टूटे गले से निताई बोल उठा—'मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूं।'

लेकिन एक दूसरी ने तो सब समझ लिया है।

निताई एक बार जो अंदर का चक्कर लगाकर चुपचाप चला आया—भाविनी झट कथरी फेंककर उठ आयी वहां से।

दरवाज़े की फाक से आंख-कान लगाकर उधर की बातें सुनने और उनका रहस्य समझने लगी।

एक बुरी और घिनौनी औरत के लिए दो-दो तगड़े मर्द ऐसे मक्खी से हो पड़े, यह भी तो बर्दाश्त से बाहर है। आंखों देखना भी मुश्किल !

इस असह्य मामले को और ज्यादा देर तक वह बर्दाश्त नहीं कर सकी, उसने झनझनाकर किवाड़ की सांकल हिला दी।

उस झनझनाहट में गोया किसी रहस्य का संकेत था।

बेटे की बहू जैसी भी हो, पोता बड़ी चीज है। वंशधर है। नाड़ी-नाड़ी का नाता। दोनों लड़कों के आ जाने के बाद से एलोकेशी के पैर मानों ज़मीन पर नही पड़ रहे हैं। हां, बहू की निंदा का भी विराम नही है। जिस नीच की बेटी ने उन्हें इस परम वस्तु से वंचित कर रखा है, उसका कभी भला न होगा, यह फतवा देकर वह पोतों के आदर-जतन में तत्पर हो गयी हैं। इस बार लड़के अकेले आए थे। किसी-किसी बार पूजा में आते हैं, बाप के साथ तीन-चार दिन रहकर लौट जाते हैं। इन्हें अपने दखल में विशेष नही पाती हैं। नहीं, सत्य फिर नहीं आयी। एलोकेशी अब उसकी शकल नहीं देखना चाहतीं, यह उन्होंने ज़ोर गले से जता दिया है। बच्चों का जनेऊ यहीं हुआ, वह भी नवकुमार अकेले आकर करा गया। दोनों लड़को का माथा एक ही साथ मुड़वा दिया है। कंजूस नीलांबर के यहां धूमधाम की बला नही। नवकुमार ने भी नहीं सीखा।

और सत्य ? उसे कोई तमन्ना रही भी हो, तो एलोकेशी की सोचकर उससे बाज ही आयी। धूमधाम करने का मतलब ही है उनसे सरोकार होना। उससे बल्कि कै दिनों के लिए नौकरानी को रात में यहीं रहने को कहने से रह लेगी वह। रही भी।

बड़े तो हैं ये साधन-सरल, तुड़ू और मुन्ना के सिवाय अच्छे नाम से जिन्हें आज तक किसी ने पुकारा नहीं, बड़े तो खवैया हैं, फिर भी उनके लिए पोखरे में जाल डाला जा रहा है, टटका चूड़ा कुटवाया जा रहा है, पीठा, पायस, लड्डू, गोकुल पीठा, खोए की बरफी—एलोकेशी का जितना जाना हुआ है—कहने में भूल हुई थोड़ी, सौदा को जितना कुछ बनाना आता है—एक-एक करके चलने लगा।

नीलांबर ने एकाधबार कहा ज़रूर, 'अरे, पेट-वेट तो ठीक है न तुम लोगों का ? देखना समय-काल अच्छा नहीं है। ऐसा न हो कि कलकत्ता जाने पर तुम्हारी मां कहे, दादी के आदर से पेट खराब कर लाया है।

लेकिन एलोकेशी इसपर कान ही नही देतीं।

पोतों की बीमारी और बहू की बक-झक की उन्हे ज़रा भी परवाह है, ऐसा नहीं लगता। बल्कि झनककर बोल उठीं, 'तुम चुप तो रहो ! पेट खराब ही

क्यों होने लगा ? बलैया लूं ! मैं क्या सड़ा-गला खिलाती हूं इन्हें ? बीमारी हो भी तो समझना होगा, इनकी मां की ही वजह से हुई है। शहर जाकर शहरी चाल सीख गयी है, बच्चों को अधपेटा रख-रखकर भूख ही मार दी है। दिनभर में एक बार या दो बार से ज्यादा नहीं। अपने नोवू को मैं तीन बार भात देती थी। सवेरे बच्चे क्या खाते है तो—गाजा, जलेबी, तिलकुट ! दूकान से मंगाकर रखती है। खरीदी चीज से कहीं बच्चों का पेट भरता है ? क्यों, सवेरे मांड-भात देने में हाथ में पिल्लू पड़ता है ? स्कूल से लौटने पर क्या मिला, तो परांठा ! भूख के समय आटा ! देखकर बच्चों की आंखें फटकर आंसू नही निकल आता ? मेरे नोवू को स्कूल से लौटने पर मछली-भात के बदले और कुछ मिलता तो फेंककर रोने लगता।'

सौदा को कभी-कभी कह देने का जी हो आया—'लेकिन नोवू के लड़कों को भी रुलाई आती है, यह बात इन्होंने तुमसे कही है ?'

एलोकेशी ने ऐसी बातें भी उड़ा दी। कहा, 'कहेंगे किस हिम्मत से ? जैसी खूंखार मां है, उसके खिलाफ़ चू भी कर सकता है। बड़े को भुला-फुसलाकर पेट से एकाध बात खींचकर निकाल भी रही हूं, छोटा तो पक्का काइया है। जानता है, कही बात खुल गयी तो मां यहां आने भी नहीं देगी। इसी से…'

'बात खुलने की क्या है ? बहू वहां कोई चोरी-डकैती तो नही कर रही है !'

'चोरी-डकैती न सही, कितना-कुछ तो कर रही है। जाने कहां की किस कंबख्त छोरी को पाल रही है, उसे खर्च करके स्कूल में पढ़ा रही है, बही-किताब खरीद देती है ! इसे तो जाने दो ! खुद भी रोज दोपहर को कहां-कहां जाकर लड़कियों को पढ़ाती है। विद्यावती रे मेरी ! मैं पूछती हूं, यह सब चोरी-डकैती से कम ही क्या है ? बाप के जनम में भी कभी सुना कि भले घर की बहू गुरु-गिरी करती है ?'

नीलांबर इस खबर से तुनक उठे थे। गाली से नबकुमार के बाप का श्राद्ध करके अपने संकल्प की उन्होंने घोषणा की—'खुद जाकर खड़ाऊं से पीटते-पीटते बेटा-बहू को वापस ले आऊंगा।' बाद मे उन्होंने यह संकल्प छोड़ दिया। बोले, 'नः, यहां लाने की कोई जरूरत नहीं। जात तो जा ही चुकी, उस बहू के हाथ का भात तो अब हम खाएंगे नहीं, फिर जोर-जबर्दस्ती की जरूरत क्या है ? बाहर है तो अच्छा ही है, यहां आने से पोल खुल जाएगी। जब घूंघट काढ़कर घर के कोने मे बैठनेवाली बहू नही है, तो उसका आखों की की ओट मे रहना ही अच्छा है। हां, इन लड़कों को वश में ला सको, वो वही कोशिश करो। अन्त में बूढ़े-बूढ़ी को देखने वाला भी तो कोई होना चाहिए !'

एलोकेशी ने मुसकराकर धीमे-से कहा, 'उस कोशिश से बाज आ रही हूं, समझ रहे हो ? मां की तरफ से तीते हों, इसके लिए उसके गुण-अवगुण सब उघार रही हूं ! लेकिन वह मायाविनी मंतर जो जानती है ! लड़के मां की भक्ति से टलमला रहे हैं ! मतर नही जानती तो मेरे पेट का लड़का वैसा बिराना बन जाता ?'

साधन-सरल को अंदर की इतनी बातें क्या मालूम ? वे जी खोलकर छुट्टी के मजे कर रहे थे। कलकत्ता के बंधे-बंधाए जीवन से बाहर आकर, बचपन की लीला-भूमि को पाकर बीच-बीच में सचमुच ही मां पर उन्हें गुस्सा आ रहा है। उसी के चलते कलकत्ता रहना पड़ रहा है, उठते-बैठते यह निंदा सुन रहे हैं।

लेकिन सौदा वाजिब बोलती है।

हा, मामी के सामने नहीं, क्योंकि उसकी जंगी सूरत से वह बेहद डरती है। रात को भोजन के समय वह भतीजों को अकेले मे पाती है। एलोकेशी साझ को ही लेट जाती हैं। सौदा खाना परोसकर पास में बैठी गप करती है। कहती—'अरे, दादी के कहे मां को दूसता तो है, मगर मैं कहती हूं, वह यहां से खींचकर ले गयी थी, जभी तो इस उमर में इतना पढ़ गया, अच्छी तरह से पास किया। यहां रहता तो यह सब होता ? अपनी उमर के यहा के लड़कों को देखा तो है ! किसी ने अभी से पढ़ना छोड़कर मछली मारना शुरू कर दिया है, तंबाखू पीता है ! कोई एक क्लास में तीन-चार साल से घिसट रहा है ! न सभ्यता, न भव्यता। बाम्हन और खेतिहर के लड़कों का फर्क समझने का उपाय नहीं है !'

साधन ने दादी के ही वचन को झाड दिया—'इतने-इतने दिन, इतने-इतने युग से लोग आखिर गाव-घर में ही तो रहा किए हैं ! वे क्या आदमी नही है ? मां के पिताजी भी तो गंवई गाव के है !'

'अपने नानाजी की कह रहा है ! उनकी छोड़ ! वे तो हजार में एक हैं ! मगर वे तेरी दादी जैसी कूप-मंडूप थोड़े ही है ! वे नदी जैसे हैं ! गांव मे क्यों, उनके तो बहुत दिन शहर मे ही बीते ! क्यों भई, नाना के यहा जाता-वाता नही है ?'

'नही तो !'

'नही जाता है ? मैं कहती हूं अब तेरी मां आजाद है, शायद···

कि सरल अचानक बोल उठा, 'अकेली-अकेली मा कैसे आजाद हो गयी ? अपने देश का कोई भी तो आजाद नहीं—पूरा हिन्दुस्तान ही तो गुलाम है !'

सौदा झट समझ नही सकी। बोली, 'पूरा हिन्दुस्तान क्या कहा ?'

'गुलाम ! गुलाम ! गोरे साहब राजा नही है ?'

सौदा ने हैरान होकर कहा, 'खूब कही ! अरे, राज्य उनका है तो वे राजा नही होंगे ?'

'वाह, उनका राज्य कैसे है ? वे क्या हमारे मुल्क के हैं ?'

'राजा की जात हैं वे ! और फिर सात समंदर पार से आकर उन्होंने तुम्हारा भला कितना किया है !'

'भला किया है कि अंगूठा ! बल्कि बुरा ही किया है ! मां कहती हैं, जो जहां के हैं, वही वहां के मालिक होंगे ! यही नियम है ! जिन्होने पराए देश में अपनी जड़ मजबूत कर ली है, उनका···'

सौदा अवाक् हुई—'तेरी मां यह सब बोलती है ? फिर तो मामी झूठ नही कहती हैं ! दिमाग का फितूर ! लेकिन यह सब बोलना नहीं चाहिए—साहब लोग ही तुम्हारे बाप के अन्नदाता है !'

अन्नदाता का ठीक-ठीक मतलब नहीं समझकर ही शायद सरल ने दूसरे रास्ते से जवाब दिया—'मां साहबों की निंदा नहीं करती हैं। कहती है, सब लड़कों को यही ध्यान लिए आदमी बनना चाहिए कि दुनिया मे सिर ऊंचा करके खड़ा होना पड़ेगा ! पर, जिनका देश ही गुलाम है, वे सिर कैसे ऊंचा करेंगे ?'

सौदा ने हताशा का नि.श्वास छोड़ते हुए कहा, 'क्या पता बेटे, मैं इन बातों का मतलब नही समझती। तेरी मां की सदा से खरी-खरी बात है, अजीबोगरीब विचार हैं। इतने देशों के होते साहब और बगाली के लिए सिर खपाना; कौन राजा, कौन परजा, इसकी चिंता ! जनम गुलामी में बीता, आजादी किसे कहते हैं, यही नही जाना ! उसका मर्म क्या समझू, खाक ! आदमी गुलाम होता है, यह जानती हूं। देश का गुलाम-आजाद होना क्या ? खैर, भाड़ में जाने दो इन बातों को ! तेरी मा क्या तो गुरुगिरी करने जाती है ?'

साधन और सरल दोनो भाइयों ने एक-दूसरे का मुंह ताका। उसके बाद सरल ही अचानक बोल उठा, 'कह दो न भैया, डर काहे का है ? मां ने ही तो कहा है, छिपाना, चोरी करना, झूठ बोलना से बढ़कर पाप नही है ! हां, बाबूजी से कहना मना है ! कही वे मां को मना न कर दें ! लेकिन मास्टर साहब ने कहा है···'

सौदा ने आंखें छोटी करके कहा, 'मास्टर साहब कौन ?'

'वाह, मास्टर साहब को नही जानती ? भवतोष बाबू ! जो बाबूजी को···'

'हां-हां, समझ गयी। लेकिन वे तो ब्रह्मज्ञानी हो गए हैं न ?'

साधन ने गरदन टेढ़ी कर ली।

'भाभी उनसे बोलती हैं ?'

साधन ने उससे भी ज्यादा नम्रता से फिर गरदन टेढ़ी की।

'ब्रह्मज्ञानी होने के बाद भी वह तुम्हारे यहां आता है ?'

'नहीं, हमारे यहां नहीं आते ! बाबूजी ने तो उनका मान नहीं रक्खा न, घर मे आने से मना कर दिया ! मा बोली, ठीक है, मैं ही उनके यहां जाऊंगी ! कितने उपकारी है वे···'

सौदा ने गाल पर हाथ रखकर कहा, 'तुम लोगों की बातों से मैं हैरान हुई जा रही हूं तुड़ू ! जी में आता है चलकर देख आऊं, तेरी मां के और भी दो हाथ-पांव निकल आए हैं या नहीं ! त्रिभुवन में जो किसी ने नही सुना, वह वही सब कर रही है ! मगर मैं यह भी कहूं, कभी मास्टर ने उपकार किया है, इसलिए जात-धरम गंवाने के बाद भी उसके पास जाने की क्या ज़रूरत है ?'

जो बात मन में लाना भी पाप है, अचानक वैसे ही एक संदेह ने सौदा को काट खाया। इसीलिए यह सवाल किया।

लेकिन तब तक साधन ने अच्छा जवाब दिया—'पाठशाला तो मास्टर साहब ने ही खोली है। बड़ी-बूढ़ियां अ-आ, क-ख सीखने आती हैं। मास्टर साहब कहते है—तमाम दिन गाली-गलौज बककर, ताश खेलकर, झगड़ा-झंझट करके या सोकर बिताने से लिखना-पढ़ना सीखना कितना अच्छा काम है ? इसीलिए दोपहर की पाठशाला सर्वमंगला थान में खोल दी है। तुम जैसी बड़ी-बड़ी भी पढ़ने आती हैं !'

सौदा ने नि.श्वास फेंकते हुए कहा, 'अगर कभी मरूं तो फिर तुम्हारे कलकत्ता में जन्म लूगी और तेरी मां के स्कूल में पढ़ूंगी !'

'अभी भी तो पढ़ सकती हो ?'

'हा, पढ सकती, जब चिता पर सो जाऊंगी ! लो, भात तो पत्तल पर पड़ा ही रह गया है !'

'खा रहा हूं ! बाप रे, रात-दिन इतना खाता हूं कि अब पेट में नहीं समाता !'

'तो फिर रहने दे ! जबरदस्ती मत खा !'

सौदा के हठात् स्थिर हो गए मुह की ओर ज़रा देर ताककर साधन ने धीरे से कहा, 'फुआ, तुम हमारे साथ चलो न···'

'मैं ? मैं कलकत्ता जाऊं और यह बुड्ढे-बुड्ढी भूखो मरें !'

'अहा, सर्वदिन के लिए थोड़े ही ! दो-एक दिन के लिये···घूमने को !'

'छोड़ो बेटे ! तुमने कहा, यही बहुत है ! घूमने के लिए तो इस जनम में तो कहीं नही जाती, जाऊंगी तो बस सदा के लिए, यमराज के घर ! हा, तू तो

चढ़ा हो गया है, चुपचाप अगर एक काम कर दे ! किसी को कहना नहीं होगा लेकिन ! जो कहेगा, वह मेरा मरा मुह देखेगा'''

'काम तो बताओ ?'

'बताती हूं ! तुम्हारे बाग बाजार में ही है, जभी कह रही हूं। वहां के एक पते की चिट्ठी दूंगी, पहुंचा देगा ठिकाने पर !'

साधन ने बड़े उत्साह से कहा, 'क्यों नही ? कितना नंबर, कहो ?'

'लिखा है ! बता दूंगी ! मगर हां, कोई नही जान पाए !'

'कोई नहीं जाने ? क्यों भला !'

'यह फिर कभी बताऊंगी !'

३८

खोई हुई सत्य जब घर लौटी, तो सांझ हो आयी थी। किराए की एक बग्गी से उतरी। साथ में कोई विधवा औरत।

'तुम जरा रुको, मैं पहले गाड़ीवाले को विदा कर लूं !' कहकर सत्य अंदर आ गयी। सुहास यह खिड़की-वह खिड़की करती फिर रही थी। नवकुमार निताई के यहां से लौटा नही था।

सत्य पर नजर पड़ते ही सुहास चीख उठी—'फुआजी !' उसके इस स्वर में शिकायत थी।

सत्य ने जल्दी से कहा, 'इसकी सफाई दी जाएगी, पहले गंगाजल से हाथ धोकर मेरे बटुए से चार आने पैसे तो निकाल दे ! इस कपड़े से मैं अब छूऊंगी नहीं।'

सुहास कम बोलती है। घबराकर ही चीख पड़ी थी। उसके बाद कुछ नहीं बोली, चुपचाप हुक्म बजाया। सिर्फ नजर बचाकर बार-बार उसने सत्य को—रहस्यमयी सत्य को देखा।

किराया देकर गाड़ीवान को विदा किया। इसके बाद उस औरत से बोली, 'आओ, बैठो ! हाथ-मुह धोकर जरा मुह मीठा कर लो फिर जाना !'

वह औरत बोली, 'यह मुह मीठा किसलिए ? तुम्हारा घर-द्वार देख लिया, यही बहुत है ! तुम्हारी मीठी बातें ही मिठाई है, सुनने से शरीर शीतल होता है !'

'सो जो हो, तुमने मेरे लिए इतना किया, मुह मीठा कराए बिना नहीं छोड़ने की !' इतना कहकर सत्य ने बदन पर की सिल्क की चादर रख दी, कल-घर में जाकर कपड़ा-समीज फींचा और गीले ही कपड़ों भंडार से नारियल

के दो लड्डू निकालकर एक लोटा पानी के साथ उसके सामने रख दिया।'

वह औरत जब चली गयी, तो कपड़े बदलकर सत्य कमरे में बैठी। सुहास से कहा, 'हां, फिर ? मेरे नाम हुलिया निकल गया ?'

सुहास ने दूसरी तरफ गरदन फेरकर कहा, 'हुलिया क्या ? हड़बड़ाकर फूफाजी चले गए ! बस !'

'एक ही दिन में तेरे फूफा के पास मेरी सारी कलई खुल गयी लगता है; पाठशाला की बात अब तक दबाए-छिपाए थी।'

आज के इस सुयोग से सुहास मन के संदेह को जाहिर कर बैठी। बोल पड़ी—'लेकिन दबाना-छिपाना क्या अच्छा है ? इधर तो तुम्हीं लोग कहती हो कि पति-स्त्रियों के देवता हैं !'

सत्य की जुबान पर आ रहा था, तेरे तो पति होने से पहले ही इतनी पति-भक्ति देख रही हूं ! लेकिन सम्हाल लिया। क्या पता, इस लड़की के नसीब में पति है या नहीं। बेबस और बुद्धिहीन मां तो कुमारी बेटी का विधवा परिचय देकर उसके भविष्य के पैरों कुल्हाड़ी मार गयी है। ऐसी रूपवती लड़की, ऐसी सभ्य, विनम्र, पढ़ने-लिखने की इतनी चाह ! इस लड़की को जो पति पाता, वह धन्य होता।

लेकिन शायद हो कि दुखिया का भाग्य दुःख में ही बीते। तो भी सत्य ने यह तय कर लिया है कि इस लड़की के लिए वह आखिरी दम तक लड़ेगी। जभी तो उसे ब्रह्मज्ञानियों के लिए इतनी उत्सुकता है, उनसे जान-पहचान की इतनी ललक है।

ब्रह्मज्ञानी शायद बड़े उदार होते हैं।

उनमें बाल-विधवा के ब्याह की शिकायत नहीं होती। सत्य ने सोचा था कि वह सुहास से सच्ची बात बता देगी।

कुमारी कहकर ही उसे स्कूल में दाखिल कर देगी। लेकिन सात-पांच सोचकर इस विचार को स्थगित रखना पड़ा। पहले तो इतनी बड़ी कुमारी लड़की के लिए बहुत कैफियत देनी है, जात जाने का भी सवाल है। उसे तो सत्य अपनी बात से सम्हाल भी लेती—'समाज ग़रीब की बेटी का ब्याह नहीं करा सकता, जात ले सकता है ?' यह तर्क उठाती। पर इसमें भी बाधा थी।

उतने बड़े कठोर सत्य के प्रकट हो जाने से मां को क्या सोचेगी सुहास ? मां को वह कभी भी जी से क्षमा कर पाएगी ? जब वह सुनेगी कि सिर्फ अपनी सुविधा के लिए मां ने उसके कपाल पर दुर्भाग्य की छाप लगा दी है, शुरू से खाने-पहनने से वंचित कर रखा है, तो उसकी निगाह में मां बहुत नीचे नहीं गिर जाएगी ? स्वार्थपरता की निष्ठुरता से ? मरे पर और मार ?

और यदि वह अपनी मां को देवी समझती हो, विश्वास, प्रेम और भक्ति में अडिग हो, तो हो सकता है, सत्य पर ही संदेह कर बैठे। सोचेगी, उसके ब्याह की आसानी के लिए सत्य हो···

सुहास के बारे में सत्य ने यही सब उलटा-सीधा सोचा। सोचा, ज्ञान-बुद्धि थोड़ी और बढ़े। सच-झूठ समझने की अक्ल आए, फिर देखा जाएगा।

इसीलिए उधर न जाकर सत्य ने ग़लती मान लेने के ढंग से कहा, 'पति देवता है—यह न केवल हम बल्कि तीनों लोक के सभी कहते हैं! लेकिन देवता को असंतुष्ट करना भी तो दोष है रे! मैं पाठशाला चलाती हूं, यह सुनकर तेरे फूफा को असंतोष की पराकाष्ठा ही न होगी? सो खामखा उन्हें गुस्सा कराने से लाभ? उन्हें पीड़ा पहुंचाना होगा! और बिना समझे-बूझे झट किरिया कसम देकर मनाकर बैठें, तो भी मुसीबत!'

सुहास जरा चुप रहकर धीरे-धीरे बोली, 'तो फिर फूफाजी जिससे नाराज हों, तुम्हें वह काम ही नहीं करना चाहिए।'

सुहास की ऐसी विवेकभरी बात से सत्य खुश हुई, लेकिन मन ही मन जरा हंसी—'यदि यही उचित होता, तो तू कहां रहती? इतनी बातें सोच सकने की अकल ही कहां पाती? तेरे लिए उनसे कम जूझना पड़ा है? तुझे रखने के लिए, स्कूल में भर्ती करने के लिए?'

लड़की को साहबी स्कूल में पढ़ाने से उसके हाथ का पानी नहीं चलेगा, नवकुमार ने यह कहकर रोकना चाहा था। फिर भी सत्य ने वही किया।

इस उचित-अनुचित के प्रसंग में सत्य को यह बात याद आ गयी। जुबान पर भी रही थी, रोक ली। धीमे हंसकर कहा—'तू तो बहुत कुछ सीख गयी है देखती हूं! ठीक ही बोली तू कि उचित नहीं है। लेकिन देख, सभी जगह सब नियम लागू नहीं होता। कितने पति हैं, राम नाम से नाराज होते है, जल-भुन जाते हैं। तो उसकी स्त्री राम का नाम न ले? लेकिन हां, खोल[1] बजाकर उसके कानों के पास कीर्तन करना भी ठीक नहीं है। बात असल में यह है कि जो काम करने जा रही हो, पहले देख लो कि वह अच्छा है या बुरा। इतना देख लेना चाहिए, फिर जितना संभव है, किसी को नाराज किए बिना काम बना लो। इस तरह जिन्हें पसंद नहीं, उनकी उपेक्षा भी नहीं हुई, काम भी बन गया।'

तो क्या सत्य सुहास को बिलकुल बड़ों की पात में रख रही है? इसीलिए उसे इतनी सफाई दे रही है! या सुहास को उपलक्ष्य मानकर वह अपने मन को ही कैफियत दे रही है? स्वामी से छिपाने के कारण अंदर ही अंदर

---

१. खोल—कीर्तन का एक खास बाजा—माटी का मृदंग।

सूक्ष्म विवेक से जिस पीड़न का वह अनुभव करती है, यह कैफियत उसकी है ?

सुहास अपने को बड़ी ही सोचती है, बदस्तूर एक औरत, जभी यह कैफियत सुनने के बावजूद अपनी राय देने का साहस कर बैठी। बोली, 'मेरे ख्याल से राम-नाम तो अच्छा काम है, उसे समझा-बुझाकर...'

सत्य हंस उठी। बोली, 'जब उमर कम थी, मैं भी तेरी ही तरह सोचा करती थी सुहास ! सब बात पर लड़ जाती थी, तर्क से समझा देने की चेष्टा करती ! पर अब उमर बढ़ी और उमर बढ़ने के साथ ही यह समझा कि हरदम लड़ने से शक्ति का क्षय होता है। काम के लिए जो शक्ति चाहिए, उस शक्ति का अधिकाश अगर तर्क में ही खत्म कर दें तो काम में ढीले पड़ जाएंगे। इसलिए वही रास्ता अपनाती हूं, जिससे सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे। लेकिन स्थान विशेष मे और इस विशेष को पहचानने की नजर होनी चाहिए। समझी ? औरत क्या मनुष्य ही नही, इस पर बहुत तर्क किया है, लेकिन अब देखती हूं, वह तर्क समंदर मे बालू का बांध है। अपने इस सड़े देश में औरत होने का बड़ा कष्ट है। कोई भी भला काम करने जाओ, तो भी पग-पग पर बाधा। मास्टर साहब कहते हैं—अन्नदान से भी बड़ा पुण्य है विद्यादान ! आदमी और जानवर का जो अंतर है, वह तो विद्या से ही है। नही तो जीव-मात्र ही तो खाते हैं, सोते हैं, बच्चा जनते है। आदमी से लेकर कीड़ा-मकोड़ा तक। इसलिए यह विद्या जिसे है, उसे औरों को उस विद्या का हिस्सा देना चाहिए। विद्या दान से घटती नहीं, बल्कि बढ़ती है। मगर ये बातें कै आदमी समझना चाहते हैं, बता ! नहीं चाहते। पहले सोचती थी, समझाकर ही छोड़ूंगी। लेकिन अब यह समझना सीखा कि यह कोशिश हाथ से हाथी नापने की, तारा गिनने की कोशिश है। इससे अच्छा है, जो ठीक समझ मे आए उसे किए जाओ। एक न एक दिन लोग समझेंगे, सही है या ग़लत। जो चीजें हैं, जो पसंद नहीं कर सकें, वही मान लेगे।

एक ही साथ बहुत-सी बातें कहकर सत्य ने जरा चुप रहकर सुस्ता लिया। इसी मौके से सुहास झट उठ गयी और लोटे में मिसरी घोलकर ले आयी।

सत्य की अंतरात्मा शायद ऐसा ही कोई शीतल पानीय चाह रही थी। वही कब की घर से निकली है ! बिना कुछ बोले ढक्-ढक् करके मिसरी का पानी पीकर मुसकराती हुई बोली, 'खीचकर मन की बात निकाल करके प्यास का पानी देना सीख गयी है, अब तुझे कुछ भी सीखना बाकी नही है सुहास ! दुनिया मे शिक्षा का इतना ही सहारा काफी है !'

सुहास ने शर्म से सिर झुका लिया।

सत्य ने ताककर देखा।

रूप-गुण से गोया रोशनी फैलाती है यह लड़की ! लेकिन, लेकिन ऐसा गुण था क्या ?

सत्य को पहले दिन की बात याद आयी। कितना उद्धत, अनम्र, चुप्पा स्वभाव था उसका। हर घड़ी उसके लिए सत्य को मुश्किल में पड़ना पड़ा है। वह अपने को महज इसीलिए सम्हाले रही कि लड़की वेचारी है, उसके मा नहीं। तिसपर मां की मौत बड़ी मार्मिक है, बड़ी आकस्मिक, इसलिए।

सुहास की प्रकृति में धीरे-धीरे नम्रता आयी, सत्यता आयी, कोमलता आयी। दत्त-परिवार से मिली जो बुरी आदतें थीं, जो सत्य को पीड़ा पहुंचाया करती थीं, वह सब धीरे-धीरे गायब हुईं, वह अच्छी लड़की बन गयी।

लेकिन गंभीर स्वभाव, कुछ दबा हुआ।

मन की वृत्ति का बाहरी प्रकाश कम ! खुशी-गम, दुःख-सुख झट समझ में नहीं आता, समझ में नहीं आती श्रद्धा, कृतज्ञता, स्नेह।

सुहास के लज्जा से झुके चेहरे की ओर देखकर बोली, 'लेकिन मुझे इतनी देर क्यों हुई, यह तो नहीं पूछा ?'

सुहास ने हंसकर कहा, 'पूछना क्या है, कहने की होगी तो तुम खुद ही कहोगी।'

'कहने की होगी ? यह क्या कहा ?' सत्य ने कहा—'तेरी फुआ क्या ऐसे काम करती फिरती है, जो कहने का नहीं ?'

'अच्छा !' यह थोड़े ही कहा। कहा...

लेकिन सुहास को बात पूरी करने का मौका नहीं मिला—आगन का दरवाजा ठेलकर दो मूर्तिमान दाखिल हुए—नवकुमार और निताई।

दोनों के मुंह से एक-एक संबोधन निकला—

बडी बहू !

भाभी जी !

सत्य घूघट को जरा खींचकर उठ खड़ी हुई।

नवकुमार बैठ पड़ा।

बैठकर बोला, 'बात क्या है बड़ी बहू ? रोज दोपहर को तुम जाया कहां करती हो ? आज ही अब तक कहा थी ? तुम्हारी यह रीत-नीत तो मुझे अच्छी नहीं लगती !'

सत्य नवकुमार की उस अस्त-व्यस्त मूर्ति की ओर ताककर जरा होंठ दबाए हंसकर बोली, 'अच्छा ? मेरी रीत-नीत अब तुम्हें अच्छी नहीं लगती ?'

हंसी !

सत्य हंस रही है !

इसका मतलब कि या तो उसके मन में किसी अपराध का भय नहीं, या फिर वह नंबरी काइया है। निताई को सुध भी न रही कि वह उस दबी हंसी से उज्ज्वल हुए अधढंके चेहरे की तरफ हां किए ताके हुए है, और यह रीत-नीत की दृष्टि से शोभन नहीं है।

नवकुमार लेकिन इतना विह्वल नहीं हो गया था। अब तक का उद्वेग, बेचैनी, चिन्ता सब कुछ की पीड़ा गुस्से की झांस होकर निकल पड़ी। सत्य की हंसी ने ईंधन का काम किया। सो वह बिगड़ कर खड़ा हो गया—'हां, ठीक नहीं लग रहा है ! मुझे लगता है, तुम्हारी बुद्धि बुरे रास्ते जा रही है !'

अकेले नवकुमार होता, तो सत्य दप् से तुनक उठती कि नहीं, नहीं मालूम। अभी साथ में निताई था। उसके सामने बिगड़ उठने से मान नहीं रहेगा। सो सत्य बोली, 'तुम्हें जब लग रहा है, तो बेशक उसका कोई वाजिब कारण होगा। तुम विज्ञ और विचक्षण हो। फिर ऐसी स्त्री को लेकर क्या करोगे, कहो ? वनवास दोगे ? अग्निपरीक्षा ? या कि काटकर इसे गंगा में डाल दोगे ?'

यह कैसी हिमाकत ? नवकुमार के मुंह से बात नहीं फूटी।

निताई बोला, 'भाभी जी, हमें भूल-भुलैया में डालकर आप जो मजा देख रही हैं, इसका भी तो कोई विहित होना चाहिए। आज तीसरे पहर से इस अभागे पर ग्रह का कैसा फेर ! मैंने भी सारा दिन खाया नहीं, पिया नहीं, तिस पर बीवी के सामने सिर नीचा···!'

'हाय राम, भूल-भुलैया में तो तुमने ही मुझे डाला लाला जी ! तुम्हारे खाने-पीने की बाधा मैं कैसे बनी ? बीवी के सामने सिर नीचा कराने में ही मेरा क्या हाथ रहा ? कुछ तो समझ नहीं पाती ! चेहरा तो देख रही हूं, कौड़ी हो गया है !'

बेचारा निताई ! उपवास वह कतई नहीं सह सकता। वही उपवास आज दिनभर रहा, तिसपर इतनी बातचीत, सबसे बड़ी बात ऐसी स्नेहभरी वाणी ! उसकी आंखों की स्नायु कमजोर होकर दगा दे बैठी। उसी विश्वासघातकता की शर्म को ढंकने के लिए बीवी के पास नीचा हुए सिर को उसने और एक बार झुका लिया।

'न:, ये दो बूढ़े मुन्ने समान है !' सत्य अब व्यंग्य छोड़कर सदय हो आयी—'इसी नासमझी की वजह से ही मुझे भी इस उमर मे छल-प्रपंच की शरण लेकर मरना पड़ रहा है !···लेकिन इससे पहले देवरजी, कुछ खा तो लो, लगता है, बीवी से झगड़कर आज हवा पीकर आए हो !···सुहास, पहले अपने छोटे फूफा को कुछ खाने को दो तो !'

'नहीं, नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए !' निताई ने आपत्ति की।

सत्य ने मुसकराकर कहा—'चाहिए कि नहीं चाहिए, यह क्या तुम समझोगे ?'

सुहास ने दोनों ही फूफा के लिए कांसे की झकमक रिकाबी में खाना लाकर रख दिया। घर मे जो चीजें मौजूद रहती हैं—नारियल के लड्डू, गाजा, एक कटोरा मूढ़ी।

एकाएक निताई को बड़ा दुःख हुआ। उसके घर में भी अभाव तो कुछ नही है, मगर ऐसी सुघड़ता तो कभी नजर नही आती। नवकुमार कभी-कभी जाता है, लेकिन कहां, निताई की स्त्री तो कभी एक ग्लास पानी भी नहीं ला देती! भूख असाह्य होते हुए भी हाथ बढ़ाकर लेने की इच्छा नही होती मानो।

नवकुमार ने भी मुंह लटका कर कहा, 'मुझे खाना नही चाहिए!'

सत्य बोली, 'तुम्हें चाहिए, इसलिए तो खाने को कहा नही जा रहा है, मेरे लिए ही कहा जा रहा है। खाओ! मैं बैठकर अपने कसूर की कैफ़ियत देती हूं!'

लाचारी दोनों को हाथ बढ़ाना पड़ा।

सत्य ने कहा, 'मैं रोज कहा जाती हूं, यह सुहास जानती है, बच्चे जानते हैं, एक तुम्हीं नही जानते हो! तुम्हें बताऊंगी, लेकिन उसके पहले यह वचन देना होगा कि जो काम कर रही हूं उसकी मनाही नहीं करोगे?'

'खूब कही! बिलकुल सफेद कागज पर सही! काम अच्छा है कि बुरा है, यह जाने बिना···?'

सत्य क्षणभर चुप रही। फिर शांत गले से कहा, 'मेरी ओर देखो! दोनों दोस्त मौजूद हो! दोनों जने देखो, देख कर कहो कि मैं बुरा काम कर रही हूं, तुम लोगों के मन मे यह संदेह है? बोलो, फिर मैं तुम्हारी बात का जवाब देती हूं!'

कहना न होगा, दो मित्रों में से किसी ने नजर उठाकर नही देखा, बल्कि दो जोड़ा आंखें और भी झुक गयीं।

सत्य ने थोड़ा इंतजार किया। बोली, 'समझ गये! तो सुनो, रोज दोपहर मे मैं पाठशाला मे पढ़ाने जाया करती हूं!'

[illegible] ने अब निगाहें उठायी।

[illegible] !

[illegible] वही हालत। बोला—'पढ़ाने?'

[illegible] थान में प्रतिदिन दोपहर में स्त्रियों का एक अड्डा [illegible] बहू-बेटियां भी एकाध होती हैं! कोई देवी के लिए [illegible], कोई माला गूंथती हैं। एक हैं, जो पुराणों की,

इसका मतलब कि या तो उसके मन में किसी अपराध का भय नहीं, या फिर वह नंबरी काइयां है। निताई को सुध भी न रही कि वह उस दबी हंसी से उज्ज्वल हुए अधढंके चेहरे की तरफ हा किए ताके हुए है, और यह रीत-नीत की दृष्टि से शोभन नहीं है।

नवकुमार लेकिन इतना विह्वल नहीं हो गया था। अब तक का उद्वेग, बेचैनी, चिन्ता सब कुछ की पीड़ा गुस्से की झांस होकर निकल पड़ी। सत्य की हंसी ने ईंधन का काम किया। सो वह बिगड़ कर खड़ा हो गया—'हां, ठीक नहीं लग रहा है! मुझे लगता है, तुम्हारी बुद्धि बुरे रास्ते जा रही है!'

अकेले नवकुमार होता, तो सत्य दप् से तुनक उठती कि नहीं, नहीं मालूम। अभी साथ में निताई था। उसके सामने बिगड़ उठने से मान नहीं रहेगा। सो सत्य बोली, 'तुम्हें जब लग रहा है, तो बेशक उसका कोई वाजिब कारण होगा। तुम विज्ञ और विचक्षण हो। फिर ऐसी स्त्री को लेकर क्या करोगे, कहो? वनवास दोगे? अग्निपरीक्षा? या कि काटकर इसे गंगा में डाल दोगे?'

यह कैसी हिमाकत? नवकुमार के मुंह से बात नहीं फूटी।

निताई बोला, 'भाभी जी, हमें भूल-भुलैया में डालकर आप जो मजा देख रही हैं, इसका भी तो कोई विहित होना चाहिए। आज तीसरे पहर से इस अभागे पर ग्रह का कैसा फेर! मैंने भी सारा दिन खाया नहीं, पिया नहीं, तिस पर बीवी के सामने सिर नीचा…!'

'हाय राम, भूल-भुलैया में तो तुमने ही मुझे डाला लाला जी! तुम्हारे खाने-पीने की बाधा मैं कैसे बनी? बीवी के सामने सिर नीचा कराने में ही मेरा क्या हाथ रहा? कुछ तो समझ नहीं पाती! चेहरा तो देख रही हूं, कौड़ी हो गया है!'

बेचारा निताई! उपवास वह कतई नहीं सह सकता। वही उपवास आज दिनभर रहा, तिसपर इतनी बातचीत, सबसे बड़ी बात ऐसी स्नेहभरी वाणी! उसकी आंखों की स्नायु कमजोर होकर दगा दे बैठी। उसी विश्वासघातकता की शर्म को ढंकने के लिए बीवी के पास नीचा हुए सिर को उसने और एक बार झुका लिया।

'नः, ये दो बूढ़े मुन्ने समान हैं!' सत्य अब व्यंग्य छोड़कर सदय हो आयी—'इसी नासमझी की वजह से ही मुझे भी इस उमर में छल-प्रपंच की शरण लेकर मरना पड़ रहा है!…लेकिन इससे पहले देवरजी, कुछ खा तो लो, लगता है, बीवी से झगड़कर आज हवा पीकर आए हो!…सुहास, पहले अपने छोटे फूफा को कुछ खाने को दो तो!'

'नहीं, नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए!' निताई ने आपत्ति की।

सत्य ने मुसकराकर कहा—'चाहिए कि नहीं चाहिए, यह क्या तुम समझोगे ?'

सुहास ने दोनों ही फूफा के लिए कांसे की झकमक रिकाबी में खाना लाकर रख दिया। घर में जो चीजें मौजूद रहती है—नारियल के लड्डू, गाजा, एक कटोरा मूढ़ी।

एकाएक निताई को बड़ा दुःख हुआ। उसके घर में भी अभाव तो कुछ नही है, मगर ऐसी सुघड़ता तो कभी नजर नही आती। नवकुमार कभी-कभी जाता है, लेकिन कहा, निताई की स्त्री तो कभी एक ग्लास पानी भी नहीं ला देती ! भूख असाह्य होते हुए भी हाथ बढ़ाकर लेने की इच्छा नही होती मानो।

नवकुमार ने भी मुह लटका कर कहा, 'मुझे खाना नही चाहिए !'

सत्य बोली, 'तुम्हें चाहिए, इसलिए तो खाने को कहा नहीं जा रहा है, मेरे लिए ही कहा जा रहा है। खाओ ! मैं बैठकर अपने कसूर की कैफ़ियत देती हूं !'

लाचारी दोनों को हाथ बढ़ाना पड़ा।

सत्य ने कहा, 'मैं रोज कहां जाती हूं, यह सुहास जानती है, बच्चे जानते हैं, एक तुम्ही नही जानते हो ! तुम्हें बताऊंगी, लेकिन उसके पहले यह वचन देना होगा कि जो काम कर रही हूं उसकी मनाही नहीं करोगे ?'

'खूब कही ! बिलकुल सफेद कागज पर सही ! काम अच्छा है कि बुरा है, यह जाने बिना···?'

सत्य क्षणभर चुप रही। फिर शांत गले से कहा, 'मेरी ओर देखो ! दोनों दोस्त मौजूद हो ! दोनों जने देखो, देख कर कहो कि मैं बुरा काम कर रही हूं, तुम लोगों के मन में यह सदेह है ? बोलो, फिर मैं तुम्हारी बात का जवाब देती हूं !'

कहना न होगा, दो मित्रों में से किसी ने नजर उठाकर नहीं देखा, बल्कि दो जोड़ा आंखें और भी झुक गयीं।

सत्य ने थोड़ा इंतज़ार किया। बोली, 'समझ गयी !' तो सुनो, रोज दोपहर में मैं पाठशाला में पढ़ाने जाया करती हूं !'

नवकुमार ने अब निगाहें उठायी।

चौंका ! सिहरा !

निताई की भी लगभग वही हालत। बोला—'पढ़ाने ?'

'हा, पढ़ाने ! सर्वमंगला थान में प्रतिदिन दोपहर में स्त्रियों का एक अड्डा होता है। घरनी, अधेड़ ! बहू-बेटियां भी एकाध होती हैं ! कोई देवी के लिए बेल के पत्ते चुनकर रखती हैं, कोई माला गूंथती हैं। एक हैं, जो पुराणों की,

इसका मतलब कि या तो उसके मन मे किसी अपराध का भय नहीं, या फिर वह नंबरी काइयां है। निताई को सुध भी न रही कि वह उस दबी हंसी से उज्ज्वल हुए अधढंके चेहरे की तरफ हां किए ताके हुए है, और यह रीत-भाँत की दृष्टि से शोभन नही है।

नवकुमार लेकिन इतना विह्वल नही हो गया था। अब तक का उद्वेग, बेचैनी, चिन्ता सब कुछ की पीड़ा गुस्से की झांस होकर निकल पड़ी। सत्य की हंसी ने ईंधन का काम किया। सो वह बिगड़ कर खड़ा हो गया—'हां, ठीक नही लग रहा है! मुझे लगता है, तुम्हारी बुद्धि बुरे रास्ते जा रही है!'

अकेले नवकुमार होता, तो सत्य दप् से तुनक उठती कि नही, नही मालूम। अभी साथ में निताई था। उसके सामने बिगड़ उठने से मान नही रहेगा। सो सत्य बोली, 'तुम्हे जब लग रहा है, तो बेशक उसका कोई वाजिब कारण होगा। तुम विज्ञ और विचक्षण हो। फिर ऐसी स्त्री को लेकर क्या करोगे, कहो? वनवास दोगे? अग्निपरीक्षा? या कि काटकर इसे गंगा में डाल दोगे?'

यह कैसी हिमाकत? नवकुमार के मुंह से बात नही फूटी।

निताई बोला, 'भाभी जी, हमें भूल-भुलैया में डालकर आप जो मजा देख रही हैं, इसका भी तो कोई विहित होना चाहिए। आज तीसरे पहर से इस अभागे पर ग्रह का कैसा फेर! मैंने भी सारा दिन खाया नहीं, पिया नहीं, तिस पर बीवी के सामने सिर नीचा…!'

'हाय राम, भूल-भुलैया में तो तुमने ही मुझे डाला लाला जी! तुम्हारे खाने-पीने की बाधा मैं कैसे बनी? बीवी के सामने सिर नीचा कराने मे ही मेरा क्या हाथ रहा? कुछ तो समझ नही पाती! चेहरा तो देख रही हूं, कौड़ी हो गया है!'

बेचारा निताई! उपवास वह कतई नहीं सह सकता। वही उपवास आज दिनभर रहा, तिसपर इतनी बातचीत, सबसे बड़ी बात ऐसी स्नेहभरी वाणी! उसकी आंखों की स्नायु कमजोर होकर दगा दे बैठी। उसी विश्वासघातकता की शर्म को ढंकने के लिए बीवी के पास नीचा हुए सिर को उसने और एक बार झुका लिया।

'ना, ये दो बूढ़े मुन्ने समान हैं!' सत्य अब व्यंग्य छोड़कर सदय हो आयी—'इसी नासमझी की वजह से ही मुझे भी इस उमर में छल-प्रपंच की शरण लेकर मरना पड़ रहा है!…लेकिन इससे पहले देवरजी, कुछ खा तो लो, लगता है, बीवी से झगड़कर आज हवा पीकर आए हो!…सुहास, पहले अपने छोटे फूफा को कुछ खाने को दो तो!'

'नही, नही, मुझे कुछ नही चाहिए!' निताई ने आपत्ति की।

सत्य ने मुसकराकर कहा—'चाहिए कि नहीं चाहिए, यह क्या तुम समझोगे ?'

सुहास ने दोनों ही फूफा के लिए कांसे की झकमक रिकाबी में खाना लाकर रख दिया। घर में जो चीजें मौजूद रहती हैं—नारियल के लड्डू, गाजा, एक कटोरा मूढ़ी।

एकाएक निताई को बड़ा दुःख हुआ। उसके घर में भी अभाव तो कुछ नहीं है, मगर ऐसी सुघड़ता तो कभी नजर नहीं आती। नवकुमार कभी-कभी जाता है, लेकिन कहां, निताई की स्त्री तो कभी एक ग्लास पानी भी नहीं ला देती ! भूख असाह्य होते हुए भी हाथ बढाकर लेने की इच्छा नहीं होती मानो।

नवकुमार ने भी मुंह लटका कर कहा, 'मुझे खाना नहीं चाहिए !'

सत्य बोली, 'तुम्हे चाहिए, इसलिए तो खाने को कहा नहीं जा रहा है, मेरे लिए ही कहा जा रहा है। खाओ ! मैं बैठकर अपने कसूर की कैफ़ियत देती हूं !'

लाचारी दोनो को हाथ बढ़ाना पड़ा।

सत्य ने कहा, 'मैं रोज कहां जाती हूं, यह सुहास जानती है, बच्चे जानते हैं, एक तुम्ही नही जानते हो ! तुम्हें बताऊंगी, लेकिन उसके पहले यह वचन देना होगा कि जो काम कर रही हूं उसकी मनाही नहीं करोगे ?'

'खूब कही ! बिलकुल सफेद कागज पर सही ! काम अच्छा है कि बुरा है, यह जाने बिना···?'

सत्य क्षणभर चुप रही। फिर शांत गले से कहा, 'मेरी ओर देखो ! दोनों दोस्त मौजूद हो ! दोनों जने देखो, देख कर कहो कि मैं बुरा काम कर रही हूं, तुम लोगों के मन मे यह संदेह है ? बोलो, फिर मैं तुम्हारी बात का जवाब देती हूं !'

कहना न होगा, दो मित्रों में से किसी ने नजर उठाकर नहीं देखा, बल्कि दो जोड़ा आखे और भी झुक गयीं।

सत्य ने थोड़ा इंतजार किया। बोली, 'समझ गयी !' तो सुनो, रोज दोपहर में मैं पाठशाला में पढ़ाने जाया करती हूं !'

नवकुमार ने अब निगाहें उठायीं।

चौंका ! सिहरा !

निताई की भी लगभग वही हालत। बोला—'पढ़ाने ?'

'हां, पढ़ाने ! सर्वमंगला थान में प्रतिदिन दोपहर में स्त्रियों का एक अड्डा होता है। घरनी, अधेड ! बहू-बेटियां भी एकाध होती हैं ! कोई देवी के लिए बेल के पत्ते चुनकर रखती हैं, कोई माला गूथती हैं। एक हैं, जो पुराणों की,

रामायण-महाभारत की कहानियां सुनाती है। दूसरी स्त्रियां सुनती हैं, गप्प-गाली भी खूब चलती है। यह देखकर मास्टर साहब को सूझ आयी···!'

फिर मास्टर साहब!

नवकुमार का मुंह बन गया। सत्य ने देखकर भी उसे नहीं देखा। कहती गयी—'सूझ आयी कि इन स्त्रियों के लिए एक पाठशाला चलायी जाए, तो कैसा रहे? गप्प-गाली में नाहक समय नष्ट न करें। उन्होंने 'सर्वमंगला-विद्यापीठ' खोल दिया। मुझे कहा, गुरु को अब गुरुदक्षिणा देनी होगी—इन्हें पढ़ाओ! मैंने देखा, काम यह पुण्य का है! हां कह दिया!'

'हां कह दिया! मुझसे पूछने की भी ज़रूरत नहीं?'

'यह दोष मैं सौ बार स्वीकार करती हूं—लेकिन तुम यदि झट कसम दे बैठते? फिर तो कोई उपाय नहीं रह जाता! इसीलिए मां सर्वमंगला का नाम लेकर जुट पड़ी। किताब, कापी, स्लेट—सब का खर्च मास्टर साहब का!'

'इतनी विद्या है तुम्हें कि मास्टरी करने को तैयार हो गयी?'

नवकुमार के इस व्यंग्य पर सत्य धीमे से हंसकर बोली—'मास्टरी तो सत्य का जन्मजात पेशा है, आजन्म मास्टरी ही तो करती आयी। स्वभाव के दोष से तैयार हो गयी। विद्या की कहते हो? वह पढ़ाते-पढ़ाते ही आएगी! जितना बनेगा, करती जाऊंगी!'

निताई ने धीमे से पूछा, 'उमर वाली औरतें पढ़ने में जी लगाती है?'

'खूब! दो-एक को छोड़कर झटपट सीख भी गयी। देखते तो समझते कि अपने से रामायण-महाभारत पढ़ने की कितनी ललक है उन्हें। मुझे लगता है, मेरा जीवन सार्थक हो रहा है!'

नवकुमार का मन फिर भी हलका न हुआ। कहा, 'धरम के माथे पर झाड़ू मारकर मास्टर साहब जो ब्राह्म बन गए हैं, यह बात उन्हें निश्चय नहीं मालूम होगी?'

'मालूम क्यों न होगी, लेकिन सभी तुम जैसे कट्टर नहीं हैं! कोई मास्टर साहब के हाथ का भात तो नहीं खाने जाती! और, धरम के माथे पर झाड़ू मारने की भी क्या है? ब्राह्म-धर्म भी तो हिन्दू-धर्म है। कभी कुछ कान से सुनते नहीं हो न! ब्राह्म-समाज के उतने कट्टर केशव सेन के यहां परमहंस जी आए थे···'

'क्या, क्या! कौन कहां आए थे?'

'परमहंस देव! उनका नाम भी कभी नहीं सुना है क्या?'

'क्यों नहीं! उस बार दफ्तर के मित्रों के साथ दक्षिणेश्वर में उनके दर्शन भी कर आया हूं! तो वे···'

'हां, वही केशव सेन के घर आए थे! उन्हीं को देखने में तो आज मुझे इतनी देर हो गयी और तुम लोगों के सामने सब पर्दाफाश हो गया!'

नवकुमार ने चकित नेत्रों से कुछ देर तक ताक कर कहा, 'तुमसे मुझे और कुछ कहने को नहीं है बड़ी बहू, तुम मेरी पहुंच से ऊपर चली जा रही हो! लेकिन केशव बाबू के यहां कैसे गयी?'

'कैसे क्या? अकेली थोड़े ही गयी? और भी कितनी स्त्रियां गयीं! सबने मिलकर किराए की गाड़ी की—जहां दल, वहीं बल! कितने अच्छे गीत हुए! जी जुड़ा गया।'

'कलेजा नहीं कांपा?'

'कलेजा क्यों कांपेगा?' सत्य ने अवाक् होकर देखते हुए कहा—'ये जो स्त्रियां तीर्थाटन को जाती हैं, योग में गंगा नहाने जाती है, साधु-संन्यासी के दर्शन को जाती हैं, उनके कलेजा कांपने का सवाल कहां उठता है? कभी-कभी ऐसी जगहों में जाया करो, नजर खुलेगी!'

'हम? हम लोग तुच्छ जीव है, हमें उतना साहस कहां?'

सत्य बोल उठी—'चौबीसों घंटे अपने को तुच्छ जीव, तुच्छ जीव सोचने से ही मन तुच्छ हो जाता है। अपने को तुच्छ मानें ही क्यों? सभी आदमी में भगवान हैं, यह तो मानते हो? उस भगवान के बल से ही बल है। उस हिसाब से सभी बड़े हैं!'

निताई ने चुपचाप एक उसांस ली।

अपनी स्त्री को वह भाभीजी के पास आने को कहता है। सात जन्म पार करके आने पर भी यह सब सोचने की मजाल होगी उसकी? नवकुमार ने ठीक ही कहा, 'सत्यवती उन सबकी पहुंच से ऊपर चली जा रही है।'

नवकुमार ने खींचकर उतारने की कोशिश की, 'खैर, जो भी हो, ब्राह्म के यहां से आकर कपड़े बदले? सिर पर गंगाजल डाला?'

'हां यह सब किया, लेकिन ब्राह्म के घर के कारण नहीं, गाड़ी पर आयी, इसलिए! गाड़ी के कपड़े में मैं कभी नहीं रहती! सोच-विचारकर इतनी देर में यही दिमाग़ में लाया?...खैर! लड़के कब आएंगे? घर सूना-सूना लगता है!'

नवकुमार ने कहा, 'तुम्हारे लिए सूना! तुम्हारा मन-प्राण तो तत्वज्ञान से भरा है! वहां पति-पूत के लिए जगह कहां? मैं खूब समझ रहा हूं, तुम अपने बाप जैसी काठ-कठिन हो जाओगी!'

सत्य ने शांत स्वर में कहा, 'बाबूजी जैसी? उनके चरणों के नाखून के कण बराबर होऊं तो अपने को धन्य मानूं। लेकिन आज यह क्यों कह रहे हो? तुमने तो खुद ही कहा था, बाबूजी आदमी नहीं, देवता है!'

'वह बात आज भी कहता हूं। लेकिन देवता को दूर से फूल चढ़ाना ही अच्छा है, उसके साथ गिरस्ती करने की सुविधा नहीं।'

सत्य हंस पड़ी। बोली, 'देखिए देवरजी, आप के दोस्त की कितनी तरक्की हुई है। कितनी बातें सीखी हैं।'

निताई इतने में आपे में आकर बोला, 'न सीखे तो शास्त्र ही झूठा हो जाए! संगति का गुण होता है न···'

बीच ही में सुहास ने आकर कहा, 'लगा, कोई आ रहे हैं।' बगलवाले कमरे के दोनों ही झरोखे रास्ते की ओर हैं। सुहास शायद वहीं खड़ी थी।

ये घबरा गए। बोले, 'कौन? कौन आ रहे हैं?'

'पहचानती नहीं। बूढ़े-से हैं। खूब लंबे, गोरे—सीधे···'

लंबे···गोरे···सीधे!

सत्य की छाती छन् से हो उठी और दूसरे ही क्षण कलेजे को हिम करते हुए आंगन के उस ओर से एक गंभीर गले की बोली गूंज उठी—'घर में कोई हैं?'

'बाबूजी!'

सत्य बिजली की गति से बाहर निकल आयी। उससे भी पहले निताई निकला, पीछे-पीछे नवकुमार। तब तक उस गले से दूसरा प्रश्न निकला—'नवकुमार बंद्योपाध्याय का यही मकान है?'

'बाबूजी! आप!'

प्रणाम के लिए झुके सिर को उठाए बिना ही सत्य बोली, 'मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि यह सच है!'

'तो सपना ही मानो!' मुसकराकर रामकाली बरामदे पर आए।

नवकुमार, निताई—दोनों ने प्रणाम किया और मन ही मन सोचा—बड़े दिनों तक जिंदा रहेंगे ये। इनकी चर्चा हो रही थी और ठीक उसी वक्त आ पड़े—

आवेग का उच्छ्वास दबने और कुशल-क्षेम पूछने-आछने में काफी वक्त गया। उसके बाद रामकाली ने आने का कारण बताया। कहा, 'मैंने काशीवास का संकल्प किया है। इसलिए अंतिम बार के लिए तुम्हें देखने आया हूं।'

'काशीवास!'

सत्य टूट पड़ी। बोली, 'आपने यह संकल्प किया है? और इसीलिए इस अभागिन बेटी को दर्शन देने आए हैं? मुझे तो खाक भी खबर नहीं थी बाबूजी, नहीं तो फौरन सब-कुछ छोड़छाड़ कर आप के पास पहुंच जाती।'

रामकाली के इस आकस्मिक आविर्भाव से सत्य मानो अपनी सदा की

स्थिरता गंवाने लगी।

एक तो इस अप्रत्याशित आनंद का आवेग, फिर उसके साथ एक चिंता—इनके डेरे में पिताजी पानी पिएंगे या नहीं। पानी भी तो कल का है। यह पानी न पिएं तो गंगाजल का प्रबंध होगा, पर डेरे का दोष कैसे मेटा जाएगा?

गृहस्थों के यहां गुरु का आना सत्य ने देखा है—वैसा कर सकती है। लेकिन उतना जतन, उतनी सेवा ये स्वीकारेंगे? इन चिंताओं के साथ उमड़ रही थी विच्छेद की अव्यक्त व्याकुलता।

पिता को सत्य रोज जरूर नहीं देख रही है, लेकिन जानती है कि वे हैं, उसके चिरपरिचित परिवेश के बीच, उनके चिर-अभ्यस्त जीवन में।

लेकिन काशीवास!

यह तो चिर-विरह के समान है। यह तो एक प्रकार की मृत्यु है। काशीवास के संकल्प का मतलब ही है दुनिया से मुंह फेर लेना। इन्हीं चिंताओं से सत्य के स्वर में आकुलता थी।

रामकाली समझ गए।

उन्होंने धीरे से हंसकर कहा, 'तुम नहीं गयी, मैं ही तुम्हारे पास आया। एक ही बात हुई।'

निताई प्रणाम करके चला गया था। सत्य को बोलने की सुविधा देने के लिए नवकुमार कुछ हटकर बैठ गया था। सत्य ने इसीलिए आक्षेप के साथ कहा, 'दोनों क्या एक ही बात हुई बाबूजी? वह मैं बाप की बेटी होकर बाप के पास जा पहुंचती, पहले जैसी नन्ही हो जाती। जो जी मे आता, कहती। और यह आप कुटुंब के घर आए है, मैं पराए घर की बहू हूं, यहां मुझे कदम-कदम पर बाधा है। क्या बोलूं, क्या कहूं?'

नवकुमार हटकर तो बैठा था, पर इतनी दूर नही था कि सत्य की बात उसके कानों न पहुंच सकती हो। वह सहसा अपने आप बोल उठा, 'हाय भगवान! कदम-कदम पर बाधा! कदम और बेरोक होते तो जाने क्या होता!'

रामकाली ने चौंककर कहा, 'क्या कहा बेटे?'

नवकुमार ने गंभीर होकर कहा, 'जी खास कुछ नहीं। आप की बेटी शिकायत कर रही है, कदम-कदम पर बाधा है, यही कह रहा था। आपके नित्यानंदपुर में ऐसी कौन लड़की है और हमारे बारुईपुर में ऐसी कौन बहू है, जो आप की बेटी जितनी स्वाधीन है, उनसे बल्कि यही पूछ देखिए!'

रामकाली ने महसूस किया, यह शिकायत का सुर है। धीमे से हंसे! बोले, 'अगर ऐसी बात है, तो यह तो अच्छा ही है। मेरी बिटिया जमात की

कवै[1] होने के लिए पदा नहीं हुई है, यह मैंने उसके बचपन में ही समझ लिया था।'

सत्य अब पिता और पति की उपस्थिति का ख्याल नही कर सकी। घूघट को और ज़रा खीचकर बोली—'अच्छा बाबूजी, आप अभी थके-मांदे आए हैं। इस समय नालिश-फरियाद लिए बैठ जाना अच्छा है? दो-चार दिन तो रहेंगे···. फिर जितना जी चाहे···'

'अरे, बाप रे, दो-चार दिन! एक दिन के लिए आ गया! कल चला जाऊंगा!'

'एक दिन! आप सिर्फ एक दिन के लिए आए हैं?' सत्य रो पड़ी—'आप से बहुतेरी बातें करनी हैं···'

सचमुच ही सत्य को उनसे बहुतेरी बातें करनी हैं।

कितनी बार सोचा, चिट्ठी लिखकर उन्हे सब बताएगी—कौन-सी भूल है, कौन-सी ठीक। लेकिन लिखने गयी तो लगा, अगाध है! इतनी बातें चिट्ठी में लिखी जा सकती है! और फिर उत्तर-प्रत्युत्तर में तो कहने की बात बतायी जा सकती है, एकतरफा तो मानो कैफियत देना है।

वे अगर जवाब मे लिखें, 'इतनी बात मुझे लिखने का मतलब?'

लेकिन—ब्राह्मधर्म क्या है, चिरहितैषी कोई गुरुजन यदि एकाएक ब्राह्म बन जाएं, उन्हें छोड़ देना ही समीचीन है या नही; गृहस्थ घर की बेटी या गृहस्थ घर की बहू का इसी अपराध में दीन-दुनिया के सब प्रकार के कामों से वंचित होना विधि है या नही; पति यदि हिताहित ज्ञान न रखते हों तो स्त्री को उसी अंध-पथ से चलना चाहिए या नही—ये बहुत सारे सवाल तो है ही, सबसे बड़ा सवाल शंकरी की बेटी का है। शंकरी के बारे में जब उसने पिता को लिखा था, तो रामकाली ने जवाब दिया—'कोई कितने ही बड़े अपराध का अपराधी क्यों न हो, वह अगर उसके लिए अनुतप्त हुआ हो, तो उसे क्षमा ही करना चाहिए। और फिर तुम्हारे विचार पर मुझे भरोसा है।'

सुहास के लिए वह क्या करे, बाबूजी से यह पूछने की उसे बड़ी इच्छा है।

लेकिन वे तो एक ही दिन रहेंगे!

इसका मतलब यह है कि सत्य के डेरे पर वे खाना-पीना नहीं करेंगे। शायद हो कि फलमूल और गंगाजल पर ही एक बेला निकाल दे। सत्य को पिता की सेवा का पुण्य नसीब न होगा। मन से इतने उच्छ्वासों के उमड़ते ही आंखों के आसू का बांध टूट गया।

रामकाली ने धीरे से उसके माथे को छूकर कहा, 'एक ही दिन क्या कम

---

१. एक तरह की मछली।

है ? कितनी बात कहनी है, कह न।'

'बात ! मुझे तो उमड़-उमड़कर रोना ही आ रहा है !'

सत्य का आंचल गीला हो उठा।

बड़ी देर के बाद वह रुलाई थमी। बातें भी हुईं। जितना कुछ भी कहना था, सब कह गयी वह अपने सदा के ध्रुवतारा से।

रामकाली ने नवकुमार की हलके से लिहाड़ी ली। कहा, 'अरे, मास्टर साहब तुम्हारे सदा के हितू हैं, उन्हें छोड़ने को क्या है ? उनका धर्मविश्वास उनका है। मेरी ही लो, मैं शाक्त हूं कि वैष्णव, यह देखोगे ? कि मुझे बाबूजी देखोगे ? गुरु, शिक्षक—ये भी पिता के ही समान होते हैं। और वे अपना धर्म विश्वास तुम पर तो लाद नही रहे है ! फिर ?'

सत्य पाठशाला में पढाती है, यह सुनकर रामकाली ज़रा देर चुप रहे। निःश्वास फेंका और बोले, 'अपनी मा की तुम्हें याद है सत्य ?'

'मा की याद नही ? आप कह क्या रहे हैं ?' सत्य की आखें फिर छलक पड़ीं।

'नहीं, वही कह रहा हूं ! तेरी मां होती तो यह सुनकर डर जाती, समझी ? ज़रूर डर जाती ! आड़ में कहती, मैं जानती हूं, वह मेरी क्षणजन्मा बेटी है !'

सत्य को जवाब मिल गया—उसका काम ठीक है या ग़लत।

सिर्फ सुहास के लेकर कुछ देर तक आलोचना हुई। कुछ वाद-विवाद भी। तब तक भी वह सुहास को सामने नहीं लायी थी।

रामकाली ने कहना चाहा था, ब्याह की कोशिश करने की ज़रूरत भी क्या है ? ठीक ही तो है, पढ़-लिख रही है। अपनी आजीविका कमा ले तो मंगल जानो। कलकत्ता में तो आजकल ऐसा हो रहा है। विदुषी स्त्रियां किसी घर में पढाकर या लड़कियो को स्कूल मे पढ़ाकर कमा रही है।

'लेकिन'''मां तो सदा की दुखिया रही ! दुःख ही दुःख काटकर मरी। उसकी बेटी भी कभी घर-गिरस्ती का मुह न देखे !'

'मां-बाप के पाप का प्रायश्चित तो संतान को ही करना पड़ता है बिटिया !'

'यदि कोई अपनी इच्छा से उससे ब्याह करना चाहे ?'

रामकाली ने सिर हिलाकर कहा, 'कौन चाहेगा ? एक तो उसके जन्म में ही इतनी बड़ी ग़लती है, फिर उसकी उमर हो गयी है—विधवा है या कुमारी इसका भी ठिकाना नही !'

अब की सत्य ने अपने मन की छिपी हुई इच्छा जाहिर की—'इसे ब्राह्म-धर्म की दीक्षा दिलाकर उस समाज के किसी युवक के हाथों सौंप दिया जाए ? वहा सुहास के योग्य इस उमर का अनब्याहा युवक मिल जाएगा।'

रामकाली ने इस प्रस्ताव का समर्थन नही किया। एक मामूली लड़की के ब्याह के लिए इतना करने की जरूरत क्या है, उनका मानो यही मत है। इसी से अचानक गंभीर होकर बोले, 'पूछ ही रही हो तो कहूं, ऐसे एक खोटवाले खानदान की धारा को बढ़ाते चलने से लाभ भी क्या?'

'लाभ इस लड़की की गिरस्ती! वह लड़की है, इसीलिए वह नाचीज़ है? आखिर आदमी का ही तो जीवन है!'

'आदमी के जीवन की सार्थकता भोग ही में नहीं है बिटिया, त्याग में भी है। वह तो जानती है, वह विधवा है—बाल-विधवा की ज़िंदगी जैसे कटती है...'

'कटती कैसे है बाबूजी!' सत्य ने हताश नि:श्वास छोड़ते हुए कहा—'दुःख मे ही कटती है। फुआ-दादी जैसी कितनी स्त्रिया होती हैं? लेकिन उन्होने भी मन के दाह से दुनियाभर के लोगो की नाक मे दम कर दिया था।'

रामकाली एकाएक स्तब्ध हो गए, मानो मोक्षदा को उन्होंने आखों के सामने देखा। पहले की सोने के रंगवाली उस दमकती हुई को भी देखा और उसके पीछे—काया के पीछे छाया की तरह, सूरज के पीछे राहु की तरह इस समय की रोग-जर्जर मोक्षदा की प्रेतात्मा को भी देखा। जो मोक्षदा बुढभस से अभी जो-सो करती फिर रही है। लुका-छिपाकर खाने के लिए ताक में घूमा करती है, मुट्ठीभर भुनी हुई मछली मुह में ठूसकर बैठी रहती हैं!

और शारदा रात-दिन भला-बुरा सुनाती हुई उन्हे पोखरे से डुबकी लगवा लाती है।

सत्य को यह बात फिर भी मालूम नही है।

रामकाली ने ज़रा चुप रहकर कहा, 'देखो, यदि वैसा कोई परोपकारी युवक मिले!'

'आपके आशीर्वाद के बिना एक इतने बड़े काम के लिए साहस नहीं कर पा रही हूं। आप हृदय से हा कर जाइए...'

रामकाली हसे। बोले—'मन कुछ घर का झरोखा-किवाड़ है कि बल से उसे खोल लेगी। मैं आशीर्वाद करता हू, तेरे काम में भगवान सहाय होंगे।'

सत्य की आशंका ही ठीक थी।

रामकाली ने थोड़ा-सा फलमूल लिया और बताया? कल भी पूर्णिमा का व्रत है।

सत्य रोने-रोने को हुई-सी बोली, 'तो आप यही समझकर आए थे? मैं आपकी ऐसी अधम बेटी हू कि जीवन मे कभी भात पकाकर नही खिला सकी!'

रामकाली ने अचानक एक गहरी उसास ली। कहा, 'जीवन की बात

क्या अभी ही खत्म कर दी जा सकती है बिटिया ! उसकी परिणति गुफा के अंधेरे में है !'

उसके बाद बोले, 'इतनी बात हो गयी, मगर उस लड़की को तो नहीं देखा ?'

'मालूम नहीं, उसे क्या शर्म आयी है, चौकी पर पड़ी रो रही है !'

'रो रही है !' रामकाली चौंके कुछ बोले नहीं।

दूसरे दिन रामकाली जब स्नान-आह्निक करके बैठे, तो सिर झुकाए सुहास ने आकर उन्हें प्रणाम किया।

पूरब की खिड़की से सवेरे के प्रकाश ने उसके चेहरे पर पड़कर उसे स्निग्ध कौमार्य की एक दीप्ति से नहला-सा दिया। उसके नम्र किंतु दृढ़ चेहरे की रेखाओं में प्रत्यय की एक चमक थी। पतली और सीधी लंबी देह की बनावट में भी उस प्रत्यय की दृढ़ता थी।

रामकाली ने शायद ऐसी आशा नहीं की थी।

वे विचलित हुए। सहसा उन्हें बहुत दिन पहले की बात याद आ गयी। याद आ गयी पोखरे के किनारे बैठी एक विधवा-मूर्ति ! कैसी थी वह मूर्ति, रामकाली ने उसे देखा था ?

माथे पर हाथ रखकर उन्होंने आशीर्वाद किया।

उसके बाद गंभीर गले से बोले, 'सत्य, यह तो तपस्विनी उमा है !'

सत्य ने मुसकराते चेहरे से सुहास की ओर देखा। यह बड़ाई तो उसी की है। सुहास तो उसी के हाथों की गढ़ी प्रतिमा है।

नन्ही नहीं, मुन्नी नहीं, सत्य उसकी अशिक्षा-कुशिक्षा और चरित्रगत बहुतेरे दोषों समेत पंद्रह साल की लड़की को अपने पास लायी थी।

महज इन्हीं कै सालों में तोड़-फोड़कर उसे बनाया है।

प्रकृति के नियम से उसके अंदर भी अवश्य एक प्रबल तोड़-जोड़ चलाया-किया। मां की वैसी आकस्मिक और वीभत्स मृत्यु और उसके बाद मां के जीवन के इतिहास को जानने के फलस्वरूप वह हेर-फेर हुआ था।

उसके बाद उसके नए जन्म की बारी !

कहां दत्तों के यहां की वह विलासिता भरी गंदी आबहवा और कहां सत्यवती के दृढ़ चरित्र का दृष्टांत ! और फिर स्कूल का जीवन ! जैसे स्वर्ग की दुनिया !

सुहास की प्रकृति ही नहीं, आकृति भी बदली। वह वाचाल लड़की जैसी मितभाषी हो गयी, वैसी ही हठात् लंबी होकर गोल गाल पुष्ट शरीर वाली वह बेत की नोक जैसी लंबी छरहरी हो गयी। पतली ही कहिए !

जिस पतलेपन को देखकर रामकाली को तपस्विनी उमा की उपमा याद आ गयी।

सत्य ने खुशी-खुशी मुसकराते हुए कहा, लगातार दो वर्षों से अव्वल आयी...'

'अच्छा!'

सुहास को शायद शर्म आयी। उसने दबी हुई हंसी हंसते हुए कहा, 'नाना जी के नातियों के अव्वल आने की खबर पड़ी रही और...'

वह खबर पड़ी नही रही थी।

रामकाली ने सुनी थी। नवकुमार ने बताया। नातियों से मुलाकात न हो सकी, इसका दु:ख भी ज़ाहिर किया। रामकाली बोले, 'वास्तव मे उन्हें बहुत दिनों से नही देखा है! छात्रवृत्ति मिली है, सुनकर खुशी हुई!'

ये बातें पिछली रात की है।

सुहास को पता नही था। अपनी लाज बचाने के लिए उसने झट उन सबकी बात उठाई।

रामकाली ने मुसकराकर कहा, 'नातियों के अव्वल आने की बात खुशी की है, पर नयी नही है। नतनी का अव्वल आना ही नयी बात है। आशीर्वाद करता हूं, सुखी होओ, सौभाग्यवती होओ!'

सत्य की तरफ मुड़कर बोले, 'जी खोलकर ही आशीर्वाद किया रे!'

सत्य की आखों में फिर आसू भर आया।

पिता की बोलचाल का ढर्रा बदल गया है। दूरी रखकर नपी-तुली बातें करने की जगह अब निकटता का सुर है।

संसार से मुंह फेरने के समय संसार के प्रति ममत्व का बोध हो रहा है उन्हें?

या कि उनकी दीन-दुनिया से बाहर की लड़की के कार्य कलाप ने उन्हें विचलित कर दिया है?

जाने की घड़ी जितनी ही करीब आने लगी, सत्य के गले की आवाज उतनी ही भारी हो आने लगी। 'रुक जाइए' कहकर अनुरोध करने का उपाय कहां था? मुट्ठी भर भात खाने का अनुरोध नही किया जा सकता। जाने ही देना पड़ेगा।

छोटी-छोटी बात। छोटा-छोटा नि:श्वास।

'वैदई क्या छोड़ दीजिएगा?'

'छोड़ दूगा? छोड़ क्यो दूगा बेटी? उस विद्या से जिसका जितना-सा उपकार हो सके! हां, पेशा छोड़ दूगा!'

यानी दक्षिणा नहीं !

'बड़े कष्ट से तो नहीं रहेंगे न ?'

'विश्वनाथ के दरबार में कष्ट क्या है रे पगली !'

'सुख-दुःख में इस अबाध्य बेटी को तो खबर मिलेगी न ?'

'भई, इसकी अभी बात नहीं दे सकता !'

'यह मैं जानती हूं ! यह जानना भी क्या बाकी है ?'

नवकुमार ने चरणों की धूल ली। पूछा, 'रवानगी कब है ?'

'यही अगली अष्टमी के दिन नाव खुलेगी !'

'नाव !' नवकुमार ने साहस बटोरकर कहा, 'अब तो रेल चलती है···'

'चलती है ! नाव भी तो चली आ रही।' रामकाली हंसे—'उसकी चलने की शक्ति तो खत्म नही हुई है !'

'उससे एक ही दिन में पहुंच जाते !' सत्य ने आगे आकर कहा।

रामकाली मुसकराए—'ऐसी जल्दी भी क्या है ! किसी मरते रोगी को देखने तो जा नही रहा हूं ! तीरथ का रास्ता ही तीरथ है ! रास्ते को आंख मूंदकर तय करने से क्या लाभ ? यह तो एकबारगी गंगा मैया की गोद में चढूंगा और गोदी पर चला जाऊंगा !'

'वहा का पता ?'

'पता ? पता क्या यही से ठीक करके जा रहा हूं ?'

'तो जाकर पहुंच के साथ पता भेज दीजिएगा ?'

'देख, यह सब वादा करा लेने की चालाकी है !'

'हो होगी तो ! जैसा नाम रखा है आपने !'

जाने के समय बनियान की जेब से दो मुड़े कागज निकालकर बोले, 'लो, ये दो चीजें रख लो।'

'क्या है यह ?' सत्य ने हाथ नही फैलाया। चौंककर ताका।

रामकाली बोले, 'एक तो तुम्हारा जनम-टिप्पण है, मेरे ही पास था···'

'मैं इसे लेकर क्या करूंगी बाबूजी ?'

'रख लो ! रहना अच्छा है। और यह···' रामकाली जरा रुके—'गांव की जगह-जायदाद जो है, वह घर के लड़कों के लिए ही रही। त्रिवेणी में कुछ लाखराज जमीन है, वह तुम्हारे नाम···'

'नहीं, नहीं बाबूजी, वह मुझे नहीं चाहिए ! मैं आपकी लड़की हूं···मुझे स्नेह का ही अधिकार है···'

'तो इतने-से को उस स्नेह का ही चिह्न समझ लो !'

'बापरे, चिह्न से आपके स्नेह को समझूंगी ? नहीं, नहीं, नहीं चाहिए मुझे !'

सत्य ने हाथ भी नहीं फैलाया, आंखों से आंचल भी नहीं हटाया। इतना रोना जन्म में शायद कभी भी नहीं रोयीं वह। मां के मरने पर भी नहीं।

रामकाली ने मुंह फेरकर अपने को सम्हाला। उसके बाद नवकुमार की ओर वह कागज बढ़ाकर बोले, 'लो रखो!'

सत्य के इस अती से नवकुमार कुछ चंचल हो रहा था।

सोच रहा था, लड़का नही है। लड़की का तो सब-कुछ पर हक है। महारानी विक्टोरिया ने तो सल्तनत पायी थी। उतना कुछ नही, मुट्ठीभर भीख, देवी जी वह भी नही ले रही हैं। और, नवकुमार को हाथ फैलाने मे देर नही लगी।

रामकाली पालकी पर सवार हुए।

बहरहाल पालकी पर ही सवार हुए। कलकत्ता के कुछ देवस्थलों के दर्शन करेंगे, फिर नाव पर सवार होगे। रेल उन्हे पसंद नहीं। कहते हैं, वैसी जल्दी न हो तो क्या जरूरत है?

जब तक नजर आती रही, सत्य दरवाजे पर खड़ी पालकी को देखती रही। उसके बाद अंदर आकर बैठ पडी। बड़ी देर के बाद आखें पोंछकर निःश्वास छोड़ती हुई बोली—'निरी निरुपाय नहीं होती, तो मैं बाबूजी के साथ चली जाती!'

नवकुमार ने कहा, 'निरुपाय क्या! कुछ दिन सुहास चला लेती, तुम जा सकती थी। जब तक वे काशी नही जाते, रह लेती! बोली तो नहीं?'

सत्य ने लज्जा और क्षोभ मिला और एक निःश्वास छोड़कर कहा—'गिरस्ती चलाने की नहीं, और बात! मुझे अपने शरीर की हालत ही अच्छी नहीं लग रही! पता नही, बुढ़ापे में नसीब मे और कौन-सा ग्रह है!'

नवकुमार सत्य के लाज-क्षोभ से विपन्न मुह की ओर कुछ देर तक देखता रहा, बात को हृदयंगम करने में उसे कुछ समय लगा। उसके बाद अचानक एक अप्रत्याशित पुलक से रोमांचित हो उठा वह।

ओः, भगवान्!

तो अब सत्य के पैरो जरा बेड़ी पड़ेगी! नवकुमार को बेड़ी पड़ने की बात ही सबसे पहले याद आयी। हठात् सत्य का एक हाथ दबाकर बोल उठा, 'सच?'

धीरे से हाथ छुड़ाकर सत्य ने कहा, 'खुशी के मारे नाच उठने का कुछ नहीं है!'

भरी दोपहरी।

नाव बीच गंगा में थी।

डाड़ खेने की लगातार आवाज़ के सिवाय दूसरी कोई आवाज़ नहीं। रह-रहकर मल्लाहों की एक दुर्बोध हुंकार सन्नाटे को जैसे चौंका-चौंका देती थी।

नाव के आस-पास डाड़ों के धक्के से टूटते हुए पानी का वृत्त, दूर में लहरखिले पानी के रेशम से चीकने बदन पर हवा का कंपन।

लहराते घी-रंग की उस रेशमी ओढ़नी में हीरे की कनी-सी धूप की चमक।

उस समारोह की ओर देखते हुए रामकाली स्तब्ध बैठे थे। भरी दोपहरी में गंगा का स्थिर पानी, नाव की गति मंथर, इसलिए भीतर कोई आलोड़न नहीं।

लेकिन मन के भीतर ?

जो मन देह के उस स्तब्ध किले में सदा समाहित रहा है ?

न, आलोड़न नहीं, सिर्फ जैसे सदा के समाहित मन को आज रामकाली ने जरा आजादी दे दी है। मनमाना घूमने-फिरने के लिए छोड़ दिया है।

अडसठ साल के अरसे मे जिस लंबे प्रांतर को वे पारकर आए, उसके इस छोर से उस छोर तक हठात् छुटकारा पानेवाला वह मन चक्कर काटने लगा।

इससे पहले और कभी इस तरह से उन्होंने स्मृतियों का रोमंथन नहीं *किया। आज कर रहे हैं। शायद हो कि अजानते ही कर रहे हैं।*

आज उन्होंने दुनियादारी से विदाई ली—उसकी ओर पीठ कर दी। लेकिन विदाई से पहले कितनी व्यवस्था, कितना हिसाब-किताब, कितना निदेश!

गांव में संस्कृत पाठशाला खोली है, जिन कई गरीब छात्रों के भरण-पोषण का भार लिया है, एक कविराज रखकर जिस दातव्य औषधालय की स्थापना की है, गर्मी के दिनों के लिए जो पाठशाला खोली है—ये सब बंद न हो जाएं, इसके लिए करहीन ज़मीन लिख देनी पड़ी। जिन कुछ पंडितों को वृत्ति मिलती आ रही थी, उनकी वृत्ति बरकरार रखने के लिए भी ज़मीन देनी पड़ी। इसके सिवा गाव के कन्यादायग्रस्त गरीब पिताओं के, अबीरा, बेसहारा विधवाओं के, रोगी और लाचार पुरुषों के, अथवा मा-बापहीन अनाथ शिशुओं के एक प्रकार से आश्रय ही थे रामकाली।

दूर-दूर के लोगों ने भी आकर उनके आगे हाथ फैलाया है। ऐसे लोग बिलकुल वंचित न कर दिए जाएं, बिलकुल दुरदुरा न दिए जाएं, इसके लिए भी एक तालुका देकर रासू को निर्देश दे दिया है।

रासू यदि यह नियम चालू न रखे, तालुका की आमदनी को हड़प जाए तो कोई उपाय नही। क्योंकि यह अनियमित काम है।

फिर भी रासू को ही यह जिम्मेदारी देनी पड़ी। उसके सिवाय आदमी और कौन बना? नेड़ू का तो पता ही न चला। अपना पता न बताकर कब-कब तो दो-एक चिट्ठियां लिखी थीं उसने। उसी से यह जाना गया कि वह मरा नहीं है, ज़िंदा है। रासू के दूसरे भाई तो वैसे ही निकले। संझले चाचा के दोनों बेटे कुके सरदार! रासू का बड़ा लड़का बाबुओं का शिरोमणि हो रहा है। शारदा के ही दोष से हो रहा है।

पति से होड़-सी करती हुई शारदा मानो उसे बाबू बनाने पर तुल गयी है। हर बात में कहती है, उससे नहीं होगा।

वही एक स्त्री! अजीब उलट-पुलट है!

निश्वास छोड़कर रामकाली ने सोचा, क्या उसके बनाने वाले ने कुछ उल्टी-पुल्टी चीज़ों से ही उसे बनाया था। या कि उसकी ज़िंदगी उलटी धारा में पड़ गयी इसलिए।

रामकाली कुछ समझ नही सके।

कभी उसकी भयंकर कर्मनिष्ठा, असाधारण कुशलता, अगाध सहिष्णुता देखकर ताक लग जाता है और कभी उसकी आश्चर्यजनक निर्लिप्तता, आंखों को खलने वाली उदासीनता देखकर दंग रह जाना पड़ता है।

दुर्गापूजा का सारा भार शारदा अपने कंधे पर उठा लेने में नहीं हिचकती, और वह भार उसे देकर रामकाली निश्चित भी होते हैं। लेकिन इस बार उसने शांत भाव से हठात् यह घोषणा कर दी कि चाचाजी जिसमें यह भार किसी और को दें!

क्यों?

क्यों की क्या बात!

घर में और भी तो लोग हैं!

गाव की कई वयस्क ब्राह्मण-कन्याओं को बुलाकर रामकाली ने कहा था, 'बहू की तबीयत ठीक नही है, इसलिए यदि आप लोग···'

वे लोग आयी थी। पूजा सम्हाल भी दी थी।

लेकिन ज्यादा जोगी मठ उजाड़।

पूजा पर बैठकर पुरोहित ने जरूरत की चीजें हाथ के पास नही पायीं। गुस्से से जल-भुन उठे।

फिर भी रामकाली शारदा पर बिगड़ नही पाते। उसकी उपेक्षा नही कर पाते।-महसूस करते कि शारदा में वस्तु थी, किन्तु भाग्य की प्रतिकूलता से वह टूक-टूक हो गयी।

भाग्य की प्रतिकूलता से ?

यहीं कहीं खोंच-सी है। रामकाली ने बहुत बार सोचा, भाग्य के सिवाय और क्या ? मनुष्य तो निमित्त मात्र है, लेकिन इस विश्वास पर अडिग नहीं रह सके।

खैर ! फिर भी यथासाध्य सबकी सुव्यवस्था कर आए हैं रामकाली। अब जिसका जैसा नसीब ! तथापि बहुत सारे चेहरे मानो हताश आंखो से उनकी ओर ताक रहे है। जैसे कह रहे हों—'हमें छोड़कर चल दिए ? सच !···कहां, कभी तो नही बताया कि जाओगे ? हम लोग तो बड़े निश्चित थे।'

इन चेहरों में शारदा का चेहरा बड़ा साफ है, उसकी आंखें ऩ्दी पैनी है। उन आखों मे हताशा नही, जैसे आरोप ही।

लेकिन बहुत बरस पहले जब रामकाली ने और एक बार घर-बार छोड़ा था ?

उस समय पीछे की ओर कभी ताका भी था ? नहीं ! वह जाना कितना हलका था, कैसा बंधनहीन था मन !

वैराग्य का कारण बेशक बड़ा मोटा था—उस वैराग्य का उदय हुआ था बाप के खड़ाऊं से। क्रोध, दु.ख, अपमान, क्षोभ—कुल मिलाकर एक तीव्र अनुभूति ने मानो ठेल कर उस किशोर बालक को घर से निकाल दिया था, जिसे मानो रामकाली अपनी निगाहों के सामने देख रहे हैं।

लड़का नाव के अंदर घुसकर दिनभर बैठा रहा। किसी ने वैसा ख्याल नहीं किया। समय पर नाव खोल दी। लड़का दुबका रहा।

बड़ी देर के बाद पकडाया।

तब तक नाव काफी दूर जा चुकी थी।

रामकाली देख रहे है, मल्लाह उस लड़के से जिरह कर रहे है। और वह लड़का मज़े मे जवाब दे रहा है—'मेरे कही कोई नहीं है। ग़रीब ब्राह्मण हूं, किराया-विराया मैं नही दे सकूगा। नाव जहा तक जाएगी, वहा तक यदि आप लोग दया करके मुझे पहुंचा दें···!'

ममतावश ही हो या उसका देवता जैसा रूप देखकर ही हो—वे लोग उसे मकसुदाबाद तक ले गए थे।

वहां उसे गोविंद गुप्त का आश्रय मिल गया।

ईश्वर का प्रत्यक्ष आशीर्वाद ही मानो।

उस किशोर बालक को लगा, दुनिया इतनी बडी है ? ईश्वर इतने दयालु हैं ! या कि यही भगवान है ! पुराण-उपपुराणो की कहानियो की तरह रूप बदलकर रामकाली पर कृपा करने आए है।

वह लड़का गगा के घाट पर ही बैठा था।

कविराज जी नहाने आए थे।

ठिठककर खड़े हो गए— तुम्हें पहचान तो नहीं रहा हूं—किनके लड़के हो बेटे ?

अब सोचकर हंसी आती है, रामकाली ने बेधड़के कहा था, 'कोई होऊं, आपको जरूरत ?'

'जरूरत तो कुछ है !' गोविंद गुप्त हंसकर बोले—'किनके लड़के हो, अकेले क्यों घूमते फिर रहे हो, तुम्हारा चाल-चलन कैसा है, यह सब जाने बिना कैसे चलेगा ?'

'नहीं चलेगा ?'

'नहीं ! दूसरे गांव के लड़के का क्या एतबार ?'

बाद में रामकाली ने समझा, वह एक चालाकी थी। गुस्सा दिलाकर परिचय जान लेने का मनसूबा। लेकिन उस समय उस लड़के को यह समझने की जुर्रत नहीं थी। इसीलिए उसने बिगड़कर कह दिया था—'एतबार करने को कौन आपके पांवों पड़ रहा है ? मेरा मन, मैं बैठा हूं ! घाट क्या आपका खरीदा हुआ है ?'

देखने में सुन्दर उस प्रौढ़ आदमी ने उस लड़के की बात से कौतुक अनुभव किया था, इसमें संदेह नहीं। और, जानकर ही लुत्फ लेने के लिए कुछ देर तक उससे वाद-वितंडा किया था।

उसके बाद पता नहीं कैसे सुलह हो गयी ? और, कैसे तो उसे वहां आश्रय मिल गया।

सिर्फ आश्रय ही ?

निपूते दंपत्ति के हृदय उजाड़कर प्यार का अधिकारी नहीं बन गया था वह वाचाल लड़का ?

धीरे-धीरे उसकी वह वाचालता जाती रही। वह स्थिर, शांत और मेधावी छात्र बन गया। फिर मात्र स्नेह का ही नहीं, उनके सर्वस्व का अधिकारी हो गया।

अजीब है ! इतने पर भी कभी एक दिन भी कविराज पत्नी ने उसे अपने हाथ से पकाकर नहीं खिलाया। किसी ब्राह्मण के यहां उसके खाने-पीने का इंतजाम कर दिया था।

सारे दृश्य आंखों के सामने झलमला उठे।

रामकाली ने लाड़ से जिद की—'मैं तो आपकी ही जात का हो गया हूं !' लेकिन कविराज-पत्नी ने होठों पर हंसी और आंखों में पानी भरकर कहा, 'पागल कहीं का, ऐसा भी होता है !'

'आपके भी तो जनेऊ है…'

गोविंद गुप्त हंसे थे, 'बेशक है ! मगर बात क्या है, जानते हो ? जात तो सबके होती है ! गेंहुअन और ढोढ़ा साप जैसे एक नहीं, उसी तरह तुम्हारा और मेरा जनेऊ एक नही है ! तुम्हें तो दत्तक ले लेने को जी चाहता है, लेकिन नहीं लेता हूं ! कब क्या अपराध बन पड़े, क्या पता !'

स्नेह के साथ श्रद्धा का अजूबा सम्मिश्रण।

रामकाली ने पहले बताया था, मेरे कोई नहीं है।

उसके बाद धीरे-धीरे सब भेद खुल गया था।

गोविंद गुप्त कहते, 'देख, तेरे मां-बाप को खबर नहीं देना मेरे लिए महापाप हो रहा है, तू मना मत कर ! मैं किसी तरह से खबर दे देता हूं !'

रामकाली कहते, 'क्यों ? अब मैं आप की आंखों का कांटा बन रहा हूं ? ठीक है, आप पुण्य लूटने को खबर दीजिए, देखिएगा, चिड़िया फ़ुर्र हो चुकी है !'

कविराज-पत्नी सिहर उठतीं। कहतीं—'अरे बाबा, पाप-पाप करके तुम्ही इतने उतावले क्यों हो रहे हो ? मां-बाप उसका है, वह अपना समझे ! लड़के का मन अगर मा के लिए न रोए, तो समझो मां के जी में कहीं कमी है !'

'मां के जी में भी कभी कमी होती है ?'

रामकाली उखड़ उठता—'है कमी ! खूब है ! वह मुझे फूटी आंखों भी नही देख सकती ! नही तो, फुआ जब डांटती-फटकारती, तब वह जान-जानकर और भी उभाड़ती उसे ?'

'वह शायद ननद के डर से डरती होगी !'

'हुं: ! बड़ा तो डर ! माया से डर ही बड़ा है ?'

पीछे रामकाली ने बहुत बार सोचा, 'सच तो, मा के लिए तो ज़रा भी जी कैसा नही करता था, बल्कि कविराज-पत्नी जब बीमार होतीं और अंत तक जब चल ही बसी, छिप-छिपकर रोते-रोते बुरा हाल हो गया था उसका।

ऐसा क्यों हुआ था ?

रामकाली निर्दयी थे ?

या कि उसके मां-बाप ही स्नेहहीन थे ?

बाप के बारे में तुरत हां कर देने पर भी मां के बारे मे कहने में कुछ खलता था। विवेक को ही खलता था शायद।

लेकिन जीवन के अतिम छोर पर आकर जब जीवन को छोड़कर आयी गंगा की तरह ही पूरा और साफ देख पा रहे है, तो उन्होंने उसास लेकर सोचा, प्यार जीवन मे वही एक बार ही पाया था।

उसी प्रौढ़ दंपत्ति से।

अपने जीवन में रामकाली ने बहुत पाया—श्रद्धा, सम्मान, भय, भक्ति ! प्यार नही पाया ! सबने उन्हें दूर ही रखा, दूर से ही प्रणाम किया।

रामकाली का अपना ही दोष !

दूरी का यह दायरा उन्होंने खुद ही बनाया। जानकर नहीं, स्वभाव से।

कभी सोच भी सके वे कि गांव के किसी काम-काज मे ब्राह्मण-भोज की पांत में पत्तल लिए बैठे है ? सोच सके कि वे कही दान ले रहे है ? किसी के चंडीमडप में बैठकर गप-शप कर रहे है ? ताश-पासा खेल रहे हैं ?

सोचने से हंसी क्या आएगी, सोच ही नही सके। गो कि गांव के बहुतेरे कुलीन ऐसे ही साधारण की भूमिका में जिंदगी बिता रहे है।

तो, कुलीनता का वास्तविक वास कहां है ?

संसार को छोडकर जाते समय आज अचानक उन्हे लग रहा है, मैंने सारा जीवन विजयी की भूमिका मे बिताया, लेकिन वास्तव मे विजयी हो भी सका ?

तो फिर ऐसा क्यों लग रहा है कि जीवन में बहुत बड़ी एक क्षति को खीच लाए है वे ?

कौन-सी क्षति ? कहां हार हुई ?

क्षति को सोचते हुए एक अप्रासंगिक वात याद आयी। अप्रासगिक न भी हो शायद।

सत्य ने वडे दुःख के साथ कहा था, 'यही दुःख रह गया बाबूजी कि कभी तुम्हें भात पकाकर खिला नही सकी !'

अच्छा, कितना नुकसान होता उन्हे, यदि सत्य के इस खेद को नहीं रहने देते ? नियम का मामूली से मामूली नुकसान ही क्या बहुत बड़ा नुकसान होता ?

अपने जीवन मे रामकाली जिस वस्तु को परम मूल्य देते हुए आए है, मूल्य की क्या वही अतिम वात है ?

यदि यही हो, तो भुवनेश्वरी अजीब एक विजयिनी की हंसी हंसती हुई आखो के आगे बार-बार क्यो आ खडी होती है ?

क्यों कहती है वह कि जीवन में तो बहुत पाया, पाने के गर्व से दुनिया की तरफ नजर उठाकर नही देखा, लेकिन तुम्हारा असली घर ही तो खाली पड़ा रहा, इसका लेखा कभी लगाया है ? सदा कर्त्तव्य ही करते आए, कभी किसी को प्यार भी कर सके ?

रामकाली अपने मन में डूब गए।

प्यार ? किसके लिए संचित रहा ?

सत्य के सिवा और कोई मुखड़ा आखो मे नही आया।

और तो मानो सब जीवो के प्रति करुणा !

हृदय के निर्जन में सत्य बहुत-सी जगह दखल किए हुए है। लेकिन सत्य को यह कभी जानने भी दिया है उन्होंने ? जताना कमजोरी है—यह सोचकर

उस पर बालू नहीं डालते आए ?

एकाएक वे 'दुर्गा-दुर्गा' कर उठे। आज़ादी दिए हुए मन को मानो बांध दिया। बोले, 'क्यों जी, मुंगेर कब तक पहुंचेंगे ?'

माझी ने कहा, 'आ ही पहुंचे मालिक !'

'ठीक है ! कष्टहरणी घाट में नाव लगाना !'

४०

साधन, सरल ने फुआ को जो वचन दिया था, उसे तोड़ा नहीं, पर सब-कुछ खुल गया। सौदा की दीनता और उसके भतीजों का झूठ जाहिर हो गया।

कच्चा-पक्का बाल, नाटे कद के मज़बूत-से जिस भले आदमी का डेरा ढूंढ-ढूढकर वे उस रोज़ फुआ की चिट्ठी दे आए थे, वे भले आदमी अगले इतवार को ही इन लोगों के यहां हाज़िर हो गए।

इस संभावना की बात सपने में भी नहीं आयी थी उनके मन में। डरे हुए, भागने को तत्पर इन दोनों लड़कों को लगभग ज़बर्दस्ती रोककर उन सज्जन ने उस दिन इनका नाम क्या है, घर कहां है, कलकत्ता में कहां रहते हैं आदि बातें जान ली थी—लेकिन इन दोनों भाइयों ने इसे महज़ कौतुक ही समझा था। खाक भी नहीं ख्याल किया था कि दो दिन जाते न जाते ही ये भले आदमी घर पर धावा बोल देंगे।

बिना मेघ के वज्रपात !

मारे डर के उनके तो होश उड़ गए।

दोनों भाइयों ने भयभीत हो एक-दूसरे का मुंह ताका, फिर सरल ने चुपचाप दोनों हथेली उलटकर एक ऐसा लापरवाह इशारा किया, जिसका मतलब होता है—'इसमें हमारा क्या कसूर है ? हमने तो इन्हें आने को नहीं कहा है ! फुआ ने मना कर दिया था, जभी तो···'

'लेकिन···'

यह भी आंखों के इशारे से ही बोला गया—'लेकिन हमने झूठ कहा है ! स्कूल से लौटने में देर हुई ! मां ने पूछा, तो हमने कह दिया—'स्कूल में आज मैच था !'

इतना सारा भावों का आदान-प्रदान पल में ही हुआ। क्योंकि इसी बीच वे सज्जन चौकठ पार करके आंगन में जा खड़े हुए और फिर बोल उठे, 'लड़के घर में नहीं हैं क्या ?' और, सत्यवती घूंघट को ज़रा खींचकर रसोई से निकली। कहा—'तुड़ू, देख तो, कौन है ? पूछ उनसे कि किन्हें ढूंढ रहे है ?'

तुड़् को तकलीफ़ करके पूछना नही पड़ा। जिनके कानों पहुंचना था, मज़े में पहुंच गया। और वे हंसते हुए आगे बढ़ आए। बोले, 'जी मैं हूं! आप मेरी सलहज होती है!'

सत्यवती तो सुनकर हां हो गयी।

अभी-अभी नवकुमार बाज़ार गया और अभी ही यह झमेला! क्या पता कौन है यह? कोई बदमाश है कि डेरा भूलकर'''सत्यवती ने वही कहा, बच्चों को मात्र माध्यम बनाकर—'तुड़्, उनसे कह, आपने शायद डेरा चीह्नने में गलती की है'''

'डेरा चीह्नने मे गलती!'

भले आदमी हंस पड़े—'मुकुद मुखर्जी नन्हा नादान नही कि बिना ठीक-ठीक खोज-पूछ किए किसी के घर के अंदर दाखिल हो जाए! मुहल्ले के लोगों से ठोक-पीटकर जान लिया है, तब आया हूं! मैं पूछता हूं, आप बारुईपुर के नीलाबर बनर्जी की पतोहू नही है? करिए इनकार!'

अपनी रसिकता से वह आप ही हें-हें हंसने लगे।

उसकी भाषा और भगिमा ऐसी ही अमार्जित थी कि गुस्से से सत्यवती की एडी-चोटी सुलग गयी। यह जरूर कोई बदमाश है, कही से नाम और परिचय का पता लगाकर डराने आया है।

आए! यह सत्यवती को नही पहचानता!

सख्त और खीझभरे स्वर मे सत्यवती ने कहा, 'अड़ोस-पड़ोस के लोगों से पूछकर किसी का अता-पता जानना कोई कठिन काम नही है। हम लोग इस नाम के किसी को नही जानते, ये जा सकते है!'

लेकिन मुकुंद मुखर्जी इतनी आसानी से अपमानित नही होते। मुसकुराहट बनाए रखकर ही बोले—'नही जानती हैं, यह बात सही है! जानने का मौका ही कहा मिला? आपकी ननदजी तो मुझे त्यागकर निश्चित है। लेकिन इतने दिनो के बाद बिसरे राजा की याद कैसे की गयी, यही पूछने के लिए तो आया हू। अरे मुन्ने, तुम लोग तो बिलकुल मुह सीकर बैठ गए? उस दिन उतनी बातचीत हुई, तुम लोगों ने चिट्ठी पहुंचाई और आज जैसे पहचानते ही नही हो! अपनी मा से बताया नही है, क्यों? जभी वह शुबहा कर रही हैं, कोई गुडा, बदमाश है!'

सत्यवती बेशक अब तक यही सोच रही थी, लेकिन भले मानस की अंतिम बात से वह अथाह समंदर मे गिर पड़ी।

यह सब क्या कह रहा है!

खाक भी तो समझ नही पा रही है वह। अपने लड़कों की तरफ़ ताककर देखा। उस चेहरे पर अपराधी की साफ़ छाप थी। क्या माजरा है?

यह आदमी बारुईपुर का कोई है ?

तुड़ू और मुन्ना जब वहां गए थे, देखा होगा। अब पहचान नहीं पा रहे हैं। लेकिन चिट्ठी कैसी ? राम जानें ! एक तो यों ही ससुराल में जांबाज बहू के नाम से सत्य की बदनामी है, वह बदनामी कुछ और बढ़ी। दोनों लड़के जिस ढंग से मुंह सुखाए खड़े हैं, उससे निस्संदेह है कि कुछ हुआ है।

लेकिन सत्य फिर भी मुह से नहीं हारी। दृढ़ होते हुए भी कुछ नर्म सुर मे बोली, 'मुन्ने, कह दे कि अभी घर पर मर्दसूरत कोई नहीं है, आप जरा घूमकर आइए ! जो कहना है, उन्ही से कहिएगा !'

मुकुंद मुखर्जी अब जरा गंभीर हुए। बोले, 'जी, कहना मुझे कुछ नही था। हा, आपकी ननद सौदामिनी देवीजी ने अपने छोड़े हुए पति को अचानक एक चिट्ठी क्यों भेजी, यही पूछने के लिए····'

'ननदजी ने आपको चिट्ठी दी है ? आपको ? यानी आप····'

'खैर ! अब आपने पहचाना ! हाय राम, कहा यह सोचकर आया था कि साले के यहां जाकर जरा जमाई की खातिरदारी मिलेगी, सो नही····'

'लेकिन ननदजी ने चिट्ठी लिखी है !' सत्य ने आरक्त चेहरे से कहा—'मुझे यकीन नही आता ! असंभव है !'

मुकुद बाबू ने इस बात का और ही अर्थ लिया। बोले, 'अहा, अपने हाथ से क्या लिखा है, जरूर किसी को पकड़कर लिखवाया है ! आपके ये लड़के ही तो परसों मुझे दे आए है !'

'मेरे लड़के ! परसों !'

सत्यवती भी चकरायी।

चकराकर बोली, 'तुड़ू ! मुन्ने !'

तुड़ू और मुन्ने का सिर गड़ा हुआ। उसपर अपराध की कालिमा।

सत्य ने मानो कुछ बेबसी महसूस की। और शायद यही पहली बार उसने नवकुमार की गैरमौजूदगी मे कातरता का अनुभव किया। मुकुद की नजरों में सत्य का यह विचलित चेहरा सहज ही आ गया और उसे माजरा समझने मे देर नहीं लगी। लड़को को समझा-बुझाकर सौदामिनी ने चिट्ठी चुपचाप ही भेजी है। यह पहले समझा होता तो मुकुद और ही तरह अपने को हाजिर करते। दोनों लड़के सकपकाए जा रहे हैं। सकपकाएंगे ही। माताजी खूंखार है, यह तो साफ ही समझ में आ रहा है। बाप रे, जैसे पुलिस की डांट हो !

लेकिन मुकुद भी पुलिस के बाप हैं।

वे सब तरह से लैस होकर ही आए हैं। खत को साथ लाया है। परन्तु भले आदमी की धारणा मे थोड़ी-सी भूल थी। सोचा था, हो न हो, सौदामिनी अपने भाई के डेरे पर कलकत्ता आयी है और भतीजों को यह छिपाने को

सिखा दिया है। नही तो सात जनम में उसने कभी कोई संवाद नही भेजा, वह ऐसे अचानक···खैर ! धारणा गलत है यह तो समझ ही रहे हैं। सौदामिनी यहा नही है।

तो ? यों अचानक···

खैर ! मुकुंद बाबू ने अपनी फतुही की जेब से सौदामिनी के उस गोपनतम दुर्बलता के इतिहास को निकालकर बरामदे पर रख दिया। और देखते ही सत्य पहचान गयी कि लिखावट उसीके बड़े बेटे की है। यानी सौदामिनी ने खत तुड़ू से ही लिखाया है।

सारी बातों को आईने की तरह साफ हो जाने में देर नही लगी। दिन की रोशनी जैसी स्पष्ट हो गयी। केवल उसके अपने बेटों का यह दुर्बोध्य आचरण अंधेरे मे रह गया। सत्यवती को भिनक भी न होने देकर इतनी करतूत करने की हिम्मत उन्हें कैसे हुई ?

पड़ी हुई चिट्ठी पर एक नजर डालते ही उसका विषय समझ में आ गया, क्योंकि अक्षर का ढांचा और उसकी हर लकीर, हर घुमाव तो सत्यवती को मुखस्थ है।

नहीं, प्रेम-पत्र नही है। भतीजे से लिखाने में कोई दोष नही। सौदामिनी ने लिखा है—

परम पूजनीय,

चरणों में कोटिश: प्रणाम ! बहुत दिनो से आपके कुशलादि से वंचित हूं। आपने भी कभी इस गरीबिन की सुध नही ली कि वह जिंदा है या मर गयी। मेरी छोड़िए, आपके कुशल की कामना होती है। मेरा भाई नवकुमार वही कलकत्ता में मकान लेकर रहता है, उससे मुलाकात हो तो जान सकती हूं। ये लड़के मेरे भाई नवकुमार के हैं—साधनकुमार और सरलकुमार। चिट्ठी लिखने की ढिठाई को माफ कीजिए।

ज्यादा क्या लिखू। हर दिन भगवान से आपके कुशल की कामना करती हूं।

आपके चरणों की दासी
सौदामिनी

सत्य को जैसे काठ मार गया। यह सौदामिनी कौन सौदामिनी है ? वही सौदा-दीदी ? सौदा-दीदी हर दिन उस आदमी के कुशल की प्रार्थना करती है ? इस नाटे-मोटे कद के अधबूढे आदमी के कुशल की !

यह भी संभव है ?

सौदामिनी विधवा नही है—खाने के लिए बैठते वक्त इतना ही पता

चलता था। मामी के साथ, भाई की स्त्री के साथ वह खाने बैठती, तो मछली लिया करती थी। बस, इतना ही।

इसके अलावा और कभी पता नहीं चलता था कि सौदा के स्वामी है! अजीब है! आदमी कैसा अनोखा जीव है! सिर्फ याद ही नही रखती, पति के कुशल के लिए उतावली होती है! इतनी कि मान-मर्यादा को जलांजलि देकर 'चरणों की दासी' लिखकर चिट्ठी भेजती है।

कैसी दीनता है यह!

कैसी दुर्बलता!

जब उमर थी, तब तो स्थिर रही, अब भाटा पड़े उमर में ऐसी अस्थिर हो पड़ी कि मान-अपमान भी ख्याल नही रहा!

सौदामिनी की इस गिरावट ने मानो सत्यवती के सिर को माटी पर लोटा दिया।

हां, गिरावट ही लग रही थी सत्यवती को। और जो उसे बहुत कम ही होता है, वही हुआ—दोनों आखें आसुओं से भर गयी।

फिर भी किसी तरह अपने को सम्हालकर उसने घूंघट को और जरा बढ़ा लिया। बड़ी ननद के पति के पैरों की धूल लेकर शांत स्वर में बोली, 'कुछ ख्याल मत कीजिएगा, जान-पहचान तो नही थी न! बरामदे पर आकर बैठिए। वे बाजार गए हैं, आ ही रहे होंगे।'

साले की स्त्री के व्यवहार से अब वे संतुष्ट हुए। 'हा-हा रहने दीजिए' कहकर सौजन्य दिखाते हुए गर्व के साथ जाकर बरामदे पर पड़ी चौकी पर जमकर बैठ गए।

सत्यवती की आंखों के इशारे से लड़कों ने भी अपने नये फूफाजी को प्रणाम किया और सरल आंखो के इशारे से ही चिलम चढ़ाकर ले आने गया। गरचे नवकुमार तंबाखू नही पीता, लेकिन अतिथि-अभ्यागतों के लिए सत्यवती ने घर में तंबाखू का रिवाज रखा है।

उनकी खातिरदारी तो करनी ही होगी!

पितृ ऋण, मातृ ऋण, देव ऋण, गुरु ऋण तो अलक्षित जगत का है और उन्हें चुकाना भी बात की बात है एक। असल में कुटुंब-ऋण जैसा ऋण नहीं। उसका चुकाना प्रत्यक्ष वास्तव है।

इस नियम का वह उल्लंघन नही कर सकती। सत्य अब वह सत्य नही रही, जिसने कभी अपवित्र मानकर ससुर की पूजा की व्यवस्था करने से इनकार किया था। यह सत्यवती अब बहुत व्यावहारिक बुद्धिवाली हो गयी है। आज की सत्यवती यह जानती है कि बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिन्हें मन से न मान सकने के बावजूद, बाहर से बहुत हद तक मान लेना पड़ता है। नही तो

असामाजिकता, अभद्रता का शिकार होना पड़ता है। जब दुनियादारी करने बैठी है, तो सामाजिकता का झमेला झेलना ही पड़ेगा।

इसीलिए एक निःश्वास छोड़कर वह रसोई में गयी। चूल्हे पर चढ़ी हुई हांडी को उतारकर रख दिया। उसके बाद बड़े लड़के को हाथ के इशारे से बुलाया, उसे रसगुल्ला ले आने के लिए पैसे दिए, और दरवाज़े पर आकर बैठ गयी। जहा से बिलकुल सीधे न सही, मुकुंद बाबू को देखा जा सके।

जब तक नवकुमार लौट नही आता, इस बंधन की पीड़ा उसे सहनी ही पड़ेगी।

हुक्के में दम लगाकर मुकुद बाबू ने भारी गले से पूछा, 'कलकत्ता के डेरे मे कितने दिनों से रहना हो रहा है?'

सत्य ने कहा, 'बहुत दिन हो गए! सात-आठ साल!'

'अरे! उस समय तो आप कच्ची युवती होगी! बूढ़े-बूढ़ी ने राय दी? या कि वे गुज़र गए?'

सत्य के जी मे आया, उनके सामने कमरे के दरवाज़े को बंद करके गुम् होकर बैठी रहे। लेकिन बंद नही किया। मुख्तसर में बोली, 'जी वे है! राय दिए बिना चल कैसे सकता था? बच्चो का पढना-लिखना...'

'हूं! सो तो है, अब पाठशाला की पढाई से काम नही चलता। कुल यही दो है! नन्हे-मुन्ने तो नही दिखायी दे रहे है!'

इस बात का जवाब क्या देती? सत्य चुप ही रही। 'और नही हुआ' यह कहते भी कही काटे-सा गड़ रहा था। वह अदृश्य कांटा धीरे-धीरे एक सूने अंधकार में शायद रूप ले रहा था।

मुकुद लेकिन नाछोड बंदा! फिर कहा, 'बाप के साथ गए है, क्यो?'

इस सवाल का जवाब सरल ने ही दे दिया, 'हम दो ही भाई है!'

मुकुंद ने न जाने इसमे अपना कौन-सा 'भला' आविष्कार किया—मुसकराते हुए बोले—'अच्छा है! जान बची! बला गयी! खुले हाथ-पांव! अब तीरथ करो, धरम करो, ज़ालिम बनकर घर-बार करो, कोई झमेला नही! बापरे, अपने घर के कच्चों-बच्चों को देखकर मेरा दिमाग कैसा हो जाता है! आदमी के बच्चे तो नही, जैसे बतख-मुर्गी के चूज़े!'

अब शायद सत्य खीजना भी भूल गयी। चमत्कृत होकर ही देखती रही। मर्द भी ऐसी बातें कर सकते है, इसका उसे पता नही था। हा अपने नैहर में बहुतो को देखा है, औरतानी मर्द भी देखा है—नीलाबर को देखा, नवकुमार—अपने आदर्श के अनुरूप पुरुष को उसने कही नही देखा। लेकिन यह!

गाव के गंवईपने में भी एक तरह की शोभन सभ्यता है, यह शहरी गंवई बहुत कुत्सित है।

लेकिन देखने से लगता है, कभी यह आदमी देखने मे अच्छा था। नाटा थोड़ा है, पर हरताल-सारंग, चेहरे की बनावट सुन्दर, कच्चा-पक्का होने पर भी बालों मे क्यारी है। और, अंग-अंग मे जतन का चिह्न है।

बतख-मुर्गी के चूजों की तरह बच्चों की भीड़ होने पर भी वह अपनी हिफाजत करा ही लेते हैं, इसमें शक नहीं। सौदा-दी की सौत की मन ही मन व्यंग्यभरी तारीफ ही की उसने।

कुछ देर चुपचाप।

मुकुंद हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं, सत्य उत्कंठित आंखों सदर दरवाजे की तरफ ताक रही है। बेचारा सरल मन ही मन काठ होकर उठे हुए वज्र के नीचे प्रतीक्षा करने वाले की तरह चुपचाप खड़ा है। इस आदमी के चले जाने के बाद उन दोनों का विचार होगा, इसमे क्या संदेह।

प्रतीक्षा की घड़ी लंबी होती है। सत्य को लगा, नवकुमार मानो कब का बाजार गया है। और तुड़ू भी कम देरी नही कर रहा है। हलवाई की दुकान पास ही तो है।

मुकुद ने ही चुप्पी तोड़ी। बोले, 'आपकी ननदजी ही मामा-मामी की सेवा कर रही है?' गले में मानो एक दबा हुआ असंतोष हो।

सत्य ने कहा, 'वही तो सदा से साथ है!'

'बेटा और बहू ने जब उड़ना सीख लिया है, तो रहना तो होगा ही! लेकिन अपने पति के घर के प्रति भी तो कोई कर्तव्य है! मेरे घर की लीजिए, एक आदमी के बिना गिरस्ती फूटी नाव-सी हो रही है! मेरी दूसरी स्त्री जो है, वह तो जच्चाघर में ही घुसने में उस्ताद है—बच्चे बेचारों का बुरा हाल! ऐसे मे अगर बड़ी आकर रहे तो सब तरफ से अच्छा हो! और उसे भी...'

... लगता है, बहुत ही असह्य आश्चर्य से सत्य स्तब्ध हो गयी थी, इसीलिए उस आदमी को इतना बोलने का मौका दिया। मगर अब बोल उठी—'आपका तो अवश्य सब तरफ से अच्छा हो, बिना तनखा के रसोईदारिन-नौकरानी, घरनी—सब मिल जाए, पर उनका क्या उपकार होगा जरा सुनें?'

जरा देर के लिए मुकुद मुखर्जी सकपका गए, क्योंकि उन्हें निश्चय ही ऐसी कल्पना नही थी कि ऐसे तीखेपन का सामना करना पड़ेगा। लेकिन सम्हलते भी देर नही लगी। उसी सम्हले हुए भाव पर जरा हंसी का प्रलेप लगाकर बोले, 'अपने साले साहब का स्त्री-भाग्य तो देखता हू बड़ा अच्छा है! एक तो रूपसी, तिसपर विदुषी! नाटक-उपन्यास पढ़ने की आदत भी होगी? खैर, आपने जब पूछा, तो बताऊं, उपकार चाहे न हो, परकाल का काम तो होगा! मामा के यहां दासीगिरी करने से पति के यहा दासीगिरी करना कुछ अपमानजनक नही!'

सत्य उठ खड़ी हुई। स्वर को धीर करने की चेष्टा करके कहा—'स्त्रियों के लिए कौन-सा मान का है, कौन-सा अपमान का, यह जानते होते तो यह बात नहीं कह सकते आप।! हां, यह बात मुझे मालूम है कि ननदजी ने आपको नही छोड़ा है, आपने ही उन्हें छोड़ दिया है! अब आपको घर में नौकरानी की जरूरत आ पड़ी है, इसलिए उसके परकाल के लिए सिर खपाने आए है!'

सत्य ने जितने ही धीर भाव से कहने की चेष्टा क्यों न की हो, उत्तेजना से उसका चेहरा लाल हो उठा। यह उत्तेजना उसे सिर्फ आखों की लज्जा-हीनता वाले इस बर्बर के लिए ही नही थी, सौदा की बेशर्मी के लिए भी थी। इस बेहया को ये बातें कहने का मौका तो सौदा ने ही दिया।

मुकुंद बाबू इसके जवाब में क्या कहते या सत्य किस तरह से बात खत्म करती, क्या पता। बाप-बेटे के आ जाने से बाधा पड़ गयी। रसगुल्ला लिए साधन आया, उसके साथ ही नवकुमार भी आ पहुंचा। साधन ने रास्ते मे ही बाप को यह खबर बता दी थी। पिता के आ जाने से फिलहाल उसकी जान में जान आयी, मां के आमने-सामने आने में अब कुछ तो देर होगी।

नवकुमार गुरुजन और दुर्लभ कुटुंब का सम्मान करना जानता है। हड़बड़ाकर हाथ की चीजें नीचे रखकर उसने झुककर प्रणाम किया और मुसकराते हुए बोला, 'अहोभाग्य अपना! इतने दिनों के बाद यहा चरणो की धूल पड़ी! कब पधारे?'

सत्य इतने मे रसगुल्ले लेकर अन्दर चली गयी। मुकुद ने ऐसे उदात्त स्वर मे जवाब दिया कि सत्य भी अन्दर से सुन सके—'आए देर हुई! इतनी देर तक अवाक् बैठा तुम्हारी विदुषी पत्नी का लेक्चर सुन रहा था! लडकी कलकत्ता की ही है शायद! मेम से पढ़ी है?'

शर्म से नवकुमार का सिर झुक गया, मुंह तमतमा उठा। और सत्य पर असीम क्रोध से मानो उसकी वाक्-शक्ति जाती रही।

हिमाकत की क्या कोई हद नहीं? बोलना जानती है, इसलिए जिसे जो चाहे कहेगी? ऐसे बूढे ननदोई, तिसपर कभी की भेट नहीं, उससे तो बोलना ही न था, घूंघट काढ़कर कमरे मे चला जाना चाहिए था, सो नही, बैठी-बैठी उसे ऐसी बातें सुनाई कि उपहास का जूता नवकुमार को खाना पड़ा!

छि:-छि:!

लेकिन अब तो मन के गुस्से को मन मे ही पीना था। जूते को बहनोई का मजाक मानकर हें-हें हंसना था।

हंसते-हंसते ही नवकुमार और सत्य ने रसगुल्ले की रिकाबी और पानी का ग्लास उनके सामने रखा। बहनोई ने खुद ही रिकाबी उठाकर व्यंग्य हंसते हुए कहा, 'जूता मारकर गैया दान? फिर भी बुरा नही है! ब्राह्मण पूरिया

खाने के लिए मोची के घर भी जाता है…'

तब भी नवकुमार वही हें-हें हंसता रहा। बल्कि मात्रा कुछ बढ़ा ही दी।

उसके बाद सत्य बाहर नहीं निकली।

दोनों लड़के कमरे में चुपचाप पढ़ने बैठ गए।

मुकुंद देर तक नवकुमार से ही बात करते रहे।

सुहासिनी घर में नहीं थी। इतवार को सवेरे वह पड़ोस के एक बड़े आदमी के यहां लेस बुनना सीखने के लिए जाती है। बहू के बाल-बच्चा नहीं है, घर में नौकर-नौकरानिया बहुत है, पति इतवार को सबेरे ही ताश के अड्डे पर चला जाता है—सो इतवार के सबेरे तो समय रहता ही है, यों भी उसे बहुत समय है।

सुहासिनी स्कूल जाती थी, तो खिड़की से खुद ही बुलाकर बहू ने उससे जान-पहचान की थी।

सत्य ने रसोई करते-करते सोचा, इस कंवख्त के रहते में सुहास न ही आए, तो ठीक है। आएगी तो इसके सामने से ही आएगी। आदमी यह बड़े बुरे स्वभाव का है। देखने से सुहास पर हजार कैफियत पूछेगा।

क्यों जो आदमी ऐसा असभ्य होता है!

धीरे-धीरे सत्य दूसरी चिंता में चली गयी। असभ्य ही होता है केवल? बेहया भी? नहीं तो सौदा अभी भी इस आदमी को पति माने बैठी रहती! नवकुमार से सारा कुछ सुन चुकी है। जुल्मों से जल गयी थी बेचारी, उसके बाद उस सतानेवाले पति ने घर में सौत को लाकर रख दिया, यह भी मालूम है। तो? इतना होते हुए भी सौदामिनी सदा इन चरणों की दासी ही बनी रही! या यह नियम रक्षा का एक पाठ भर है?

हो सकता है, इधर मामी के दुखाए सामयिक भाव से किसी दिन धीरज छूट जाने से वह ऐसा कर बैठी है।

लड़कों से लिखाया और किसी से भी कहने को मना किया। इसके लिए भी सौदा पर उसे गुस्सा आया। फूफी होकर तुमने छिपाने-लुकाने की कला का श्रीगणेश कराया?

अब सत्य इन लड़कों को झिड़के कैसे?

फूफी भी तो गुरुजन है। उसे जब इन लोगों ने बात दी है। सत्य ने ही लड़कों को सिखाया है—सत्य ही मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा धर्म है।

लेकिन जितना ही सिखाओ, तुड़ू ठीक अपने बाप के ढर्रे पर जा रहा है। रीढ़ ही नहीं है। लेकिन नवकुमार में बक-झक करने की भी आदत है। इसमें वह नही है। नर्म है! भला है! लेकिन भला ही काम्य है? इस भला को छोड़कर जो होता है, सत्य वही चाहती है।

सरल कुछ और ही तरह का होगा।

किस तरह का ?

सत्यवती के मन में आदमी का जो सांचा है, उसके आस-पास तक पहुंचेगा वह ?

नहीं ! सत्य को वह उम्मीद नही है। लिखेगा-पढेगा, कमाएगा-कोडेगा, दस आदमी अच्छा कहेंगे। इससे ज्यादा नही। सत्य ने समझ लिया है। यदि इससे ज्यादा कुछ होता, तो आज तक वह चमक, वह दमक झलक पड़ती।

बल्कि सुहासिनी मे सत्य को वस्तु नज़र आती है, उसमें दीप्ति दीखती है। जिस सुहासिनी की किशोरावस्था एक भद्दी परिस्थिति में कटी है, जिसके जीवन की बुनियाद मे खोखलापन है।

शायद हो कि इसीलिए।

अंधकार और प्रकाश का अंतर तीखा होकर उसकी पकड़ में आया है। इनमे वह तीखापन नही है। ये इसीलिए धुंधले-धुधले है। चौदह-पंद्रह साल की उम्र हो गयी, अब भी यह समझ मे नहीं आ रहा है कि वे अपने विषय में कुछ सोचते हैं या नहीं, सोचना सीखा भी है या नही। क्या भला है, क्या बुरा है, यह सोचते है या नही ?

अजीब है !

सत्यवती के मन मे जो सांचा है, उसके गर्भ का सांचा उसके करीब नहीं पहुचा !

भगवान जानें, इस लंबे अरसे के बाद सत्यवती की सत्ता में फिर कौन-सा सांचा तैयार हो रहा है ! शुरू-शुरू सत्य ने बड़ी मुसीबत महसूस की, यह घटना एक आफत-सी लगी उसे, धीरे-धीरे मन नर्म होता आ रहा है। ऐसा कि कभी-कभी सोचने को भी जी चाहता है, क्रम बदले तो बुरा नही ! एक लड़की हो तो अच्छा है !

आज एकाएक सत्यवती को लगा, यदि लड़की ही हो, तो कौन कह सकता है कि वह अपनी दादी की आकृति और प्रकृति लेकर आएगी कि नही !

शायद हो कि वैसा ही हो ?

सत्यवती की एकाग्र इच्छा की सतत तपस्या किसी काम नही आएगी। स्त्रियों की यह एक अजीब बेबसी है। अपने रक्त-मास, मन-बुद्धि से जिसे रच रहे हैं, पता नही वह क्या होगा ?

नि.श्वास फेंका। सोचा, सुना है, शास्त्र मे है नराणां मातुलक्रम: लेकिन मामा न हो तो ? मामा आखिर नाना का ही आत्मज तो है ! फिर ? नाना की बात शास्त्र में नहीं है।

बाहर वही फटा-सा गला बज उठा—'ओ भई घर की मालकिन, कहा

हैं ? इतना भाषण-वाषण सुनाकर कहां गायब हो गयी ? यह नाचीज अभी रुखसत होता है । बीच-बीच में आने की इजाजत तो है न ?'

सत्य बाहर निकली । झुककर नमस्कार करके बोली, 'बेशक !'

मुकुद उधर विदा हुआ और इधर नवकुमार सत्य पर टूट पड़ा—'तुम्हें हो क्या गया है ? मुखर्जी से तुमने क्या सब अंट-शंट कह दिया ?'

सत्य ने खीझकर कहा, 'अंट-शंट क्या कह दिया ?'

'अंट-शंट नही तो क्या ? वे कुछ मान न मान मैं तेरा मेहमान बनकर नहीं आए । दीदी ने खोज-पूछ की थी, इसीलिए···'

बीच ही में टोककर सत्य बोली, 'उसी शर्म से गले मे फंदा डालकर झूल जाने की इच्छा हो रही थी मेरी !'

'मतलब ?'

'मतलब खा-पीकर निश्चित हो करके सोचना ! अभी जाकर नहाओ !'

'रुको ! मैं पूछता हूं, दीदी ने गलती क्या की ? पति तो है ?'

'इसमे क्या शक है !'

'फिर ?' नवकुमार ने उत्साह के साथ कहा—'मुखर्जी बाबू ने जो कुछ कहा, उससे मैंने उनका दु.ख समझा । और जो भी हो, आदमी कपटी नही है । बोले, कभी मुझमें बहुत दोष थे, बुरी सोहबत में पड़कर नशा-भंग, कोई कुकर्म बाकी नही छोड़ा । सती-साध्वी की लानत-मलामत भी की । लेकिन आगे चल-कर होश हो गया ।'

सत्य ने निरीह स्वर मे कहा, 'होश हो गया !'

'जरूर ! अब तो बस तबाखू के सिवा कोई नशा नही । बेचारे ने कहा, कितनी बार जी मे आया, जाकर माफी माग लूं, मामा के पैरों पड़कर उसे लिवा लाऊं । लेकिन शर्म से वैसा नही कर पाया । पर अब जब तुम्हारी दीदी ने ही आगे बढ़कर वह शर्म तोड़ दी, तो···'

'ठीक तो है ! खुशी की बात ! दीदी को मंगवा लो और नए सिरे से गठबंधन करके भेज दो ! दोनो सौत मिलकर मज़े से गिरस्ती करें !' इतना कहकर ज़रा पैनी हंसी हंसती हुई सत्य वहा से खिसकने जा रही थी कि अचानक आफत आ गयी ।

नवकुमार ने बिना कुछ सोचे-समझे ही ज़रा देर पहले की सुनी एक बात ज्यों की त्यों दुहरा दी—'सौत का काटा अब ज्यादा दिन नहीं ! सुना, वह सूतिका की शिकार है ! तो ? वह काटा अब कै दिन ?'

पल में जैसे एक बम फूट गया । पागल की तरह सत्यवती ने अपने कपाल पर एक थपेड़ा मारकर चीखते हुए कहा, 'तुम चुप भी होगे ? दया करके

जरा चुप हो जाओ ! यदि वह न बने तो, जैसे भी हो, मुझे सदा के लिए बहरी बना दो !'

अकेली की गिरस्ती ! भूख नही लगने के कारण नहीं खाते-खाते भीतर ही भीतर कमज़ोर हुआ शरीर उत्तेजना का यह धक्का नही सम्हाल सका। वह धडमड़ाकर गिर पड़ी।

दोनों लड़के घबराकर पानी और पंखा के लिए दौड़े। नवकुमार अंदर से एक तकिया ले आया और सत्य के लुढके हुए सिर के नीचे लगाने लगा। और ठीक इसी समय उधर से सुहासिनी आकर काठ की मारी-सी खड़ी हो गयी।

सुहास आज बहुत उमगती आ रही थी, क्योंकि उसे सिलाई सिखाने वाली बहू ने कहा, 'भई, तुम्हे उज्र न हो तो मेरी मास्टरी करो ! बड़े आदमी के यहां केवल खाओ और सोओ से घिन हो गयी है ! तुम्हें देखकर लगता है, मैं भी तुम्हारी तरह किताब-विताब पढ़ पाती तो भी समय कटता। लेकिन स्कूल जाना तो अब इस जनम मे नसीब नहीं होगा—यदि तुमसे ही···'

हर महीने आठ रुपये भी देने को कहा। सुहास ने अवश्य रुपये पर आपत्ति की। कहा, 'रुपया किस लिए ? तुम मुझे एक विद्या सिखा रही हो, उसके बदले मैं तुम्हें···'

लेकिन उसने हाथ पकड़कर निहोरा-विनती की। बोली, 'मेरी खुशी के लिए रुपया खर्चने को मेरा पति सदा तैयार रहता है। एक दिन के नाटक में पचीस-तीस रुपए खर्च कर देता है। यह भी तो मेरी एक खुशी है ? गुरु को दक्षिणा दिए बिना विद्या नही आती !'

सुहास आखिर राजी हो गयी।

उमगती हुई सत्य से कहने आ रही थी—'देखो फुआ, हर पैसे वाला बुरा ही नही होता ! उनमे अच्छे भी होते है !' लेकिन यहा पहुंचते ही यह दृश्य !

सबको झट वहा से हटाकर सेवा का भार उसने ले लिया। और यही, उसने पहली बार वह खबर जानी। नवकुमार स्वगत ही कह उठा—'देखता हूं, शरीर में कोई जान नही है। बच्चा-कच्चा होने से पहले स्त्रियां मां-नानी के पास जाती हैं ! मगर यहा तो गुड़ में बालू ! देखता हूं, इसे बारुईपुर भेजना होगा !'

कुछ देर तक तो सुहास खोई-सी ताकती रही। उसके बाद अपने ऊपर धिक्कार से वह अवाक् हो गयी—'छिः-छि', इतनी बड़ी बुढिया छोरी हूं मैं और इतनी नासमझ ! एक घर मे हूं, एक साथ हूं और जरा भी पता नही ? तुड़ू और मुन्ना से मेरा फर्क ही क्या ! फुआ के शरीर का यह हाल है, यह तो मुझे ही पहले समझना चाहिए था। सेवा-जतन भी करना था···'

समझ नही सकी।

सत्य के दोनों लड़के इतने बड़े हो गए हैं कि ऐसी बात दिमाग़ में ही नही आयी। सो सिर्फ शर्म ही नहीं, आज सत्य के उस चेतनाहीन पाशु मुखड़े की ओर देखकर भय से भी सुहास का कलेजा कांप उठा।

सुहास के फूटे नसीब से यदि आश्रय की यह नाव भी डूब जाए ? सत्य को कुछ हो जाए तो ?

सुहास ने सुना है, बहुत दिनों के बाद बाल-बच्चा होने से मुसीबत हो सकती है ! कांपकर उसका कलेजा निढाल हो गया। और संभवतः यह पहली ही बार उसने महसूस किया, सत्य को वह कितना चाहती है ! आश्रय की नाव है, केवल इसीलिए नहीं, मनुष्य के नाते भी उसने उसे हृदय के आसन पर बिठा रखा है।

मां नहीं, नानी नही, इसलिए सत्य का सेवा-जतन नही होगा ? सुहास के क्या सेवा करने की उम्र नहीं हुई ?

४१

पछतावा-पीड़ित सुहास का संकल्प लेकिन काम में न आया। क्योंकि सत्यवती उस वेला के बाद बिछावन पर पड़ी न रही। सुहास की आरज़ू-मिन्नत और नवकुमार की फटकार को अनसुनी करके वह उठ बैठी। बोली, 'अरे बाबा, मैं ठीक हो गयी हूं ! तिल को ताड़ मत बनाओ !'

लेकिन इस आकस्मिक कमज़ोरी की घटना से सत्यवती के मन मे गहरी चिंता-सी हो गयी। वह चिंता पति-पुत्र के लिए नही, इस अनाथ लड़की के लिए ही हुई। वह तो निश्चित बैठी है, लेकिन उसे कुछ हो जाए तो ? उसका क्या होगा ? सत्य तुरत मर ही नही जाएगी, मगर कुछ कहा तो नहीं जा सकता। बुढ़िया हो आयी और तब जब बच्चा जनने की नौबत आयी, तो डर तो है ! बच्चों की फिक्र नहीं, वे लायक हो आए; नवकुमार के भी मां-बाप हैं—कोई व्यवस्था हो जाएगी, पर इस बेचारी लड़की का कोई ठिकाना नही। ऐसी रूपवती लड़की को एलोकेशी जरूर ही अच्छी निगाह से नहीं देखेंगी। इतने दिनों तक कान में तेल डालकर पड़े रहने के लिए सत्य ने अपने को धिक्कारा और दूसरे दिन नवकुमार से एक दुस्साहसिक दरखास्त कर बैठी।

दिमाग़ चकराकर सत्य के गिर पड़ने के साथ ही साथ नवकुमार का भी सिर चकरा गया था। ये कई दिन वह निरा बेचारा-सा इस कोशिश मे लगा था कि सत्य कैसे संतुष्ट हो। लेकिन सत्य की इस दरखास्त से फिर नए सिरे से उसका दिमाग घूम गया। अवाक् होकर बोला, 'तुम मास्टर साहब के यहा

जाओगी ! क्यो ? अचानक ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी ?'

'है जरूरत !'

'लेकिन निताई सुनेगा तो वह ज़िंदा छोड़ेगा मुझे ?'

'जिंदा नही छोड़ेगा, मार ही डालेगा बिलकुल ?'

'वही समझो ! लेकिन, ज़रूरत भी क्या है ?'

'कहा तो, ज़रूरत है !'

नवकुमार नम्रता भूल गया। झुंझलाकर बोला, 'उस विधर्मी से तुम्हें जरूरत भी क्या है, यह तो सुनें ?'

मगर इतना कहते ही वह डर से अवश्य काठ हो गया। क्या पता इससे भी सत्य बेहोश न हो पड़े ! लेकिन नही, सत्य बेहोश नही हुई सिर्फ मिनटभर पत्थर की आखों से पति की ओर ताककर बोली, 'कुछ सलाह करनी है !'

'सलाह ! बाप न मारा पोंड़की, बेटा तीरंदाज़ ! जात में सलाह करने को आदमी नही मिला ! सलाह करने चली उस जात गंवाए आदमी से !'

सत्य ने शायद नाराज़ न होने का संकल्प कर लिया था। बोली, 'जात मे 'आदमी' पा कहा रही हूं ! चिड़िया-चुनमुन से तो सलाह नहीं की जा सकती ? खैर, तुम जब नहीं ले जा सकोगे, तो मैं खुद ही जैसे हो···'

'खुद ही जैसे हो !'

'नही तो ?'

नवकुमार ने और भी बिगड़कर कहा, 'बस वही हठ ! जो कहूंगी, सो करूंगी ! खैर, अगर ऐसी ही ज़रूरत है, तो उन्हीं को खुशामद-दरामद करके बुला लाऊंगा !'

'नही !'

'नही ?'

'हा, नही ! एक दिन खुद अपने मुह से तुमने यहां आने को मना किया है !'

'किया है, अब गले में कपड़ा डालकर उस अपराध की माफी मागूगा !'

'ऐसा भी तो अपराध है, जिसकी माफी नही होती। जाने दो ! तर्क नहीं करना चाहती ! लेकिन उन्हे अब इस घर मे पैर रखने को नही कहूंगी ! खुद ही जाकर जो बनेगा···'

'तुम्हारे लिए एक दिन मुझे घर-बार छोड़ना पड़ेगा !'

नवकुमार ने चेहरे पर चरम विरक्ति दिखायी। लेकिन सत्य निर्विकार। बोली, 'घर-बार छोड़ना पड़ेगा कहने से ही क्या घर-बार छोड़ा जा सकता है ? नही छोड़ा जाता ! खैर ! तुम अब इसके लिए दिमाग़ न खराब करो। मैं ही इंतज़ाम कर लूगी। लेकिन बात बताई रही !

दिमाग खराब करने को मना करने से ही क्या अपनी जिम्मेदारी नवकुमार छोड़ सकता है ? दिमाग तो वह खराब कर ही रहा है। अंत तक कोई किनारा न पाकर उसने पतवार डाल दी और इस मौके से सत्य ने स्वतंत्र अभियान चलाया। वह स्वयं भवतोष के घर रवाना हुई।

राह में साथ के लिए कोई ?

और कोई नहीं, सुहास !

सुहास ही साथ गयी थी। ठिकाना सुनते ही बोली, 'हाय राम, यह तो हमारे स्कूल के करीब ही है !'

'ठीक है ! हम-तुम ही चलेंगे !'

सत्य के मन में शायद लड़की दिखा देने की भी ख्वाहिश थी। जब घटक का काम करेंगे, तो कम-से-कम इतना तो कह सकेंगे कि लड़की कैसी है ?

अबकी माध्यम नहीं, सीधे सामने बात !

भवतोष तो अवाक् ।

भवतोष को यह तो मालूम था कि सत्य ने एक अनाथ लड़की को पाला है, पर वह लड़की ऐसी और इतनी बड़ी है, इसकी उन्हें कतई धारणा न थी। कुछ देर तक एक टक देखते रहे और फिर नजर झुकाकर बोले, 'इस लड़की के लिए लड़के की कमी होगी ,बहूजी ?'

'यह तो आप नेह के नाते कह रहे हैं। तो कोई लड़का देख दीजिए न इसके लिए ! आपके समाज में तो ऐसे उदार लड़के है, जो विधवा-विवाह के लिए तैयार हैं।'

'विधवा !'

भवतोष चकराए—'विधवा ! यह तो लक्ष्मी की प्रतिमा है बहूजी, विधवा जैसा तो कोई लक्षण···'

सत्य बोल उठी, 'सुहास, तू ज़रा बगल के कमरे में जा तो, मुझे कुछ काम है।'

सत्य की इस ढिठाई से सुहास भी दंग रह गयी। [illegible] डेरे में दो-दो औरतों का आना भयंकर बात है, तिसपर—सुहास, तू [illegible] के कमरे में जा तो !

सुहास प्रायः हक्की-बक्की होकर ही चली गयी।

और इस कूल-किनारा विहीन दुस्साहस की [illegible] से देखते रहे। सत्य अनकांपते स्वर में बोली, '[illegible], तो [illegible] इसका सारा इतिहास ही कहूंगी।'

सत्य ने उस रोज सुहास का सारा [illegible]

के पहले से लेकर सब-कुछ ! शंकरी के घर से निकल भागने के बाद रामकाली ने जो स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया था, वह ज़िक्र भी आ पड़ा।

सारा कुछ सुनकर एक गहरी उसांस लेते हुए भवतोष ने कहा, 'मैं अब समझ रहा हूं बहूजी, आपने यह कठिन धातु कहां से पाया है ? पिता वैसे हैं; इसलिए। लेकिन बात यह है बहूजी, मेरे इस नए समाज को आप जैसा उदार समझ रही हैं, यह ठीक वैसा नही है। तिसपर, जिस लड़की का वंश-परिचय नही है, उससे विवाह करने जैसा मनोबल वाला युवक मिलना कठिन है।'

सत्य ने दृढ़ता से कहा, 'कठिन सहज की मैं नही जानती। मुझे सदा से यह मालूम है, आप मेरी बात टाल नही सकते, इसीलिए ज़बर्दस्ती ही करने आयी हूं। इस लड़की की व्यवस्था आपको करनी ही होगी।'

भवतोष ने विचलित होकर कहा, 'मैं आपकी बात टाल नहीं सकता, यह कैसे जाना बहूजी ?'

मुंह उठाकर सत्य ने साफ और शांत स्वर से कहा, 'यह जानने में ज़्यादा कुछ नहीं लगता है मास्टर साहब, मैं कुछ ढेला-पत्थर तो नहीं हूं। खैर, वह बात छोड़िए, आप मुझे भरोसा दीजिए...'

हलकी-सी हंसी के साथ भवतोष ने कहा, 'कोशिश मैं जरूर करूंगा, मगर विश्वास के साथ कह तो नहीं पा रहा हूं। यदि यह मेरे लिए होता, तो न होता तो आजन्म के व्रत को छोड़कर तुम्हारी खूबसूरत बेटी के लिए दुलहे की पोशाक पहन लेता !'

सत्य भी हंस पड़ी। उसके बाद बोली, 'उसे वैसी तकदीर भी तो हो ? मैं किंतु कहे जाती हूं, सारा भार आप पर रहा !'

भवतोष अकुलाए, व्याकुल हो उठे। बार-बार कहने लगे—'यह क्या किया बहूजी ? इस तरह से मुझे सत्यबंद कर रखा...'

सत्य विचलित नही हुई। बोली, 'मैंने सही जगह पर सही बात कही है मास्टर साहब, अब यही भरोसा है कि आप हैं !'

भवतोष आकाश-पाताल सोचने लगे। वह लड़का कहां है, जिसे यह सोने की प्रतिमा सौंपी जाए और जो उसका सारा इतिहास सुनने के बाद भी उसे अपनाने को तैयार हो।

कुछ सोच नही पाए। निःश्वास छोड़कर बोले, 'अभी इतनी जल्दी तो दिमाग़ मे नही आ रहा है बहू ! हां, एक बात पूछूं, 'तुम जो यहां आयी हो, नवकुमार को मालूम है ?'

सत्य ने गरदन हिलाई। यानी हां !

'ठीक है ! लेकिन तुम्हारे इस ब्राह्म के घर आने और इस लड़की के ब्याह के इस प्रस्ताव मे उसकी सम्मति है न ?'

सत्य ने गरदन हिलाई, 'नहीं।'

भवतोष ने घबराकर कहा, 'तो ?'

'तो क्या ? उनकी असम्मति में ही करना होगा !'

'यह अच्छा होगा ?'

सत्य बोली, 'लेकिन इस लड़की के आखिर की न सोचकर निश्चित बैठे रहना ही क्या अच्छा होगा मास्टर साहब ? मेरे घर में हो सकता है थोड़ा मन-मुटाव हो, हो सकता है कि ससुराल के लोग मेरी शकल न देखें, किंतु मेरा यह छोटा-सा नुकसान क्या एक लड़की के जीवन बर्बाद हो जाने से ज्यादा होगा ?'

भवतोष एक क्षण अपलक ताकते रहकर व्याकुल रुंधे कंठ से बोले, 'सांझ हो आयी बहूजी, आप घर जाइए ! मैं वचन देता हूं, इसके ब्याह का जिम्मा मैंने लिया !'

सत्य ने आसमान की तरफ ताका। वहां सांझ की कोई निशानी ही न थी। सिर को जरा झुकाकर बोली, 'आप से सदा मुहमांगा पाकर हिम्मत बढ़ गयी है, मुझे माफ कीजिए !'

'माफ ! आपको मैं क्या माफ करूं, यदि अपने को कर पाता !'

'खैर ! वह लड़की कहां गयी ?'

'लड़की ! वही तो !'

उसका तो उस समय से कोई पता नहीं। सत्य हड़बड़ाकर कमरे से निकल आयी। अभी-अभी उसे यह खयाल आया कि तीसरे किसी के न होते हुए वह एक पुरुष से निश्चित बैठी बात कर रही थी !

सुहास क्या खीज गयी ?

उसे बगल के कमरे में जाने को कहा, इससे अपमानित हुई ? सत्य बगल के कमरे के दरवाजे के पास खड़ी हुई, मगर कहां सुहास ?

अकेली चली तो नहीं गयी ?

अचानक आतंक की एक बिजली-सी सिर से पांव तक मानो खेल गयी। जरूर चली गयी।

'कहां है ?' भवतोष ने पूछा।

सत्य बोली, 'देख तो नहीं रही हूं। अकेली चली तो नहीं गयी ?'

'अकेली !'

'अकेली चली जाएगी !'

भवतोष ने संदेह से कहा, 'ऐसा भी हो सकता है ? कोने वाले कमरे में हो शायद !'

'कोने के कमरे में ? वहां क्या है ?'

'कुछ नहीं, सिर्फ कुछ•••'

बात पूरी नहीं हुई, चेहरे पर एक झलक आभा लिए सुहास कोने के कमरे से दौड़ी आयी। स्वभाव से बाहर उमंग से बोल उठी, 'फुआजी, फुआजी देखिए, कितनी किताब हैं। ओह, मेरा तो यहां से जाने को जी ही नही चाहता है।'

४२

समय से बढ़कर कारीगर नही।

समय के रंदा के नीचे पड़कर सारी असमानता समान हो आती है, सब उबड़-खाबड़ सपाट हो जाता है।

सबकी गिरस्ती की तरह निताई के घर में भी यही लीला चल रही थी। शुरू-शुरू एक-एक दिन एक-एक बार लगता कि अभी-अभी निताई अपनी स्त्री को घर पहुंचा के आएगा, या कि उसकी स्त्री भाविनी आज ही रात गले में रस्सी डालकर झूल जाएगी। लेकिन वास्तव मे वैसा कुछ भी नही हुआ।

धीरे-धीरे, शायद अपने अजानते ही भाविनी अपनी स्वाधीन गिरस्ती के रस मे और निताई दूसरे एक स्थूल रस मे बूड़ने लगा, उसके बाद दोनों एक-दूसरे के लिए अपरिहार्य हो गए। लिहाजा खंड-प्रलय की वह स्थिति किस फांक से फीकी होते-होते खत्म हो गयी, हंसी ने बाजार दखल कर लिया।

अब देखने में आता है, निताई की स्त्री ने रोटी पकाना सीख लिया है और निताई ने स्त्री से डरना सीखा है।

भय से ही मनोरंजन की चेष्टा। धीरे-धीरे निताई ने अनुभव किया कि सत्यवती की निंदा स्त्री के मनोरंजन का एक सीधा रास्ता है, मनोविकलता की अचूक दवा है।

इसलिए यही सीधा रास्ता और यही अचूक दवा निताई ने चुन ली है। न चुने तो करे क्या? स्त्री की निगाहों जगत को देखना न सीखने से जगत दुस्सह हो उठता है। कम से कम निताई जैसे गृहस्थों के लिए, जिनकी जान घर ही मे सिमटी हो। ऐसों के लिए इसके सिवाय उपाय नही।

गोदी में आग लिए तो गिरस्ती करना सम्भव नही। पानी के छींटे देने ही पड़ेंगे। और जिनपर जान अटकी हो, उनका 'जी-हुज़ूर' हो जाना ही वह पानी है।

नारी जाति जितनी ही अबला और कोमला हो, अपनी जगह पर वह बाघिन है। और, उसकी इच्छा की पूर्ति में त्रुटि हो तो फन फैलाकर नागिन

बनने से भी वह नहीं हिचकिचाती। शान्ति चाहने वाले पुरुष जब तक इसे समझ नही पाते, ठनती रहती है—जब तक यह सोचते हैं कि इसे मानने के नही, तब तक हालत काबू में नही आती। लेकिन एकबार उनकी अधीनता क़बूल कर ली कि सारे टंटे मिट गए। किस बात में उनकी संतुष्टि है, यह समझ ली कि विश्वशांति !

अब भाविनी चाहे जिस कारण से भी गरम हो जाती है या बोलचाल बन्द करती है, निताई इस-उस बहाने स्वगतोक्ति में सत्यवती के प्रसंग को ले आता है।

दो-चार बार कोशिश करते ही कामयाबी हासिल हो जाती है। मौन-व्रत वाली झनझना उठती है—'अब यह सब क्यों कहने लगे ? सदा से तो सुनती आयी हूं, वह गुणों की खान हैं। उनका पैर-धोया पानी पीने से तब मुझ जैसी अधम का उद्धार होगा !'

निताई उत्साह के साथ आगे बढ़ता—'हां, यह तुम कह सकती हो ! इसी मुंह से बेशक बहुत गुण गाया है ! लेकिन अब ? अब नही ! अब उन्हें पहचानना बाकी नही रहा ! तुमसे कहूं भी क्या, उस ब्राह्म से जो लाग-डाट कि देखते-देखते जी जल गया !' हां, निताई ने ज़रा होंठ सिकोड़ा—संदेह कुछ-कुछ सदा ही रहा था, पर उसे तरह न दी। कहा, 'छिः ! बाम्हन घर की बहू है ! लेकिन अब तो देखता हूं, आंखों पर परदा ही नही, बेपरवाह ! किराए की बग्गी से उसके यहां जा-जाकर···!'

'लेकिन तुम्हारे दोस्त जनाब अंधे है कि गूंगे ?' भाविनी ने चिकोटी काटी।

निताई ने मुसकुराकर कहा, 'बीबीपरस्त पुरुष अंधा-गूंगा ही क्यों, बहरा, अंधा, बेवकूफ, भेड़ा सब होता है ! धीरे-धीरे जो हालत मेरी हो रही है, और क्या !'

भाविनी के काले होंठो पर आह्लाद-रस की हंसी छलक आयी। होंठ दबाकर वह भी बोली, 'हाय, बलिहारी जाऊं, यह बांदी अगर थरथर कांपती न होती ! भेड़ा-पुरुष कैसा होता है, देखने की साध होती है !'

निताई ने छूटते ही कहा, 'साध है तो चलो, देखो ! वहां तो तुम जाना ही नही चाहती !'

'दूसरे के यहां जाकर क्या देखना !' आखें मिचमिचाकर भाविनी ने कटाक्ष किया।

निताई ने कहा, 'तो सारी चीजें क्या घर में ही मिलती हैं ? दृष्टि सार्थक करनी हो, तो चलो ! सुना, गांव से सौदा-दी आयी है, सौरी सम्हालेगी !'

'सौदा-दी आयी है ?' भाविनी ने गाल पर हाथ रखकर कहा, 'सौरी

यही होगी, कलकत्ता में ? देवीजी गांव नहीं जाएंगी ? ऐसे में भी सास को खबर न होगी ?'

'यही तो सुना ! कहती हैं, क्यों, कलकत्ता में क्या लोग जनमते-मरते नहीं हैं ?'

'अच्छा है !'

निताई की स्त्री के चेहरे पर अंधेरा उतरा। सत्यवती के बाल-बच्चा होने की खबर से एक आशा हुई थी कि कुछ दिनों के लिए तो आंखों का यह कांटा नज़र से दूर होगा। और उसी मौके से भाविनी सत्यवती के स्वामी को, बेटों को न्योते के बहाने खिला-पिलाकर वश में करके अपने पति को दंग कर देगी।

सो होने से रहा !

घर ही में बच्चा जनेंगी देवीजी।

झुंझलाकर बोल उठी वह—'और भेड़ा पति इसी मे राजी ? मां-बाप के मुंह मे कालिख-चूना पोतकर वह स्वाधीन होकर बेटा-बेटी ब्याएगी !'

निताई ने आख मटकाकर कहा, 'सो हो ! वह तो जी गया ! स्त्री को आखों की ओट नहीं करना पड़ा !'

निताई ने यह बात महज़ अनुमान से कही। वास्तव में बात यह नही थी।

सत्यवती के इस प्रस्ताव से नवकुमार सिहर ही उठा था। और यह असंभव है कहकर बात को उड़ा ही दिया था।

गांव गए बिना बच्चा जनने जैसा भयंकर काम यहां हो सकता है, वह सोच भी नही सकता था।

लेकिन अंत तक वही हुआ, जो सदा होता है। सत्यवती की दलीलों के तीखे तीर से नवकुमार की दुविधा, शर्म, डर—सबके टुकड़े-टुकड़े हो गए।

डर किस बात का ? कलकत्ता में जन्म-मृत्यु नही होती है ? पैदा हुए शिशु की नाड़ी नहीं काटी जाती है ?

और शर्म ? शर्म का मतलब ? इस बुढ़ापे मे जब बच्चा होने में शर्म नहीं, तो घर में सौरी करने में ही शर्म ?

लिहाज़ा, दुविधा की बात बेकार है।

नवकुमार बेशक इस बुढ़ापे शब्द से उखड़ गया था। बोला, 'हरदम बुढापा-बुढ़ापा क्यो करती हो, सो तो कहो ? मेरी छोटी मौसी को पोते का जनेऊ हो जाने के बाद उन्हें फिर एक लड़की हुई थी…'

सत्य जलती हुई नज़र से एकबार ताककर संक्षेप मे बोली, 'वह सब छोड़ो ! यही व्यवस्था करनी होगी, इतना ही कह देती हूं !'

कहना न पड़ेगा, महज़ इतने से ही काम नहीं चला।

नवकुमार ने बहुत-बहुत हाथ-पैर पटका, कहा, 'मुझे इन बातों का मालूम

क्या है ? यहां किसी को पहचानता हूं मैं ? व्यवस्था करनी होगी—यह कह देने से ही हुआ ?'

इस पर सत्य ने कोई तीखी बात कही कि वह चुप हो गया। एक दिन चुपचाप वह सौदामिनी के पति के पास गया। सुना था, उसके तीन-चार गंडे बच्चे-कच्चे हैं। उन सबकी पैदाइश यही कलकत्ता में ही हुई है। लिहाज़ा वह आदमी जानकार है।

उस जानकार आदमी ने भरोसा देकर नवकुमार को निश्चित किया, साथ ही सौदा को बुलवा लेने की सलाह दी।

नवकुमार ने तीनेक दिन की छुट्टी ली और बारुईपुर जाकर सौदा को ले आया।

किंतु जिस आसानी से यह कहा गया, काम क्या उतनी आसानी से बना ?

पागल ? यह भी संभव है ?

एक ही साथ अपनी रसोईदारिन, परिचारिका और अकेले घर की संगिनी सौदा को एलोकेशी कहते ही छोड़ने को राज़ी हो गयी थी ?

हरामज़ादी, बदमाश बहू को एक सौ गालियां देकर; बदअकल, बेहया, बीवी के गुलाम बेटे को वे यों ही लौटा देने को तैयार नहीं हुईं ?

लेकिन उनका सब खेल सौदा ने ही बिगाड़ दिया।

सौदा बोली, 'मैं जाऊंगी !'

'तू जाएगी ?' एलोकेशी गरज उठी, 'मुंहजली, दईमारी, नमकहराम ! हम लोगों को अकेला छोड़कर तू उस देहजरू के पादोदक पीने जाएगी ?'

सौदा लेकिन अडिग।

सौदा को ऐसी भी जिद है, यह कौन जानता था ?

वह मामूली दो-चार कपड़े जो थे, लेकर बाहरी दरवाज़े पर खड़ी हो गयी।

गंगाहीन देश में ही आज तक जान गयी सौदा की, काली-गंगा के देश में जाने का यह सुअवसर वह हाथ से नहीं जाने देगी।

'तुम लोगों की घर-गिरस्ती ? वही तो करती आयी सदा ! सौदा के क्या छुट्टी नहीं ? वह मर जाए तो तुम लोग बिना खाए रहोगे ?'

सौदा को विद्रोह की यह शक्ति किसने दी, भगवान जानें।

एलोकेशी दंग ! नवकुमार अकचका गया।

नीलांबर बाबू ने बिगड़कर कहा, 'जाती हो, जाओ ! मगर फिर कभी इस घर में कदम रखने मत आना, कहे देता हूं !'

सौदा ने प्रणाम करके नर्म गले से कहा, 'अच्छा !'

हक्के-बक्के नवकुमार ने कहा, 'डर के मारे मेरे तो होश फाख्ता हो रहे हैं,

सौदा-दी ! रहने दो, तुम्हें जाना नहीं होगा ! बहू के परमायु होगी तो वह बचेगी और अगर किस्मत में मरना होगा…'

सौदामिनी मुस्कुराकर बोली, 'तूने समझा कि मैं तेरी बहू को बचाने जा रही हूं ? बिलकुल नहीं ! एकबार फिर से अपनी तकदीर को आजमाने की इच्छा हुई है, इसीलिए जा रही हूं !'

नवकुमार इस बात का मतलब नहीं समझ सका। चोर की नाईं मां-बाप के सामने से भाग आया।

एलोकेशी ने ऊंचे गले से भगवान को आदेश दिया, 'भगवान, जिस दई-मारी ने ताजिंदगी मेरे कलेजे में बेर के अंगारे रखकर जलाया किया और इस बुढ़ापे में कमर का जो भी बल था, उसे भी छीनकर मज़ा देखने लगी, तुम उसका विचार करना। यदि तुम न्यायपरायण हो तो उस सत्यानाशी के जिसमें तीन रात भी न पार हो ! उसके भरे घर का दरवाजा बंद हो, उसके मुंह का कौर जिसमें बासी चूल्हे की राख हो जाए, इहकाल-परकाल में उसकी गति न हो !'

एलोकेशी छंद मे सुर के साथ सत्यवती के और भी बहुतेरे भयंकर अंजाम के लिए न्यायपरायण भगवान से दरखास्त करती रही।

इसे भूल समझने का हेतु नहीं है, अति कहना भी भूल होगी। सत्यवती के जमाने मे एलोकेशिया विरल नहीं थीं।

आज ही हैं क्या ?

नहीं ! हो सकता है अभिशाप की भाषा और तर्ज कुछ सूक्ष्म और सभ्य हुआ हो, तीखी चीख पैने मंतव्य में बदल गयी हो।

जो भी हो, यह सब सत्यवती के कानों नहीं पहुंचा। सिर्फ बिना नोटिस के एकाएक सौदामिनी के आविर्भाव से पहले वह ज़रा विमूढ़-सी हो पड़ी। तुरत ही फिर सम्हाल लिया। होंठों पर हंसी लिए बोली, 'खैर ! अच्छा ही हुआ ! गिरस्ती सौंप जाने को एक जनी मिल गयी ! अब मैं निश्चिंत होकर के मरकर जी जाऊंगी !'

सौदा ने भंवे सिकोड़ी, 'मरने की क्या बात हुई ? दुनियाभर की औरतें मर रही हैं क्या ?'

सत्यवती हंसी। बोली, 'पता नहीं क्यों, इस बार हरदम लग रहा है कि मर जाऊंगी—मानो कानों में काल का घंटा बज रहा है।'

जो भी घंटा कान में बजता क्यों न रहा हो, सत्यवती मरी नहीं। सिर्फ अरसे तक यमराज और आदमी मे खींचातानी होती रही, सिर्फ सत्यवती के संसार में बड़े-बड़े हेर-फेर हो गए, और सत्यवती के मन को एक विपर्यय ने

धक्का मार-मारकर उसे और भी दृढ़ बना दिया।

इसी अरसे में सत्यवती की नवजात बच्ची रुलाई की दुनिया से हंसी के संसार में झांकना सीख गयी।

साधन-सरल दोनों भाइयों ने काच के खिलौने-सी उस बच्ची को गले का हार बना लिया। नवकुमार में वात्सल्य रस की प्रबल धारा बहती दिखायी दी।

लड़की गरचे फूटी कौड़ी के मोल की होती है, फिर भी उसे देखने को जी चाहता है, लेने-छूने को जी चाहता है और स्नेह की वस्तु है, इसलिए एक मीठी अनुभूति आती है।

साधन और सरल उसकी अपरिणत अवस्था के परिणाम हैं। उस उम्र में वात्सल्य नहीं होता, बल्कि नयी जवानी के आवेग में वे बला-से ही लगते थे।

अब वह बात नहीं रही।

अब तो सत्यवती हाथ से निकल-सी गयी है, इसी बहाने यदि फिर थोड़ी-सी सरसता आए! मौत और मनुष्य की लड़ाई में जीत मनुष्य की ही हुई, इसलिए नवकुमार को लड़की सगुनिया ही लगी।

सारांश यह कि नवकुमार की गिरस्ती अच्छी ही चल रही है। लेकिन इस घर में सुहास नाम की जो एक लड़की थी? वह कहां गयी? वह तो अब नजर नहीं आती? तो क्या वह मर गयी? या कि अपनी कुलबोरन मां के चरण-चिह्नों पर चलकर उसने भी वही किया?

नवकुमार ने तो यही कहा।

लगभग कुलबोरन का ही धिक्कार उसे दिया। दुबली सत्यवती के सामने वह जोरों से धिक्कारने में भी नहीं हिचकिचाया। कहा, 'वह जिसमें फिर इस घर की छाया न छुए! कुल छोड़ने और धर्म छोड़ने में फर्क ही क्या है? न होती शादी तो क्या था? हिन्दू घर की लड़की, ठाकुर-देवता का पूजा-पाठ करके यह जीवन काट नहीं लिया जा सकता? बाप की उम्र के एक बूढ़े से—छिः-छिः। समझी तुडू की मां, अमड़ा के पेड़ में कभी आम नहीं फलता। तूने इतने दिनो तक जो जड़ को सीचा, खाद डाली—फला आम? अमड़ा की अमड़ा ही निकली!'

सत्यवती ने हाथ का इशारा करके चुप रहने को कहा और करवट बदलकर लेट गयी।

अब अवश्य सत्य शय्यागामी नहीं है, पर ज्यादा बिस्तर पर ही पड़ी रहती है। सौदा ने आकर जो उसकी जिम्मेदारी अपने कंधे पर उठा ली, उससे वह मुक्ति के अनूठे स्वाद में मग्न हो गयी। [illegible]

बहू, तुम भला क्यो उठ आयी, बीमार आदमी, कि सत्य टप्-से जाकर फिर लेट जाती। पहले की तरह तर्क नहीं करती। यह नहीं कहती कि अब तो मैं ठीक हूं। उठ-बैठकर...'

और, ज्यादा देर पड़े रहने से उस दिन के खेले गए नाटक के दृश्य ही उसकी आखों के परदे पर नाचने लगते।

शुरू से सारा-कुछ जानती है सत्य।

सत्य को होश नहीं है, यह समझकर सौदामिनी और भाविनी सौरी के दरवाजे पर बैठकर ही जोर-जोर से बात कर रही थी। किंतु होश-बेहोशी की उस हालत में भी उनकी बातें जैसे हथौड़े की चोट से उसके कानों में घुसने लगी थीं। फिर भी उन्हें मना करने की ताकत नहीं थी। न हाथ हिला पा रही थी, न बोल पा रही थी।

भाविनी हाथ-मुहू मटकाकर बोलती जा रही थी। वही वक्ता थी, सौदामिनी श्रोता। गाव मे भाविनी की यह मजाल नही कि वह बड़ों से चू भी करे। यहा की बात और है। यहा वह कुछ है। जभी हाथ-मुंह मटकाने में हिचक नही है। कह रही थी—'बाम्हन ननदजी, देख-देखकर हम तो काठ के मारे-से रह गए। एक अजात, जिसके जनम का ठिकाना नहीं, वैसी एक बुढ़िया-सी कुमारी लड़की को लेकर वह नाच, वह नाच कि मत पूछो!'

'जनम के बारे में क्या कहा कायथ-बहू?' सौदामिनी सिहर उठी थी। या कि सदा के संस्कार में पुष्ट हुई सौदा के खून के कतरे सिहर उठे। उस लड़की के हाथ का वह खा-पी जो रही है!

'कौन नही खा-पी रहा है!'

भाविनी ने होंठ बिचकाया, 'ठाकुरघर का भोग बनाना हो, तो भी शायद देवीजी उसी भतीजी को सौप देंगी...'

'भतीजी!'

सौदा बोली, 'जरा रुको तुम! पहले मुझे समझ लेने दो। मैंने सुना था, विधवा है। तुम कह रही हो कुमारी। पहले जनम का गोलमाल बताया और फिर कह रही हो भतीजी! अजीब-सा लग रहा है!'

बेबस पड़ी सत्यवती के कानों विषबुझे तीर बिंधते रहे—'अरे बाबा, भतीजी मैं नही कहती, देवीजी ने ही यह परिचय दे रखा है। जो भाभी बारह की उम्र मे विधवा हुई, उसी के बाईस वर्ष के गर्भ का रत्न है वह! मां कुल पर कालिख पोतकर घर से निकल गयी, ममिया ससुर—यानी तुम्हारी इस बहूरानी के बाप ने ढोल पीटकर सब लोगों के सामने इस बात की घोषणा की। और, इतने दिनों के बाद देवीजी ने घूरे के इस जंजाल को उठा-लाकर घर में देवी-प्रतिष्ठा की! क्या कहूं बहन, तुम बाम्हनों के घर की रीत-नीत देखकर हम तो

अवाक् हैं। तुमने पूछा विधवा ? विधवा नहीं, कुमारी है। इस जात-जनमहीन ध्वजा से ब्याह कौन करे ? बेटी से कलंक-कथा छिपाने और लोक-लाज से मां कहती फिरती तो थी, पांच साल की उमर में ब्याह हुआ, उसी साल विधवा हो गयी। ये भी वही कहती आ रही हैं। फिर यह सुन रही हूं कि ब्राह्म के यहां इसका ब्याह करेंगी। वर ढूढ रही हैं।'

सौदा कुछ देर तक गाल पर हाथ रखकर बोली, 'मेमों के स्कूल में पढ़ा रही है, तो दे ही सकती है ! बहू के गुण बहुत थे, पर इस चौड़े कलेजे की वजह से सब हवा हो गए। बेहद तेज, बेहद हिमाकत। नही तो भला किस घर की किस स्त्री में यह हिम्मत है कि पनाले के कीचड़ को लाकर पूज्य बना दे ? मैं तो बुत बनी जा रही हूं कायथ-बहू, अरे बाबा, ले ही आयी है, तो रख ! उसके हाथ का खाती-पीती किस अक्ल से है ! नोबा भी तो···'

'उनकी तो कहिए ही नहीं। वे तो कामरूप-कामच्छा का भेड़ा हैं। वे भी हा सुहास, हा सुहास करके बेहाल हैं। इधर रूप भी तो ऐसा है कि मुनि का भी मन डोले ! वही क्या ठीक रह सकेगी। देखना, कब क्या कर बैठे। झूठ नहीं कहूंगी, इसी डर से भरसक तुम्हारे भाई को मैं यहा अकेले नहीं आने देती। मर्दों की जात मक्खी की होती है। फूल से उड़कर घूरे पर बैठती है। वह छोरी···'

सहने की सीमा पार कर जाने पर गूगे के भी बोल फूटते हैं—सो बेहोश पड़ी सत्यवती के मुह से अचानक ही एक गरज निकल पड़ी। जैसे मुंह दबाए किसी जंतु का आर्तनाद हो !

ये चौक उठे।

क्या हुआ ?

जच्चाखाने की दाई को चीख-पुकार करने लगी। घंटेभर बाद ही घर में दूसरा शोरगुल शुरू हो गया।

प्रश्न और विस्मय।

नहीं है ?

कहां गयी ?

अंत मे किसने कब देखा था ?

किसने देखा, कोई ठीक बता नही सका। देख तो सभी सब समय रहे थे, एक जीती-जागती जवान लड़की हठात् हवा हो जाएगी ?

लेकिन हवा ही हो गयी।

सुहास नही मिली।

आंखें बंद करते ही सत्य उस दिन की सारी बातें सुन पाती है। सौदा और

भायिनी की वे उक्तियां !

उसके बाद पट-परिवर्तन हुआ।

दूसरा ही दृश्य आखो मे तिर आया।

जिसके लिए सत्य को बाद में बहुत श्लेषभरी बातें सुननी पड़ी। लेकिन नाटक के उस अक पर तो सत्य का कोई हाथ नहीं था। वह सिर्फ उसकी नजरो के सामने हुआ था।

सौरघर के दरवाज़े पर आकर भवतोष मास्टर खड़े थे।

किवाड़ के एक पल्ले को पकड़कर वे आर्तनाद से कर उठे थे—'बहूजी !'

सत्य चौककर देखने लगी थी।

आश्चर्य से चारो तरफ ताकने लगी थी। ये यहां क्यों आए ? यह क्या अनहोनी हुई ? और ऐसे पागल-से ही क्यों ? ये सब क्या कह रहे है ?

समझने में वक्त लगा था।

समय लगने की बात ही थी।

कौन सोच सकता था कि यहा से भागकर सुहास को और कही पनाह नही मिली, पनाह लेने के लिए वह भवतोष मास्टर के यहा गयी, जहा जिंदगी में वह मात्र एक ही बार गयी थी और जीवन में जिससे एक बार भी नही बोली थी।

लेकिन इस बार जाकर उसने बात की।

बहुत-बहुत बात।

भवतोष ने वैसे ही रुंधे कंठ से कहा, 'कहती है, आपके यहां एक दाई की ज़रूरत तो है ! मैं उसी तरह से रहूंगी। सब काम-काज करूंगी। आप तो उदारधर्मी है, मेरे हाथ का खाने मे आपको घृणा नही होगी। ज़रा सुनो तो सही, वैसी देवकन्या-सी लड़की तुम्हारी, उसके हाथ का खाने में घृणा होगी ?'

उस दिन सत्य के बात फुटती थी। उसने धीरे-धीरे कहा, 'आप तो ऐसा कहते है, लेकिन लोग जो घृणा करते हैं।'

'घृणा करते है ?'

'और क्या ?' सत्य ने तकिए से गरदन ज़रा उठाकर क्षोभ की हंसी हसते हुए कहा, 'क्यो नही करेंगे। आप तो सब-कुछ जानते है मास्टर साहब, सारी दुनिया उससे नफरत करती है।'

'कर सकती है !' आवेग रुंधे गले से भवतोष ने कहा, 'तो मैं तुम्हारी उस दुनियाभर का कोई नही हूं, बहूजी !'

सत्य ने एकटक उन्हे ताककर कहा, 'जानती हूं, और उस मुहजली ने भी लमहेभर में यह बात भाप ली थी। इसीलिए आग की चपेट से बचने के लिए आपकी शरण मे जा पहुची।'

'लेकिन ऐसी स्थिति में मै क्या करूं ? मेरे डेरे पर तो कोई औरत नहीं है ?'

'नहीं है, तो क्या हुआ ? वह सब चला लेगी !'

'सब चला लेगी !'

भवतोष ने हताश स्वर में कहा, 'तुम भी क्या अपनी भतीजी जैसी पागल हो गयी बहूजी ? उसे समझाकर मैं हार गया। गाड़ी रोककर लाख समझाया, बस एक ही वात वोली—मैं आपका सब काम कर दूगी, उसके बदले मुझे एक कोने में पड़े रहने दीजिए और अपनी किताबें पढ़ने दीजिए। बस ! और कुछ नही चाहती ! सुन लो पागलपन !'

सत्य ने गाढ़े स्वर मे कहा, 'पागलपन क्यों कह रहे हैं मास्टर साहब, इससे अच्छा आश्रय उसे और कहां मिलेगा ! उसकी जनम-कहानी सुनकर कौन उसे चाहेगा, स्नेह-ममता करेगा ?'

भवतोष ने और भी व्याकुल होकर कहा, 'सो तो समझा ! इसीलिए तो उसके लिए लड़का भी नही जुटा पा रहा हूं—गोकि तुमने सब-कुछ खोलकर ही बताने को कहा है। लेकिन एक वात तुम नही समझ रही हो···'

सत्य ने कहा, 'कहिए !'

'कहता हूं' खासकर भवतोष बोले, 'मैं अपनी फिक्र नही करता, मेरे तीन कुल में है ही कौन ? मैं उसी के लिए कह रहा हूं। मैं जितना ही बूढ़ा क्यों न होऊं, लोकनिंदा में तो कमी नही होगी ! अपने डेरे पर किस नाते से उसे रक्खूं ?'

सत्य जरा हंसकर बोली, 'नौकरानी के नाते !'

'तुम शायद मुझको लेकर मजा देख रही हो वहूजी !' भवतोष का उलाहना मानो पछाड़ खाकर गिरा।

सौरीघर के दरवाजे पर देर तक यह दृश्य।

सौदा गाल पर हाथ रखे दालान में बैठी, नवकुमार पिंजड़े के बाघ-सा छटपट कर रहा था। अब धीरज नही रखा जाता। उसने जाकर कहा, 'मास्टर साहब, आपकी गाड़ी वाहर खड़ी है या दूसरी बुलवा दू ?'

भवतोष ने विमूढ़ दृष्टि से कभी के अपने भक्त शिष्य की ओर देखा। इतने में सत्यवती का क्षीण लेकिन साफ गला सुनाई पड़ा। स्वर में आदेश—'रहने दो, गाड़ी लाने के लिए किसी को इतना हड़बड़ाने की जरूरत नही है। मास्टर साहब से अभी मुझे कुछ जरूरी बातें करनी हैं। सब लोग जरा उधर चले जाएं तो अच्छा हो !'

सब लोग उधर चले जाएं तो अच्छा हो !

इससे तो सत्य ने नवकुमार के माथे पर एक ईंट क्यों नही मार दी ?

लेकिन चारा नहीं था। डाक्टर कह गए थे, रोगी की छाती कमजोर है। गुस्से से, दुःख से, किसी बात से जिसमे उत्तेजित न हो।

डाक्टर बुलाने की ज़रूरत भी पड़ गयी थी। नवकुमार और सौदामिनी की जान में सौरीघर में डाक्टर का आना यही पहली बार है। उपाय क्या था ? सौदा ने ही ज़बर्दस्ती बुलवाया था। कहा, 'जब जैसा शास्त्र ! तू अब आगा-पीछा मत कर नोवा ! जब कलकत्ता में रह रहा है, तो यही जैसा हो ! बारुईपुर के उस गढे मे गयी होती तो मर ही जाती ! यह अगर···'

डाक्टर ने नहाने-धोने की मनाही कर दी। इक्कीस दिन में निकलना भी मुलतवी हो गया। इक्कीस की जगह इकत्तीस दिन।

घर के लोगो का सेवा-जतन भी तो नहीं पा रही है। वही चमाईन मातंगिनी जो करे ! चंगी भी हो तो कैसे ?

मगर उसी के दरवाज़े पर ये हरकतें !

'चला जाना पड़ेगा ! ओ !' और धमधमाते हुए चला गया नवकुमार।

भवतोष बेहद अप्रतिभ हुए। बोले, 'तो मैं चलूं, बहूजी !'

'नही ! बात खत्म कहां हुई ? आपने कहा, मैं आपको लेकर मज़ा देख रही हू ! यह भी कोई बात हुई ?'

'करूं क्या, मैं कोई दिशा ही नही पा रहा हूं, इसीलिए···'

'क्यों नही पा रहे है ? दिशा तो सामने ही है। उस दिन आपने मज़ाक में कहा था, नतनी के लिए अगर दुलहा बनने की ज़रूरत हो तो बनेंगे ! उस मज़ाक को ही सच कर दीजिए !'

'बहूजी !'

'घबराएं नही ! मैं कहती हूं, यही अच्छा होगा !'

'यही अच्छा होगा !'

'हां ! आप झिझकें नही ! बिना परिचय की एक लड़की का रहना निंदा का कारण होगा ! आप ही उसे परिचय दे दीजिए ! परिचय जैसा परिचय !'

'तुम क्या मुझे सदा के कसूर की सजा देना चाहती हो बहू ?'

भवतोष के स्वर में बेबसी के साथ एक जलन-सी फूट उठी।

लेकिन सत्यवती के कंठ में फूट उठी स्निग्ध स्नेह की करुणा।

'छि:-छि: ! आप यह बात क्यों कह रहे हैं मास्टर साहब ! बल्कि कहिए, मेरे इतने दिनों की शिक्षा-दीक्षा की गुरुदक्षिणा ! पढ़ी-लिखी बुद्धिमती स्त्रियां आपको प्रिय हैं, यह मैं जानती हूं। सुहास नापसंद की नही होगी !'

भवतोष ने खीज की मुसकराहट के साथ कहा, 'पसंद केवल पुरुषों की ही एकचटिया नहीं है। वह अपने बड़े चाचा की उमर के इस···'

'उससे क्या ?' सत्य कौतुक की हंसी हंसकर बोली, 'महादेव भी तो बूढ़े हैं। लड़कियां तो भी उन्हीं को दुलहा रूप में मांगते हुए व्रत करती हैं। सुहास अगर यह बात नहीं जानती होती तो दौड़कर आपके पास जाती ही नहीं !'

सत्य का धीमा कंठ स्वर भारी हो आया, 'सुहास आपकी भक्ति करती है। वह जान-बूझकर ही आपके पास आश्रय को गयी है। आप ही समझ नहीं पा रहे हैं। औरत मुंह खोलकर और कितना कहेगी ?'

'लेकिन मैं तो सोचकर कोई किनारा नहीं पा रहा हूं। अचानक ऐसी कौन-सी घटना घट गयी कि वह इस तरह से दौड़ी गयी…'

'कहूंगी ! सब कहूंगी आपसे ! आज अब दम नहीं है !' सत्य ने थकावट की हंसी हंसी।

भवतोष ने फिर भी कातर स्वर में कहा, 'यही तुम्हारी अंतिम राय है ? यही सजा मुझे माथे पर उठा लेनी होगी ?'

सत्य फिर कौतुक से हंसी। बोली, 'अब लेकिन मैं नाराज़ हो जाऊंगी मास्टर साहब ! मेरा जमाई होना आपके लिए सज़ा है ?'

भवतोष ज़रा देर चुप रहकर ताकते रहे। बोले, 'तो भी मैं शायद कभी अपने को माफ नहीं कर सकूंगा। लगेगा…'

'गलत सोचकर जी में कष्ट न उठाएं। मुझे अभी क्या लग रहा है, जानते हैं ? लग रहा है…' अंतिम बात सत्य ने मानो अपने आप से ही कही—'लग रहा है, सुहास को शायद आपकी सोचकर ही मैंने ऐसी मन माफिक गढ़ने की कोशिश की है। सिर्फ इतने दिनों तक मुझे ही इसका पता न था !'

४३

इसी को शायद परकीया भाव कहते हैं।

कहते हैं, भगवान को भजने का यह एक सहज रास्ता है। मुखर्जी बाबू ने वही राह अपनाई है, गोकि भगवान से उन्हें कोई वास्ता नहीं, उनका कारबार मनुष्यों से ही है। लेकिन ताज्जुब यह है कि जिस आदमी को उन्होंने ढेला-पत्थर की तरह एक दिन उठाकर फेंक दिया था, अभी उसी के आस-पास घुर-घुर करते फिर रहे हैं।

मुखर्जी बाबू अब नवकुमार के यहां के रोज-रोज के मेहमान हैं। ज्यादातर वे शाम के समय आते हैं, जब सौदा का घरेलू काम-धंधा कुछ हलका हो आता है। हां, स्वेच्छा से ही सौदा ने सत्यवती के घर के सारे काम-काज को अपने

कंधे उठा लिया है, शायद हो कि सत्य की सेहत ठीक नहीं, इस ममता से, या कि अपनी आदत के मुताबिक या नही तो इस घर मे अपनी प्रयोजनीयता को स्पष्ट और प्रत्यक्ष रखने के लिए। हो सकता है, यह सोचती हो कि कहीं नवकुमार यह न सोचे, 'अब किस लिए!' सत्य को तिनका भी हिलाने देने से सौदा के लिए नवकुमार को सहज ही आस्था नही आएगी।

अपने मन की वही जाने। मोटी बात यह है कि सौदा अभी भी यहीं रह गयी है। इस घर की जूता सिलाई से लेकर चंडीपाठ तक—सब कुछ कर रही है। तो भी शाम को सौदा को बैठने की फुरसत मिल जाती है। एक तो यहा शहरी गिरस्ती का धंधा उसके लिए घास बराबर है और फिर बड़े उत्साह से रात की रसोई वह तीसरे ही पहर कर लेती है।

शाम को मुखर्जी बाबू आते है।

सौदा मन मे नवोढ़ा की लाज और चेहरे पर नवोढ़ा की चमक लिए भतीजों की नजर बचाकर चिलम को फूकती हुई पास मे आकर खड़ी हो जाती है।

यह वही कोने वाला कमरा है, जिसमें सुहास रहती थी। सुहास अपने व्यवहार की सारी चीजें छोड़कर चली गयी है। सुहास की यादगार के लिए उस कमरे को उसी जैसा सवारकर रख दे, ऐसी भावालुता इस घर की नयी व्यवस्था मे नही है। सत्य तो इस कमरे में कभी जाती ही नहीं।

सौदा ने दुनियाभर की बेकार चीजें इस कमरे मे ठूस दी है, सिर्फ सुहास के सोने की चौकी पर एक साफ-सुथरी दरी पड़ी है। तकिया है।

मुखर्जी बाबू प्रायः मानो चुपचाप आकर उसी तकिए पर कोहनी रखकर उसी चौकी पर बैठते हैं, सौदा चिलम लाकर देती है।

मुखर्जी बाबू जरा रहस्यघिरी हंसी हंसकर उसके चिलम वाले हाथ को खीचकर बोले, 'अभी भी तुम्हारी नवेलिन बहूवाली लाज नही गयी? बैठो न यहां!'

यहा के माने चौकी की बची थोड़ी-सी जगह! भारी-भरकम मुखर्जी बाबू तो खुद ही लगभग सारी जगह दखल किए बैठे हैं। इसलिए बैठना हो तो सट-कर बैठने के सिवाय उपाय नहीं।

लेकिन सौदा ने पति-देवता के इस अनुरोध को नही रखा।

'न:! यही मजे में बैठती हूं!' कहकर चौकी के सामने जमीन पर ही बैठ गयी।

इतने दिनों के बाद मिले पति से क्या वह खूब बातें करती? नही! बात ही कहां है? बात करने की उमर ही कहां है?

देर तक भुड़-भुड़ करके हुक्का पीते रहे मुखर्जी बाबू, फिर किसी समय बोल

उठे—'तो ग़रीबखाने में कब पधार रही हो बड़की ?'

सौदा अब तक बैठी या तो नाखून कुरेद रही थी या आंचल के छोर को उंगली मे लपेट रही थी। इस सवाल से चौकन्नी-सी होकर हिल-डुलकर बैठती हुई बोली, 'इतने दिनों तक छोड़कर अब पकड़ने से क्या होना ! उमर ही तो बीत गयी !'

मुखर्जी बाबू ने अपने खासे शरीर को ज़रा हिलाकर हंसते हुए कहा, 'तुम्हारी यह बात सुनता कौन है बड़की ! गढ़न-शकल में तो छोकरी-सी ही हो। बल्कि अपनी वह घरवाली बुढ़िया की बुढ़िया उसकी भी बुढ़िया हो गयी है। माथे के सामने ही गंजा, दात झूलकर हिल गए हैं, हाथ-पाव में हाजा और बदन ? वह तुमसे क्या कहूं ?'

मुखर्जी ने बड़े भद्दे ढंग से मुहू बनाया—'ताकने में भी घिन लगती है। यह तो मैं ही हूं कि घर में रखे हुए हूं। और पति होता तो खींचकर उसे उसके नैहर रख आया होता।'

सौदा सौत के बारे मे स्वामी के इस भद्दे मंतव्य से खुश न हुई, बल्कि झुंझलाहट-सी दिखाकर बोली, 'अब तो यह कहोगे ही ! उस बेचारी का सारा गूदा खाकर अब छिलके को खींचकर फेंक देने की बात तुम्हारे ही मुंह से शोभती है। यों ही क्या कहा है—"मर्द तितली की जात के होते हैं !" '

मुखर्जी इससे शर्मिंदा नही हुए, बल्कि फेक्-फेक् करके हंसते हुए बोले, 'तो यह दोष विधाता का है। उन्होंने जिस जात को जिस ढंग से बनाया है। लेकिन जो भी कहो बड़की, मैं भी तो इतने-इतने बच्चों का बाप हुआ हूं, तिसपर दो-दो लड़कियों की शादी की, नाती के अन्नप्राशन में धूम-धाम की—दुनिया का सारा करण-कारण करता जा रहा हूं और सूअरों की यह टोली पाल रहा हूं। मगर ज़रा भी टसका हूं। रूप और जवानी को रखना जानना चाहिए !'

और फिर हाथ बढ़ाकर सौदा के गाल में हलका-सा मारकर बोले, 'लेकिन यह तुमको नहीं सुनाना चाहिए। तुम भी जानती हो। नही तो तुम भी कुछ मामा के यहां सोने की खाट पर शरीर और चादी की खाट पर पैर रखकर बैठी नहीं रहती थी। दासीगिरी करते ज़िंदगी बीती, मगर कैसी चिकनी हो ?'

सौदा इस स्तुति से भूलेगी ?

कि बोल उठेगी, इस बूढ़ी की उम्र में तुम उसके मन की ओर न ताककर चिकनेपन की तरफ ताक रहे हो ?

लेकिन कहे भी कैसे ?

सौदा के इस तुच्छ शरीर की तरफ ही कब किसने ताका है ? इसी आदमी ने तो मार-मारकर उसे घर से निकाल बाहर किया है। उस समय सौदा की उम्र थी और तंदुरुस्ती कैसी थी, रूप भी कुछ बुरा नहीं था।

स्वभाव कैसा हंसता-खेलता-सा था !

सौदा उस समय समझती नहीं थी, हो सकता है अभी भी नहीं समझती, वह अगाध स्वास्थ्य और रूप ही उसकी बुराई का कारण हुआ। हंसी भी ! घर में उस समय ढेरों आदमी थे, जेठ, देवर, बड़े-बड़े मानजे—उनकी नजरों के सामने से उस रूप और स्वास्थ्य को छिपाए फिरने की बात उसके दिमाग़ में नहीं आती थी। इसी से उसके जाबिर पति के माथे का लहू टगबग करके खौलता था।

इसलिए रात-दिन उस देह को मुट्ठी में पीसने की इच्छा होती थी उस डकैत की, उसे वह फुटबाल की तरह लात मार-मारकर घर से बाहर कर देता था।

सौदा के रूप है, स्वास्थ्य है यह बात उसने कभी किसी के मुंह से नहीं सुनी।

उसके बाद गंगा में कितना पानी बह गया, कितने रात-दिन, महीना, साल गुज़र गए, सौदा की जवानी नाम की चीज़ बिना खबर दिए ही विदा हो गयी, फिर भी मंजी बनावट की देह उसकी वैसी टूटी नहीं। अब एक लालसातुर प्रौढ़ की लुब्ध दृष्टि उस पर पड़ी है !

यह दृष्टि पति की नहीं, पर-पुरुष की दृष्टि है। जवानी में निकाली हुई स्त्री को मुखर्जी आज चौदह आने पड़ी हुई मिली परायी स्त्री की ही तरह देख रहा है।

तो भी सौदामिनी विह्वल हो रही है।

जीवन में एकबारगी विह्वलता का स्वाद लेना ही पड़ता है।

लेकिन अपने घर ले जाए बिना सौदा के पति को सुविधा कहां ? सांझ को नए नायक की तरह आकर गप-शप कुछ दिन अच्छा ही लग रहा था, अब उतने से ही जी नहीं भर रहा है। और छोटी की सचमुच ही मरण-दशा हो आयी है।

कभी-कभार बड़ी बेटी ससुराल से आकर कुछ करती-धरती थी, अभी वह भी आसन्न प्रसवा है। मंझली बेटी तो इसी उम्र मां-मां षष्ठी की वरपुत्री है। उन्हें लाने का कोई लाभ नहीं। इसीलिए सौदा से निहोरा-विनती।

सौदा लेकिन सहज ही हां नहीं कर रही थी। कहती—'क्यों, अच्छा तो है। आते हो, बैठते हो, आखों देख लेती हूं···'

मुखर्जी आख दबाकर बोले, 'सिर्फ आखों देखने से पेट भरता है जी ?'

'पेट भरने की अब ज़रूरत नहीं !'

'तुमने तो कह दिया, ज़रूरत नहीं ! मैं तो इधर सालभर का उपवासी हूं ! इसके सिवा, कसम, महीने में पांच दिन वास्तव में पेट का-उपवास चलता

है। वह दईमारी यदि एक बार 'नहीं बनता है' कहकर लेट गयी तो फिर किस की मजाल जो उसे उठाए ! बाजार से मूढ़ी-चूड़ा लाकर इस रावण के परिवार का पेट भरना पड़ता है !'

सौदा ने पूछा, 'और खुद ?'

'खुद ? खुद के लिए मुहल्ले में ब्राह्मण का एक होटल है। वही सहारा। चार आने पैसे में...'

सौदा का मन डोल उठा क्या ?

जी में हुआ क्या कि जीवनभर तो हांडी ही ठेलती रही, लेकिन सार्थक रसोई कहां की ? पका-चुकाकर पति-पूत के सामने कहां रख सकी ?

पति-पूत के सामने परोसी थाली बढ़ाए बिना...

पूत ? उस घर में जो हैं, वे सौदा के पूत है ?

पूत ही हुए ! पति के ही तो हैं ! व्रत कथा में है—'जात को भात हो, सौत को पूत हो !'

मरने पर सौत का बेटा भी मुंह में आग देता है। ये सारी बातें सौदा के मन में चक्कर काटती, फिर भी वह आसानी से हारती नहीं। बोली, 'मैं अब नोबू की गिरस्ती डुबाकर किस मुंह से...'

'अहा-हा, उसकी गिरस्ती क्या डुबाओगी ? उसकी खेवैया तो बड़ी उस्ताद है ! यह तो चूंकि तुम हो, इसलिए घोड़ा देखकर लंगड़ी बनी बैठी है। तुम जाओगी कि आप ही सब करेगी !'

सौदा यह समझती है।

समझती है कि सत्य शरीर की कमजोरी से चुपचाप नहीं बैठी है, बैठी है मन की उदासी से। वह दईमारी छोकरी इसके प्राणों की पुतली थी। वह गयी। नोबू ने बहुत सख्त कसम दे दी है, इससे वहां जा-आ भी नहीं पाती। औरत कितनी भी सख्त क्यों न हो, पति का मरा मुंह देखने की कसम को तो नहीं टाल सकती ?

सोने के खिलौने जैसी वैसी लड़की जो हुई है, 'उसे भी सजाने-गुजाने का मन नही होता। सौदा चली जाएगी और जब अपने गले पड़ जाएगी तो सब कुछ करेगी।

लेकिन सौदा का जाना ! बहुत शर्मनाक ! बहुत !

अपने में कोट बैठे चिलम चढ़ा देना, पाव दबा देना और है और केंद्र से टूटकर अजाने राज्य में जा पड़ना और। कैसी है वह सौत, बच्चे-कच्चे कैसे हैं, कौन जाने !

वे सौदा को न सह सकें, तो ? फिर वहां वही लांछना हो, अपमान हो ?

उस दिन बातों-बातों में सौदामिनी यह संदेह जाहिर कर बैठी। मुखर्जी

ने लेकिन एक ही फूंक में उसे उड़ा दिया।

उन्होने भरोसा दिया, 'बाल-बच्चे ? अजी वही तो, "बड़ी मां को ले आओ, बड़ी मां को ले आओ" कहकर मेरी जान खा रहे है ! और सौत ? वह तो रात-दिन मौत की घड़िया गिन रही है ! कहती है, अपनी बड़की को ले आओ, उनके चरणों की धूल ले इन अभागों को उनके हाथों सौंपकर मैं मरकर जी जाऊं !'

पता नही क्यों, सौदामिनी की आंखों में आंसू आ गया। वह आंसू पोछकर बोली, 'तुम मर्द बड़े निर्दयी होते हो ! इतने दिनों से उसके साथ घर कर रहे हो, प्राणो में जरा भी माया नही !'

'अजीब है ! माया नही है ? कि माया थी नहीं ? आज तक उसके ग्यारह-ग्यारह बच्चों के जन्म में किसने सब-कुछ किया ? किसने उसकी हिफाजत की ? उसके आने के बाद से ही तो सब जुदा है ! मां छोटे बेटे के साथ रही, उसके बाद मरी ! मैं सदा का दुखिया हूं ! नहीं तो तुम मेरी ब्याहता हो, फिर भी तुम पर ज़बरदस्ती नही कर पाता, भिखमंगे की तरह दया की भीख मागता हूं !'

'रहने दो, मेरा पाप और मत बढाओ !' सौदा ने कहा, 'सौत तो खैर मरकर जीना चाहती है, मगर बच्चे सौतेली मां को क्यों चाहते हैं ?'

'क्यो ? समझती नही ?' मुखर्जी ने स्वर को करुण किया—'मां के स्नेह की *आशा से, समय पर दो मुट्ठी भात की आशा से !'*

तिल-तिल करके पत्थर भी घिसता है, यह तो अपने आप गली हुई बलुआही माटी ठहरी। आखिर एक दिन सौदामिनी ने सर झुकाकर कहा—'खैर ! तुम नोबू से कहो, मैं अपने मुह से नही कह सकूगी !'

नोबू को भी सत्य से कहने मे कठिनाई हुई। किसी तरह से सकपकाकर कह गया, 'मुखर्जी तो मेरी जान खाए जा रहे हैं !'

सत्य ने सिर्फ आखें उठाकर ताका। उसी मे सवाल था।

नवकुमार ने झट-झट मुखर्जी के घर की बुरी गत का जिक्र करके एक विचार की बात कहकर बात समाप्त की। 'ऐसी हालत मे दीदी को न भेजना हमारे लिए बुरा न होगा ? ऐसा नही लगेगा कि हमने स्वार्थपरता से उसे रोक रखा है !'

सत्य ने शात भाव से कहा, 'रोक रखने की बात ही कहा आती है ? वह तो वही जाने के लिए कलकत्ता आयी है !'

'वही जाने के लिए !'

नवकुमार को काठ मार गया था। सत्य की अकृतज्ञता के लिए उसने उसे धिक्कार दिया। यहा जो उसने हड्डीतोड़ मेहनत की, सो कुछ नही ? दीदी

पहले से यह जानती थी कि मुखर्जी बाबू से भेंट होगी ? वे इसकी इतनी खुशामद करेंगे ?

लेकिन मन मे उठती हुई इन बातों को नवकुमार कह नहीं सका। बोला, 'खैर, तो वही कह देता हूं जाकर ! जानता हूं, तुम्हें कुछ कष्ट होगा !'

'मुझे कष्ट होगा !'

सत्य ने कहा, 'मुझे किस बात से कष्ट होता है, किससे नही, काश तुम्हें इसका बोध होता ! खैर, छोड़ो ये बातें ! मुखर्जी बाबू से कह दो, कोई अच्छा-सा दिन देखे !'

४४

जगन्नाथ के रथ के पहिए घडघड़ करते हुए बढ़ते जाते है—कभी बालू मे धंस जाते हैं। लाखों लोगों के हाथ धंसे हुए रथ की रस्सी को खीचने के लिए बढ़ आते हैं। वर्ग-विचार नहीं।

मनुष्य के हाथों जगन्नाथ की मुक्ति है।

रूपक के रूप में देवता का रूप।

जगन्नाथ का रथ युग का प्रतीक है। युग के पहिए की गति भी कभी खूब तेज, कभी मंद होती है। उस मंदता की मुक्ति भी मनुष्यों के ही हाथों होती है। जनगणेश के जागरण मे युग का जागरण है।

तो भी यह कहना ही पड़ेगा, युग का देवता जरा शहरगंधी है। शहर तेजी से आवर्तित होता है, गाव छाहघिरे आंगन मे पड़े सोते है। शहर की हवा जब तक गाव में पहुंचती है, तब तक शहर उस हवा को छोड़कर नयी ही हवा के पीछे दौड़ता होता है।

लेकिन शहर और मुफस्सिल क्या महज मानचित्र के वर्गमीलो पर निर्भर है ? शहर और मुफस्सिल क्या एक ही घर मे वास नही करते ? जागते और सोते ? आदमी-आदमी के मन की बनावट मे क्या फर्क नही है ?

मन की बनावट मे भी शहर-मुफस्सिल होता है, नही तो जमाने के चक्के के आवर्तन से सत्यवती क्यों ऐसी अधीर होती है, चंचल होती है, आंदोलित होती है और नवकुमार को उस आवर्तन की खबर तक नही होती ?

सत्यवती तो घर मे रहती है।

नवकुमार तो बाहर घूमता है।

नवकुमार बाहर घूमता है यानी नवकुमार बाजार जाता है, मोदी की दुकान जाता है, निताई के यहां ताश खेलने जाता है, सौदा के यहां खोज-खबर

लेने जाता है। यह बाहरी दुनिया नवकुमार की है।

और सत्यवती ही ऐसा क्या करती है ?

वह भी तो तरकारी बनाती है, मसाला पीसती है, रसोई पकाती है, वरी बनाती है, मूढ़ी भूनती है, अचार बनाती है। किताब, पत्र-पत्रिका पढ़ती है। इत्ती-सी खिड़की।

खुली खिड़की।

यही खिड़की सत्य को बाहर की खबरें ला देती है।

यह खिड़की खुली रखने का सहाय उसका छोटा बेटा सरल है। मा से उसकी दुनियाभर की बातें होती हैं, किस्सा-कहानी। किताब जुटाने के मामले में बड़ा उत्साही है।

नवकुमार को इसकी खबर नहीं।

वह किसी-किसी दिन ताश के अड्डे से सुनी कहानी लाता है और जोश मे धिक्कार देता है, 'यह गजब सुना ! औरतें विलायत जा रही है ? काहे को तो बी० ए०, एम० ए० पास करने ! विद्या के पहाड़ की चोटी पर चढ़ना चाहिए ! दिन-दिन कितना क्या होगा !···सुना, पिरीली परिवार की कौन वहू तो···'

सत्य ने कहा, 'चुप भी करो !'

नवकुमार ने विचलित स्वर में कहा, 'बाबा, बुड्ढा हो गया, जी खोलकर गप-शप करना कभी नसीब न हुआ !'

सत्य ने कहा, 'गप-शप करो न ! अपनी पहुंच के लायक गप करो ! बाज़ार के दर-दाम की बात, कायथ-देवर की बीवी ने क्या खिलाया, उसकी बात, दफ्तर के बड़े बाबू की गप-शप···!'

नवकुमार ने झुंझलाकर कहा, 'देश की और दस की बात करने की मुझे मनाही है, क्यों ?'

'मनाही कैसी ! खुद समझ-बूझकर कहो ! तुम तो दूसरों के मुंह से तोता खाते हो !'

नवकुमार ने तुनककर कहा, 'मुझे समझने की भी जरूरत नहीं, बूझने की भी जरूरत नही ! तुम और तुम्हारे विद्वान् बेटे बातें करो ! आओ सुवर्ण, हम-तुम बात करें !'

सुवर्ण ! हा, सोने के खिलौने-सी बिटिया को यही नाम तो सोहता है। चारेक साल की हो गयी। बाप की बड़ी दुलारी है।

मैना-सी बोलती है।

इसी बीच माटी के बरतन-भाडे लेकर पकाने-चुकाने का खेल सीख गयी है। कहती है, 'बाबू जी, आओ, भात खाओ !' कहती है, 'मैं मा की तरह

रसोई कर सकती हूं। नहीं वाबू जी ?'

नवकुमार सत्य को सुना-सुनाकर बोला, 'सो करना बिटिया, मगर मां की तरह गुसैल मत होना !'

ऐसे ही दिन बीत रहे थे। कुछ मंथर गति से।

उस मंथरता से हठात् एक दिन हलचल आयी। वह हलचल आयी सत्य के घर से भागे हुए दोस्त नेड़ू की मूर्ति लेकर। दोस्त ही कहिए। नेड़ू को उसने भैया कहा ही कब ? नेड़ू शायद सत्य से छः महीने का बड़ा है। सत्य इसे नहीं मानती। आज भी नहीं मानती।

रुंधे गले से वह बोल उठी, 'नेड़ू ? तू ?'

नेड़ू हंस पड़ा। बोला, 'यकीन नहीं आ रहा है ? नेड़ू का भूत लगता है ? संदेह मिटाने के लिए चिकोटी काटकर देख !'

'भूत कहे तो गलत न होगा ! कम-से-कम रंग तो भूत जैसा ही कर लिया है ! अच्छा, पके बेल-सा अपना वह रंग का क्या किया तूने ?'

नेड़ू हो-हो करके हंस उठा, 'क्या लग रहा है ? बेच खाया ? सो बीच-बीच में वह हालत हुई कि बाल, नाखून, हाथ, पाव बेचकर खाऊं। बेच पाता तो रंग भी जरूर बेचता ! बेचने का है नहीं ! धूप में झुलसकर ही...'

नेड़ू के इस मजाक में ही उसकी हालत साथ जाहिर हो गयी। और समझ में आते ही सत्य की आंखो में पानी भर आया।

लेकिन उस पानी को आंखो मे ही रोककर सत्य अपने बीते दिनो के समान ही झंकार उठी, 'अपनी हालत को खूब तो बयान कर रहा है ! मैं पूछती हूं, अचानक भाग जाने की क्या सूझी तुझे ? ऐसा हाल बनाकर घूमते फिरने में क्या मिल रहा है ?'

बहुत अवस्था की छाप पड़े नेड़ू के काठ हुए-से चेहरे पर बिजली की चमक-सी कौंध गयी। उसी दमके मुह से वह बोला, 'क्या मिल रहा है ? वह अवश्य तुम लोगों के पाई-पाई वाले हिसाब मे नही आएगा, उसे 'अदृश्य-वस्तु' कह सकती हो ! लेकिन मिला तो है ! भगवान का राज्य यह संसार कैसा है, उसका कुछ तो आस्वाद मिला है !'

नेड़ू के इस जवाब से सत्य क्या चौंक उठी ? उसका चेहरा क्या एकाएक राख जैसा सफेद हो गया ? कोई क्या सत्य को किसी बड़े भारी नुकसान की खबर दे गया ? जिससे सत्य के चेहरे पर उद्‌भ्रांति की छाया पड़ी ?

सत्य को बोलने मे कुछ क्षण लगे। शायद उसने बड़ा-सा एक निःश्वास दबाया।

बोली, 'पैदल चलकर दुनिया का कितना देखेगा, बता तो ?'

नेड़ू ने दोनों हथेली उलटकर एक खास अदा से कहा, 'लो भला !

अरे, धरती की सारी मिट्टी को रौद-रौदकर धरती को देखने का इरादा थोड़े ही किया है ! बात यह है कि जानी-चीन्ही दुनिया की चौहद्दी के बाहर कदम बढ़ा पाने से ही एक-दूसरी दुनिया है, समझी ? उसका मजा ही और है ! तुम संसारी इसे बेहाल कहोगी, मगर मैं कहूंगा, मजे मे चल रहा है ! *भोजनं यत्रतत्र, शयनं हट्ट मंदिरे*—यह क्या कम मजा है ? कभी रोटी मयस्सर हुई, कभी नही ! कभी सिर पर छाह रही, कभी पेड़ तले !···कभी किसी से एक लोटा पानी मागने पर वह मुह बना लेता है और कभी कोई शकल देखकर ही भूखा ब्राह्मण समझकर अनुरोध करके बुला ले जाता है, जतन से खिलाता है ! दुनिया के कैसे-कैसे खेल ! कितने ढग के लोग, कितने रंग के बाजार !'

सत्य हा किए नेड़ू की अभिनव अभिज्ञता की कहानी सुनती रही। गजब है ! वही बुद्धू नेड़ू, जो सदा का कृपापात्र रहा, एकाएक ही मानो सत्य की पहुंच से बाहर चला जा रहा है।

चुपचाप एक नि.श्वास फेंककर सत्य ने पूछा, 'खूब अच्छा लगता है न रे, नेड़ू ?'

अपने रूखे बालों को मुट्ठी से दबाते हुए नेड़ू ने कहा, 'अच्छा बेजा की नही जानता और ही एक जीवन ! और क्या ! कुम्हार के साचे के बर्तनो जैसा *एक ही ढंग-ढाचे का नही, अपने हाथों का बनाया जैसा भी हो एक ढाचा पाना*—यही बात ! तुम सब कहोगी—बेपेंदी का, घुमक्कड़ ! कहोगी, अहा, कितनी तकलीफ है ! मैं मन ही मन हसूगा। कहूंगा, ऐसा बेपेंदी का, ऐसा घुमक्कड़ बनकर देखो, उसका मजा समझोगे !'

सत्य फिर एकबार झनझनायी, 'खूब तो हाक रहा है ! मैं कहती हूं, औरतें तेरी तरह घुमक्कड हो सकती हैं ? मर्द होकर पैदा हुआ है, मनमाना करने का सुख पाया है ! बाबूजी भी तो घर चल से दिए थे···'

नेड़ू ने उंगली उठाकर कहा, 'वही तो ! चल दिए थे इसीलिए जैसा चाहिए, आदमी बन सके थे ! गाव मे पड़े रहते तो मेरे बाबूजी जैसा ही होते !'

'ऐ नेड़ू, पितृनिंदा करता है ?'

'निंदा-फिंदा मैं नही जानता सत्य, मैं दो टूक कहना जानता हूं। खैर, तेरा क्या हाल है, बता !'

सत्य ने जरा उदास होकर कहा, 'मेरी रहने दे ! औरत होकर जन्मी !'

नेड़ू बोल उठा, 'नाः, देखता हूं, तू भी रोना-गाना सीख गयी ! ऐसी तो नही थी तू ! औरत आदमी ही नही होती, यह कहते ही तो तू आपे से बाहर हो जाती थी !'

सत्य ने तो उसी अंदाज मे कहा, 'सो तो आज भी जाऊंगी, लेकिन तुझे

देखकर ही मानो रोना-गाना आ रहा है ! कहां था तू, क्या था ? झूठ नहीं कहूंगी, माथा मोटा समझकर तुझे जरा दया की नज़र से ही देखा करती थी, लेकिन अब लगता है, तेरा ही दिमाग़ सबसे महीन है ! इसीलिए तुझे आदर की दृष्टि से देख रही हूं ! खैर ! ज्यादा नहीं कहूंगी, कहने से अहंकार होगा ! लेकिन इतना जरूर है, ईश्वर अगर मुझे औरत न बनाकर मर्द बनाता, तो तेरी तरह घर ही छोड़ती ? जाने दो, जब नहीं हुई, तो भगवान की भूल की टीका-टिप्पणी क्यों करूं ? हा, मेरे घर का पता कैसे पाया, सो तो बता ?'

हां, वही तो !

घर से भागा हुआ लड़का इतने दिनों के बाद सत्य के यहा आ कैसे पहुंचा ?

यह लगभग दैव की कृपा से ही हुआ ।

सवाल-जवाब से जो मालूम हुआ, वह यह कि नेड़ू कुछ दिन हुए, घूमता-घामता कलकत्ता पहुंचा । आज सबेरे वह कालीथान में बैठा था । इत्तिफाक से सत्य वहा पूजा करने गयी थी ।

व्रत-त्योहार होने से ही जाती है ।

ऐसा जाया करती है सत्य ।

आज अष्टमी का उपवास था, गयी थी । नेड़ू ने इसे देखा । लेकिन रास्ते मे या मंदिर के चौंतरे पर तो किसी बहू से बात नहीं की जा सकती । सो वह सत्य से अलग-थलग पीछे-पीछे आया । मकान देख लिया । सत्य के साथ मुहल्ले की कोई महिला थी । वह गयीं कि नेड़ू ने दरवाज़े के कड़े खटखटाए ।

सत्य पड़ोसिन को रुखसत करके किवाड़ लगाकर पलटी ही थी, बरामदे पर भी नही पहुंची थी । सोचा, वह महिला ही कुछ कहना भूल गयीं या उनकी कोई चीज़ चली आयी है । निश्चित मन से ही उसने दरवाज़ा खोला और खोलते ही अचकचाकर दो कदम पीछे हट आयी ।

रूखे भूरे-बिखरे बाल, तांबे-सा जला रंग, हड्डी उभरा चेहरा, दुबला शरीर । लंबाई के अनुपात में चौड़ाई बहुत कम । और उस लंबाई के कारण ही पहनावे की धोती छोटी लग रही थी । रंग मलीन, बंद गले का कोट भी मानो उसके नीचे के काफी हिस्से को वंचित करके अचानक थम गया था ।

हाथ में कनवास का एक पोर्टमेंट—उसे हिलाते हुए वह मुसकरा रहा था। सत्य को अचानक कोई इस हालत मे देख ले तो क्या कहेगा या कह सकता है, उसका ख्याल तक न करके वह हा किए खड़ी ही रही । आखिर वह आदमी हंसकर बोल उठा, 'क्यों रे सत्य, तो तू पहचान नहीं सकी !'

लेकिन सत्य ने पहचान लिया । ठीक उसी वक्त पहचान लिया । और

आकस्मिकता की उस घड़ी में ही रुंधे गले से बोल उठी, 'नेड़ू ? तू ?'

नेड़ू बरामदे पर जाकर जमकर बैठ गया। बोला, 'गनीमत कि पहचान गयी ! चोर-छिछोर समझकर दरवाजा नही बंद कर लिया, यही बहुत है !'

सत्य ने फजीहत के सुर में कहा, 'बंद ही कर देती तो तू मुझे दोष नहीं दे सकता ! जो शकल बना ली है, चोर-छिछोर से भी बदतर ! तुझे देखकर खुश होऊं कि रोऊं, समझ नही पा रही ! यह अभी से कहे देती हूं, यहां से तुरत जाना नहीं होगा, मेरे पास रहना !'

नेड़ू ने हंसकर कहा, 'तेरे हाथ की रसोई खा-खाकर मोटा हूंगा ?'

'हो ही गा तो ! झूठ है क्या ?' सत्य ने तेजी के साथ कहा, 'कुछ यहां खा-सोकर तंदुरुस्ती ठीक कर ले ! इस ताल से चलने से ज्यादा दिन घूमकर दुनिया देखना नही नसीब होगा !'

सत्य के कहे को नेड़ू एकबारगी नही टाल सका। कुछ दिन रहा वहां। खुशी-खुशी ही था। दोनों जून खाने बैठता तो रसोई की तारीफ में पंचमुख हो उठता। कहता, 'नः, जैसा देख रहा हूं, बहनोई के यहां से तू मुझे हिलने नही देगी सत्य ! अपनी तरकारी, कटहल का डालना, मछली के शोरबे में बाधकर यही रख देगी !...जीजाजी का शरीर अभी भी लड्डू-गोपाल जैसा कैसे रह गया है, यह समझ रहा हूं !...लड़कों को बुलाकर कहता, तुम सबने जो जननी-रत्न पाया है, लाख में ऐसी एक नही मिलती !'

सत्य मुग्ध होकर सुनती। घर छोड़कर रास्ते-रास्ते घूमने से नेड़ू की बातचीत का ढंग कैसा अजीब-सा बदल गया है। यह भाषा, यह सुर नित्यानंदपुर का नही है। बारुईपुर में क्या ऐसे सहज सुर और हलके चाल की बात सुनी है उसने ? या कि कलकत्ता में ?

नः, नही सुनी।

सत्य के देखे हुए लोग मानो आंखों के आगे भीड़ लगा बैठे। कोई चंचल, कोई गंभीर, कोई व्यस्त, कोई मंद। कोई भयंकर तो कोई हास्यकर। हंसी से उज्ज्वल, कौतुक से सहज अथच भावहीन और निर्लिप्त कहां है कोई ?

नेड़ू की बात सुनने के लिए ही सत्य जल्दी-जल्दी हाथ का काम निवटा लेती, लड़के पहले ही अपना पढना पढ़ लेते। सत्य के लड़के भी उसी जैसे मंत्रमुग्ध थे। नेड़ू देश-विदेश की गप्पें कहता, अनुभव की सुनाता। खूब रसीला बनाकर कहता—

'टेंट में पैसे नही, पेट में भात नही ! फिर भी मुह से हार नही मानने का ! धर्मशाले के उस आदमी से कड़ककर कह रहा हूं—मैं पकाता नहीं, चुकाता नही, इससे तुम्हारा क्या भैया ? तुम्हारे धरमशाले की ऐसी कोई लिखापढी है कि पकाना ही पड़ेगा, खाना ही पड़ेगा ? वह आदमी बिल्कुल

गरुड़ का अवतार था, समझा ? हाथ जोड़कर कहता, जी लिखापढ़ी तो कुछ नहीं है, लेकिन आप ब्राह्मण है, मेरी आखों के सामने बिना खाए पड़े रहें, यह मैं कैसे देखूं ? देख तो रहा हूं कि आप रसोई नहीं करते, खाते नहीं है ! बाहर से पूरी-कचौरी भी नहीं लाते हैं···'

मैंने कहा, 'व्रत है !'

कमबख्त तो भी नाछोड़ बंदा । बोला, 'कौन-सा व्रत ?'

मैंने और भी गंभीर होकर कहा, 'वह तुम नहीं समझोगे !'

'ऐसा कौन-सा व्रत है कि फल, दूध, गंगाजल लेना भी मना है ?'

मैंने झुझलाकर कहा, 'इतनी कैफियत क्यों दू तुम्हें ! ठीक है, मैं और किसी धर्मशाला में चला जाता हूं !' गोकि समझ गए, मन ही मन सोचने लगा, अरे बाबा, इतनी पूछताछ के बजाय ला दे न एक दर्जन केला, कुछ मीठे आम, सेरभर मलाई और आठेक गंडा पेड़े···

बातो के बीच ही में साधन और सरल लोटपोट हो जाते थे । सरल कुछ जोड़ भी देता—'बारह गंडे चमचम, एक टोकरी गरम जलेबी···'

'हा, कुछ बेजा नहीं कहा,' नेड़ू कहता, 'उस समय लग रहा था, विश्व-ब्रह्माड खत्म कर दू ! मगर टुच्चा बाम्हन बनने को भी तैयार नहीं ! लेकिन क्या बताऊं, उस दिन वह आदमी ले ही आया—बड़े लोटे में एक लोटा खूब गाढ़ा गरम दूध, और इत्ता बड़ा-बड़ा चार केला ! बोला, यह खाने से आपका व्रत नहीं नष्ट होगा ! और मैं समझा, जैसे उसपर कितनी कृपा कर रहा हूं, इस ढंग से सब चट कर गया ! चट करने लगा और सोचने लगा, और भी कुछ क्यों नहीं ले आए भले आदमी !'

ये हंस उठते ।

इस महफिल में कभी-कभी नवकुमार भी शामिल होता । इस घुमक्कड़ साले पर उसे भी खासा स्नेह हो आया था । सत्य से चुपचाप कहता, 'अजी, इसे कायदे से रोककर कोई लड़की-वड़की देखकर ब्याह करा दो न ! फिर देखो कि हजरत कैसे मारे-मारे फिरते हैं !'

सत्य कहती, 'छोड़ो भी, घूमे ! एक आदमी न हो दुनिया से बाहर ही हुआ ! ब्याह करके सबको घर-गिरस्ती करनी ही पड़ेगी, ऐसी तो कोई लिखा-पढ़ी नहीं है न !'

'अहा, संन्यासी होता तो बात थी ! यह न तो गेरुआ, न संसारी !'

'सो हो !'

नवकुमार कहता, 'तो और क्या कहूं ?' उन सबकी बैठक में जाकर कहता, 'हा भई, कौन-कौन-सा तीर्थ किया ?'

नेड़ू कहता, 'तीरथ-बीरथ कुछ नहीं किया, तीरथ-धरम के लिए सिर भी

नही खपाया ! लेकिन भ्रमण में निकलना ही तीरथ है ! दुनिया में जहा भी जितनी शोभा और सौंदर्य की जगह है, मनुष्य ने मजे में वहीं एक-एक तीरथ बना दिया है !'

सत्य ने पूछा, 'अंत में तू कहा से लौटा ?'

'काशी से ! काशी अवश्य पहले भी गया था ! पहले तो काशी ही गया था !'

'काशी ? फिलहाल काशी गया था ?' सत्य ने रुंधे गले से कहा, 'बाबूजी से मुलाकात की थी ?'

'बाबूजी ? यानी मंझले चाचा ? काशी गए है ?'

'गए क्या भाई ! सदा के लिए गए ! वे काशीवासी हो गए !'

'ऐं !'

'और फिर कह क्या रही हूं ?'

इसी एक प्रसंग मे नेड़ू गंभीर हो गया। धीरे से उसास लेकर बोला, 'पता नही था न, नही तो खोजकर भेंट करने की कोशिश करता ! नित्यानंदपुर में मंझले चाचा नही हैं, यह मानो सोचा ही नही जा सकता है रे सत्य !'

सत्य ने जवाब नही दिया। नजर नही उठायी। सुवर्ण को गोदी में दबाए बैठी रही।

किसी समय पुन्नू का जिक्र आ गया।

नेड़ू एक बेला के लिए पुन्नू के यहा श्रीरामपुर भी गया था। एक बेला से ज्यादा रह नही सका। वह तो ऐसी घरनी बन गयी है कि देखकर नेड़ू का प्राण हाफ उठा था। नेड़ू जितनी देर वहा रहा, पुन्नू उसे उपदेश और धिक्कार ही देती रही।

'दुनिया कितनी बदली जा रही है !' सत्य निःश्वास छोड़कर बोली, 'छुटपन की बातें तुझे याद नही आती नेड़ू ?'

'आती हैं ! आएंगी क्यों नही ! लेकिन बात क्या है सत्य, एक तो तू इकलौती बेटी, तिसपर मंझले चाचा और मंझली चाची जैसे बाप-मा ! तेरी याद और मेरी याद मे अंतर है ! मैं चौदह भाई-बहिनों मे एक !'

'उससे क्या ? तू तो गोदी का था !'

'दुर्-दुर्, आदमी कि मुरगी-बतख !'

ऐसी बातों से शर्मिंदा होकर सत्य दूसरा प्रसंग छेड़ देती। शायद हो कि पुन्नू का ही जिक्र—'पुन्नू वैसी ही दुबली है कि मोटी हुई है ? बाल वैसे ही घने हैं या नही ?'

'बाल ?'

नेड़ू हस उठा, 'इतनी दूर तक सिर गंजा और उसपर इतना सिंदूर !

हूबहू संझली दादी ! मैंने कहा, 'दंडौत मा शीतला, अब नहीं !'

सत्य हंसी, 'अरे तू तो वैसा बुद्धू-सा था, इतनी बातें कहां सीखीं तूने ?'

नेड़ू ने कहा, 'हवा-बतास मे ! जितना ही आदमी देखेगा, उतनी ही बुद्धि बढ़ेगी !'

बड़े मौज में था नेड़ू ।

सच तो यह कि दस-बारह ही दिन मे सेहत बनती जा रही थी । रंग बदल रहा था, बनावट बदल रही थी । डेढ़ेक महीने रहने से दुबला और लंबा नेड़ू मोटा-ताज़ा हो जाता । लेकिन वह रहा नही । एकाएक बोल पड़ा, 'अब नहीं रे सत्य, तेरे यहां जड़ें निकलने लगीं, अब भाग खड़ा होऊं !'

सत्य चौंक पड़ी । बैठ गयी ।

'भाग खड़ा होगा ?'

'भाग नही खड़ा हूगा तो क्या बहनोई के यहां मौरूसी पट्टा लिखाकर वास करने के लिए आया हू ?'

सत्य की आरज़ू-मिन्नत, सत्य के लड़कों का दर-दस्तूर, नवकुमार का आग्रह-अनुरोध—सबको ठुकराकर कैनविस का बैग उठाकर नेड़ू ने कदम बढा दिया । सिर्फ जाते समय बोला, 'दे-दे बाबा, अपना नारियल का लड्डू एक गठरी बाध दे ! सड़ने की चीज़ नहीं है । कुछ दिन तक चलेगा । जब भी खाऊंगा, तुम लोगों की याद आएगी !'

नारियल के लड्डू ही नही, आसू बहाते हुए एक बेला में सत्य ने बहुत-कुछ बना दिया था ।

तिल के लड्डू, खोए का पेड़ा, मूग की बरफी, गाजा, मुड़की ! ज़ोर-ज़बर-दस्ती सब उसके बैग में भर दिया । और सिर की कसम देकर छिपाकर उसके हाथ मे दस रुपये खोंस दिए थे ।

घुमक्कड़ नेड़ू की भी आंखें भर आयी थी या नहीं, आखों को ही मालूम ! लेकिन गला जो भर आया था, इसका पता सत्य को चल गया था । रंग उड़े उस कोट की जेब में वे कई रुपये रखते हुए बोला, 'यह तू थी सत्य, इसलिए ले लिया । और किसी की मजाल नही थी कि हमको…'

सुवर्ण को गोदी उठाकर खूब लोकालोकी की ओर चल दिया ।

सत्य के निस्तरंग जीवन में नेड़ू मानो एक बड़ी लहर उठा गया । दिनों तक नेड़ू का प्रसंग घर मे गूंजता रहा ।

दिनों तक अनमनी-सी बनी रही । हमउम्र बल्कि थोड़ा बड़ा ही शायद—इस भाई पर क्यो जो वात्सल्य जैसा स्नेह जग उठा था, क्या जानें ! लेकिन उसी में गोया श्रद्धा, सम्मान और भक्ति मिला एक अनोखा भाव था ।

बेचारा नेड़ू !

उसके घुमक्कड़ जीवन-दर्शन ने उसे सत्य की नज़रों में एक महान् नाटक के महिमान्वित नायक के रूप मे स्थापित कर दिया।

४५

दिन बीतते रहे, रातें बीतती रहीं।

आजकल संघर्ष कम है।

क्योंकि सत्य का एक काम बढ़ गया है। वह काम है सुवर्ण। उसमें शायद वह अपने जीवन की संपूर्णता देखेगी।

और इधर नवकुमार की भी लख्ते जिगर!

नवकुमार ने आवाज़ दी, 'ऐ, अपनी बेटी की बोली सुन रही हो!'

सत्य ने भवें नचाकर कहा, 'तुम्ही सुनो!'

नवकुमार हंसा, 'मेरी तो, उसकी मा की बोली सुनते-सुनते ही जान गले तक आ गयी है! है न?'

सत्य हंसी, 'तुम्हारे जमाई की तकदीर में विधाता ने कौन-से हरूफ लिखे हैं, देखो!'

नवकुमार ने दिल्लगी की, 'जो हो, कमबख्त ससुर से तो वेशक अच्छा होगा! बेटी को मां विद्यावती बना डालेगी!'

यह सब मज़ाक ही है। संघर्ष नहीं!

गिरस्ती की तपती रेती में सुवर्ण मानो एक टुकड़ा शीतल छांह हो। अच्छा, लड़कीमात्र ही क्या यह छांह है?

जभी लड़की को लक्ष्मी कहते है? श्री कहते हैं? कम से कम सुवर्ण के मामले में यह सब सार्थक हुआ है। इसी से सत्य के जीवन में थोड़ी बुझी हुई-सी शाति आयी है।

हां, लड़कों के कॉलेज की पढ़ाई के मामले मे एक बार ठनी थी, मगर टिकी नही। नवकुमार ने कहा, 'लड़कों ने ऐंट्रेंस पास कर लिया,' सुनकर साहब तो बेहद खुश हुए। कहा, "दोनो लड़कों ने एक ही साथ पास किया? गुड्! नवकुमार बाबू, अपने रहते-रहते मैं उन्हें दफ्तर मे चिपका जाऊं···"'

बीच ही मे सत्य ने कहा, 'पागल!'

'पागल! पागल माने?' नवकुमार अवाक् हो गया था। सोचा था, यह खबर देते ही साहब के बड़प्पन पर देर तक चर्चा होगी। और, दफ्तर के दूसरे सहयोगी नवकुमार की इस खुशकिस्मती पर कितने जल उठे हैं, इस पर कह-कहे होंगे।

लेकिन चिराचरित विरोधी नीति से सत्य ने इस खुशखबरी पर भी लापरवाही का झपट्टा मारा। बोली, 'पागल !'

नवकुमार ने कहा, 'पागल माने ?'

'माने ये अभी नौकरी नही करेंगे, पढ़ेंगे !'

'पढ़ेंगे ? और कितना पढ़ेंगे ? पढना तो नौकरी के लिए ही है, वह नौकरी ही जब मिल रही है···'

सत्य ने नवकुमार पर शीतल दृष्टि डालकर कहा, 'नहीं, पढ़ना नौकरी के लिए नहीं, आदमी बनने के लिए है। और··· साधन वकील बनेगा, सरल डॉक्टर !'

चांद छूने की कामना !

नवकुमार ने तीखे स्वर में कहा, 'कहां दोनों लड़के दो मुट्ठी रुपया घर लाएंगे, सो नही; गांठ की रकम खर्च करके दोनों को विद्या-दिग्गज बनाना होगा ! चौपट बुद्धि और किसे कहते है !'

'उनकी पढ़ाई में अब तुम्हें एक भी पैसा नही खर्च करना होगा !'

'मुझे नहीं करना पड़ेगा, वल्लाह ! आखिर पैसा आएगा कहां से ?'

सत्यवती ने कहा, 'ये लड़के पढ़ाकर कॉलेज की फीस जुटाएंगे !'

यह कहकर सत्यवती बात खत्म करके चली जा रही थी, नवकुमार व्यंग्य से बोल उठा, 'गला दबाने से दूध निकलेगा—इन्हें मास्टरी कौन देने लगा ?'

सत्य हंस उठी, 'हाय राम, दफ्तर में नौकरी दिला रहे थे···'

'वह इनकी शकल देखकर नहीं, मेरी खातिर···'

'तो यह समझ लो, वह खातिर मेरी भी कही है !'

'होना कोई अचरज नहीं !' नवकुमार ने गुस्से से कहा, 'डूबकर तुम क्या पानी पीती फिरती हो, तुम्हीं जानो ! सात मर्दों के कान काट सकती हो तुम !'

वह बिगड़ा तो था, पर यह भी जानता था कि हार निश्चित है। अंतिम कोशिश, अफसोस।

'साहब को कौन-सा मुंह दिखाऊंगा, यही सोचता हूं।'

'सोचना कुछ नही है ! कहना, उनकी मां की इच्छा उन्हें और भी पढ़ाने की है।'

'यह कहने का मतलब होगा, मैं बीवी की बात पर चलता हूं !'

'यही सोचे, तो भी कुछ बेजा बात नही !' सत्य हंस उठी थी—'उनके समाज में बीवी ही सर्वेसर्वा होती है ! वे लोग बीवी की ही बात पर उठते-बैठते हैं !'

'हां, उनके मुल्क में जाकर तुम सब देख जो आयी हो !'

सत्य फिर ज़रा हंसी, 'सब-कुछ क्या आंखों देखकर ही सीखते है ? आंखों देखे बिना सीखा नहीं जाता ?'

आखिर लडके कॉलेज में दाखिल हुए। सुवर्ण मा की गोद में अ-आ सीखने लगी।

सौदा बीच-बीच में घूमने आती। देखकर गाल पर हाथ रखती—'रत्ती-भर की बच्ची को तुम अच्छर सिखाती हो बहू ! पाच साल से पहले विद्या नही छूते !'

सत्य मुसकराकर बोली, 'सो लड़को को नही छूना चाहिए ! लड़कियो के लिए भी नियम ! इसका तो तुम लोग अक्षरारंभ नही कराने दोगी !'

'सो अपनी बुढापे की लाड़ली के बल्कि वही कराती। तुम्हारा तो सब-कुछ वदन के ज़ोर पर होता है।'

सौदा भी हंसी। वह सदा हंसती है। अभी भी उसकी हंसी में कमी नहीं है। हां, ढंग बदला है।

सौदा के शरीर पर मोटापा चढ़ा है, चेहरे पर परितृप्ति की मंथरता। वह कहती—'मेरा बड़ा लड़का, मेरा मंझला लड़का···' कहती—'मेरी मंझली लड़की शायद ससुराल से आएगी !'

तो, सचमुच ही सौदा की सौत चल बसी ?

उसी परलोकगामिनी के राजपाट पर यह राजगिरी ?

नही, सो नही !

सौदा की सौत ज़िंदा है, बल्कि अच्छी ही है। बीमारी कुछ ठीक हुई है, चेहरे की रौनक वदली है। रात-दिन कहती है, 'दीदी, तुम आयी कि मैं तर गयी !' कहती है, 'उस कसाई के हाथों तमाम ज़िंदगी जल-जलकर मरती रही हूं। जलन किसे कहते हैं, यह तुम्हारे आने से पहले कभी नही जाना। गरीब घर की मा-वाप हीन लड़की, लोगों ने पार लगाया था कि दूर कर दिया था—तुम शायद उस जनम की मां थी मेरी !'

सौदा हंसकर कहती, 'जा, मर जा ! किसे क्या कहना चाहिए यह नहीं जानती ? सौत को मा ?'

लेकिन सौदा सच ही सौत का लड़की से ज्यादा जतन करती। जिसने इतनी वड़ी एक दुनिया सौदा को भोग करने के लिए दी है, उसका एहसान नहीं मानेगी वह ?

मुकुंद कहते है, 'क्यों जी, देख रहा हू, तुम तो असाध्य साधन कर सकती हो ? लाश को मज़े मे जिला दिया !'

'लाश क्यों होगी ? तुम्हारी लापरवाही से जतन बिना घुन लग रहा

था !' सौदा झनकी, 'सूखे पेड़ में भी नियम से पानी डालो तो फूल लगते हैं, समझा ?'

'सो तो समझा' मुकुंद ने जैसे एक रहस्यपूर्ण भाव से कहा, 'सौत कांटा को जिला रही हो, उलटे तुम्हीं को तो नहीं चुभेगी ?'

सौदा बोली, 'सौदामिनी चुभने की परवाह नहीं करती ! कांटों की सेज पर ही तो जिंदगी बीती !'

मुकुद ने जैसे गलकर कहा, 'इसीलिए अब सोचता हूं, आज तक करता क्या रहा ? ऐसी एक सुघड़ घरनी के रहते'''

सौदा जरा अनमनी हुई ।

बोली, 'मामी-मामा के लिए कुछ कष्ट होता है। मामी तो बदन नहीं हिलाना चाहती थी। अब गत हो रही होगी !'

मुकुंद ने तेजी के साथ कहा, 'बेटा, बेटे के बहू कि होते यदि गत हो तो कहना होगा, दुर्भाग्य है। वह जिम्मेदारी तुम्हारी नहीं !'

'नहीं है, यही कैसे कहूं। बुरे दिनों के आश्रयदाता तो है। मामी ने नहीं अपनाया होता तो कहां वह जाती, कौन जानता है !'

ये बातें मुकुद के लगी ।

इसलिए वह और भी तेज़ दिखाते हुए बोले, 'अपनाया उन्होंने तुम्हारे लिए नहीं था, अपने लिए ! और फिर जहां जिसका जितने दिनों का दाना-पानी हो, कोई मिटा नहीं सकता ! शास्त्र का कहा है !'

शास्त्र की यह बात आने के बाद और तर्क करने का साहस सौदा को नहीं हुआ। या फिर बड़े दु:खों के बाद अंतिम पन्ने के इस आश्रय को खोने का डर हो।

मामी-मामा की याद आने से जी कैसा नहीं करता, ऐसी बात नहीं, लेकिन फिर वहां जाने की सोचकर भी रोंगटे खड़े हो जाते है ।

रोंगटे सभी के खड़े होते है ।

नवकुमार तक अब शहरी जीवन की सुख-सुविधा का ऐसा आदी हो गया है कि गाव जाने का नाम तक नहीं लेता ।

लेकिन अब वह निश्चिन्त जीवन नहीं रहा। खबर आयी, नीलांबर बाबू मरण-सेज पर हैं ।

खाने के बाद हाथ धोकर घाट से लौट रहे थे कि गरदन झुक गयी और बेहोश होकर गिर पड़े। कोई कहता है, संन्यास रोग है ! कोई कहता है, भूत लगा है ! लेकिन जीने की उम्मीद कम है ।

सुनकर नवकुमार फफक-फफकर रोने और आज तक कभी उसने बेटे का

फर्ज जो अदा नहीं किया, इसके लिए विलाप करने लगा। उस विलाप में ऐसी बू थी कि स्त्री के चलते ही कर्त्तव्य में त्रुटि हुई, अकृतज्ञता हुई।

सत्य एक छोटे से वक्से में कुछ कपड़े रख रही थी, नवकुमार के शोक को बढ़ते देखकर उठ आयी। सख्त होकर बोली, 'बीवीपरस्त का तो ऐसा होगा ही। ऐसे मर्द की तुलना भेड़े से की जाती है। रोकर हाट लगाने से अब क्या होगा ? तुरत जिसमें चल सकें, ऐसा इंतज़ाम करो। रोने का बहुत समय मिलेगा इसके बाद !'

नवकुमार ने गला साफ करके कहा, 'मैं तो बस रवाना हो रहा हूं !'

'तुम्हीं नही, मैं भी जाऊंगी !'

'तुम ! तुम जाओगी ?'

'अवाक् क्यो हो रहे हो ? बात अचरज की लग रही है, क्यों ?'

'नही, मतलब कि तुम ऐसे अचानक कैसे जाओगी ? उनका इम्तहान करीब है···'

'उनका इम्तहान वे देंगे अपना ! इससे मेरा जाना कैसे रुकता है ?'

'अहा, आखिर उन्हें खाना-पीना तो देना होगा ?'

'दोनों भाई मिलकर कर लेंगे ! मैंने सब समझा दिया है !

यानी जो इंतज़ाम करना था, इन्ही कै घंटों में सत्य ने सब कर लिया था।

नवकुमार हां-हां कर उठा, 'वे कर लेंगे ? मतलब कि दूसरी आफत को बुला लाना ! सबमें जबरदस्ती ! इससे तो दो दिन सौदा के पास रहें···'

'नहीं !'

'नही क्यों ?'

'इतना बताने का अभी मुझे समय नहीं है !'

''ठीक है ! कुटुंब के यहां अगर एतराज है, तो निताई की स्त्री दाल-तरकारी दे जाए, ये लोग थोड़ा चावल उबाल लेंगे···' -

'अरे बाबा, छोड़ो भी ! छोटी-सी बात को इतना तूल मत दो ! मैं जब तक वापस नही आ जाती, भात-ही-भात खाएगे !'

नवकुमार ने कहा, 'कै दिन रहना होगा, पता भी हो ? कुछ हो-हवा जाए तो ?'

'होना होगा सो होगा ! पहले से सोचने से कोई लाभ नही !'

सौदा आयी।]

सूखे चेहरे से बोली, 'मैं भी तुम लोगों के साथ चलू ?'

सत्य ने एकबार उस उदास चेहरे की तरफ देखा।

सोचा, 'यह उदासी क्या सिर्फ निकट आत्मीय के जीवन-मरण की चिंता से है ? या और कुछ ?'

सत्य ने क्या समझा, क्या जानें ?

बोली, 'नहीं ननदजी, तुम्हें अभी जाने की जरूरत नहीं ! हम लोग तो जा ही रहे हैं !'

'तो भी, अपना भी तो फर्ज है !'

सत्य बोली, 'रहने दो ! बहुत-बहुत समंदर पार करके अभी-अभी तो माटी मिली है ! अभी इधर-उधर नहीं…'

सौदामिनी को ताज्जुब हुआ। इस तरह की बात तो सत्य के मुंह से दुर्लभ है। सौदा का सौत के यहां जाना सत्य को पसंद नहीं था, यह क्या वह नहीं समझती ? फिर ?

फिर क्या, सत्य खुद भी सोचती।

सोचकर ठीक नहीं कर पाती कि सौदा के प्रति उसका घृणा और धिक्कार का वह भाव चला कैसे गया ? कब गया ? अभी तो वह देखती है, उस जगह पर करुणा है, ममता है !

सदा की ठुकरायी हुई सौदा के चेहरे पर परितृप्ति की छाप ने ही क्या उसके मन को गला दिया है ?

या उसकी आज की मातृमूर्ति को देखकर सत्य ने यह महसूस किया कि कितनी वंचित थी बेचारी !

मन की बात मन ही जाने, लेकिन आजकल सत्य सौदा पर ममता करती है। अभी भी की।

सत्य ने उसके बारुईपुर जाने के प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया, इस कृतज्ञता से सौदा की आंखों में पानी आ गया। उसने आंखें पोंछकर कहा, 'मामी सोचेंगी, कितनी स्वार्थी है सौदा…'

सत्य बोली, 'जान देकर भी कोई किसी का सोचना और बोलना बंद नहीं कर सकता ननदजी, इसके लिए जी छोटा न करो ! लड़के दोनों रहे, जरा ख्याल रखना !'

सौदा ने शिकायत के सुर में कहा, 'ख्याल रखने की गुंजाइश ही कहां रख जाती हो बहू ? सुना, खुद से पकाने को कहे जा रही हो ! क्यों, फुआ के पास दो दिन खाते तो उनकी जात जाती ?'

सत्य जरा देर चुप रही। 'जात जाने की बात नहीं भाई, मैं उन्हें सिर्फ यह सिखाना चाहती हूं कि अपना भार आप ही ढोना चाहिए। ये लड़के जिसमें अपने बाप की तरह सारहीन न हों !'

टोले के कुछ पुरनिए लोग बाहर-भीतर कह रहे थे और अंदर औरतें सौ मुंह से एलोकेशी के पुत्र-भाग्य की निंदा कर रही थीं।

एलोकेशी को भी इसमें शुबहा नहीं रह गया था कि उनके गोबरगणेश बेटे को वह हरामजादी नही आने देगी। बेटे के होते हुए भी बेटे के हाथ की आग नहीं मिलेगी, यही रोना रो रही थी, उनकी देह में प्राण के रहते हुए भी...।

इतने में दौड़कर किसी ने खबर दी, 'आ गए, आ गए !'

'कौन ? कौन आया ? मेरा नोबू ?'

'नोबू और बहू, दोनों !'

'बहू आयी ?'

एलोकेशी निराश हुईं क्या ? भगवान जानें ! लेकिन वह रोगी को छोड़कर घर के बाहर जा खड़ी हुईं।

बैल गाड़ी से उतरकर जैसे ही उन दोनों ने आंगन मे कदम रखा कि चीखकर रो पड़ीं, 'हाय रे अभागा नोबा, अब आखिरी वक्त तू बाप का मरा मुह देखने आया ? आया तो आया, अकेला क्यों नहीं आया ? इस मायाविनी राक्षसी को क्यों ले आया ? क्या देखने आयी है यह ? मजा ? सदा की रौबवाली सास का घमंड टूटना देखने आयी है ? चूड़ी-सिंदूर छिनना देखने आयी है ?'

गले में आंचल डालकर सत्य प्रणाम कर रही थी। उठकर शांत गले से बोली, 'विपद के समय धीरज नही खोना चाहिए मा, धीरज धरना चाहिए।'

लेकिन नीलाबर उस बार मरे नही। यम ने दांत बैठाया और फिर छोड़कर चला गया। दांत का वह दाग रह गया। कमर से नीचे का हिस्सा लकवा मार जाने से बेकार हो गया।

कविराज ने कहा, 'इस रोग का यही लक्षण है। तुरत गया तो गया, नहीं तो लकवा !'

लेकिन टोलेवालों ने गाल पर हाथ रखा। कहने लगे, 'एलोकेशी के चूड़ी-सिंदूर का जोर धन्य है ! नही तो संन्यास रोग से कोई कभी उबरता है ?'

कोई-कोई कुछ हताश भी हुए।

वे लोग यह कल्पना-जल्पना कर रहे थे कि विधवा होने पर पतोहू कैसा व्यवहार करेगी, कलकत्ता में मोटी तनख्वाह पानेवाला लड़का बाप के श्राद्ध में कैसी धूम करता है। बहरहाल यह देखने का सौभाग्य नही हुआ। बुड्ढा अब दो पतले-पतले पांव और बेबस कमर लिए कब तक जिएगा, कौन जाने !

कविराज ने तो कहा है, 'ऐसी हालत में काफी दिनों तक टिके रहते देखा गया है।'

नवकुमार की छुट्टी खत्म हो चुकी। गैरहाजिरी चलने लगी। लेकिन अब

ऐसे कब तक चलेगा ? आड़-ओट में एक दिन उसने यह बात उठायी ।

आड़ में, क्योंकि अब रात को भेंट हो नहीं पाती । सत्य सुवर्ण को लेकर ससुर के बगल वाले कमरे में दोनों कमरे के बीच के किवाड़ को खोलकर सोती है ।

लिहाजा दिन ही में···

सत्य घाट जा रही थी । अमरूद के नीचे की झाड़ी में नवकुमार ने उसे पकड़ा ।

सत्य ने हाथ छुड़ा लिया ।

नवकुमार ने अप्रतिभ होकर कहा, 'तुम तो डूमर का फूल हो गयी हो । जरूरी बातें भी तो हैं !'

सत्य ने कहा, 'कहो !'

'कहता हूं, अब बोरिया-बसना समेटो ! छुट्टी तो कब की खत्म हो चुकी । साहब की चूंकि अच्छी निगाह रहती है, इसी हिम्मत से इतने दिन गैरहाजिर रह गया ! लेकिन हद भी तो देखनी है !'

सत्य ने सिहोड़ के बेड़े से घिरे और कांटों की झाड़ियों से भरे प्रांगण पर एक नजर डाली । एक बार धूप से झलमलाते आसमान की ओर ताका, उसके बाद नवकुमार की ओर देखकर बोली, 'हद से बाहर करने की भी क्या पड़ी है ? दुर्गा-दुर्गा कहकर निकल पड़ो !'

'निकल पड़ो कहने से ही तो निकलना नहीं होता, पोथी-पत्रा देखना होगा, घर में मा के पास रहने के लिए एक दाई को ठीक कर देना होगा ! तुम्हें बता दे रहा हूं ! मां से भी तो यह कहना होगा !'

सत्य ने शांत गले से कहा, 'साहब के दफ्तर की नौकरी है, छुट्टी खत्म हो जाने पर एक दिन भी नही रुका जा सकता—यह बात एक नन्हा बच्चा भी समझता है ! मां को समझाना ही क्यों पड़ेगा ?'

'क्यों क्या ! जानती नही हो, मां सदा की नासमझ है। तुमसे जितना बनता है, दाई से उतना करते नही बनेगा, यह ठीक है ! तो···'

'दाई से कराने की क्या जरूरत ? मेरी तो आफिस की छुट्टी नहीं खत्म हुई है ! मैं तो कही चली नही जा रही हूं न !'

नवकुमार आसमान से गिर पड़ा ।

'तुम नहीं जा रही हो ?'

'नही ! इस स्थिति में मैं कैसे जा सकती हूं ?'

'समझा ! जाना कर्त्तव्य न होगा ! मगर उधर ? लड़के बेचारे कब तक खुद पकाकर खाते रहेंगे ?'

'जब तक उनके दादाजी चंगे नही हो जाते हैं !'

'हो चुके चंगे ! यह चंगा होने की बीमारी है ? पड़े-पड़े सिर्फ दिन गिनना !'

सत्य हंसी, 'आखिर दिन तो कोई अकेले बैठकर नहीं गिनता ! अपने सगे, बेटा-बेटी को दिन गिनने का संगी बनना पड़ता है !'

'गर्ज कि तुम यहां रहोगी ?'

'फिलहाल तो जाने की बात सोची नहीं जा सकती !'

नवकुमार आंखों से अंधकार देखने लगा। अथाह समंदर में गिर पड़ा।

सत्य ऐसा गजब का संकल्प किए बैठी है, यह तो वह सपने में भी नहीं सोच सका था। बल्कि उलटा ही सोचा था। सोचा था कि सत्य कलकत्ता जाने को पाव पर खड़ी है, बस प्रस्ताव करने भर की देर !

लेकिन यह क्या !

नवकुमार ने पहले तो उसके इस इरादे को गलत बताकर उड़ा देना चाहा। उसके बाद खुशामद शुरू की। बच्चों का ख्याल करने की कही, अपने दफ्तर जाने के समय के खाने-पीने की बात कही और आखिरी हथियार के हिसाब से कहा, 'अगले महीने से सुवर्ण को स्कूल भेजने की कही थी तुमने उसका क्या होगा ?'

सत्य ने स्थिर गले से कहा, 'नही होगा !'

'नहीं होगा ! शौक पूरा हो गया ?'

सत्य ने दृढ़ता से कहा, 'शौक की कहते हो ? कर्त्तव्य से शौक बड़ा नही है !'

नवकुमार ने फिर खुशामद शुरू की। बार-बार समझाने लगा, 'किसी अच्छे आदमी को ठीक कर दें तो मां मजे में चला लेगी !'

'ऐसा नहीं होता !'

'लेकिन मैं अगर कहूं कि मैं सुवर्ण को छोड़कर नहीं रह सकता ?'

'यह बेकार बात है। छोड़कर नही रह सकता—ऐसी कोई बात नही है दुनिया में ! कितने ही कारण से छोड़ना पड़ता है !'

नवकुमार रुआसा-सा हो गया !

'पति की, बेटी की एकबारगी फिक्र नहीं ? बाबूजी तो अभी…'

'पागलपन क्यों करते हो ? मान लो यह बीमारी मुझे ही होती…'

तर्क का रास्ता छोड़कर नवकुमार ने और ही उपाय अपनाया। कहा, 'यदि मेरी या लड़कों की अचानक तबीयत खराब हो जाए ?'

सत्य ने कहा, 'यदि वैसा ही हो, नसीब में वही लिखा हो तो मैं क्या करूंगी ? रोक लूंगी ?'

'रोक नहीं लोगी, सेवा तो कर सकोगी ?'

'अजीब मुश्किल है ! इतना सोचते ही क्यों हो ? अच्छे-खासे तंदुरुस्त हो, तीनों बाप-बेटे मिलकर रहोगे, खाओगे, इसमे चिंता की क्या बात है ? और यदि वैसी जरूरत ही पड़ जाए, तो ननदजी तो वहां है ही !'

नवकुमार ने इस बार खिजलाकर कहा, 'तो तुम्हारी ननदजी ही कलकत्ता में बैठी मौज क्यों मनाएं ? वह आकर अपने मामा की सेवा नही कर सकतीं ? सारी जिंदगी तो यही बीती…'

सत्य खीजी। बोली, 'अपनी जिम्मेवारी औरों के कंधे लादने का गलत इरादा क्यों ? यह काम मेरे करने का है कि उनके ?'

नवकुमार ने आग-बबूला होकर कहा, 'उसका भी कुछ कम कर्तव्य नहीं है यह ! जिस मामा ने रोटी-कपड़ा देकर आज तक पाला…'

'रुको-रुको ! ऐसी छोटी-नीची बातें मत कहो ! रोटी-कपड़े को कहते हो न, उसकी कीमत भी वसूल कर ली गयी है ! और कही काम-काज करती होती तो अन्न-वस्त्र के अलावा कुछ पूंजी भी जमा हुई होती !'

सत्य सदा की दो टूक सुनानेवाली है। साफ कहने से वह नहीं डरती।

लेकिन नवकुमार तो अकेला जाने को सोचकर आखों से अंधेरा देख रहा हैं। इसलिए फिर भी तर्क से बाज नहीं आता। बोला, 'एक दिन था कि सास-ससुर की शक्ल देखना भी नहीं चाहती थी, अचानक इतनी श्रद्धा-भक्ति कहां से उमड़ आयी ? कहा, और कुछ नहीं, दफ्तर के बंधे वक्त की रसोई करते-करते जी ऊब गया है, इसीलिए गांव मे उस पाबंदी का न होना अच्छा लग रहा है ! डर भी दिखाया—लड़के अब बड़े हो गए है। मा की नजर से ज्यादा दिन दूर रहने से अपना स्वभाव-चरित्र भी बिगाड़ ले सकते हैं !'

और भी उलटा-पुलटा बहुत-कुछ कहा। पर सत्यवती अटल रही। लड़कों के स्वभाव बिगड़ने की बात पर बोली, 'यदि वैसे लड़को को पाला है, तो अपने हाथों उनके खाने में जहर मिलाकर मार डालूंगी और खुद भी फांसी लगा लूंगी।'

गर्ज़ कि नवकुमार को अकेले ही लौटना पड़ा। सुवर्ण 'बाबूजी-बाबूजी' करती हुई रास्ते तक दौड़ी आयी और रोते-रोते लौट गयी।

नीलांबर बाबू के लिए अब हरदम जीने-मरने की समस्या नहीं है, लिहाजा इन दोनों के गरमागरम वाद-विवाद के मूल रहस्य को जानने के लिए एलोकेशी घर के बाहर कटहल के गिरे हुए पत्तो को साफ करने लगीं। लेकिन कमबख्त उम्र का यह हाल कि कान बहरे होकर बैर वसूलने लगे। ठीक-ठीक समझने नहीं दे रहे थे।

लाचार पूछना पड़ा, 'नोबा से इतनी कहा-सुनी काहे की हो रही थी ?'

सत्य ने जवाब नही दिया, सो नही। जवाब दिया। बोली, 'बेटा-पतोहू

की निजी बात सुनकर आप क्या करेंगी मां जी ?'

एलोकेशी ने कमर का फेंटा बांध लिया। बोली, 'तेरे मन के भीतर का हाल जानना बाकी नही है। अधमरे ससुर को छोड़कर कलकत्ता जाने के लिए कलह कर रही थी। मैं समझती नहीं हूं ?'

सत्य ने लगभग हंसकर ही कहा, 'आप भला क्यों नहीं समझेंगी ? पुरनिया हुई—दुनिया में कितना कुछ देखा !'

'देखा बहुत, मगर तुम जैसी दूसरी नही देखी ! और अपने इस भेड़े-सा लड़का भी दूसरा नही देखा। माथे चढाकर ले जाएगा न !'

सत्य ने धीमे से कहा, 'नही ! अकेले ही जाएंगे !'

एलोकेशी के होठो पर मुसकराहट-सी झलकी। यों वह पाजी चाहे जितनी हो, काम-काज मे बड़ी चौकस है। जब से आयी है, एलोकेशी को उधर उलट-कर देखना नही पड़ा है। ऐसा कठिन रोगी, यह गिरस्ती, गाय-गोरु, पेड़-पौधे—झमेला भी तो कम नही है !

इसके सिवाय उसकी लड़की पर ममता हो आयी है। वह चली जाएगी सुनकर हाथ-पांव पटकने का जी हो रहा था। नही जाएगी, यह सुनकर वह अपनी खुशी छिपा नही सकी। उन्होने सत्य के सामने ज़ोरों से यह घोषणा कर दी कि उसका बेटा सदा का माता-पिता का भक्त है। लोगों से कहती फिरने लगी, 'जाने के लिए हरामज़ादी उछल रही थी ! नोबा ने सुना ही नही ! मुंह पर लात मारकर अकेला ही चला गया। उफ्, उसके लिए जो झगड़ी कि पूछो मत !'

सत्य चुपचाप सुनती रही। अपना काम करती रही।

सत्य की हमउम्र भी है कोई-कोई टोले में। पहले वह सब शहरी कहकर इससे चिढ़ती-जलती थी, परहेज करती थी, पर जब देखा कि नवकुमार उसे छोड़कर चला गया और सत्य उन सबकी तरह ही जीवन-यात्रा में निर्मूल चल रही है, तो साहस करके वे सब अपनत्व दिखाने आयीं।

वे सब भी निरी नन्ही नही थी, किसी के दो-एक दामाद हो चुके हैं, किसी-किसी के नाती-नतनी हैं। सत्य को ज्यादा उम्र मे बाल-बच्चा हुआ, वह भी पहली संतान रही नही, दूसरा और तीसरा लड़का ! गोदी की इस लड़की का शादी-ब्याह कब होगा, क्या पता ! इसी से सत्य के जीवन में परिणति नही आयी है।

वह सब इसीलिए परिणत बुद्धि से कहती—'बाप रे, खूखार सास हमने बहुत देखी है, मगर तुम्हारी सास जैसी सास नही देखी ! उफ्, क्या बद-ज़बान बोलती है !'

सत्य बोली, 'बुढ़ापे में लोग ऐसा बोलते हैं ! हम भी बूढ़ी होंगी, तो ऐसा

ही बोलेंगी ! उन पर नाराज होने से लाभ क्या है !'
कुछ दिनों मे घमंडी कहकर वे सब सत्य से दूर हो गयी।

धीरे-धीरे महीना बीता। महीना बीतते-बीतते बरस।
नीलांबर एक ही स्थिति मे है। न जिदे, न मरे। और उनके साथ और भी एक जनी कर्त्तव्य के नाते जीवन्मृत होकर पड़ी है।
नवकुमार बीच-बीच में छुट्टी-छपाटी में आता है। लड़के भी आते हैं। लेकिन उन्हें यह विश्वास नही रह गया कि नीलांबर के जीते जी सत्य को ले जाया जा सकेगा।
नवकुमार ने राय दी, 'भूत लगा है उसे, भूत! रात-बिरात पिछवाड़े के दरवाजे का जाना! बेलगाछ है, कटहल है!'
सच ही तो, भूत लगे बिना भी कोई आप अपना सिर ऐसे खा सकता है? अपने पैरों कुल्हाड़ी मार सकता है?
भूतवाली बात ही शायद ठीक है। जो सत्य बेटी को स्कूल में दाखिल करने के लिए, वह पांच साल की हो जाए, एक-एक करके दिन गिना करती थी, वह अचानक ऐसी निर्विकार कैसे हो गयी?
कर्त्तव्यबोध के बंधन को तोड़कर यहां से भाग जाने की इच्छा क्या सत्यवती को ही नही होती थी? पर दोनों कुल बचाकर चलने की सोचती थी वह। सोचा, खुद ही पढ़ा-पढ़ाकर सुवर्ण को दर्जा दो के लायक कर लेगी। लेकिन एलोकेशी ने यह मनसूबा बिगाड़ देने को कमर कस ली।
जहां देखा कि सत्य उसे पढ़ाने बैठी है कि उनके बदन में आग लग जाती। किसी न किसी बहाने पुकार कर उसे उठाकर ही रहतीं। सुवर्ण कभी स्लेट लिए बैठी तो, 'फेंक, हटा इसे' कह-कहकर बेचारी की नाक मे दम कर देती। और भी चालाकी चलने लगी। सुवर्ण पढ़ने बैठी कि बोली—'सुबन्ना, तेरे दादाजी तुझे बुला रहे है!'
सुवर्ण मां की तरफ ताकती। मां आख की चिनगारी दबाकर कहती, 'जाओ! देखो, क्या कह रहे हैं!'
लेकिन गयी तो फिर घंटो क्यों लौटे। एलोकेशी आने ही न देतीं। उसे दादाजी का बदन सहलाने को बिठा देतीं। पोती को यह समझाने की कोशिश करतीं कि स्त्रियों के लिए पढ़ना-लिखना कितना बुरा काम है। इससे भी न चलता तो दोपहरभर उसे लेकर मोहल्ले में घूमने चली जाती।
कभी-कभी सत्य कहती, 'आप ससुरजी को छोड़कर चली जाती हैं, मैं धंधे में लगी रहती हूं, वे अकेले पड़े रहते हैं…!'
एलोकेशी अपना अप्रतिभ होना ढंकने को खीजतीं—'रहेंगे नही तो क्या

करेंगे ? कहावत है, नित्य नहीं को देवे कौन ! नित रोगी को देखे कौन ? फिर उस आदमी के पास बैठना ! जबान लड़खड़ाती है, रात-दिन मुंह से लार टपकती है, बात क्या करो ? सेवा क्या की जाए ? मुझे तो अब रुचि भी नहीं है ! जनमभर तो जलाया ही, अब पड़े-पड़े भी जला रहे है ! कहां, जो दईमारी यहां हमेशा घेरे रही, वह आकर सेवा नहीं कर पाती ?'

सत्य कभी शर्म से चुप हो जाती, कभी धीमे से पूछती, 'सेवा करने आए तो आप उसे घर में घुसने देंगी ?'

ऐलोकेशी गरज उठी, 'घुसने ? घर में झाड़ू नहीं है ? हंसिया ? इस बुड्ढे की नजरों के सामने झाड़ू मारकर ज़हर नही उतारूंगी ? अंग ही अवश हुए हैं, आखें तो है ! पिट्-पिट् करके देखेंगे !'

सत्य और कुछ नही बोली । और कोई जवाब नहीं दिया । ओट में सत्य सुवर्ण को पढ़ने के लिए डांटती ।

सुवर्ण कभी रोती । कभी छूटते ही जवाब देती, 'मैं क्या करूं ? दादीजी बुला लेती है ! पढ़ने पर गाली देती हैं ! ऐसी गुसैल हैं कि···!'

सत्य दिन-दिन अनुभव करने लगी, 'दादी की ओर ही बेटी का झुकाव है। उन्ही से हिल रही है ।'

लेकिन सुवर्ण का ही क्या कसूर ? प्रलोभन की सारी चीजें तो दादी के ही पास है । उनके साथ टोला घूमना, उनके साथ मंदिर मे जाकर बैठना, खाने का यह-वह और उन्ही के पास दुनियाभर के किस्से ।

रूपकथा ही नहीं, ऐसी-वैसी गप्पें भी ।

एलोकेशी कहती, 'तेरी मां की क्या खाहिश है, पता है ? कलकत्ता जाकर मेम के स्कूल में पढ़ा-लिखाकर तुझसे नौकरी कराएगी ! तेरा ब्याह नहीं कराएगी, गहने-कपड़े नही देगी, सिर्फ बिगड़ा करेगी और पढ़ाएगी ! मेरे पास रहेगी तो मैं तेरे लिए लाल टुक-टुक दुलहा ला दूगी, इतने-इतने गहने दूंगी, लाल रंग की बनारसी साड़ी दूगी ! ब्याह में धूमधाम कितनी करूंगी !'

उत्सुकता से अधीर बच्ची दादी से सटकर पूछती, 'कौन-सा गहना दोगी दादी ?'

एलोकेशी कहती, 'माथे में मुकुट, गले में सात लड़ी का हार, दानों की माला, तागा बाजूबंद, तावीज, कंगन, बाला, पाजेब···!'

सुवर्ण पिघलकर बोली, 'और जूड़े में फूल नही दोगी दादी ? उस पर की चाचीजी जैसा ?'

'हूं ! वह भी दूगी ! माथे में फूल ! कानों मे झुमका ! अब बता, मेरे साथ रहेगी कि मां के साथ कलकत्ता जाएगी ?'

कहना न होगा, सुवर्ण ने छूटते ही कहा, 'तुम्हारे ही पास रहूंगी !'

'तेरी मां रहने देगी, जब तो ! पीट-पीटकर ले जाएगी !'

'उंह, नहीं रहने देगी ! ले जाएगी ! तो मैं ऐसा रोऊंगी, ऐसा रोऊंगी कि आसमान फट जाएगा !'

एलोकेशी खिलकर बोलीं, 'वह तू कर सकेगी ? आखिर मां ही की तो बेटी है ! मां जैसी कुक्कुर, वैसी ही तू उसके लायक मुद्गर !'

काम तिल-तिल बनता रहा।

दिन-दिन चंद्रमा राहुग्रस्त होता रहा। और फिर मां को नितांत अपनी देखने का मौका ही कहा मिला सुवर्ण को।

निरी नन्ही थी, तो फुआ के पास, उसके बाद सत्य की उदासीनता से बाप के पास। बाप ने जाते वक्त कहा, 'तेरी मां ने तुझे मेरे साथ नहीं जाने दिया !'

मां के माने पढ़ना। जिस पढ़ने-लिखने को दादी देख नहीं सकती। सुवर्ण को भी जो मीठा नहीं लगता।

फलस्वरूप मां से ज़रा वैरी-भाव हो आया है और परिपूरक के रूप में दादी से बंधुभाव।

सत्य इस विनाश के रूप को देख पा रही थी।

पीड़ा से प्रायः रात में उसे नींद नहीं आती। बीच-बीच मे मन में यह प्रश्न भी उठता, 'मैंने क्या ग़लती की है ? उस समय नवकुमार के प्रस्ताव पर ही राजी हो जाना चाहिए था ?'

लेकिन किसे पता था कि मौत इस कुटिलता से सत्य के साथ व्यंग्य करेगी ? कौन जानता था, अनुभूतिहीन एक मांसपिंड भी हरगिज़ धरती की माटी को नहीं छोड़ना चाहेगा ?

फिर सोचती, 'छिः-छिः, यह क्या सोच रही हूं मैं ? ऐसा सोचने में भी प्रायश्चित की जरूरत है !'

आखिर सत्य एक सिद्धांत पर पहुंची। उसी सिद्धांत के नाते उसने नवकुमार को ख़त लिखा। लिखा, 'तुम दो-एक दिन की छुट्टी लेकर घर आ जाओ ! जरूर ! आकर सुवर्ण को साथ ले जाओ ! वहां स्कूल मे उसका नाम लिखा देना ! मैं जब तक नही आती, वह ननदजी के पास रहेगी ! मैं इस तरह से उसका इहकाल-परकाल नहीं नष्ट होने दे सकती ! ननदजी के पास ठीक ही रहेगी ! सच पूछो तो सुवर्ण तो उन्ही की है !'

नवकुमार को यही पहली बार चिट्ठी लिखी।

इससे पहले जो भी लिखा या लिखती है, सब लड़कों को।

पहला पत्र, लेकिन प्रेम-पत्र नहीं।

नवकुमार चिट्ठी लेकर सौदामिनी के पास गया और सत्य की अकल पर

खूब गाल बजाया। सौदा ने ही रोका उसे। कहा, 'बहू ने गलत क्या कहा है ? एक तरफ जड़ कि जीवंत रोगी, एक ओर गिरस्ती, और एक तरफ वह शरीर लड़की ! ऊपर से मामीजी के शहदसने वचन तो है ही ! कैसे पार पाए ? नहीं, नहीं भी तो डेढ़ साल हो गया ! न, तू जाकर उसे लिवा ही आ ! मैं रखूंगी ! अहा, उसे पढ़ाने के लिए मरती है बेचारी बहू !'

नवकुमार की जबान पर आ गया, 'इससे तो दो दिन के लिए तुम्हीं जाओ न, वह आ जाए···' पर बोल नहीं सका।

मुकुंद बाबू सामने बैठे ! अब सौदा इन्हीं जनाब की घरनी है, कुछ मामा के यहां पड़ी रहने वाली अभागिनी भानजी नहीं।

सो गरदन झुकाकर बोली, 'खैर ! आऊंगी !

लेकिन न दिखनेवाले देवता शायद उस समय अलक्ष्य में मौजूद थे—इसीलिए···

आखिर विधाता के कौतुक के सिवाय और क्या ?

इतने दिनों से मास का जो लोथड़ा परमायु खत्म न होने की ही वजह से धरती की थोड़ी-सी जगह छेके 'अजपा' का कर्ज अदा कर रहा था, उस लोथड़े ने एकाएक ऐसी एक घड़ी में अपनी बहुत वर्षों की दखल की हुई जमीन को छोड़कर राह ली, जो घड़ी कि एक चरम घड़ी थी।

बहुत-बहुत घास-फूस जलाकर, बहुत-बहुत निंदा सहकर, एलोकेशी के गाली-सराप सहकर जब सत्यवती किसी प्रकार से सुवर्ण को नवकुमार के साथ घर से बाहर निकाल सकी और क्षुब्ध-क्रुद्ध मौन नवकुमार ने मन ही मन प्रतिज्ञा करते हुए कदम बढाया कि सुवर्ण को लेकर माया-ममताहीन, संगदिल मा का नाम भुलाकर ही छोड़ेगा—ठीक उसी वक्त विधाता ने वह हंसी हंसी। उस हंसी के फलस्वरूप सहसा अपनी चीख से आसमान को फाड़ती हुई एलोकेशी घर से आकर आंगन में पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

उस विकट चीत्कार में से बातों को हृदयंगम करना कठिन था, लेकिन यदि यह संभव होता, तो सुना जाता कि एलोकेशी तुरत दम तोड़नेवाले पति को लक्ष्य करके कह रही है, 'अजी, हाथों लेकर मार डाला तुम्हें; बेटा और बेटे की बहू ने तुम्हें मार डाला !'

सत्यवती और नवकुमार को अंत तक कलंक ही उठाना पड़ा—उन्होंने नीलांबर को मार डाला ! आसमान सिर पर उठाती हुई एलोकेशी सबको समझाने लगी—'वह नतनी उनको प्राणों से प्यारी थी ! पति-पत्नी ने राय करके उसे खींचते-घसीटते हुए घर से निकाल लिया ! भला इसपर आदमी जी सकता है ? जैसे ही उसे निकालकर ले गए कि इधर छटपटाकर प्राण-पखेरू उड़ गए ! उड़े नहीं ? इतनी बड़ी चोट भी यह कलेजा सह सकता है ? रोग

से जर्जर पिंजड़ा, जी के कष्ट से चूर-चूर हो गया !'

जिसने सुना, उसी ने शहरी बेटा-पतोहू की हृदयहीनता पर दुर्-छिः की। किसी ने भी यह सवाल नहीं उठाया कि जी कैसा करने का जी नीलांबर को था कहां ?

बोधहीन अनुभूतिहीन जो एक जड मांसपिंड-सा दिनों से परमायु समाप्त होने की प्रतीक्षा में पड़ा था, उस आदमी के प्राण-पंछी की खबर एलोकेशी ने किस उपाय से पायी ? नवकुमार ने जब आकर 'बाबूजी-बाबूजी' कहकर पुकारा तो चेतना का ज़रा भी स्फुरण तो उस मांसपिंड में नहीं था !

यह सब सवाल किसी ने नहीं उठाया।

सत्य की संगदिली ही प्रधान हो उठी।

सो जो हो, निंदा तो सत्यवती की सहचरी है। समस्या दूसरी थी। वह समस्या बाद में आयी। बाप का क्रिया-कर्म तो नवकुमार ने अपनी शक्ति से बाहर ही किया। सत्य के कहे खुद न चाहते हुए भी उसे बहुत खर्च करना पड़ा। संढ़दग्गी, पंडित-विदाई, सौ ब्राह्मणों को जूता-छाता दान—बहुत-बहुत विधान निकाला था सत्य ने। मामा के श्राद्ध की धूम में सौदा भी आयी थी और वह अकेली ही नहीं आयी थी, स्वामी और दो बेटों को भी साथ लायी थी। राखढंकी आग जैसा सौदा का नसीब देखकर सब दंग रह गयी थी। इनके अलावा निताई और निताई की स्त्री भी इसी उपलक्ष में गांव से एकबार घूम गए। यहां तक तो सब ठीक ही रहा। मुसीबत आयी जाते वक्त।

अब तो सत्यवती के यहां रहने का कोई कारण नहीं रहा, लिहाज़ा वह जाएगी। लेकिन एलोकेशी के अकेले रहने का सवाल भी कोई ऐसा-वैसा नहीं। सत्यवती ने प्रस्ताव किया—'अबकी सास जी भी हम लोगों के साथ चलें !'

इस प्रस्ताव को सुनकर सौदामिनी ने आड़ में कहा, 'अरी ओ अक्ल की दुश्मन, ले जाने का मतलब तो सदा के लिए ले जाना है—यानी अपने संसार में बेर की लकड़ी की आग जला देना ! इतने दिनों तक तो अपने हाड़-मांस की गत करती रही, पति-पूत का बुरा हाल किया ! उसका ईनाम क्या मिला, बदनामी ! अब सास को माथे चढ़ाकर ले जा और वह तेरे कलेजे पर भात हांडी चढ़ाए !'

सौदा ने यह कहा था। लेकिन नवकुमार को मानो मुट्ठी में चांद मिल गया। मां की अगर ऐसी एक सुव्यवस्था हो जाए तो फिर चिंता क्या ? सत्य को सच ही सूझ-बूझ है, साहस भी है।

लेकिन एलोकेशी ने इस सुव्यवस्था पर कान नहीं दिया। उन्होंने बाप के

मरते न मरते घर की दीया-बाती बंद कराने के इस प्रस्ताव पर बेटे को धिक्कारा।

दीया-बाती ? उसके लिए अपने किसी को कह दे तो ?

एलोकेशी के लिए चुल्लूभर पानी !

जिन्हें देखकर उन्हें जहर उबल आता, उनकी शरण लेंगी ? और सदा के अपने स्थान को छोड़कर इस बुढ़ापे में अपनी शहरी बहू की सुख-सुविधा के लिए पिंजड़े में घुट-घुटकर मरने जाएंगी ? नवकुमार यह दुर्मति छोड़ दे।

तो ?

मसले का हल ?

हल और क्या, रात में मां के साथ रहने के लिए नवकुमार किसी स्त्री को ठीक कर दे और मां के शोक-संतप्त हृदय को शीतल करने के लिए अपनी बच्ची को छोड़ जाए। तुरत उसे छीनकर ले जाने से एलोकेशी भी बेशक अपने पति का ही अनुसरण करेंगी।

माथे पर हाथ रखकर नवकुमार ने कहा, 'सुन लिया !'

सत्यवती जाने के लिए सामान-बामान ठीक कर रही थी। ठीक करते-करते ही बोली, 'सुना तो !'.

'तो ?'

'तो क्या ? दम घुटकर मां मर जाएं, ऐसा तो नहीं हो सकता ! एक दाई का ही इंतजाम कर दो !'

'और सुवर्ण ?'

'सुवर्ण हम लोगों के साथ जाएगी !' सत्यवती ने मुख्तसर में कहा।

'सो तो जाएगी ! लेकिन एक तो बाबूजी के लिए ही अपनी बदनामी की हद न रही—तिसपर मां अगर सचमुच ही···'

'क्या ? जी कैसा करे और मर जाएं ?' सत्य जरा तीखा हंसकर बोली, 'तब तो सहमरण का ही पुण्य होगा। एक ही आग से जलकर दोनों की मौत !'

'मजाक कर रही हो !'

'पागल ! यह कोई मजाक है !'

'मैं लेकिन मां से नहीं कह सकूंगा !'

'तुम्हें नहीं कहना होगा, कहना होगा सो मैं ही कहूंगी !'

किंकर्तव्यविमूढ़ नवकुमार समझ नहीं पा रहा था कि ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए। मां जो कह रही है, वह युक्तिसंगत नहीं है। स्त्री जो कह रही है, वह कर्त्तव्य नहीं है।

तो ?

नवकुमार का एक काम था। सदा का काम। पहले सत्य की बात का प्रतिवाद करना। उमने वही किया। कहा, 'पितृहत्या का पातक बना, अब मातृहत्या का भी बनू ?'

सत्य ने कहा, 'आखिर उपाय क्या है ? विधाता ने तुम्हारे मुकद्दर में अगर यही सज़ा लिखी है तो मिलेगी !'

'सुवर्ण मात्र तुम्हारी ही नहीं ! उसपर दादा-दादी का भी हक है !'

'बेशक है ! लेकिन कितना है, इसके फ़ैसले के लिए तो तुम्हें कानून और कचहरी की शरण लेनी होगी !'

'क्या कहा ? क्या कहा ?'

'कुछ नही !' सत्य हाथ का काम करती हुई बोली, 'जो कहला रहे हो, वही कह रही हूं !'

'ससुर के वक्त तो कर्त्तव्य से मचल उठी थी, अब सास के वक्त ऐसा जंगी रुख क्यों ?'

'कारण समझाने का मुझे वक्त नहीं है ! सुवर्ण मेरे साथ जाएगी ! बस !'

सत्य की अतिम बात। इधर-उधर नहीं हो सकती।

दोनों लड़के मां के पक्ष में। इसलिए सत्यवती का पाया भारी है। कालेज की पढ़ाई का नुकसान हो रहा है, इसलिए लड़के चले गए। लेकिन जाते-जाते कह गए, 'मां जो कहेंगी, वही करना होगा !'

यह कैसी बेपरवाह बात ! बाप कुछ नही, मां सब-कुछ ?

नवकुमार ने यह बात उठाई थी, पर सत्य के व्यंग्य ने उसे रोक दिया। वह बोली, 'अहा-हा, इसमें बिगड़ने की क्या बात है ? मातृभक्तों का वंश है, मातृभक्त नही होगा ? मातृभक्त होना क्या बुरा है ?'

गरचे दिनों के बाद बीवी और बेटी को ले जाने में वह कृतार्थ हो रहा है, तो भी स्वभाववश यह तर्क, यह प्रतिवाद। और जैसा कि होता आया है, अंत तक सत्य की इच्छा ही विजयी हुई। कोई दो साल बाद पति के साथ बेटी का हाथ पकड़ करके सत्य ने ससुराल का चौखट पार किया।

उधर एलोकेशी लोट-लोटकर, सिर पीट-पीटकर रोती रही।

अब की लोगों ने लेकिन एलोकेशी के रवैये का वैसा समर्थन नहीं किया। बोलीं, 'बेटा-बहू साथ ले जाना चाहते थे, चली जाती। काली-गंगा का देश, कितना बड़ा तीर्थ ! जाने में रुकावट क्या थी ? बात भी सही है, लड़का आफ़िस छोड़कर बैठा तो नहीं रह सकता ! और बहू भी अपने पति-पूत, घर-गिरस्ती को छोड़कर बैठी नहीं रह सकती ! तो ? कभी अकेली ही मरी पड़ी

रहेगी और गांव वालों को सताएगी; और क्या ? और, लड़के ने यात्रा की, महागुरु निपात का साल, ऐसी मरण रुलाई से उसका अमंगल करना !'

अब तक एलोकेशी का हर प्रकार का आचार-आचरण समर्थन के योग्य था, पहली बार उसका व्यतिक्रम हुआ ।

कौन जाने, क्यों ? कारण कौन बता सकता है ?

एलोकेशी के अकेले रह जाने से टोले के लोगों पर कुछ ज़िम्मेदारी आयी, इसलिए क्या ?

या उतनी-उतनी बेवारिस जगह-ज़मीन, बाग-तालाब, पेड़-पौधों के सूक्ष्म लोभ पर आंच आयी, इसलिए ? फलों से लदे तीन-तीन बगीचे है एलोकेशी के, मछली भरे दो-दो तालाब । अलावा इसके इधर-उधर और भी कितना क्या ?

या कि एलोकेशी की बाधवियां लोभी नही है ? यह सिर्फ चिराचरित नियम का प्रभाव है । वैधव्य से स्त्री का बाज़ार-भाव कुछ घट ही जाता है । सधवा घरनी का दाम ही कुछ और होता है । पति के गुज़र जाने पर जो कुछ ज़ोर सो गले का ।

जो भी हो, बात यही है ।

यहां तक कि निताई की स्त्री भी नवकुमार से उस रोने की बात सुनकर सत्यवती की तरफदार हो गयी । हुई शायद इसलिए कि हठात् एक कारण से उसके मन की स्थिति अच्छी नही थी । श्राद्ध का भोज खाकर खुशी-खुशी ही बेचारी कलकत्ता लौटी थी । लौटते ही माथे पर गाज गिरी । सोचा नही जा सकता, ऐसा !

मां की अंतिम बेटी—उसकी सबसे छोटी बहन—कुछ ही दिन पहले उसका ब्याह हुआ था—उसके पहले ही दिन बेचारी की जान गयी । आयी तो देखा, भाई बैठा है । ज़ोर-ज़ोर से रो रहा है । उसने बताया, सास और पति ने मिलकर उसे मार डाला । मार ही डाला और मारकर सबसे यह कहा कि रात को घाट जा रही थी, गिरकर मर गई ।

सत्यवती और नवकुमार दोनों ही मातमपुर्सी में आए थे । यह सुनकर काठ हो गए । इन दिनों भाविनी ज़रा ओट रखकर नवकुमार से एक प्रकार से बोलती ही है । अभी शोक के समय वह बांध और टूट गया है ।

नवकुमार ने कहा, 'मार डाला ! अंधेर नगरी है क्या ?'

'और नही तो क्या ?' भाविनी ने आखें पोंछते हुए कहा, 'सभी खून की सज़ा है, मगर इस सड़े देश मे बहू के खून की सज़ा नही है ! उस बेटे की फिर तुरत शादी करा देगी दईमारी ! जाना था, सो हमारा ही गया । निरी बच्ची थी । नौ साल पार करके अभी-अभी दस मे पैर रखा था । कुछ जानती नही,

समझती नही। और भली कितनी ! ससुराल जाने की सुन रात-दिन न खायी, न पी, सिर्फ रोती रही। गयी, और महीना गुजरते-गुजरते यह हाल ! जरा मेरी मा की सोचो !'

और बोली, 'अपने पेट से तो कोई बाल-बच्चा नहीं। उसी को बच्ची-सी देखती थी ! जाने को वही गयी !'

सत्य काठ की मारी-सी बैठी सुन रही थी। दिलासा देने की उसने कोशिश नही की। बड़ी देर के बाद बोली, 'मार डाला है, यह बात किसने कही ? यह भी तो हो सकता है, यों ही कह दिया हो ?'

'यह सब भी छिपा रहता है बहन ? उसके टोले के आदमी ने आकर मेरे बाबूजी से चुपचाप कहा है !' भाविनी फिर एक बार ज़ोर से रो पड़ी। उस आदमी ने शायद कहा, 'बिलकुल पाशविक काम जनाब ! लोढ़े से मार-मारकर मार डाला ! माथा पिसकर सत्तू !'

सुनकर सत्य कैसी तो हो गयी ? उसकी आखों में जैसे पागल आदमी की निगाह !

'लोढ़े से चूरकर मार डाला !'।

सत्य के इस परिवर्तन से नवकुमार को डर लगा। किंतु भाविनी ने वैसा कुछ गौर नहीं किया। एक ही ढंग से कहती गयी—'अरे दीदी, वही नृशंस काम ही किया। कमबख्त वेटे ने पहले तो मारकर अधमरा कर दिया। मा ने देखा, यों अधमरी रही, तो मुसीबत है। मार ही डालें तो चू नहीं करेगी ! बस, चूर डाला। तुम्हीं कहो बहना, ये आदमी हैं कि राक्षस ? बाना भले आदमी का, अंदर से बाघ-सिंह !'

भाविनी फिर आखें पोंछने लगी।

सत्य जरा कड़ककर बोली, 'बैठी रोती ही रहोगी या इस जुल्म का कुछ प्रतिकार भी करोगी ?'

भाविनी चौंकी ! सत्य की आखों की वह नजर अब की उसके देखने में आयी। वह सकपकाकर बोली, 'प्रतिकार अब क्या करना, जो होने का था, सो हो ही गया...'

'जो होने का था ? यही होने का था ?'

'और क्या ? बुढ़ापे में मा के नसीब में यही भोग था...'

'खूब ! और उनको सजा नही मिलनी चाहिए ? उस खूनी मां और बेटे को फांसी दिलवाने की कोशिश नही करोगी तुम लोग ?'

भाविनी ने कपाल पर हाथ ठोंककर कहा, 'अब इस कोशिश का लाभ क्या है ? मेरी पूंटी तो अब लौटने की नही ? नाहक ही थाना-पुलिस का झमेला !'

नाहक झमेला !

नाहक झमेला !!

सत्य ने सख्त गले से कहा, 'देश में और भी हज़ारों-हज़ार पूटी नहीं हैं? उन पर जुल्म नहीं है?'

हज़ारों-हज़ार पूटी ! यह फिर क्या ?

सत्य ऐसी पागल-सी क्यों लगने लगी ? बिना समझे-बूझे ही भाविनी डरती हुई बोली, 'बहन, जुल्म तो सारी दुनिया में हो ही रहा है। औरतों का तो जन्म ही पड़ी-पड़ी मार खाने के लिए हुआ है ! लेकिन दुधमुही बच्ची चली गयी, यही बड़ी तकलीफदेह है। आजकल जो ज़रा उमर होने पर शादी होती है, वह अच्छा ही है। तुमने सुवर्ण को स्कूल में डाल दिया, अच्छा किया। कुछ बुद्धि हो, कुछ बल हो ! अहा, मेरी पूटी बड़ी सीधी थी !'

सत्य झट उठ खड़ी हुई—'घर जाऊंगी !'

नवकुमार सत्य की इस असभ्यता से अवाक् हुआ। दिलासे के शब्द नहीं, कुछ नहीं। बोला, 'जाना तो है ही, कुछ देर ठहरो न !'

'नहीं ! बैठा नहीं जा रहा। दिमाग में कैसी तो पीड़ा हो रही है। तुम कुछ ख्याल मत करना बहन, ज़रा अपनी बहन के पति का नाम-ठिकाना मुझे बताओ तो ?'

नवकुमार चौंका। नाम-ठिकाना ! डपटकर बोला, 'उनका नाम-ठिकाना लेकर तुम क्या करोगी ? तुम्हें क्या मतलब ?'

'मतलब है ! बताओ तो बहू ?'

भाविनी ने शिथिल स्वर में कहा, 'नाम तो है रामचरण घोष, ससुर का नाम ताराचरण···'

'पता ? कहां रहता है ?'

नवकुमार फिर झुंझलाया, 'अजीब परेशानी है ! पता से तुमको क्या लेना-देना ? कड़ी चिट्ठी लिखोगी क्या ?'

सत्य ज़रा रूखी हंसी हंसकर बोली, 'उन्हें चिट्ठी लिखने से क्या होगा ! अफसोस से पानी-पानी हो जाएंगे वे ?'

'तो ?'

'काम है ! बताओ तो सही ! बहू ?'

'यही तो—हबड़ा, पंचानन तला ! चौराहे पर कहीं कोई पीपल का पेड़ है···'

सत्य ने नवकुमार से कहा, 'तुम्हें रहना हो तो कुछ देर रहो, मैं जाती हूं !'

नवकुमार ने हड़बड़ाकर कहा, 'नहीं-नहीं, मुझे क्या करना, निताई भी नहीं है। तुम्हीं लोग बल्कि गपशप करो, मैं चलता हूं !'

नवकुमार खुद ही झटपट भाग गया। डर गया हो जैसे। सत्य से वह डरता

तो सब दिन है, मगर फिर भी मानो कही कुछ भरोसा-सा था। इधर दो साल से अलग रहने के बाद से नवकुमार को जाने कैसा भरोसाहीन भय हो गया है। उसके चेहरे की तरफ ताकने से सहम जाना पड़ता है। जैसे अपने ऊपर यह आस्था नही कि आड़ में कहीं उसका हाथ जरा दबा सके।

नवकुमार जिधर से गया, सत्य कुछ देर उधर को ताकती रही। फिर धीरे-से बोली, 'उस मुहल्ले के लोग खबर तो दे गए, कारण भी कुछ बताया ? स्त्री के किस कसूर से उसके दिमाग पर खून सवार हो गया ?'

फिर एक बार आंचल से आंखें पोंछते हुए उसने गले को उतारकर कहा, 'कसूर ? कसूर की तुमसे कहूं भी क्या बहन ! कहने मे भी शर्म, सुनने में भी शर्म ! तुम्हारे 'वे' बैठे थे, इसी से कह नही पा रही थी। कसूर मे कसूर यही था कि वह जरा भड़कती थी ! उत्ती-सी तो थी, तुमने उस बार देखा था न ! ब्याह का पानी पड़ने पर भी कुछ सुधार नहीं हुआ। वह लड़की और वह दो-ब्याहा मर्द ! एक तगड़ा हट्ठा-कट्ठा मर्द—बीवी मरे और 'खायं-खायं' हाल ! उसके पास जाने की हिम्मत उसे हो सकती है भला ? जाना नहीं चाहती, माटी से चिपक जाती। इसी के लिए मां-बेटा मिलकर लाख लानत-मलामत, लात, जूता, झाड़ू, गरदनियां ! पूटी को भी मैं मूर्खों की सरदारिन ही कहती हूं। अरे बाबा, देख तो रही है, उनका जोर अट्ठारह आना है, तेरा फूटी कौड़ी भी नहीं ! जो कहता है, वही सुन। सो नहीं, माटी से औंधी पड़ी चिपकी रहूंगी, खसम के कमरे में नही जाऊंगी ! लड पाई ? शत्रु राक्षस का गुस्सा चढ़ गया। एक तो ऐसे में मर्दों के माथे में आग जला ही करती है, ऊपर से मां मददगार। सोने में सुहागा। नसीब ! सब उसका नसीब !'

'बेशक !' सत्य ने रुखाई से कहा, 'नसीब नही तो और क्या ! इस अभागे देश में औरत होकर जन्म लेना ही दुर्भाग्य है। आंखों पर मोटा परदा डाले रहूंगी और नसीब को दोष देती रहूंगी !'

भाविनी ने रोते-रोते भौंह सिकोड़कर कहा, 'पर्दे के बारे में क्या कहा ?'

'कुछ नही बहू ! सिर्फ यही कह रही हूं कि लोढ़ा क्या सिर्फ उन्ही के पास था ? तुम लोगों के घर में नहीं था ? उसे मां-बेटे पर फेंककर दे मारना था कि सिर दो फांक हो जाए। लड़की के विधवा होने का खतरा तो नहीं रहा, फजीहत की आशंका नही रही !'

भाविनी कुछ खीज ही उठी, 'तुम्हारी बात ही कैसी दुनिया के बाहर की है दीदी ! वैसा करके हम पार पाते ? हथकड़ी नही लग जाती ? ब्याहता स्त्री को मार सकते हो, काट सकते हो, थूर दे सकते हो—और किसी को ऐसा किया जा सकता है ?'

'मैं होती तो करती ! ऐसे जमाई का सिर मारे ईंटो के चूर-चूर कर देती।

उसके वाद फांसी चढ़ना होता, तो चढ़ती !'

भाविनी फिर रो पड़ी, 'मेरी मां भी रात-दिन यही कहती है और रोती है। मगर अब तो ऐसा हो नहीं सकता। रिश्ते में मेरी एक फुआ है, वह मा को ही दूसती थी। कह रही थी, लड़की को ऐसी बुद्धू बनाओगी, तो ऐसी सज़ा *नहीं मिलेगी ? शादी हुई है। पति के कमरे में नहीं जाएगी ? लाड़ !* दो-ब्याहा दुलहा ने तुझे सिर्फ खेलने का खिलौना खरीद देने के लिए ब्याह किया है ? तुमसे मैं कहूं क्या दीदी, फुआ की नीयत बेशक खराव है। उसके एक बारह-तेरह साल की लड़की है...'

सत्य ने लेकिन जाने के लिए तब तक कदम बढा दिया—'माफ करना बहन, अब रहा नही जाता ! माथे में बड़ी पीड़ा हो रही है !'

इतने दुःख में भी उसने भाविनी को सांत्वना नही दी। वह मन ही मन बोली, 'पत्थर ही है ! पराया दुःख-शोक देखकर मेरा तो कलेजा फट जाता है ! भगवान ने आदमी को कितने प्रकार का जो बनाया है !'

४६

सिर में बड़ी पीड़ा हो रही है—यह कहकर सत्य निताई के यहां से चली आयी थी। उस पीडा से ऐसे ज़ोर का बुखार हो आएगा, इसका किसे पता था ?

सत्य खुद भी लेट पड़ने के बाद समझ नही पायी थी। उठी नही, रसोई नहीं की, यह देखकर सरल ने उसके कपाल पर हाथ रखा। देखा, बुखार से बदन तत्ते तवे-सा जल रहा है।

उसके तो होश उड़ गए। बाबूजी को पुकारा।

बाबूजी ही कौन बड़े भरोसा वाले !

वह तो मुसीवत मे खुद ही औरतों की तरह कपाल ठोंकने लगता है। घबराकर बोला, 'भागकर जा, फुआ को बुला ला !'

सौदा आयी। माथे पर पानी की पट्टी रखी। गरम पानी मे तौलिया भिगोकर सेंका। इस तरह उसने प्राथमिक चिकित्सा का इतज़ाम किया। लड़कों के लिए थोड़ा-सा चावल उवाल दिया। खिला-पिलाकर बहुत रात गए घर *गयी।*

न, रात को रही नहीं !

सौत का छोटा लड़का बड़ी मा के विना सोता नही। और मुखर्जी बाबू के लिए रात में दस बार चिलम चढ़ाना।

लेकिन कह गयी, सवेरे आएगी।

सत्य अचेत पड़ी थी।

नवकुमार सिर पर पंखा झल रहा था !

रात जब काफी जा चुकी, सत्य ने आंखें खोलकर कहा, 'सुनो, ज़रा करीब आओ ! मेरा बदन छूओ !'

नवकुमार कांप उठा। यह क्यों ? विकार का प्रलाप है या आसन्न मृत्यु का आभास ?

'छूओ ! मेरा बदन छूओ !'

डरते हुए नवकुमार ने बदन पर हल्के से हाथ रखा।

सत्य ने उत्तेजित स्वर में कहा, 'बदन पर हाथ रखकर कसम खाने से क्या होता है, जानते हो न ?···याद रखना। सुनो—मैं अगर मर जाऊं तो तुम छोटी उमर में सुवर्ण की शादी मत करना। कहो, कसम खाओ !'

रोगी का प्रलाप !

जवाब न दो तो प्रकोप और बढ़ेगा। नवकुमार ने झट कहा, 'हां-हां, खा रहा हूं कसम !'

'बोलो ! अपनी ज़बान से कहो, सोलह साल से पहले सुवर्ण की शादी नहीं करूंगा !'

'सोलह ! इतनी उमर तक लडकी को कुमारी रखोगी !'

नवकुमार ने सोचा, 'सत्य को अचानक इतना बुखार क्यों आ गया कि उसने इतना भूल बकना शुरू कर दिया ?'

जो भी वजह हो, उसे ठंडा ही रखना है।

नवकुमार ने शांत स्वर से कहा, 'अच्छा-अच्छा, वही होगा !'

'वही होगा कहने से नही चलेगा ! अपनी जुबान से कहो, सोलह साल से पहले सुवर्ण का ब्याह नहीं करूंगा !'

पागल के साथ चतुराई करने में दोष क्या है ?

नवकुमार ने टप् से सत्य के बदन से हाथ को हटा लिया। कहा, 'कह तो रहा हू, तुम्हारी इच्छा के खिलाफ सुवर्ण की शादी नही करूंगा !'

'तुमने असली बात ही नही कही !' सत्य चीख उठी, 'असली बात मे धोखा मत देना ! सुवर्ण को मार मत डालना ! उसे बचाना होगा, हज़ार-हज़ार सुवर्ण को बचाना होगा !'

सत्य चुप हो गयी।

नवकुमार और ज़ोर-ज़ोर से पंखा झलने लगा। हज़ार-हज़ार सुवर्ण ! घोर विकार !

हाय भगवान, यह क्या किया तुमने ?

या काली मैया, किसी तरह रात गुज़ारने दो, मैं खुद जाकर तुम्हारा खड्ग धोया पानी लाकर इसे पिलाऊंगा।

गाव की काली की भी मन्नत मानी। हरिलूट भी कबूली। क्या करे?

उसने सुना जो है, विकार मे अगर दिमाग पर खून सवार हो जाए, तो माथा हिलाते-हिलाते आदमी मर जाता है। लक्षण तो साफ दिख रहा है। रातभर मे बुखार कम न हो, तो वही हाल होगा।

काली मैया की कृपा ही कहिए।

खड्ग धोया पानी पिलाए बिना ही बुखार घट गया।

भरि-भरि की तरफ वेहद पसीना आया, विस्तर की चादर को भिगाते हुए बुखार तो लगभग रुखसत ही हो गया।

लेकिन ठंडे बदन के लहू, पाच दिन बुखार उतरने के बाद के लहू को विकार की तेजी कैसे मिल गयी? वही तेजी तो माथे पर चढ़ गयी। नही तो ऐसी घटना किसने कब सुनी है?

मा के फरमाबरदार और समर्थक लड़के भी मा के दुस्साहस से दंग रह गए।

साधन पिछवाड़े के दरवाजे से जाकर सौदामिनी और उसके पति को बुला लाया, फिर भी नवकुमार ने अकुलाकर सरल से कहा, 'शास्त्र का वचन है, मुसीबत मे आखों की हया नही करनी चाहिए' तू जा बेटे, जरा मास्टर साहब को भी बुला ला!'

सरल अवाक्। बाबूजी मास्टर साहब को बुलाने के लिए कह रहे है। जिनका नाम नही लेते, जिनकी शकल नही देखते, जिसके लिए सुहास'दी भी सदा के लिए पराई हो गयी।

नवकुमार ने फिर कहा, 'तू जाकर मेरे ही नाम से बुला ला! कहना, बहुत बड़ी बात हो गयी है! पुलिस आयी है! हो सकता है, मा को हथकड़ी लगे! यह सुनने से…!'

मा को हथकड़ी क्यो लगेगी, मुसीबत की घड़ी मे आखो की हया नही करने की बात किस शास्त्र मे है, सरल ने यह नही पूछा। वह बदन पर फतुही डालकर रसोईघर के पास के दरवाजे से निकल गया।

खैरियत हुई कि यह दरवाजा था।

नही तो सदर दरवाजे पर तो जमा बैठा था एक भयानक साहब सिपाही। नवकुमार ने कापते-कांपते एक कुर्सी बढ़ा दी थी, उसी पर बैठकर वह सत्यवती से पूछताछ कर रहा था।

अंग्रेजी मिली-जुली गलत-सलत भाषा। और पत्थर का कलेजावाली सत्य उन सवालो का जवाब दे रही थी।

साहब सिपाही के नाम से काइया मुखर्जी भी पहले आना नही चाह रहे

थे, परंतु सौदा की घबराहट से आने को मजबूर हुए।

आने को मजबूर तो हुए, पर सदर दरवाजे से नही, हाथ मे जनेऊ लेकर दुर्गा-दुर्गा करते हुए सौदा के पीछे-पीछे पिछवाड़े के दरवाजे से घुसे।

अंदर आते ही सुवर्ण रो पड़ी—सौदामिनी की टांगो से लिपटकर बोली, 'फुआजी, मा को पकड़ने के लिए गोरा आया है!'

'नही-नही, पकड़ेगा किस लिए?' उसे गोदी में उठाकर सौदा ने फुसफुसाकर कहा, 'माजरा क्या है रे तुडू? हुआ क्या है?'

साधन ने मुंह सुखाकर जो बताया, उसका सारांश यह कि सत्यवती ने बिना किसी से पूछे-आछे, बिना किसी को बताए पुलिस साहब के पास एक चिट्ठी भेजी थी! उसी चिट्ठी से पुलिस जाच-पड़ताल के लिए आयी है!

चिट्ठी लिखने की वजह?

वजह अजीब है! निताई की स्त्री भाविनी की बहन को उसके पति और सास ने मिलकर बड़ी बेरहमी से मार डाला! इसी के लिए सत्यवती ने बड़ी जोरदार भाषा में लिखा कि इस जुल्म का विचार होना चाहिए, उन हत्यारों को उचित दंड मिलना चाहिए। यदि यह नही होता तो धर्माधिकरण के नाम पर अदालत बेकार है। मुजरिमो के नाम-पते भी दिए थे!

सारा कुछ सुनकर सौदा ने कहा, 'यह सब उस दिन के विकार का ही नतीजा है रे तुडू! *बुखार की तेजी से बदन का खून माथे पर चढ गया था,* उसी ने उसकी अकल मार दी! नही तो बंगाली गृहस्थघर की स्त्री के लिए यह मुमकिन है भला? मैं कहे देती हूं, तेरी मां के दिमाग की नसें फट जाएंगी और वह सन्यास रोग से मरेगी! औरत के रूप मे यह सदा का एक खूंखार मर्द है! इसी से यह असाध्य बीमारी है!'

साधन ने और भी मुह सुखाकर कहा, 'रोग के सिवाय और क्या कहें? सदा की बीमारी! कहा किसने कौन-सा अन्याय किया, वह जैसे मां पर ही किया! सबका झमेला अपने ऊपर लेकर कष्ट पाने की बीमारी! घर में बर्तन मांजनेवाली नौकरानी ने एक दिन अपने लड़के को कहा, "मर जा!" मा ने उसे उसी वक्त हटा दिया!'

'*सब दुनिया के बाहर की बात!* ताज्जुब है, ईश्वर ने रूप-गुण सब-कुछ दिया था, सार्थक नही कर सकी! यह भी सुना कि उस दिन बुखार के जोर मे तेरे बाप को कसम खिलायी है कि सोलह साल से पहले सुवर्ण का ब्याह मत करना!'

कसम तो खैर कोई चीज नही! उसके लिए सिर खपाना बेकार है। *प्रलाप में आदमी क्या नहीं बकता है? लेकिन* उसे भी *लगता है, विधाता ने* उसकी मा को बुद्धि बहुत दी है, काश जिद कुछ कम देते!

'आप जरा उधर जाएंगे फूफाजी ?' साधन के यह कहने पर मुखर्जी बाबू ने कहा, 'मैं बूढ़ा आदमी, काहे को ! अभी-अभी नहाया है ! आह्निक नहीं कर सका हूं ! अभी अब म्लेच्छ को छूने से···!'

'नहीं-नहीं, छूएंगे क्यों ? यो ही···!'

'जरा इस पागल लडके की बात सुन लो ! अरे बोलना माने ही तो छूना है ! और फिर तुम लोगों ने कालेज मे पढा है, अंग्रेजी सीखी है···!'

'सीखी है, सही है ! किंतु यह तो लिखने-पढ़ने की बात नही है, साहब मास्टर नही है ! यह तो एक गोलमाल है ! इस मामले में प्रौढ़ आदमी का रहना ही ठीक है !'

लेकिन प्रौढ़ आदमी दूसरी बार नहाने के डर से नही गए। सिर्फ उझक-उझककर देखने लगे कि सत्य साहब की ओर ताककर कैसे बात कर रही है।

सत्य कह रही थी, 'फिर किसलिए कानून बनाकर अदालत खोले बैठे है आप ? सतीदाह के नाम पर यह देश औरतों को जला दिया करता था। उस पाप से आप लोगो ने ही हमे उबारा है। अभी भी बहुत-बहुत पाप जमा हो रहा है। चार युग से यह पाप जम रहा है। पाप के इस बोझ को उतारिए तो जानू, शासनकर्ता बनकर बैठना सोह रहा है ! ···नही तो पराए मुल्क मे राजशाही कैसी ? जहाज पर लदकर लौट जाइए !'

'मां !'

साधन मां को रोकने के लिए आगे बढ़ा। देखा बंगलानवीश साहब उसकी मां के ओजस्वी भाषण के सामने सारा बंगला ज्ञान भूलकर 'व्हाट-व्हाट' कर रहा है।

उस भाषण के बीच में दुभाषिया का काम करने जाए तो उसकी एफ० ए० तक की विद्या थाह नहीं पाएगी। सो उसने मां को रोकना चाहा।

लेकिन सत्य उस समय वास्तव में परिस्थिति और परिवेश का ज्ञान गंवा बैठी थी। बच्चे की पुकार का ख्याल न करके वह कहती ही गयी, 'मैंने सुना है, आपके मुल्क मे औरतों की बड़ी कदर है, बड़ा आदर है ! अपनी वही नजर खोलकर आप देख नही पाते कि इस अभागे देश ने स्त्रियों को किस अपमान, किस लाछन मे डाल रखा है ? कानून से इसे बंद नही कर सकते ?'

'बड़ी बहू ?'

नवकुमार से और नहीं रहा गया, वह चीख उठा। और ठीक इसी वक्त भवतोष मास्टर आकर उन सबके साथ खड़े हो गए।

आते-आते ही सत्य की यह पैनी भाषा उनके कानों पहुंची थी। इसलिए उन्होंने सत्य से कहा, 'दूसरे देश के लोग कानून बनाकर इस देश के समाज की ग्लानि को दूर करेंगे, ऐसी उम्मीद न करो बहूजी ! यह काम देश को ही

करना होगा !'

मास्टर साहब को अपने यहां देखकर सत्य अवाक् होने जा रही थी, पर सरल को साथ देखकर उसे इसका रहस्य मालूम हो गया।

उसने धीरे से घूंघट काढ़ा, दूर से ही प्रणाम जैसा करके घर के अंदर चली गयी।

एक बात है—कलेजे से पहाड़ उतर जाना। भवतोष के आ जाने से नवकुमार की यही अवस्था हुई। खैर ! अब उसे कुछ नही करना है।

अब मास्टर और साहब के विदा होने का इंतज़ार रहा। उसके बाद कोई किनारा करना ही पडेगा। बरदाश्त की हद हो गयी। अब नही ! मुखर्जी बाबू ने अभी-अभी कहा, 'बीवीपरस्तों की बीविया ऐसी ही होती है !' वह जलन अभी भी जला रही है।

मास्टर से लेकिन साहब की ज़्यादा बातचीत नही हुई। साहब ने सिर्फ सत्य की भेजी हुई चिट्ठी दिखायी और कुछ ही देर के बाद 'गुड-बाइ' किया। भवतोष उसे रास्ते तक पहुंचाकर लौट आए। शात गले से बोले, 'साधन, अपनी मां से कहो, कसूरवार को खोज निकालकर उपयुक्त दंड देने का साहब वचन दे गए है !' और ''मास्टर साहब ज़रा हसे, 'और तुम्हारी''' तुम्हारी मा को बहुत-बहुत बधाई दे गए है !'

मुकुद मुखर्जी के गले ने अब अपना काम किया। हुक्का हाथ में लिए वे बरामदे के ऊपर से आंगन मे उतर आए। बोले, 'मैंने सुना, आप नवकुमार के शिक्षक रह चुके है ! उस नाते नमस्ते करना चाहिए, सो कर रहा हूं, लेकिन आपने क्या तो कहा, साहब साधन की मा को क्या दे गया है ?'

'बधाई ! यानी तारीफ कर गया है !'

'हू ! समझ गया ! तो तारीफ़ किस बात की ?'

भवतोष ने उस मान न मान बुड्ढे की ओर देखा, उसके बाद शायद व्यंग्य की खाद मिले परिहास जैसी हंसी हंसकर बोले, 'समझने मे विशेष कठिनाई तो नही होनी चाहिए ! साहस की तारीफ की है ! अन्याय के खिलाफ डटकर खड़े होने का साहस कितनों को होता है, कहिए !'

मुखर्जी ने मुंह बनाकर कहा, 'लोगो के घर में आग लगाने का, किसी के सिर पर लाठी मारने का साहस भी एक प्रकार का साहस ही है ! मानता हूं, यह सबके नही होता ! लेकिन साहस माने प्रशंसा पाने लायक है, यह नही मानता !'

'न माने तो किया क्या जा सकता है !' कहकर ज़रा हंसते हुए मास्टर साहब ने चल देना चाहा। पर जाना न हो सका। नवकुमार ने झट से कहा, 'मास्टर साहब, जलपान करके जाना होगा !'

शायद विपदतारण मधुसूदन रूपी मास्टर साहब के परम उपकार का प्रतिदान देना आवश्यक है, इसी की प्रतिक्रिया से यह प्रस्ताव आया।

मास्टर साहब इस प्रस्ताव के लिए तैयार न थे। इसीलिए उन्होंने जरा अचकचाकर ताका और शायद सोचा, 'ढिठायी की सीमा क्यों नही रहती!'

किसी समय जिस भवतोष मास्टर ने रामकाली को ससुराल में उनकी बेटी की दुख-दुर्दशा के बारे मे जताते हुए बड़ी ही ओजस्वी भाषा में पत्र लिखा था, वे छोटे भवतोष तो अब नही है। उसके बाद बहुत-बहुत दिन बीत गए। मानसिक द्वंद्वो के अनेक चढ़ाव-उतार के अनुभव, अनेक ज्ञान अर्जन से से परिणत हुए प्रौढ़ भवतोष ने कोई भयानक-सा जवाब नही दिया। सिर्फ जरा हंसकर बोले, 'पागल!'

'पागल कैसे? वाह!' ऋणी न रहें, इसी इच्छा से संभवतः उसने फिर जिद्द की, 'इस धूप मे जल-तपकर आए! अपनी बहूजी की इज्जत बचायी, भला ऐसे कैसे छोड़ दू? आपकी बहूजी कह रही हैं, मीठा मुह कराए बिना आपको हरगिज नही जाने देंगी!'

भवतोष फिर एक बार बुरी तरह से चौंके। लगा, किसी एक जगह हिसाब नही मिला सके। कैसे तो बेबस ढंग से कहा, 'कौन? कौन नही जाने देने की कह रही है?'

'आपकी बहूजी तो!' आखो के इशारे से नवकुमार साधन को दुकान भेज चुका था, इसलिए कलेजे मे जोर था। बोला, 'वह घड़े के ठंडे पानी मे आपके लिए मिसरी का शरबत बना रही है!' उसने सोचा, इसी इशारे से इतने मे शरबत तैयार हो जाएगा।

लेकिन उसी समय सत्यवती बाहर निकली। दृढ स्वर मे बोली, 'खड़े-खड़े नाहक ही पागल का प्रलाप क्यों सुन रहे है मास्टर साहब! जाइए!'

भवतोष ने साफ निगाहो से एक बार सत्य की ओर ताका, फिर धीरे-धीरे वहा से चले गए।

और उसी क्षण नवकुमार ने एक अजीब बात कर ली। हठात् दोनों हाथो से अपने ही गाल पर थप्पड़ मारकर बोल उठा, 'और क्यों, अब जूता लाकर मेरे मुह पर मारो! सोलहो कला पूर्ण हो जाएं! इतना ही तो बाकी रह गया है! स्त्रैण पुरुष की यही शायद आखिरी सजा है!'

सामने सौदा खड़ी, मुखर्जी बाबू खड़े, सरल खड़ा—वह उसी समय मिठाई का ठोंगा लिए आकर खड़ा हो गया था।

सत्य चुपचाप रसोईघर मे चली गयी। जो काम-काज छोड़ गयी थी, उन्हे पूरा करने लगी।

सौदा और उसके पति मे अर्थपूर्ण एक दृष्टि-विनिमय हुआ।

सौदा ने नवकुमार को खिलाकर पंखा झलते हुए गले को जरा उतारकर कहा, 'अब बिगड़कर क्या करोगे भाई ? अब तो सब-कुछ साफ हो गया ! दिमाग तो सब दिन कुछ बैसा था ही, अब बढ़ता हो जा रहा है ! तेरे नसीब में भगवान इस तरह से झमेले घोलेंगे, यह कभी नहीं सोचा था !'

नानी के पास रहते हुए सौदा की बातें जितनी पैनी और साफ थी, वैसी मानो अब नहीं हैं। अब वह गृहस्थ की घरनी बनी है, घरनी जैसा ही बोलती है।

नवकुमार ने कहा, 'एक लोटा पानी देना, सौदा-दी !'

सौदा ने जल्दी-जल्दी पानी लाकर दिया। देकर बोली, 'पी ले और अब जरा मन को सख्त करके कविराज बुलाकर इलाज करा ! पांवों में बेड़ी डालने की नौबत न आए, यह तो देखना होगा !'

जल पीते ही नवकुमार का बल बढ़ा। उसने जोर की नाई कहा, 'पागल नहीं हुयी है ! बदमाशी है सिर्फ ! लोगों के सामने मुझे नीचा दिखाना ही इसका काम है ! जिंदगीभर यही देखता आया हूं !'

हां, बड़े हो जाने पर लड़के भी यही देख रहे हैं। बचपन में मां के प्रति श्रद्धा थी, सहानुभूति थी, वे मां की बात को वेदवाक्य मानते थे और पिता को बुद्धू समझकर मन ही मन करुणा करते थे। लेकिन पिता पर यही भाव रहते हुए भी, मां पर से सहानुभूति घटती चली जा रही है, खास करके बड़े लड़के की।

वह सोचता है, यह क्या !

हर बात में ताल ठोककर लड़ाई !

घर में जबरदस्ती अशांति ले आना, पिताजी को नीचा दिखाना। यह अन्याय है।

सुहास को लेकर क्या न किया। उसके पीछे फिर भी एक युक्ति है। उसकी कोई गति करना जरूरी था। लेकिन निताई भाभा की साली, मरकर भूत हो गयी वह तो, उसके लिए यह कैसा झंझट। पति-पुत्र को इस तरह से संकट में डालकर उस अदेखे, अजाने अपराधी को दंड दिलाना होगा !

उससे लाश जी उठेगी ?

नहीं जिएगी ! इतना ही होगा कि नवकुमार और उसके बेटों को चोर के समान अपमान ढोते फिरना पड़ेगा ! मुहल्ले के सभी तो देखा कि साहब पुलिस घर में आया। सब तो कुछ सोचेंगे ?

अब सबको समझाने कौन जाए ?

और समझाने से ही क्या वे विश्वास करेंगे ? इसीलिए बार बार इस

मुहल्ले से चल देना होगा या मुह में कालिख-चूना पोतकर बाहर निकलना पड़ेगा।···फुआ जो कह रही है, वही शायद ठीक है। दिमाग मे कुछ गोलमाल हुआ है।

अजीव है ! इतनी विद्या, इतनी बुद्धि, ऐसी कार्यकुशलता—और उसपर ऐसी उलटी खोपड़ी।

वचपन की मां की याद आती है।

कितनी उज्ज्वल और आनंदमयी थी वह मूर्ति ! कम-से-कम लड़कों के पास तो उसकी वही मूर्ति थी !

नवकुमार के पीछे लड़कों के साथ कैसी-कैसी कल्पनाएं ! भविष्य की तसवीर आंककर कितने रंगों की कारीगरी ! सत्यवती के दोनों लड़के दो दिग्पाल होगे। एक लड़का देश से अन्याय, अनाचार, कुसंस्कार और कुप्रथा को दूर करेगा, दूसरा देश को स्वाधीन करने की धुन मे लगेगा।

हां, सबसे पहले विद्या अर्जन करना।

विद्वान् बने बिना किसी काम मे नही जुट पाएगा। तुड़्, तुझे कोई नही पूछेगा। भले-बुरे का बोध ही कहा से आएगा ? जज होगे, मजिस्ट्रेट होगे या फिर डॉक्टर और मास्टर वनोगे ? ऐसे करतब दिखाना कि लोग कहे, अलबत्, लड़कों को खूब तैयार किया है !

वाल-मन पर चटकदार ख्याल का प्रभाव कितना पड़ा था ! परंतु वड़े होने पर वे धीरे-धीरे देख रहे है कि मा की वह उज्ज्वलता मानो आग वनती जा रही है !

डेढ़-दो साल तक वारुईपुर मे रहकर तो मानो और वदल गयी। इस मां के लिए प्यार से ज्यादा भय ही आता है।

छोटा लड़का अवश्य मां के भाव से ही ज्यादा अनुप्राणित है। पर, शोर-गुल, अशांति से उसे वड़ी नफ़रत है।···समाज की विकृति से लड़ते-लड़ते आदमी स्वयं न विकृत हो जाए, यह भी तो देखना है !

निताई चाचा की साली के लिए मा जो कर बैठीं, उसमें साहस का परिचय तो बेशक है, लेकिन जैसे कुछ दुस्साहस ! कम से कम लड़कों से राय करके तो कर सकती थीं। और फिर, अगर हम सब साहबो को यहा से भगाना ही चाहते हैं, तो मुश्किल में पड़ने पर उनकी मदद क्यों लें ? मां की हालत यदि सहज रही होती, तो वह पूछ जरूर लेती। लेकिन वह तो पागल हो रही है।

लेकिन सत्य के लड़के जो सोच रहे हैं, बात वह नही है। 'सत्य अब पगलाई हुई नही है। वह सन्न हो गयी है। वह अभी की सारी वातो को भूलकर यही सोच रही है, मेरे लड़के भी साहव को देखकर दुबक गए ! आगे वढ़कर बोले

नहो ! मेरी बात को सुलझाकर समझा देने के लिए मेरे पास आकर खड़े नहीं हुए ? जिन्हें कॉलिज में पढ़ाने के लिए मैंने जान की बाज़ी लगा दी थी, जिन पर ही मुझे जीवन की सारी उम्मीदें थीं !

शायद हो कि सत्य की उम्मीद कुछ बड़ी है !

वह लड़कों की डिग्री ही देख रही है, उमर नहीं ! समझ नहीं रही है कि यह मामला उन्हें घबरा देने के लिए काफी है।

सत्य सचमुच ही समझ नही रही है। वह यह सोचकर काठ हुई जा रही है कि सरल क्या कहकर मास्टर साहब को बुला लाया ?

शर्म भी नहीं आयी ?

उन्हें क्या मालूम नहीं है कि मास्टर साहब को कितना अपमानित होकर इस घर से जाना पड़ा है ?

अचानक संकट में पड़कर उन्हें बुलाने का प्रस्ताव नवकुमार के लिए मुमकिन हो सकता है, लेकिन मेरे गर्भ के इन लड़कों ने इस निर्लज्ज काम को कैसे किया ?

सत्य के बेटों ने सत्य के सिर को धूल में लोटा दिया। वह भी किसके आगे ? जिसके पास सत्य का सबसे ज्यादा संभ्रम था !

तो वह क्या करे ? किससे पूछे कि जिस रास्ते वह आजीवन चलती आयी, वह रास्ता क्या गलत है ?

रसोई हो चुकी थी, फिर भी वह रसोईघर में चुपचाप बैठी थी। बुलाकर खिलाने का उत्साह नही हो रहा था।

सौदा भी जा चुकी थी। बड़ी देर के बाद सुवर्ण आयी खेलना छोड़कर। बोली, 'आज खाना-पीना नही है ? बैठे-बैठे सिर्फ सोचने से ही होगा ?'

इतनी बातें सीखने की उम्र नहीं है उसकी, लेकिन दादी एलोकेशी के साथ रहकर बातों की उस्ताद हो गयी है। उसकी बातें सुनकर मजाल क्या है कि कोई कहे यह छः-सात साल की लड़की है !

इसके लिए सिर्फ एलोकेशी को ही दोष देना अधर्म होगा। ज्यादा बोलना और पक्की बात बोलना तो उसकी विरासत है।

सत्य क्या यह बात भूल गयी ?

उसने दहकती आंखों से ताककर तीखे स्वर में कहा, 'फिर पुरखिन जैसी बात !'

मां की शक्ल देखकर सुवर्ण डर गयी। झट बोल उठी, 'हुं ! भूख नहीं लगी है ?'

सत्य की जलती निगाह कुछ नर्म हो आयी। बोली, 'दे रही हूं, बाबूजी और अपने भैयों के लिए जगह करो !'

भोजन के लिए जगह ठीक करना, पानी देना, यह सब सुवर्ण ने सीखा है। और भी सीखा है, बिछावन करना, बिस्तर उठाना ! किसी तरह से यह भी कर लेती है। मा के साथ बैठकर साग चुन लेती है। पास बिठालकर काम सिखाते हुए सत्य बेटी को कविता भी सिखाती है। जबानी हिज्जे बतलाया करती है।

सुवर्ण भोजन की जगह ठीक करने गयी।

और उसके जाने की तरफ देखती हुई सत्य सोचने लगी, तो क्या अब इसी बच्ची का ही आशा-भरोसा रखे ? सुहास जैसी होगी यह ?

सुहास को सत्य ने गढा, उसका लाभ नही ले सकी !

लड़की अवश्य लाभ उठाने की चीज नही होती है, फिर भी सुहास का जीवन अगर वैसा अजीबो गरीब नहीं होता, तो इस प्रकार से उससे सारा नाता तोड़ लेने की नौबत नही आती। देख तो पाती उसे !

सत्य की नजरो के सामने वह नए-नए रूप मे खिलती। सत्य को यह देखने का उपाय नही रहा कि सुहास कैसी गिरस्ती कर रही है !

सुवर्ण इसकी नजरो के सामने विकसित होगी !

लड़के अंत तक अपने वश परम्परा से कापुरुष ही होंगे। बीवीपरस्त ! जैसे कि इनके दादा नीलाबर थे, बाप नवकुमार है !

नीलाबर चरित्रहीन थे, तो भी बीवी के डर से कातर। नवकुमार की तो बात ही नही।

पर ?

आज सत्य अपने को विश्लेषण करके देख रही है।···नवकुमार यदि इसका उलटा होता तो वह सुखी होती ? अपने मन के कानों मे रोशनी डाल-डालकर सत्य ने देखा है, होती सुखी ! उसका पति अगर उसकी दलीलो को काटकर अपनी राय पर कायम रहकर दूसरे ढग से सत्य को चला सकता, तो भी सत्य सुखी होती !

पर, नवकुमार वैसा नही !

वह हर बात का खम ठोककर विरोध करता है। बस, विरोध ही ! अपनी कोई राय स्थिर नही कर सकता। अत तक सत्य की ही जीत !

लेकिन सिर्फ जीत जाना ही क्या सुख है ? हार मे भी क्या सुख नही है ? जो हार अपनी इच्छा से कबूल कर ली जाती है, जीवन मे वैसी हार का स्वाद सत्य नही पा सकी !

तो सुवर्ण ही ऊंची हो, बड़ी हो ! वही ठीक है ! लडकी से छोटी होगी सत्य ! अवाक् होकर जिसमे कह सके, 'बाप रे, तुझे अक्ल कितनी है ! इतनी

बातें, इतने त.व और तथ्य कहा से सीखा ? जिसमें कह सके, सुवर्ण तू ने मेरी इज्जत रखी !'

पिता को और भाइयों को जाकर जब सुवर्ण ने बताया, खाना परोस दिया गया है, तो उन्हें मानो मुट्ठी में चांद मिला ! खैर, गिरस्ती फिर छंद मे आयी ! वे तो सोच रहे थे, आज रसोई-वसोई की ही नही गयी है।

मूल केन्द्र में विशृंखला होने से ही मुसीबत !

वे कृतार्थ होकर चुपचाप खाने के लिए आए।

साहब के रहते-रहते नवकुमार ने सोचा था, इसे जाने दो, फिर मैं आज देख लेता हूं। वह बात अब याद ही नही आयी। अपने गाल पर आप ही थप्पड़ मारकर उसका सारा साहस ही जाता रहा। अब लगातार सौदा की बात ही याद आ रही है।

सत्य का दिमाग ही खराब हो गया है।

नही तो आचरण ऐसा उलटा-पुलटा क्यों हो रहा है ? खैर, जो भी सहज में करती है, वही बहुत है। बाप-बेटे खाने को बैठकर धन्य हुए।

सुवर्ण पुरखिन की तरह कहने लगी, 'एक मुट्ठी भात और लीजिए न बाबूजी !'

सत्य का मन रखने के लिए नवकुमार ने और थोड़ा-सा भात लिया भी। खाना जब खत्म हो गया तो सत्य ने आकर अपने संकल्प की घोषणा की।

बोली, 'बीमारी के बाद से मेरी सेहत ठीक नही रह रही है ! सोचती हू, कुछ दिन काशी जाकर बाबूजी के साथ रहूंगी ! पश्चिम के हवा-पानी से स्वास्थ्य कुछ सुधर सकता है !'

नवकुमार को लगा, मानो सत्य अचानक उसे वरदान देने आयी है।

कुछ दिनों से मन में शायद ऐसा ही कोई सुर बज रहा था। सत्य कुछ दिन कहीं घूम आए। इससे वह भी स्वस्थ होगी, नवकुमार भी जिएगा।

लेकिन सुनते ही कैसे कह दिया जाए, 'हा, जाओ !'

इसीलिए धीरे-धीरे डरते-डरते कहा—'काशी ? पिताजी के पास ? ऐसा भी होता है ? अकेले हैं वे ! उनके पास जाकर कैसे रहोगी ?'

सत्य ने संक्षेप में कहा, 'सो देखा जाएगा ! साधन, तू मुझे वहा पहुंचा नही सकेगा ?'

साधन बड़ा था, इसलिए उसी से पूछा था। लेकिन इस प्रश्न से साधन अथाह मे पड़ गया। अकेले वह अपनी जिम्मेवारी पर उसे काशी ले जाएगा, उसे मां का यह प्रश्न ही पागलपन लगा।

लड़के के हवाई उड़ते हुए चेहरे को देखकर सत्य के होंठों पर हंसी की

एक पतली-सी रेखा दौड गयी । बोली, 'लगता है, नही ले जा सकेगा ! खैर, रहने दो !'

और दिन होता, तो इसी के लिए वह लड़के को फटकारती । आज कुछ नही बोली । जो काम पड़े थे, उन्हे निवटाने लगी ।

सत्य की वह सूक्ष्म हंसी नवकुमार की नजरों मे पड़ने की बात नही थी । पता नही, कैसे पड गयी । और क्या जाने क्यो, उससे उसने एक अपमान की जलन महसूस की । उसी अनुभूति के फलस्वरूप वह फौरन बोल उठा—'साधन ही क्यो, मैं नही पहुचा सकता हूं ?'

नवकुमार ने 'मैं ले जाऊंगा' नही कहा । कहा, 'मैं नही पहुचा सकता हूं ?'

अबकी सत्य ने उन सबों को अवाक् करते हुए हंस दिया । हंसकर बोली, 'ताज्जुब है, तुम नही पहुचा सकते, मैंने यह कब कहा ? लड़के बड़े हो गए, अब मा का कुछ-कुछ भार लें, यही तो आशा है ।'

'बडे हो गए, बड़े लायक हो गए!' कहकर प्रसंग पर वही परदा डालकर नवकुमार और ही मनसूबा गाठने लगा ।

एक आंधी की और आशंका थी । नही उठी । नवकुमार आश्वस्त हुआ । विस्मित भी ।

सत्य क्या अचानक बदल गयी ?

आधी अन्यत्र उठी ।

दूसरे दिन !

स्कूल मे आकर कापी-किताब रखकर सुवर्ण दौड़ी-दौड़ी आयी । दोनों हाथो से मा को जकडती हुई बोली, 'मा-मा, मेरे एक दीदी है !'

उसके सवाल का जवाब देने से पहले सत्य ने गाल पर हाथ रखकर कहा, 'हाय राम, अभी-अभी मैंने फीचा हुआ कपड़ा पहना और तूने स्कूल के कपड़े से छू दिया ?'

'जाने दो, जाने दो' मा के हाथ में गाल रगड़ते हुए सुवर्ण ने कहा, 'स्कूल कोई खराब जगह है ?'

कपड़े की फिचाई की शुद्धता जब जाती ही रही, तो क्या करना ! सत्य ने बच्ची को करीब खीचकर कहा, 'दुर्गा ! दुर्गा ! सो कहा मैंने ? बाहर के कपड़ों मे धूल-गर्द भी तो पडती है ! खैर ! दीदी की क्या कही तुमने···!'

'वही तो कह रही हू !' सुवर्ण ने उत्साह से कहा, 'हमारे स्कूल में एक नयी मास्टरनी आयी हैं, वह मेरी दीदी हैं !'

'सुवर्ण ! फिर वही भद्दे ढग से कहती है ! कितनी बार तो कह चुकी हूं, मास्टरनी मत कहा कर !'

सुवर्ण बोली, 'बाबूजी तो कहते है !'

'वह कहें ! बच्चों को ऐसा नही कहना चाहिए ! तुम लोग क्या उन्हें मास्टरनी कहती हो !'

'धत्त् ! हम लोग तो दीदी कहती हैं ! एक नयी दीदी आयी हैं, वह बोली, वह मेरी दीदी लगती है !'

सत्य ने कहा, 'कौन रे ? नाम क्या है ?'

'नाम ? नाम—नाम है सुहास दत्त ! उनकी शादी हो गयी है, मगर माग में सिंदूर नही है। एक लड़की ने कहा, ब्राह्म है न, ब्राह्म सिंदूर नहीं लगाती !'

सुवर्ण मेल गाड़ी दौड़ाने लगी। और भी दौड़ाती शायद ! सत्य ने रोका। तमतमाए चेहरे से पूछा, 'सुहास दत्त ? तूने ठीक सुना ?'

'ज़रा मा की बात सुन लो ! भला सुना नही ! सब कहते हैं। देखने में कितनी सुंदर है ! मुझसे कहा, मैं तुम्हारी दीदी होती हूं, मालूम है ?'

सत्य ने पूछा, 'तो तूने क्या जवाब दिया ?'

'मैंने ? मैंने कहा, आप जब मेरी दीदी होती हैं, तो मेरे घर आती क्यों नही हैं ? वह बोली, समय नही मिलता है। सच मां ? तुम्हारी अपनी लड़की हैं ? मेरी मा के पेट की बहन ?'

सत्य बोली, 'क्या फ़िज़ूल बकती है ? उतनी बड़ी लड़की मेरी हो सकती है ! नाते में मेरी लड़की होती है।'

'मगर वह जो कहती हैं, तुम्हारी मां मेरी भी मा हैं !'

'कहा ? यह कहा ?' सत्य उच्छ्वसित हो उठी, 'तो तूने क्या कहा ?'

'मैंने कहा, अच्छा, आज मैं मां से पूछूंगी !'

'बेवकूफ लड़की ! यह नही कहते। कहना था···'

लेकिन क्या कहना होता है ?

सत्य खुद ही जानती है क्या कि ऐसे मे क्या कहना चाहिए ? तो भी सत्य ने कहा, 'कहना चाहिए था, तो मेरे घर चलिए ! तू बेवकूफ है !'

सुवर्ण शर्माकर बोली, 'वही कहना चाहती थी। लेकिन डर लगा, कहीं तुम नाराज न हो जाओ !'

सत्य ने सुवर्ण का हाथ पकड़कर उसे और निकट खींचकर कैसे तो हताश स्वर मे कहा, 'डर लगा ? मुझसे तुम लोगो को डर लगता है ? मैं केवल नाराज ही होती हूं ?'

मां के स्वर की इस विचित्रता से सुवर्ण विचलित नहीं हुई। मौका पाकर जाने के लहजे मे बोल उठी, 'डर नहीं लगता है भला ? डर के मारे तो सिकुड़ी रहती हूं ! बाबूजी तक सिटपिटाए रहते है ! और पूछती हो, मैं केवल नाराज ही होती हू ! रात-दिन तो गुस्से के गुसाईं ही बनी रहती हो !'

सत्य अचानक स्तब्ध हो गयी।

उसे उस नादान बच्ची की उक्ति में मानो अपना बाहरी रूप दिखायी पड़ा।

तो पति के, पुत्र-पुत्रियों के आगे उसका यही परिचय है—प्रीतिकर नहीं, भीतिकर!

तो फिर एलोकशी से सत्य का अंतर क्या है?

अपने को आखिर उसने यहां पहुंचाया? स्नेहहीन, सरसताहीन, पत्तेझरे पेड़-सी? जाने अचानक क्या हो गया, भीतर जैसे मरोड़ उठा उसका और जुड़ी भौंहों के नीचे बड़ी-बड़ी गहरी काली आंखों के किनारे से हू-हू करके आसू छलक आए।

सुवर्ण अप्रतिभ होकर उस ओर ताकने लगी। उसे इस बात में शुबहा नहीं रहा कि उस बड़ी लड़की के लिए मां का मन कैसा कर रहा है।

सत्य ने अवश्य तुरत ही अपने को सम्हाल लिया। रुलाई झरे चेहरे पर हंसी की रेखा निखारकर बोली, 'वह सुहास दत्त कैसा पढ़ाती है रे?'

सुवर्ण ने लजाई-लजाई-सी कहा, 'वह हम लोगों को तो नही पढ़ाती है न, ऊपर के दर्जों में पढाती है!'

सुहास ऊंचे क्लास की लडकियों को पढ़ाती है!

विधवा शंकरी की नाजायज लड़की सुहास ने अपने को इतना ऊंचे उठा लिया? किस बल पर? शिक्षा? साहस? शंकरी को आप यह बल होता तो फांसी लगाकर नही मरी होती वह!

तो, *अपनी सहिष्णुता असहिष्णुता को एक समस्या बनाकर सत्य अपनी बेटी* की उन्नति के पथ को कंटकित कर देगी? उस नन्ही-नादान बच्ची को बाप-भाई के पास छोडकर स्वयं काशी चली जाएगी? अपना मन, अपने मन के स्वास्थ्य को सुधारने के लिए?

वह सुधार क्या यहा मुमकिन ही नही? अपने मन पर उसे इतना भी जोर नही? यदि सत्य चाहे तो क्या वह अपने बहुत दिन पहले वाले पुराने रूप में नहीं लौट सकती? वह सत्य, जो हसना चाहती है, कौतुक करना जानती है, अच्छा-अच्छा पका-चुकाकर अपने पति को खिला सकती है! कुछ ही दिन पहले तो उसने सुवर्ण को कितना स्तव-स्तोत्र कठस्थ कराया है, पढाया है!

जाने कितने दिनों से दुनिया की ओर ठीक से ताककर देखा नहीं है उसने। इस छोटी-सी गिरस्ती के दायरे से बाहर निगाह डालने में आगे सदा जला ही तो की है उसको! तो क्या सत्य के छोटे बेटे का कहना ही ठीक है? वह कहता है, 'दुनिया मे जैसे कोटि-कोटि लोग है, वैसे ही कोटि-कोटि अन्याय है। सभी तरफ देखने से तो तुम्हारी आखे चौंधिया जाएगी मा! तुम भली

तरह यह देखो कि खुद कोई अन्याय कर रही हो या नहीं !

फिर तो वह ठीक ही कहता है।

नवकुमार सत्य के आदर्श का अनुयायी नहीं है, यह सत्य का नसीब ! इसकी उम्मीद करना भी गलत है। अपने पेट की संतान, अपने हाथों का गढ़ा पुतला, वही अपने आदर्श का अनुयायी कहां होता है ? बड़ा लड़का तो ठीक अपने बाप के ही ढर्रे पर चला जा रहा है।

सत्य का जीवन यदि ऐसा सांचे में ढला साधारण न होकर उलटा-पुलटा, अजीब-सा कुछ होता ! सुहास जैसा, शंकरी—दुर्गा-दुर्गा कहकर वह सिहर उठी।

अचानक उसकी नजरों के सामने भुवनेश्वरी का मुखड़ा झलक उठा—घूंघट से घिरे कपाल पर सिंदूर का बड़ा-सा टीका—भीरु, नर्म मुखड़ा।

दुनिया में कहां क्या अन्याय हो रहा है, भुवनेश्वरी इसके लिए कभी दिमाग़ खपाने नहीं गयी, खम ठोंककर लड़ने नहीं गयी। भुवनेश्वरी सबसे डरती रही, सबको प्यार करती रही।

मां का चेहरा आंखों मे आते ही अचानक पिता के ऊपर क्षुब्ध अभिमान की जलन महसूस की उसने। जैसे मां की इस अकाल मृत्यु से पिता का कोई अविचार जुड़ा हुआ है। भुवनेश्वरी पति के मुंह पर हिम्मत करके कभी कोई बात नहीं बोल पायी।

खेद के साथ सत्य के मन में आया, भुवनेश्वरी की बेटी ने उसका बदला चुकाया है।

तो ? अपने जीवन को वह नये मोड़ से मोड़ेगी ? अपने गार्हस्थिक जीवन में ही वह उज्ज्वल होकर जला करेगी ? सुखी होने की चेष्टा करेगी ?

बिटिया को अपने खूब करीब खींचकर, उसके माथे पर मुंह रखकर सत्य ने कहा, 'मैं काशी चली जाऊंगी, तो तू रोएगी सुवर्ण ?'

'तुम्हारे चले जाने से ?' मां के स्नेह-स्पर्श से छिटककर सुवर्ण ने कहा, 'मैं क्या नहीं जाऊंगी ?'

'तू ? तू क्या जाएगी ? तू कैसे जाएगी ?'

'जैसे तुम जाओगी। मैं नही तो और कौन जाएगी ?'

'मेरे साथ तुम्हारी तुलना ? मुझे स्कूल जाना है ? स्कूल जाना बंद करके जा रही हूं मैं ?'

सत्य की बात सुनकर सुवर्ण जिद-सी करके बोली, 'स्कूल नहीं जाने से क्या होता है ? बाबूजी तो कहते हैं, छोटी लड़कियां तो बहुत बार स्कूल नही जाती हैं।'

'ऐसा कहते है ! ठीक है ! मगर तेरे बाप की तरह स्कूल न जाने को मैं

सत्य अचानक स्तब्ध हो गयी।

उसे उस नादान बच्ची की उक्ति में मानो अपना बाहरी रूप दिखायी पड़ा।

तो पति के, पुत्र-पुत्रियों के आगे उसका यही परिचय है—प्रीतिकर नहीं, भीतिकर !

तो फिर एलोकशी से सत्य का अंतर क्या है ?

अपने को आखिर उसने यहां पहुंचाया ? स्नेहहीन, सरसताहीन, पतझरे पेड़-सी ? जाने अचानक क्या हो गया, भीतर जैसे मरोड़ उठा उसका और जुड़ी भौंहों के नीचे बड़ी-बड़ी गहरी काली आखों के किनारे से हू-हू करके आंसू छलक आए।

सुवर्ण अप्रतिभ होकर उस ओर ताकने लगी। उसे इस बात में शुबहा नहीं रहा कि उस बड़ी लड़की के लिए मां का मन कैसा कर रहा है।

सत्य ने अवश्य तुरत ही अपने को सम्हाल लिया। रुलाई झरे चेहरे पर हंसी की रेखा निखारकर बोली, 'वह सुहास दत्त कैसा पढ़ाती है रे ?'

सुवर्ण ने लजाई-लजाई-सी कहा, 'वह हम लोगों को तो नहीं पढ़ाती हैं न, ऊपर के दर्जों में पढ़ाती है।'

सुहास ऊंचे क्लास की लड़कियों को पढ़ाती है !

विधवा शंकरी की नाजायज़ लड़की सुहास ने अपने को इतना ऊंचे उठा लिया ? किस बल पर ? शिक्षा ? साहस ? शंकरी को आप यह बल होता तो फांसी लगाकर नहीं मरी होती वह !

तो, अपनी सहिष्णुता असहिष्णुता को एक समस्या बनाकर सत्य अपनी बेटी की उन्नति के पथ को कंटकित कर देगी ? उस नन्ही-नादान बच्ची को बाप-भाई के पास छोड़कर स्वयं काशी चली जाएगी ? अपना मन, अपने मन के स्वास्थ्य को सुधारने के लिए ?

वह सुधार क्या यहां मुमकिन हो नहीं ? अपने मन पर उसे इतना भी ज़ोर नहीं ? यदि सत्य चाहे तो क्या वह अपने बहुत दिन पहले वाले पुराने रूप में नहीं लौट सकती ? वह सत्य, जो हंसना चाहती है, कौतुक करना जानती है, अच्छा-अच्छा पका-चुकाकर अपने पति को खिला सकती है ! कुछ ही दिन पहले तो उसने सुवर्ण को कितना स्तव-स्तोत्र कंठस्थ कराया है, पढ़ाया है !

जाने कितने दिनों से दुनिया की ओर ठीक से ताककर देखा नहीं है उसने। इस छोटी-सी गिरस्ती के दायरे से बाहर निगाह डालने में आंखें सदा जला ही तो की हैं उसकी ! तो क्या सत्य के छोटे बेटे का कहना ही ठीक है ? वह कहता है, 'दुनिया में जैसे कोटि-कोटि लोग हैं, वैसे ही कोटि-कोटि अन्याय हैं। सभी तरफ देखने से तो तुम्हारी आखें चौंधिया जाएंगी मां ! तुम भली

नवकुमार ने पूछा, 'अचानक विचार बदल जाने की वजह ?'

सत्य ने अब की भी विनय के ही साथ कहा, 'सुवर्ण छोड़ेगी नही ! वह जाएगी तो स्कूल की बड़ी कमाही होगी !'

नवकुमार तो सदा ही विरह-कातर हो जाता है। फिर उलटे सुर का गीत क्यों गाने लगा ? सत्य काशी नहीं जाएगी—यह सुनकर तो उसकी जान में जान आ जानी चाहिए थी, तुनक क्यों उठा ?

आखिर नवकुमार के भी तो मन नाम की एक चीज़ है और उस मन के तत्त्व भी है। सत्य के काशी जाने की सुनकर उसने मन को मना लिया था। सोच लिया था, इस बीच वह मां को कुछ दिनो के लिए कलकत्ता ले आएगा !

उसके मन में पिता के मरने के बाद से ही कहा तो अपराध-बोध का कोई कांटा गड़ा हुआ है। मां ने यहां आना नही चाहा, लेकिन उन्हे महातीर्थ कालीघाट का दर्शन कराना फर्ज़ था। जिस कलकत्ता में इन लोगों के इतने साल गुज़र गए, वहा उसकी मा एक बार के लिए भी नहीं आयी !

पहले इस बात की चिंता इतनी प्रबल नही थी। दफ्तर के एक मित्र ने जबसे धिक्कारा है, तब से हुई है।

उसके मित्र यह सुनकर अवाक् रह गए कि नवकुमार की मां आज तक कलकत्ता के डेरे पर नहीं आयी है। नवकुमार को बीवीपरस्त कहकर मित्र ने फटकारा। तभी से उसके दिमाग में यह बात चक्कर काट रही थी। यह बात भी घूम रही थी कि मा को स्वाधीन भाव से रखना होगा, स्त्री के हुकुम पर नही। इसके सिवाय भी कुछ मनसूबा है।

कुछ शौक पूरा कर लेने का इरादा था जो सत्य के रहते पूरा नही हो सकता। जैसे, गुड़गुड़ी पीना। दुनियाभर के लोग पीते है, एक सत्य का पति ही नही पी पाएगा। यह कैसा जुल्म है !

सत्य की गैर मौजूदगी में आदत डाल ली जाए और तब उसे बताया जाए कि वैद्यजी ने पीने को कहा था। अब छोड़ने से पेट की गड़बड़ी शुरू हो जाती है। तब शायद इजाज़त मिल जाए !

और भी।

बाजी रखकर ताश खेलना !

तकिया लगाए कितने लोग इस खेल से कितनी कमाई कर रहे हैं, मगर यहा सत्य की कसम सिर के ऊपर तलवार-सी झूल रही है।

इतने बाधा-बंधन के बीच रहते-रहते दम घुटने लगा है। लेकिन बारुईपुर में तो नवकुमार बिलकुल आज़ाद था। ये सब शौक उसने वहां क्यों पूरे नही किए ?

अच्छा नही कहती ! स्कूल कमाही करने से नही चलेगा !'

सुवर्ण ने दृढ़ता से कहा, 'देख लेना, चलता है कि नही ! मुझे छोड़कर जाने से देख लेना मैं क्या करती हूं !'

सत्य अब नाराज नही होगी। वह हंस पड़ी। बोली, 'चली ही जाऊंगी, तो देखूगी कैसे ? उससे तो बल्कि जाना बंद करके देखूं कि तू क्या करती है !'

'ऐ मां, मा, मा' दोनों हाथों से मा को जकड़कर उसके कंधे पर मुंह रगड़ते-रगड़ते सत्य बोली, 'तुम कितनी अच्छी हो !'

मिलन के इस मुहूर्त ही में नवकुमार आ पहुंचा। उसके पीछे-पीछे लम्बा-सा एक उत्तर भारतीय आदमी। उसके रंग-ढंग से पहचानने मे भूल नही हुई—पंडा-वंडा होगा।

नवकुमार ने कई दिन पहले सुना था, उसके दफ्तर के किसी सज्जन की मा-फूआ आदि कोई पंद्रह-बीस महिलाएं एक दल बनाकर गया, काशी, मथुरा, वृन्दावन आदि जा रही है। यही पंडाजी उनको ले जाएंगे। नवकुमार इसीलिए इन्हे ले आया।

सत्य ने घूघट काढ लिया। गले मे आंचल डालकर दूर से प्रणाम किया।

नवकुमार ने उदात्त गले से कहा, 'इनको ले आया हूं ! ये काशी के विख्यात आदमी हैं—रामेश्वर पंडा ! मेरे एक मित्र की मां इनके साथ जा रही है ! उन्ही से कहा था, कृपा करके यदि तुम्हे भी अपने साथ ले जाएं ! वहा तुम्हें तुम्हारे पिताजी के पास पहुचा देंगे ! ये तो जाने को राजी है। अगली पूर्णिमा को यात्रा···'

सत्य के सिर पर का घूघट नही हिला, लेकिन उसकी आवाज साफ सुनायी पड़ी, 'नाहक ही पंडाजी को कष्ट दिया ! मैं अब अभी नही जा रही हू !'

'नहीं जा रही हो ?'

'नहीं !'

नवकुमार ने जरा गरम-सा होकर कहा, 'मगर एकाएक जाने की जब सनक सवार होगी, तो ये फिर कहां मिलेंगे ?'

'नही ! सो तो नही मिलेंगे ! उस समय न हो तो तुम्ही कष्ट करना !'

'ओ, चालाकी ! तो यह पहले ही कहना था ! इस फजीहत मे नही पड़ता ! आपको मैंने नाहक ही कष्ट दिया पंडाजी, ये नही जाएगी !'

पंडाजी लेकिन इस मामूली-सी बाधा से नही डिगे। काशीधाम की महिमा बताने के लिए बहुत कुछ कहा। सत्य ने विनय के साथ जवाब दिया, 'बाबा विश्वनाथ ने खीचा नही है, यह तो समझ ही रही हूं। जब खीचेंगे तो बिना गए चारा ही नही रहेगा।'

नवकुमार ने पूछा, 'अचानक विचार बदल जाने की वजह ?'

सत्य ने अब की भी विनय के ही साथ कहा, 'सुवर्ण छोड़ेगी नहीं ! वह जाएगी तो स्कूल की बड़ी कमाही होगी !'

नवकुमार तो सदा ही विरह-कातर हो जाता है। फिर उलटे सुर का गीत क्यों गाने लगा ? सत्य काशी नही जाएगी—यह सुनकर तो उसकी जान में जान आ जानी चाहिए थी, तुनक क्यों उठा ?

आखिर नवकुमार के भी तो मन नाम की एक चीज़ है और उस मन के तत्त्व भी है। सत्य के काशी जाने की सुनकर उसने मन को मना लिया था। सोच लिया था, इस बीच वह मां को कुछ दिनों के लिए कलकत्ता ले आएगा !

उसके मन में पिता के मरने के बाद से ही कहा तो अपराध-बोध का कोई कांटा गड़ा हुआ है। मा ने यहां आना नही चाहा, लेकिन उन्हे महातीर्थ काली-घाट का दर्शन कराना फर्ज़ था। जिस कलकत्ता में इन लोगों के इतने साल गुज़र गए, वहा उसकी मां एक बार के लिए भी नहीं आयी !

पहले इस बात की चिंता इतनी प्रबल नही थी। दफ्तर के एक मित्र ने जबसे धिक्कारा है, तब से हुई है।

उसके मित्र यह सुनकर आवाक् रह गए कि नवकुमार की मा आज तक कलकत्ता के डेरे पर नही आयी है। नवकुमार को बीवीपरस्त कहकर मित्र ने फटकारा। तभी से उसके दिमाग़ में यह बात चक्कर काट रही थी। यह बात भी घूम रही थी कि मां को स्वाधीन भाव से रखना होगा, स्त्री के हुकुम पर नहीं। इसके सिवाय भी कुछ मनसूबा है।

कुछ शौक पूरा कर लेने का इरादा था जो सत्य के रहते पूरा नही हो सकता। जैसे, गुड़गुड़ी पीना। दुनियाभर के लोग पीते है, एक सत्य का पति ही नही पी पाएगा। यह कैसा जुल्म है !

सत्य की गैर मौजूदगी में आदत डाल ली जाए और तब उसे बताया जाए कि वैद्यजी ने पीने को कहा था। अब छोड़ने से पेट की गडबड़ी शुरू हो जाती है। तब शायद इजाज़त मिल जाए !

और भी।

बाजी रखकर ताश खेलना !

तकिया लगाए कितने लोग इस खेल से कितनी कमाई कर रहे है, मगर यहा सत्य की कसम सिर के ऊपर तलवार-सी झूल रही है।

इतने बाधा-बंधन के बीच रहते-रहते दम घुटने लगा है। लेकिन बारुईपुर मे तो नवकुमार बिलकुल आजाद था। ये सब शौक उसने वहा क्यों पूरे नहीं किए ?

यह भी मनस्तत्व है।

उस समय नवकुमार का मनोभाव और तरह का था। उस समय हर वक्त विरह की ही तड़प थी। ऐसा कुछ करने को जी नहीं चाहता था, जो सत्य को पसंद न हो।

लेकिन अब उसका मन बदल गया है, खास करके पुलिस वाली उस घटना के बाद से। नवकुमार को लगा, सत्य दिन-दिन नीरस काठ हुई जा रही है।

अब मानो वह समझ रहा है, पुरुष होते हुए भी वह सदा पराधीन है। सत्य की इच्छा-अनिच्छा, सत्य की रुचि-अरुचि, उसकी त्योरियों पर बल के भय ने मानो उसे एड़ी-चोटी बांध रखा है। क्यों बाबा, कोई तो इतना बंधा हुआ नहीं है।

यही तो, मुखर्जी बाबू !

कैसा मिजाज, कैसा रौब। बेचारी सौदा-दी बुढ़ापे में उनकी गिरस्ती करने आयी, तो भी सब झेलना पड़ता है, मन रखकर चलना पड़ता है। उन्हीं के यहां तो ताश का उतना बड़ा अड्डा है !

सौदी-दी डब्बा-डब्बा पान लगाकर अड्डे पर भेजती रहती है। नाराज तो नहीं होती। नवकुमार वह सब सोच भी सकता है ? बिलकुल नहीं !

इसीलिए नवकुमार का मन ललचा रहा था। सत्य की आड़ में शुरू तो कर ले ! मगर सत्य ने सब गुड़ गोबर कर दिया !

और उसका कारण भी क्या ?

तो सुवर्ण के स्कूल का हर्ज होगा !

पंडा के चले जाने के बाद नवकुमार ने फिर कहा, 'मित्र के आगे इज्जत नहीं रहेगी मेरी ! वजह सुनने से वे मुझ पर धूल डालेंगे !

सत्य हंसी। बोली, 'धूल झाड़ फेंकना आता हो, तो धूल लगी नहीं रहती !'

इसके बाद नवकुमार असल बात पर आया, 'मैं पूछता हूं, बेटी को विद्यावती बनाकर होगा क्या ? तुमसे भी बढ़कर होगी, यही न ? गांव की पाठशाला में ही पढ़कर अगर मां का यह मिजाज हो सकता है, तो कलकत्ता शहर के फैशन वाले स्कूल में पढ़ने से लड़की का क्या होगा, यह तो दिव्यचक्षु से देख ही पा रहा हूं !'

सत्य ने तो भी हंसमुख होकर ही कहा, 'तुम्हारे ऐसे दो दिव्यचक्षु हैं, यह तो मैं नहीं जानती थी। अच्छा यह तो कहो, उन चक्षुओं से और क्या-क्या देख रहे हो ? अच्छा, मैं मरूंगी कब, यह तो कहो !'

'हर बात को मजाक में उड़ा देने से ही नहीं होता !' झुंझलाकर वहां से

चला गया वह।

वही गुस्सा-गुस्सा भाव बना रहता है।

सत्य ने जब यह प्रतिज्ञा की कि अब 'गुस्से का गुसाईं' नहीं बनूंगी तो उसके पति ने उलटी प्रतिज्ञा कर ली।

गुस्से का यह सिलसिला कब तक चलता, पता नहीं। एक दिन अचानक एक अप्रत्याशित घटना घट गयी। सांझ को सौदा एक घटकी को ले आयी। नाचती-नाचती ही आयी कहिए।

'लड़कों का व्याह करेगी वहू ?'

सत्य आसमान के ऊपर से नही गिरी।

वह हर घड़ी इस आक्रमण की आशंका से काटा हुई ही रहती है। इसीलिए होशियारी से बोली, 'पढ़ना-लिखना खत्म हो जाए, तो करूंगी।'

सौदा ने झुंझलाए-से स्वर मे कहा, 'तेरे लड़कों का पढ़ना-लिखना कभी खत्म भी होगा, इसका तो मुझे यकीन नही। व्याह की उमर तो उनकी पार होने लगी। बड़ा तो तीन-तीन पास करके निकला, उसे दम भी नहीं मारने दिया और वकालत पढ़ने मे जुटा दिया। छोटा भी इम्तहान दे ही रहा है। इसे भी निकलते न निकलते कहां दाखिल करा दोगी, तुम्ही जानती हो। तो क्या सिर सफेद करके लड़के शादी की पाग बांधेगे ?'

सत्य ने हंसकर कहा, 'लगता है, बहुत विगड़ गयी हो ननद जी ! लेकिन सोच देखो, आय-उपाय का कोई रास्ता देखे बिना व्याह करा देना क्या ठीक है ?'

सौदा ने कहा, 'नवकुमार के घर मे क्या इतनी कमी पड़ी है कि लड़के उपायी नही होगे, तो बहुओं को भात नही मिलेगा ?'

कहा, 'मां होकर सत्य ने ऐसी बेहया बात कही कैसे ?'

उसके बाद जोर के साथ बोली, 'यह सब मेमियाना छोड़ो, ये घटकी ठकुराइन आयी हैं, ये जो कह रही है, मन देकर सुनो। दो लड़कियां इनके हाथ में है। वंश अच्छा है। दान-दहेज अच्छा देगा। लड़कियां देखने में सुन्दर हैं—एक ही साथ दोनो का तय कर लो !…और फिर मेरी मामी बुढ़िया की सोचो ? बेचारी की एक साध तो पूरी हो !'

नवकुमार से अब अंदर नही बैठा रहा गया। वह बाहर निकला। बोल उठा, 'पागल की अनुमति लेकर काम करना हो तो दुनिया का सारा काम-कारोबार ही ठप् पड़ जाए सौदा-दी ! तुम घटकी ठकुराइन से लड़कियों का अता-पता देने को कहो ! हम लड़की देखेंगे !'

सत्य की प्रतिज्ञा है, 'गुस्से का गुसाईं' अब नही बनेगी। इसलिए मुसकुराकर घूंघट को जरा खीचते हुई धीमे से कहा, 'फिर क्या पूछना ननदजी, जब खुद

घर के मालिक ने ही जिम्मेदारी उठा ली !'

सौदा के सामने दोनों का आमने-सामने वोलना जंचता नही, इसलिए सौदा ही माध्यम रही।

नवकुमार ने कहा, 'मजाक नही सौदा-दी, लड़कों का व्याह मैं जल्दी ही करूंगा। व्याह की उम्र होने की क्या वात, उम्र कव की हो चुकी। अपनी वहू से यह भी पूछ देखो, वुड्ढे हाथी होकर ही भी, जो ये लड़के फूटी पायी भी घर में ला नही रहे हैं, वह गलती क्या लड़कों की है ? उनकी मा ने उन्हें नौकरी करने दी ! मैं अभागा जव-जव नौकरी की खोज ले आया, इसने ना कर दिया। अजी तुम्हारी वहू के वेटे जज-मजिस्ट्रेट, वकील-वारिस्टर होगे !'

सौदा ने समझौते के सुर मे कहा, 'सो क्यों नही होगा नोवू ? करम मे लिखा होगा, तो ठीक ही होगा ! आखिर यह सव आदमी के ही वेटे तो होते हैं, आसमान से थोडे ही टपकते है ! लेकिन उससे व्याह मे क्या अड़चन आती है ? तो मैं घटकी ठकुराइन से कहती हूं वहू !'

सत्य ने निर्विकार की नाई कहा, 'तुम कहती हो, उसके ऊपर मैं क्या कहूं ?'

'अहा, तुम मा हो ! तुम नही कहोगी ?'

सत्य ने मुह ऊपर उठाकर कहा, 'यदि मुझसे पूछो, तो मेरा ख्याल था, पहले पास कर ले···'

अव की घटकी खनखना उठी, 'हाय राम, वहुएं आकर क्या तुम्हारे वेटो की किताव-कापिया फाड डालेगी ? मैं जैसे-तैसे घर के वारे मे नही पड़ती। ये घाटाल के मुखर्जी हैं ! कितना वड़ा वुनियादी खानदान है ! चांद-सूरज इनके घर की वहू-वेटियों की शक्ल नही देख पाते !'

सत्य ने ज़रा मुसकराकर कहा, 'ननदजी, घटकी ठकुराइन से कह दो, उनको लड़कियो के लिए और भी वहुत वड़े वुनियादी खानदान के लड़के मिल जाएगे ! हम उनके लायक नही है ! मैं तो ऐसी लड़कियां चाहती हूं, जिन्होने चाद-सूरज का मुह देखा हो !'

भाई-वहन दोनो जने एक साथ चौक उठे, 'मतलव ?'

'तो फिर साफ ही वताऊ ! मैं थोड़ी पढी-लिखी लड़की चाहती हूं। यदि स्कूल मे पढ़ने वाली लड़की का पता हो···'

नवकुमार ने जैसे छिटककर कहा, 'क्या कहा ? वेटी को विद्यावती वनाकर मुराद पूरी नही हो रही है, अव वहू भी वैसी ही लानी पड़ेगी ? किसलिए ? वहू आकर तुम्हारे लड़को को पढ़ाएगी ?'

ठकुराइन ज़रा दवी हंसी हंसकर वोली, 'अहा, वह तो पढाएगी ही ! वीवी से पढ़ाई रटे विना आज के वाजार में कौन-सा मर्द आदमी गिना जाता है ?

आजकल तो बीवी ही मास्टर है ! उसी मास्टर का सवक सिर-आंखों पर ! लेकिन मेरे हाथ में ऐसी मास्टर लड़की नहीं है। ये बिलकुल नवाबी युग के बुनियादी वंश के हैं। इनकी शिक्षा-दीक्षा ही और है। तो अब क्या करना ! चलें !'

घटकी के साथ-साथ सौदा भी विदा हुई।

रास्ता महज एक ही गली पार करने भर का है, तो भी सांझ के बाद अकेली जाना ठीक नहीं ! अभी नहीं जाती तो नवकुमार या किसी लड़के को पहुंचाने के लिए जाना पड़ता।

उनके चले जाने के बाद नवकुमार जैसे फट पड़ा, 'घर को आखिर क्या बनाना चाहती हो तुम ? विद्या का वृन्दावन ? लड़कों की इतनी विद्या से काम नहीं चलेगा ? बहुओं के भी चाहिए ?'

सत्य ने धीरे से कहा, 'इतने शोर-गुल से क्या काम ? लड़के घर में पढ़ रहे हैं ! तुम्हारी आवाज तो दुतल्ले तक पहुंच रही है। हां, यह कह दूं, यदि मेरी राय, मेरी इच्छा की पूछो तो कहूंगी, अंधी-कानी बहू नहीं चाहिए !'

'अंधी-कानी ?'

'और क्या ? जो एक अच्छर नहीं पहचानती, वह अंधी ही है। आंख रहते अंधी !'

सत्य की इस राय के बाद घर में एक जोरों की आंधी आयी। गुस्से के साथ-साथ हंसी की भी। नवकुमार सबको बुला-बुलाकर सत्य के इस 'अंधी' शब्द की व्याख्या सुनाने लगा। निताई, निताई की स्त्री, मुखर्जी बाबू, उनकी मरकर बची छोटी बहू, उनकी बड़ी लड़की सभी इस नयी व्याख्या के रस से खुश होकर हंसी-मजाक करने लगे।

एक सौदा ही सहसा स्तब्ध हो गयी।

नि:श्वास फेंककर बोली, 'बहू ने बात गलत नहीं कही नोबू—आंख रहते अंधी ! तेरी इस सौदा-दीदी को ही अगर चिट्ठी लिखने का शऊर रहा होता, तो उसकी पूरी जिंदगी बरबाद नहीं हुई होती। खैर ! कलकत्ता में स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियों का अभाव नहीं होगा ! मैं किसी दूसरे घटक को पकड़ती हूं !

गर्ज कि भतीजों की विवाह-नौका की पतवार वह अब अपने हाथ में लेकर ही रहेगी। खेवैया के बिना नाव बेकार हो रही है।

तुड़ू ने भी यह बात सुनी। वह आशा का सपना देखने लगा। क्योंकि उसके सभी सहपाठियों का विवाह हो चुका है, दो-एक तो बच्चे का बाप भी बन बैठा है। बीच-बीच में उसने सोचा है कि आखिर उसकी शादी की बात

क्यों नहीं चल रही है ?

मुन्ना ने लेकिन एक हिम्मत की बात कह दी। कही अवश्य फुआ से। बोला, 'दादा का ब्याह होता है, तो हो ! मुझको लेकर खींचातानी न करना, हां ! मैं इन बातों मे नही हूं !'

सौदा ने झनककर कहा, 'नही है ? तू संन्यासी बनेगा क्या ?'

मुन्ना बोला, 'क्या होऊंगा, सो नहीं मालूम ! सांप भी हो सकता हूं, बेंग भी हो सकता हूं ? गले में गंधमादन लटकाए कुछ भी नहीं हुआ जा सकता, यह मैने देख-देखकर सीख लिया है !'

'तूने इतना कहां देखा ? रात-दिन तो किताव लिए पड़ा रहता है !'

'वहीं ! उसी में से सब देखा है।'

सौदामिनी ने सोच लिया, जल्दबाज़ी नही करनी चाहिए। दो ही तो कुल लड़के हैं ! दो बार धूमधाम होगी। पहले बड़े भाई का ब्याह हो ले, खूबसूरत-सी बहू आ जाए, फिर देखती हूं, संन्यासी रहने की साध कैसे रह जाती है !

सौदा उसी खूबसूरत की ताक मे लगी रही। लड़का लेकिन तेईस का हो गया। उसके लायक लड़की चाहिए तो बारह साल से कम की क्या होगी ? उतनी बड़ी लड़की सुंदर मिले, मुश्किल है ! सुंदर लड़की पड़ी थोड़े ही रहती है। सौदा फिर भी कोशिश करती रही।

कोशिश से बाघिन का दूध मिलता है ! साधना से भगवान मिलते हैं। दो-चार को देखते-देखते तुड़ू की बहू भी मिली।

बारह साल की ! देखने मे सुदर और पढ़ना-लिखना भी जानती है। मेमों के स्कूल में तीन-तीन साल पढ़ी है।

अब सत्य कैसे एतराज़ करेगी ?

सत्य ने एतराज़ नही किया। वह अपने बड़े लड़के का मन समझ रही है। आपत्ति दूसरी ओर से आयी। आपत्ति एलोकेशी ने की।

बड़े लड़के की शादी घर पर होना ही उचित है, सभी जानते हैं। यही सब इंतजाम करने के लिए दसेक दिन की छुट्टी लेकर नवकुमार गांव गया। सुवर्ण को साथ ले गया। सुवर्ण गिड़गिड़ाने लगी, स्कूल में गर्मी की छुट्टियां हो गयी हैं।

सत्य नहीं चाहती थी, लड़की इतने दिनों के लिए दूर रहे। फिर तो पढ़ाई गयी ! दस दिन यों ही बीतेंगे, फिर उसके भैया का ब्याह !

लेकिन ना करना कठिन था। नवकुमार शायद कहे, ईर्ष्या से तुम बिटिया को अपनी दादी के पास नहीं जाने देती।

इसलिए उसने हंसकर कहा, 'तो जा ! पेड़ों के आम खा-खाकर मोटी-ताजी होकर आना ! याद रखना, भैया की शादी में खूब खटना पड़ेगा !'

नवकुमार ने कहा, 'सुनो, बिटिया को वह घाघरा-वाघरा मत देना ! और जो कपड़े हैं वही दो !'

सत्य ने इस सलाह को समीचीन माना।

नतनी को घाघरा पहने देख एलोकेशी फजीहत करेंगी। सो मा की पुरानी नीलांबर जामदानी पहन अपनी साड़ियां जो थी, ले-देकर सुवर्ण बड़े उत्साह के साथ बाप के साथ रवाना हुई। और यही शायद 'काल' हो गया।

घर में कदम रखते ही आफत आ गयी। साड़ी में लिपटी नतनी को देखकर एलोकेशी बोल पड़ी, 'बेटे के ब्याह की तो बड़ी तैयारी तू कर रहा है नोबा, मैं पूछती हूं, इत्ती बड़ी बेटी को घर में पोसकर कोई बेटे का ब्याह करता है ?'

एक दूसरी महिला भी सभा को जगमगाकर वहां बैठी थी। चीन्हूं-चीन्हूं करके भी चीन्ह नही पा रहा था नवकुमार ! वह भी बोल उठी, 'छि: ! नोबू के इतनी बड़ी लड़की है, हाय राम ! और नोबू लड़के के ब्याह की चिंता मे पड़ा है ?'

एलोकेशी ने बहू की मनमानी और फिर बेटे की भड़ुआ वाली हालत की तीखी आलोचना करके कहा, 'मैं तुझसे यह कह रखती हूं मुक्ता, उस बहू की बदअकली से ही इस खानदान के चौदह पुरुष नरक में जाएंगे !'

नवकुमार ने समझाने की कोशिश की, बच्ची की उम्र ही कितनी है ? बहुत तो आठ साल ! बनावट जरा मा जैसी है इसीलिए···। लड़के की उम्र बल्कि ज्यादा हो गयी !'

दोनों महिलाओं के जोर गले से वह कहना न टिका। उन्होंने कहा, 'इस लड़की की उम्र आठ साल है ? कोई आखिर घास के बीए तो नही खाता ?'

ताज्जुब है, एलोकेशी नतनी के जनम का समय भूल गयी। नाती की आयु तेईस हो गयी, यह भी वह नहीं मानना चाह रही थी।

जरा देर बाद नवकुमार को पता चला, वह स्त्री उसकी सखी-मा की लड़की मुक्तकेशी है। कुछ दिनों के बाद मां के पास आयी है।

बेचारी सुवर्ण सोच रही थी, आते ही अमरूद के पेड़ पर चढ़ेगी, पोखरे की ओर भागेगी, टोले में घूमेगी, फूल तोड़ेगी, लेकिन उसकी जगह ऐसी-ऐसी बातें !

सकपकाई खड़ी रही बेचारी !

आखिर एलोकेशी ने राय दी, 'लड़के का ब्याह कर रहे हो, करो ! पर जी-जान से लड़की के लिए दुलहा खोजो, जिसमें एक ही यज्ञ में दोनों हो जाए। लोग देखकर लड़की को धिंगी न कहें !'

मुक्तकेशी ने बड़े उत्साह से कहा, 'इस लड़की के लिए दुलहे की कठिनाई नहीं होगी सखी मां, लड़की तो रूप की रानी है ! आज कहें तो कल मिल जाए ! मैं देखती हूं।'

लेकिन ऐन इसी वक्त वज्रपात हुआ !

सुवर्ण बोल उठी, 'इस्, अभी हुआ ब्याह ! मा बाबूजी को मार नहीं डालेगी ? मैं अभी-अभी नए क्लास में···'

बात पूरी नही हो पायी !

एक तीखा आर्तनाद आधी का आवेग लिए सुवर्ण पर टूट पड़ा मानो, 'क्या कहा ? क्या कहा ? मा बाबूजी को मार डालेगी ? हाय रे नोबा, यह सुनने से पहले मेरी मौत क्यों नही हो गयी रे ? री मुक्ता, एक लोटा पानी लाकर मेरे माथे पर डाल। नही तो मेरा तालु फट जाएगा। तू ज़रा देख तो, कामरूप-कामाख्या की किस डायन बहू के हाथ अपने इकलौते बेटे को सौपकर बैठी हूं मैं !'

मां के इस आक्षेप से किंकर्तव्यविमूढ नवकुमार ने और कुछ नही सूझा तो बेटी के गाल पर तड़ाक से एक थप्पड जमा दिया !

४७

लड़के की शादी के लिए उसका मन तैयार नही था। लेकिन उसे तैयार कर लेने के बाद उसने अनुभव किया, खुशी-सी लग रही है।

लड़के का वह पुलक छिपाया लाजुक-सा मुखड़ा बड़ा कौतूहलजनक था। बीच-बीच में ब्याह संबंधी एक-एक बात छोडकर सत्य उस पुलक को देखने और मन ही मन हंसने लगी।

सत्य के मन पर उम्र का जो भार जम उठा था, उसमे से कुछ साल झड़ पड़े क्या ? उसके इधर के बुझे-बुझे से बीते दिन मानो दब गए। मीठे एक कौतुक से चंचल हो उठी दिन की शक्ल, रात की चिंता।

ब्याह की तैयारी के साथ-साथ वह यह भी सोचने लगी, नाते की ऐसी कोई भी तो नजर नही आ रही है, जो फूल-शय्या के दिन ताक-झाक करे ! सत्य से तो नाता ही बड़ा भयकर है—एक बारगी मा का नाता। तो भी वह सोचती रही, बारुईपुर के जिस कमरे मे दुलहा-दुलहिन की फूल-शय्या होगी, उस कमरे के खिड़की-दरवाजे मे छेद करके रखना होगा। वह छेद क्या किसी के काम नही आएगा ? सत्य के नैहर से बहुतेरे लोग तो आएगे। इसी खुशी से मन उमगता रहा। पहली संतान यदि लड़की होती ! हुई भी तो थी, नही रही।

नही तो उसका शादी-ब्याह कब का हो गया होता। सत्य सास बन गयी होती।

लेकिन वह नही हो सका। इतने दिनों के बाद सत्य का यही पहला कारज। और वह कारज कन्यादान से उद्धार पाना नही, लड़के का ब्याह है। लड़के के ननिहाल से सब को लाए बिना वह मानेगी ? किसी का कोई उज्र नहीं सुनेगी।

नवकुमार ठीक इसी समय चला गया, नही तो अभी ही सत्य न्योता लिखवा लेती। दिन तय करके पक्का न्योता भेजने से पहले चिट्ठी से सूचना देनी ही चाहिए। बेटे का ब्याह है, कम-से-कम पाच-सात दिन तो सबको रहना ही पड़ेगा।

शारदा को तो जरूर ही आना पड़ेगा। बड़े भैया की दूसरी स्त्री को भी नही कहने से अच्छा नही दीखेगा। रासू के दूसरे भाइयों की भी शादी हो चुकी है, उन्हें भी कहना जरूरी है। नयी दादीजी अभी सुहाग का सिंदूर पहने मौजूद हैं। कुछ नही तो बैठी-बैठी अहिवाती लक्षण तो कर लेंगी।

मा के लिए सत्य के एक नि.श्वास छूटा। उन लोगों से कितनी छोटी थी मां, लेकिन कितने दिन हो चुके गुजर गयी। आज यदि मा होती !

जरा देर चुप बैठी रही। फिर मन ही मन फहरिस्त तैयार करने लगी। नैहर में बाल-बच्चो की संख्या कितनी है, किसके कितने बच्चे हैं, सत्य को यह ठीक-ठीक नहीं मालूम। इसके लिए वह मन ही मन शर्मिंदा हुई। सोचा, इस होशियारी से लिखना होगा कि कोई उसकी इस अज्ञता को पकड़ नही सके।

तुड़ू से हंसी-मजाक करने वाली एक है। वह है बड़े भैया के बड़े बेटे छन्नू की स्त्री, जिसके ब्याह मे सत्य को ले जाने के लिए रासू ने बहुत कहा-सुना था।

लेकिन सत्य की हालत उस समय शोचनीय थी।

सुवर्ण की पैदाइश के ठीक बाद की बात। सत्य लगभग शय्याशायी थी। जाने का साहस नही कर सकी। इसके अलावा मन मे भी वह उत्साह नही था। बड़े भैया और भाभी जरूर उस बात का ख्याल नही करेंगे। सत्य को वे सचमुच ही चाहते है।

इस-उस बात को सोचते-सोचते हठात् एक अप्रासंगिक बात याद आ जाने से अपने ही आप हस उठी सत्य। याद आ गयी शारदा के कमरे की जंजीर लगा देने की बात।

वास्तव मे सत्य उस समय कितनी तुड़ू थी।

बाद में शारदा ने इस बात के लिए एक दिन मजाक किया था। जिस साल पहले बच्चे के होने के समय शारदा जाकर नैहर मे बहुत दिनों तक रही थी। उस समय शारदा उम्र का फर्क उतना नही लेती थी। भाभी-ननद का

ही नाता लेती थी। शारदा ने कहा, 'अरे बाबा देखूंगी, देखूंगी! तुम्हारा एकबग्गा स्वभाव रह कैसे जाता है! यह दुनिया एक ऐसी चक्की है न कि मूंग-मसूर, अरहर-चने को एक ही साथ पीस डालती है!'

दुनिया ने सत्य को आखिर पीस डाला?

बीच-बीच मे सत्य स्वय ही सोचती है।

लेकिन अभी मन उद्वेल है। वह सब चिंता अभी ठहर नही पा रही है। अभी सत्य सोच रही है, नित्यानंदपुर की दुनिया कितनी अच्छी थी। वहां अब पिताजी नही हैं।

नेड़ू की सोच करके भी दु.ख होता है। जाने अब कहां है वह! वही जो उस बार आया, कई दिन रुककर ममता बढ़ाई और चला गया। उसके बाद से लापता! कौन कहेगा कि पढने से जी चुराने वाले उस निरीह-से लड़के में वैसा एक घर छुड़ाने वाला खामखयाली मन छिपा था!

नित्यानंदपुर की खबर सत्य को बीच-बीच में बड़े भैया की चिट्ठी से मिल जाती है। देर-देर से अवश्य। जब जी बहुत ही कैसा तो करने लगता है, तब वह रासू को लिखती है। रासू बड़ा मुख्तसर मे लिखता है, लेकिन समाचार देता है।

रामकाली तो पत्र का उत्तर ही नहीं देते।

एक ही बार सिर्फ लिखा था, चिट्ठी न मिले तो दुखी मत होना। यह नही लिखा कि चिट्ठी आखिर किस वजह से नही मिलेगी।

सत्य समझती है, जानकर ही वे चिट्ठी नही लिखेंगे। माया से अपने को मुक्त कर रहे हैं। जो भी हो, बेटे के ब्याह मे एक बार चरणो की धूल देने को उनसे ज़रूर कहेगी। कहेगी, आपका आशीर्वाद पाए बिना तो इनका ब्याह ही बेकार है।

बेटे के ब्याह को उपलक्ष करके सत्य के चित्त-समुद्र के नीचे की बहुतेरी लहरें ऊपर आ रही है। धूल की परतों मे दबी बहुत सारी स्मृतियां उभर रही हैं।

पुन्नू कभी सत्य की जिगरी मित्र थी, यह बेशकीमत बात भी सत्य मानो भूल-सी रही थी। किस जमाने से, जाने कब से उससे भेंट नही हुई है। गोकि बहुत ज्यादा दूर नही रहती है वह—उसकी ससुराल श्रीरामपुर मे है। नाव पर सवार होने भर की देर। तुरत पहुंचा जा सकता है। पर सत्य ने भी कभी जाने की नहीं सोची, पुन्नू ने भी कभी आने की नही सोची।

सत्य नही भी सोच सकती है। पुन्नू की ससुराल कुटुंब का घर हुआ। ढेरों लोग हैं। बिना किसी मौके के जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन सत्य

के डेरे में तो वह अड़चन नहीं है। काली-दर्शन के बहाने तो पुन्नू कभी आ सकती थी।

बात दरअसल यह है, गिरस्ती आदमी को दबा डालती है, खास करके स्त्रियों को।

उसके अंदर की सारी मधुरता, सारी कोमलता सबको मानो घिसकर भोथरी बनाकर, सुखाकर गर्द बनाकर छोड़ देती है। नहीं तो पुन्नू के विधवा होने की सुनकर भी वह उससे नही मिलती।

तुड़ू के ब्याह में पुन्नू को लाना ही पड़ेगा।

मन उसका एकाएक बड़ा चंचल हो उठा। दवात, कलम और कागज़ लेकर पुन्नू को चिट्ठी लिखने बैठ गयी।

आदर का संबोधन ही किया। जो भी हो, फुआ है। तुड़ू के ब्याह की बात लिखी। लिखा—बेटा, बेटे की बहू, लड़कियों को लेकर जरूर से जरूर आए। सम्मति-पत्न मिलते ही मैं आदमी भेजूंगी।

आदमी तो भेजना ही होगा।

नही तो दूर के कुटुम्ब आने क्यों लगे? समाज-सामाजिकता में 'मिताई' का कोई मूल्य नही है।

चिट्ठी लिखी ही गयी। मगर अभी डाक में नही डाली जाएगी। नवकुमार अभी है नही। उसे दिखाए बिना इतना मालिकाना ठीक नही। यों सत्य जाबाज है, मगर इन नियमों को मानती है।

नित्यानदपुर उसने सबको आने के लिए लंबी चिट्ठी लिखी है जरूर, लेकिन मूल पत्न तो नवकुमार से ही लिखाना होगा।

न्योता तो घर भर के लोगों को करेगी, लेकिन किस-किस को खास तौर से लिखना होगा, सत्य ने इसकी एक सूची तैयार कर ली।

ऐसे काम में लिखा-पढ़ी में जितना हो सके, उतना ही अच्छा। कही किसी का नाम छूट जाए तो शर्मिंदगी की हद नहीं रहेगी।

नवकुमार की तरफ अपनों का इतना झमेला नहीं है।

दूर के नाते की कोई फुआ है और हैं ममेरे भाई। और तो कभी किसी का नाम सत्य ने नही सुना। और हैं सास की एक सखी। उन्हें दो-एक बार देखा है। दशहरे में उनके लिए साड़ी भेजी जाती है, पर्व-त्योहार में बैना जाता है।

और कोई कहां। एलोकेशी का सब-कुछ पड़ोसियों से होता है।

हां, अब एक बड़ा-सा परिवार हुआ है।

सौदा का परिवार! छोटा नही है।

मगर यह सोचने से नही चलेगा। बेटे का ब्याह भी तो छोटा काम

नहीं है।

सत्य को अपने बचपन की बात याद आ गयी।

एक-एक काम में कितनी धूम, कितना समारोह! ब्याह, जनेऊ, भोज-भात की तो दूर, दादी के अनंत चतुर्दशी व्रत-उद्यापन में ही कितनी धूम हुई। ओः!

भात-मछली का भोज नहीं, पूरी-मिठाई। फिर भी चूल्हों की कुछ न पूछिए। हलवाई और रसोइयों का मेला ही लग गया था। मछली की कमी पूरी करने के लिए, दही, रवड़ी, खीर की नदी, समंदर लहरा दिया था रामकाली ने। मिठाइयों का पहाड़ खड़ा कर दिया था।

यज्ञ की सोचते ही वे सारे दृश्य आंखों के सामने नाच उठते, उत्सव का ख्याल आते ही उस समय की छवियां फूट उठती हैं।

वैसा नहीं कर सकने से सत्य का मन नहीं भरेगा।

बात उसने थोड़ी-बहुत उठायी थी, नवकुमार ने डर से आंखों को कपाल पर चढ़ा लिया। कहा, 'रुपए-पैसे की नहीं कहता, भगवान की दया से रुपए-पैसे की नहीं सोचता, लेकिन इतना करेगा कौन? आदमी का बल कहां है? एक बात है, धनबल, जनबल और मनोबल—तीनों की जरूरत है। है वह?'

सत्य ने सोच ही रखा था कि इसी तरह की बात आएगी। इसलिए तैयारी भी थी। छूटते ही बोली, 'धन का बल ही जनबल ले आता है और मन का बल उन दोनों को चलाता है! और यह तुम मे चाहे न हो, मुझ में है!'

'तुम्हारी तो सब बातें ही लंबी-चौड़ी होती है! जोर-शोर से शुरू करके आखिर में हंसी उड़वाओगी!'

सत्य ने दृढता से कहा, 'हंसी क्यों उड़वाऊंगी? बराबर जैसा काम-कारज देखती आयी हूं, वैसा ही सोचना सीखा है! हंसी होगी, यह सोचने की ही नहीं!'

यह सब कलकत्ता में होता, तो सुविधा की कमी नहीं होती। यहां तो पैसा हो तो आधी रात को भी बाघिन का दूध मिल सकता है। लेकिन सुविधा की उस मधुर कल्पना को मन से निकाल देना पड़ा है। पहले बेटे का ब्याह, परदेस के डेरे से करने की बात सोचना भी गलत है। पहला बेटा ही क्यों, बेटा-बेटी, किसी का भी ब्याह अपने घर से बाहर करना उचित नहीं है। नादी मुख श्राद्ध होगा, पुरखों को पिंड पानी मिलेगा—यह काम भला जहां-तहां से करना चाहिए?

इसलिए गांव के घर पर ही वह सारी तसवीरें आंक रही है, उसी हिसाब से सब-कुछ सोच रही है।

इस मामले में सत्य का बंधु, सलाहकार, सहायक सब-कुछ है उसका छोटा लड़का सरल।

गर्मी की छुट्टियां है। इसी से सहूलियत है। जब-तब सत्य की पुकार होती है, 'मुन्ना, ज़रा दवात-कलम तो ले आ बेटे! एक बात सूझी है! इसी वक्त लिख लें, नहीं तो भूल जाऊंगी!'

सरल हंसा, 'तुम भूल जाओगी! जेठे बेटे का ब्याह-व्याह करके तुम्हारे माथे में तो रात-दिन रेलगाड़ी का इंजन चल रहा है!'

सत्य भी हंसी, 'तुझे ईर्ष्या हो रही है, क्यो? तेरे ब्याह के वक्त भी कुछ कम नहीं करूंगी, माथे में जहाज चलाऊंगी!'

'नमस्ते मां! देखकर ही मेरी कामना पूरी हुई जा रही है।'

सरल की बातचीत ऐसी ही होती है।

बड़े है—इसके लिए वह कभी सिहर नहीं उठता। बाबूजी के बारे में वह सहज ही आड़ में हंसकर कहता है, 'घर के मालिक की राय हो गयी। कहता है, खैर, मालिक का कर्त्तव्य कर लिया गया...'

सत्य हंसी को दबाकर कहती, 'अरे लड़के, यही बात का ढंग है! गुरुजन हैं न!'

सरल भय का भान करते हुए बोला, 'हाय गजब, मैंने इसमें कोई संदेह दिखाया है? लेकिन हां, हंसी की बात पर मैं हंसे बिना नही रह सकता!'

सरल की बातचीत मां से ही होती।

रसोईघर में छोटी-सी चौकी पर बैठकर कलसी, कड़ाही, बगूना—जो भी मिल जाता, उसी को लेकर तबला ठोंकता और बात करता, 'सुन रही हो मां, रास्ते पर आज एक गजब की गाड़ी निकली है। गाडी भी गजब और नाम भी अजब—ट्राम गाड़ी। घोड़े खींचते हैं। और उसे देखने के लिए भीड़ उमड़ी है! पूछो मत। रास्ते के दोनों तरफ कतार लोग...'

कहता, 'समझी मां, आज हिंदुआ के किनारे एक दोस्त से बात करते-करते हो गया एक पक्कड़! उसने कहा क्या कि इस बंगाली जात से कुछ नही होने का! यह जात भंड और सनकी है! बस हुआ गुस्सा सवार! खूब कसकर सुना दिया!'

सत्य ने आग्रहभरे मुंह से पूछा, 'क्या सुनाया?'

अब की सरल शर्माया। हंसकर बोला, 'और क्या! कह दिया, जात का कलंक मिटाने की चिंता नहीं—हंस-हंसकर निंदा करने मे शर्म नहीं आती? चुल्लूभर पानी में डूब मरो जाकर! कूद जाओ इस हिंदुआ तालाब में।'

शाम की रसोई का समय सत्य के आनंद का समय है। इसी समय सरल आकर बैठता है।

जिम्मा निताई की स्त्री ने लिया है। सौदा ने कहा है, बरियों का भार मुझ पर छोड़ दो। एक मन दाल की बरी ! रोज़ थोड़ी-थोड़ी करती जा रही है। दीए की बत्तियां सौदा की सौत बना देगी।

उत्साह सबको है।

और, व्याह के काम में सबकी मदद लेना ही सामाजिकता है, मदद न लेना ही निंदा की बात है। दुलहिन का घर भी ज्यादा दूर नही। वहां से भी लोग बार-बार आ-जा रहे हैं—नमस्कारी साड़ी कै लगेंगी, ननद पिटारा कै होगा, अहिवाती-डाला में आप के यहां क्या-क्या देना पड़ता है···आदि-इत्यादि।

नवकुमार ठीक इसी समय गांव जाकर बैठ रहा !

उसके अभाव और स्वाभिमान का बोध जग जाने से आज मन कैसा तो खां-खा करने लगा कि ख्याल हो आया, लड़के का कमरा संवार दूं।

बारुईपुर से लौटकर तो बहू को लेकर यहीं रहना होगा ! उम्रवाली लड़की है। उसे साल भर नैहर मे छोड़ने की इच्छा नहीं है। कलकत्ता के पड़ोसियों मे सत्य आजकल एक चलन देख रही है—धूल लगे पांवों ससुराल वास !

अष्टमंगला के बीच ही बहू को एक बार नैहर भेजकर ले आने के बाद गंठबंधन करके वर-वधू को घर में रख लेने का नाम है—धूल लगे पांवों ससुराल वास !

सत्य यही करेगी।

सत्य ने समझ लिया है, बेटे को बहू के लिए ललक है।

बहू को जल्दी ही लिवा लाना होगा।

खैर ! आज कमरा ही सजा-संवार लिया जाए।

दुतल्ले पर दो कमरे हैं !

एक में साधन और सरल दोनो भाई सोते है। एक मे घर का बहुत सारा सामान ठूंस दिया गया है। सत्य नीचे के कमरे में सुवर्ण को लेकर सोती है चौकी पर। दूसरी चौकी पर नवकुमार सोता है।

जिस डेरे में सुहास को लेकर थी, उसमें कमरे कम थे। जगह भी कम थी। बेचारे नवकुमार को बहुत वंचित होना पड़ा। यह व्यवस्था अभी की जो है, सत्य ने की है। उसकी उम्र हो रही है, अब वह अकेले पड़ा रहेगा ? अकेले रहने से वक्त पर कोई एक लोटा पानी देने वाला भी तो नहीं रहेगा। लड़के बारहों महीने रात जगकर पढ़ते है। उस कमरे में नवकुमार को कष्ट होता है। इसीलिए यह व्यवस्था की गयी। लेकिन अब यह व्यवस्था नही चलेगी।

अब दुतल्ले के सामान भरे कमरे को खाली कराके वहां सुवर्ण के साथ सत्य को अड्डा जमाना पड़ेगा। सरल को नीचे नवकुमार के कमरे में चालान

साधन सदा से और ही तरह का है। मुंहचोर! लजीला! इसके सिवा जरा पंडित-पंडित-मा! रसोई मे जाकर बैठने की बात वह सोच ही नहीं सकता है। ढालकर एक ग्लास पानी पीने की भी जुर्रत नहीं है उसे। काम जो कुछ भी हो, सरल। सरल सत्य का दायां हाथ है।

भूमिका अभी भी वही पहले की—सिर्फ संलाप का सुर जुदा। सरल ने कहा, 'सुना है, बाबूजी तो मखमल का चोगा-चपकन और टोपी पहनकर ब्याह करने गए थे। भैया क्या पहनकर जाएंगे?'

सत्य ने दुलार से फटकारा, 'फाज़िल कहीं का, मलमल के चोगा-चपकन वाली मूर्ति तुमने देखी थी, क्यों?'

सरल ने कहा, 'अहा, पहले ही तो कह चुका, सुना है!'

'किससे सुना, जरा सुनूं मैं?'

'क्यो, फुआ से! फुआ से तुम्हारे, बाबूजी के बचपन की सारी बातें सुनी हैं।'

'हूं! यानी फुआ तुझे बाप का ब्याह दिखा रही है!' सत्य हसी। उसके बाद बोली, 'तुड्र क्या पहनकर ब्याह करने जाए जो फबे, तू ही बता।'

'मैं क्या बताऊं? और बताऊं भी तो सुनता कौन है? चोगा भले ही न चढ़ाओ, बैंगनी रंग के कपड़े तो उसकी गरदन पर चढाओगी ही! फिर? ब्याह करने का मतलब ही स्वांग सजना है। वल्लाह!'

'अच्छा ले, तुझे व्याह की व्याख्या नही करनी होगी! ले, बल्कि मिठाइयों की सूची फिर से सुना, देखू, कैसी लगती है? छन्ना के लिए दूसरी मिठाइयां रखी हैं न?'

मिठाई बनाने के लिए कलकत्ता से कारीगर जाएंगे। बात पक्की करने के लिए आज सरल को उनके पास भेजा था। सरल सारी खबर रखता है।

सरल घर पर नही है। और साधन तो होते हुए भी नहीं है।

नवकुमार और सुवर्ण आज कई दिन से घर पर नही है। दोपहर को हठात् मन बड़ा खाली-खाली लगा। कई दिनों से सूचिया बनाने में ही जुटी हुई है, इसलिए सुवर्ण का अभाव सह गया है। नही तो बातों की रानी उस बिटिया का न रहना ही सत्य के लिए कम सूनापन नही है।

दस दिन के लिए जाकर नवकुमार ने बारह-तेरह दिन लगा दिए। इधर ब्याह का दिन करीब आता जा रहा है। यह आदमी जो है, इसे दायित्व का ज्ञान नही।

फिलहाल हाथ मे कोई खुदरा काम नही है। ब्याह की सुपारी काटने का

जिम्मा निताई की स्त्री ने लिया है। सौदा ने कहा है, वरियों का भार मुझ पर छोड़ दो। एक मन दाल की बरी ! रोज थोड़ी-थोड़ी करती जा रही है। दीए की वत्तियां सौदा की सौत वना देगी।

उत्साह सबको है।

और, व्याह के काम में सबकी मदद लेना ही सामाजिकता है, मदद न लेना ही निंदा की बात है। दुलहिन का घर भी ज्यादा दूर नहीं। वहां से भी लोग बार-बार आ-जा रहे हैं—नमस्कारी साड़ी कै लगेगी, ननद पिटारा कै होगा, अहिवाती-डाला में आप के यहां क्या-क्या देना पड़ता है···आदि-इत्यादि।

नवकुमार ठीक इसी समय गाव जाकर बैठ रहा !

उसके अभाव और स्वाभिमान का बोध जग जाने से आज मन कैसा तो खां-खां करने लगा कि ख्याल हो आया, लड़के का कमरा संवार दूं।

बारुईपुर से लौटकर तो वहू को लेकर यही रहना होगा ! उम्रवाली लड़की है। उसे साल भर नैहर में छोड़ने की इच्छा नहीं है। कलकत्ता के पड़ोसियों में सत्य आजकल एक चलन देख रही है—धूल लगे पावो ससुराल वास !

अष्टमंगला के बीच ही वहू को एक वार नैहर भेजकर ले आने के बाद गंठबंधन करके वर-वधू को घर मे रख लेने का नाम है—धूल लगे पांवों ससुराल वास !

सत्य यही करेगी।

सत्य ने समझ लिया है, वेटे को वहू के लिए ललक है।

वहू को जल्दी ही लिवा लाना होगा।

खैर ! आज कमरा ही सजा-संवार लिया जाए।

दुतल्ले पर दो कमरे हैं !

एक में साधन और सरल दोनों भाई सोते हैं। एक मे घर का बहुत सारा सामान ठूंस दिया गया है। सत्य नीचे के कमरे में सुवर्ण को लेकर सोती है चौकी पर। दूसरी चौकी पर नवकुमार सोता है।

जिस डेरे में सुहास को लेकर थी, उसमें कमरे कम थे। जगह भी कम थी। बेचारे नवकुमार को बहुत वंचित होना पड़ा। यह व्यवस्था अभी की जो है, सत्य ने की है। उसकी उम्र हो रही है, अव वह अकेले पड़ा रहेगा ? अकेले रहने से वक्त पर कोई एक लोटा पानी देने वाला भी तो नही रहेगा। लड़के वारहो महीने रात जगकर पढ़ते हैं। उस कमरे में नवकुमार को कष्ट होता है। इसीलिए यह व्यवस्था की गयी। लेकिन अव यह व्यवस्था नही चलेगी।

अब दुतल्ले के सामान भरे कमरे को खाली कराके वहां सुवर्ण के साथ सत्य को अड्डा जमाना पड़ेगा। सरल को नीचे नवकुमार के कमरे में चालान

करना होगा। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं। बहू के सामने पति के साथ एक कमरे में सोना शील को खलता है। कम से कम सत्य को।

लड़कों वाला कमरा अच्छा ही सजा हुआ है।

दीवालों पर देवी-देवताओ और महापुरुषों की तस्वीरें, दीवार-अलमारी में कतार से खड़ी किताबें। एक कोने में पढ़ने की मेज, उसके सामने दो तिपाई, मेज पर पढ़ने-लिखने का सरंजाम। बड़ी-सी चौड़ी चौकी पर दोनों भाइयों का बिछौना।

कमरे में उलट-पुलट करते-करते सत्य मन ही मन ज़रा हंसी। ब्रह्मचारी अब संसारी होंगे! बगल में भाई के बदले स्त्री···

सोचते-सोचते सहसा रोमाच-सा हो आया। निहायत बच्चे-सी सोचने लगी, यह शर्मिला लड़का जाने कैसे अपनी स्त्री से भाव करेगा, कैसे दुलार करेगा!

फिर सोचा, यह कुछ उम्र करके ब्याह करना कितना अच्छा है! सत्य का ज़माना कैसा अजीब था। दुलहा के नाम से दुलहिन को बुखार, दुलहिन के नाम से दुल्हे को पसीना। सत्य जब घर करने गयी, तब उसे 'घर-वर' नहीं मिला। जब मिला, तो मानसिक अवस्था उससे अच्छी नहीं थी। और ब्याह?

ब्याह का मतलब भी समझा? छिः-छिः—वह ब्याह तो मानो लड़के-लड़कियों से बड़ों का खिलौने से खेलना हो।

एक बहुत बड़ा लोभ दिखाया गया है—गौरीदान, कन्यादान, पृथ्वीदान। और कुछ नहीं, आंख फूटने के पहले ही लड़कियों को बलि की वेदी पर रख देना।

सत्य जैसी जबर कितनी लड़किया होती हैं?

सत्य के होठों पर फिर ज़रा हंसी दौड़ गयी। नवकुमार जैसा पत्नीगत प्राण वाला आदमी न होता तो सत्य क्या करती, क्या जाने। मन के अगोचर कुछ नहीं, सत्य के मन में स्वामी के प्रति भीतर ही भीतर बहुत अवज्ञा है, तो भी आज हठात् गर्मी की दोपहरी में खा-खां करते मन में उस आदमी के लिए ही उसका जी बड़ा कैसा-तो कर उठा। नवकुमार बेचारा ही क्या सुखी हो पाया? आप अपने को अपराधिनी-सी लगी।

काश, सत्य ससार-सर्वस्व लड़की होती। बेचारे नवकुमार का जीवन बहुत ज्यादा सुखी होता, इसमें संदेह नहीं।

यही आज ही तो उस बेचारे के अंतिम सुख को भी सत्य छीन लेने को तैयार है। और कुछ नहीं, एक कमरे में भी तो होता। गप-शप का समय तो रात ही है। सत्य का मन-मिजाज़ ठीक रहता है तो नवकुमार दफ्तर और दफ्तर के दोस्तों की बातें करना शुरू कर देता है। अब इससे भी गया।

बहू के आ जाने पर एक कमरे में रहना ठीक नहीं, नवकुमार को यह

समझाना कठिन है। एलोकेशी तो पति के मरने के समय तक कमरे को पकड़े रही। सोना सदा बेहाथ रहता है, शायद इसीलिए आंचल में गांठ बांधने की इतनी मुस्तैदी!

उदाहरण बेशक और भी बहुत-से हैं।

अकेले एलोकेशी को ही दोष देना कैसे उचित होगा?

चाचा से भतीजा बड़ा होता है, यह हमेशा देखने में आता है। गृहिणी का छोटा लड़का पोतों की कथरी और कजरौटी से ही पलता है।

पलता है, सत्य को यह मालूम है।

लेकिन इससे उसे बड़ी वितृष्णा है।

जो हो, अपना विस्तर दुतल्ले पर ले जाने की सोचते ही नवकुमार के लिए सत्य का मन कैसा तो कर उठ रहा है। बाल-बच्चों का पास-पास रहना ही ठीक है। उससे मन में पागलपन नहीं आता। सुवर्ण नहीं है, शायद इसीलिए मन में ऐसा हो रहा है।

इसीलिए बक्स-संदूक को इधर-उधर करना अच्छा नहीं लगा। हाथ का काम अधूरा ही छोड़कर सत्य खिड़की के पास आकर खड़ी हुई।

झां-झां करती धूप से आसमान मानो फट रहा हो। रास्ते के किनारे का पेड़, रास्ते के उस पार के घर उस दाह में जले जा रहे थे। बगल के रास्ते से कोई बर्तन वाला जा रहा था—कांसे को पीटता जा रहा था, टन्-टन्। वह आवाज धीमी से तेज़ और फिर तेज से धीमी हो गयी।

कहीं दूर पर कोई बैलगाड़ी जा रही थी। उसके पहियों की कैंच-कैंच और बैल के गले की घंटी एक ताल से बज रही थी।

उससे भी दूर पर कहीं पोंड़की की बोली जैसे प्रकृति के बदन पर करुण आर्त्तनाद की छुरी घोंप रही थी।

पोंड़की को बोलते सत्य ने सुना नहीं है क्या? सारी ज़िंदगी ही तो सुनती आयी है। फिर उस पोंड़की के रोने की तरह आज उसे रोने की इच्छा क्यों हो रही है? क्यों लग रहा है कि उसके कोई कहीं नहीं है। वह सदा की अकेली है, सदा की निःसंग! उस पर किसी को माया नहीं, ममता नहीं, प्यार नहीं है। वह स्नेह-प्यारविहीन मरुभूमि की राह पर अकेली ही चल रही है, चल रही है!

धूप का तीखापन और झुलसाने वाली हवा के झोंके आंख-मुंह में लग रहे थे, पर खिड़की के बाहर के उस दृश्य ने नशे की तरह सत्य को रोक रखा था—उस नशे के साथ विधुर, विषण्ण एक वेदना मिली थी!

यह वेदना क्यों? यह शून्यता कैसी?

विस्तर पर लेटी नाहक की रुलाई जैसी कविताई करेगी क्या वही ?

शायद वही करती, नही करती शायद—अचानक नज़र पड़ गयी, माथे पर गीला अंगोछा रखे, तलवे को बचाने के लिए लगभग कूदती हुई-सी रास्ते से सौदा जा रही है।

किसी अशुभ आशंका से उसका कलेजा दहल गया।

अरे ! ऐसे समय ?—चौंकने से वह नशा उतर गया।

खिड़की से हटकर तेजी से कदम बढ़ाती हुई वह उतर आयी। उसके नीचे जाते ही सौदा सूखे गले से बोल उठी, 'वहू ? लड़के घर पर नही हैं ?'

सत्य ने सिर हिलाया ! बैठने को कहना भूल गयी।

सौदा थोड़ा आगा-पीछा करके पास ही चौकी पर बैठ गयी। बोली, 'एक खबर है ! कहती हूं अभी ! पहले एक लोटा पानी तो दे !'

गट-गट करके लोटा भर पानी वह पी गयी। उसके बाद सुस्ताकर बिखरा-बिखरा-सा जो कुछ उसने कहा, उस सब का सारांश यह कि सत्य को बारुईपुर जाना होगा।

बारुईपुर जाना है, यह तो उसे मालूम ही है। बस, यही तो और कै दिन के बाद ही···

कै दिन के बाद वाली बात बाद में, अभी इसी समय जाना होगा। आज ही जा सकती, तो अच्छा होता। मगर सवारी का इंतज़ाम करने में कुछ देर तो लगेगी। लिहाज़ा कल ! कल तड़के ही ! मुखर्जी बाबू सब इंतज़ाम किए देते हैं, जरा कोई लड़का उनके साथ जाए !

सौदा ने बहुत संवारकर और बड़े सहज ढंग से कहने की कोशिश की, फिर भी बातें कैसी तो उलटी-पुलटी लगी और सौदा कैसी तो बुद्धू-बुद्धू-सी दिखी।

वह मानो कुछ लुका-छिपाकर कह रही हो और वह गुप्त बात जैसे ज़ाहिर हुई जा रही हो।

उसके चेहरे का रंग जो बदरंग दीख रहा था, वह क्या सिर्फ़ धूप में आने की वजह से ? उसके गले में जो कंपन था, वह क्या सिर्फ़ सत्य को निःशंक करने की व्याकुलता से था ? वह बार-बार कह रही थी, 'डर मत, डरने की कोई बात नही है।'

लेकिन नही डरने के इस आश्वासन में ही सत्य को डर का आभास मिल रहा था। इसीलिए उसकी छाती हिम हो गयी; हाथ-पांव दो-चार बार कांप उठे, फिर शायद कांपने की शक्ति भी खोकर अवश हो आए।

सत्य ने सौदा से एक बार के लिए भी कुछ पूछा-आछा नहीं। सिर्फ़ उदास आंखों से ताकती रही।

इसीलिए सौदामिनी ने ढाढ़स की ही कही, 'चिंता मत कर, मन को उचाट मत कर—वहां जाने पर सब ठीक ही ठीक देखेगी। मैं भी तो चल रही हूं तेरे साथ।'

सौदा भी साथ जा रही है। तो फिर शुबहा किस बात का? सत्य नज़रों के सामने ही सर्वनाश की छाया देखने लगी।

इतनी देर के बाद उसके मुंह से बरबस एक शब्द निकल पड़ा, 'ननदजी!'

यह आवाज़ सत्य की थी? ऐसी हताश आवाज़?

तो क्या उसने, अब पतवार डाल दी? यह पतवार, जिसे सख्त मुट्ठी से पकड़े वह समुद्र पार करती हुई इतनी दूर आयी?

कभी हार न मानने की प्रतिज्ञा की थी, आखिर भाग्य से हार मान लेगी?

अंदर ही अंदर इतना थक गयी है वह?

सौदा बोली, अरे, 'तू तो बैठ पड़ी! ऐसी तो थी नहीं तू? कभी हिलती-डोलती नहीं थी। आज इतना घबरा क्यों रही है?'

सत्य चौंकी! अपनी इस गिरावट से शर्मिंदा हुई। अपनी शिथिल पड़ी आवाज़ को वह सम्हाल नही सकी। बोली, 'पता नही, क्यों तो मन कुछ बोल रहा है। लगता है, सब जैसे ख़त्म होने को आया!'

सौदा झट बोली, 'भगवान का नाम लो, बुरा कुछ नही हुआ है। हठात् बुलाहट क्यों आयी, यही ठीक-ठीक समझ नही पा रही हूं।'

बारुईपुर से आदमी आया है सौदा के पास। उसने सौदा से इन लोगों को जल्दी से ले जाने के लिए कहा है। बन पड़े तो आज ही, नहीं तो कल! जितना तड़के निकल सके।

सत्य ने एक नि.श्वास फेंका, 'मेरा मन ही साफ बता रहा है ननदजी! लगता है, मैं मानो विसर्जन का बाजा सुन रही हूं। उस बार इसकी इतनी बड़ी बीमारी में भी ऐसा नही हुआ था!'

सत्य के मन मे नवकुमार के लिए ही उथल-पुथल होने लगी। थोड़ी ही देर पहले उसका मन कैसा तो कर रहा था, उसके बाद यह संवाद! सत्य के मन में हुआ इन दोनो में कोई योग-सूत्र है।

अपने मन की कमज़ोरी भी पकड़ में आयी।

नहीं तो, उस बार जो नवकुमार के लिए साहब डॉक्टर बुलाया गया था, सत्य को वह बात क्यों याद आ जाती? उस बार सर्बनाश निश्चित है, यह जानते भी सत्य ने मुकाबले की हिम्मत की थी, आज यह सोचकर आश्चर्य लग रहा है।

तो, विसर्जन का बाजा इस बार सचमुच ही बज गया! सत्य का रौब-तेज,

सारी उछल-कूद उस रीढ़विहीन आदमी को केन्द्र करके थी, आज यह बात उसकी समझ में आ गयी क्या ? जबकि वह आदमी···

'चली जा रही हो ननदजी ?' सत्य ने अकुलाकर सौदा का हाथ पकड़ लिया।

सौदा डगमगा गयी।

वह ज्यादा कुछ नहीं बोली। सत्य के हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर हड़बड़ाकर सिर्फ़ इतना कहा, 'ऐसी उतावली क्यों हो रही है, बहू ? मैं कहती हूं, नोबू कुशल से है !' कहते-कहते वह बरामदे से आंगन में उतर गयी। कहा, 'चलती हूं, मुझे भी तो जाने की तैयारी करनी है। तू भी सामान-बामान कर ले। तुड़ू जैसे ही घर आए, भेज देना।'

एक तरह से भाग ही गयी सौदा।

और सत्य उसके जाने की राह की तरफ निढाल होकर ताकने लगी। देर तक ताकती रही।

अब नवकुमार के सिवाय दूसरी एक आशंका उसके मन को आरे से चीरने लगी। सौदा के अंतिम शब्द कानों में गूजने लगे—'नोबू कुशल से है।'

तो ?

कुशल से और कौन नहीं है ?

सुवर्ण का ख्याल करते भी सिहर उठने लगी। लेकिन चिंता को रोक कौन सकता है ? उसे तो चाहे सौ बार मन से दूर करने की कोशिश करो, वह कोशिश ही उसे हज़ार बार बुला लाती है।

हो न हो, सुवर्ण को ही खतरनाक कुछ हुआ है। सौदा ने खोलकर बताया नही।

कोई भयंकर बीमारी ? कि भगवान ने एकबारगी चरम सजा ही दे दी है ?

सुवर्ण ! सत्य के जीवन से यह नाम ही धुल जाएगा ? सत्य के प्रत्येक रक्त कण में विसर्जन का बाजा सच मे ही बजता रहा !

तो भी तैयारी कुछ करनी ही पड़ी।

लड़के घर लौटे तो उन्हे बताना ही पड़ा।

लड़को ने अपनी फुआ के यहा से लौटकर खबर दी, गाड़ी का इंतज़ाम हो गया। घोड़ागाड़ी और बैलगाड़ी से कुछ ही घण्टो में पहुंच जाएंगे।

सत्य को लड़कों की तरफ ताकने का साहस नही हुआ। केवल सत्य को ही साहस नही हुआ ? सत्य के लड़के ही क्या मा को अपने स्याह हुए चेहरे दिखाने की हिम्मत कर पा रहे थे ?

घर बंद करके ही जाना पड़ेगा। सत्य कमरों मे ताले लगाने लगी और

ताला लगाते-लगाते उसे लगा, जैसे वह अपने जीवन के भी सारे दरवाज़े वंद किए दे रही है।
उन दरवाज़ों को खोलकर अव वह घर-गिरस्ती नहीं करेगी।

कै दिन के बाद ही सत्य के बड़े लड़के का ब्याह है न ?
वह ब्याह सत्य देखेगी ?
होगा वह ब्याह ?
सब जैसे धुंधला हुआ जा रहा है। सपना हुआ जा रहा है।
कल ही सवेरे निताई की वहू के यहां से कटकर आयी सुपारियों को पिटारे में भरती हुई बहुत खुश हुई थी सत्य कि सुपारियां खासी महीन कटी है, अब क्या वह बात यक़ीन कर पाएगी ?
खामखा ही ऐसा होता है ?
नहीं !
मन को पहले ही पता चल जाता है।
और यदि अकारण ही हो, तो ये लोग स्तब्ध क्यों हैं, जो लोग गाड़ी में साथ चल रहे है ?
साधन, सरल, सौदा ?
और दिन होता, तो सत्य उन सब की चुप्पी तोड़कर ही रहती। दृढ होकर कहती, 'इतना लुकाने-छिपाने से क्या लाभ ? जो हुआ है, वह जान ही तो रही हूं—बाधकर मारने की क्या ज़रूरत ? जो हुआ है, सुनूगी—सुनने के लिए तैयार हो रही हूं···'
लेकिन आज उससे वन नहीं पा रहा है।
कल दोपहर से ही हठात् उसका मन बेकल हो गया है।

निर्दिष्ट स्थान पर घोड़ागाड़ी छोड़कर बैलगाड़ी पर सवार होना पड़ा। बैलगाड़ी पर बैठते ही सौदा ने चुप्पी तोड़ी। सत्य से नही, वह लड़कों से बोली, 'तेरे फूफाजी की भी इच्छा थी आने की ! सिर्फ बैलगाड़ी के डर से रह गए। उमर हो गयी है न ! और सदा कलकत्ता···'
अंतिम शब्दों को सत्य सुन नही पायी।
उसके कानो में सिर्फ यही गूजा—'इच्छा थी।'
इच्छा माने ? कर्त्तव्य नही, इच्छा !
उस आरामतलब आदमी को किस दृश्य के आमने-सामने होने की इच्छा थी !
मौन ही डरावना होता है।

बात ही साहस को जन्म देनेवाली है।

बात के बाद इसीलिए बोल पा रही है सौदा—'उन्होंने कहा, फिर जब कै दिनों के बाद तुड़ू के ब्याह में जाना ही है। उस समय पालकी से जाऊंगा।'

तुड़ू के ब्याह मे!

इन लोगों को अभी भी यह आशा है यानी कि? तुड़ू का ब्याह निश्चित दिन को होगा, लोग-बाग सब न्योते मे आएंगे?

अब की सत्य लज्जित हुई। लज्जित हुई कि मैं जरा ज्यादा विचलित हो पडी हूं और वह बात लोगों ने ताड़ ली है। छि:! कैसी शर्मनाक!

सत्य की तबीयत मामूली कुछ खराब हुई हो शायद। जो आदमी कहने आया था, उसी बुद्धू ने जाने क्या कहते क्या कहा है।

इसलिए इस बार सत्य बोली, 'तुम चली आयी, ननदोई जी को कुछ असुविधा हो गयी।'

कि सौदा के होठों पर हंसी की आभा-सी खेल गयी। तो सौदा हंस भी पा रही है?

मुसकराकर बोली, 'जो कहा तुमने! अब ऐसा हो गया है कि उठते-बैठते इस सौदा बाम्हनी की रट। कह भी तो आई मैं, इन्ही कै सालों में इतना। पूरी ज़िंदगी तो मेरे बिना ही कटी! तो जवाब मिला—"नाता तो जन्म-जन्मातर का है। बीच के उन कै दिनों की भूल-भ्रांति से क्या वह बंधन ढीला होने को है?" '

सौदा की इस हंसी से सत्य के भी कलेजे का बल बढा। वह भी इसीलिए मजाक-सा करती हुई बोली, 'नाता अगर जन्म-जन्मांतर का है, फिर तो स्वर्ग जाने पर भी सौत काटा रह जाएगा ननदजी! उससे भी शायद जन्म-जन्मांतर का ही संबंध है! कौन जाने, वहां जाने पर और किसी जनम की स्वर्ग गयी हुई और भी चार सौतें छीना-झपटी करेंगी कि नहीं!'

सत्य लगभग हंस ही पड़ी।

जन्म-जन्मांतर शब्द में उसने कौतुक की ऐसी कौन-सी खुराक पायी?

४८

ही-ही, ही-ही, ही-ही!

ग्रीष्म की दोपहरी के दावदाह को पराजित करके बहुत-सारी स्त्रियों की हंसी एक होकर छलक पड़ी।

उन सबों ने दुलहिन को जबर्दस्ती उठाकर दुलहे की गोद में बैठा देना चाहा

था। उस धक्के से दुलहा लुढ़क गया और वागी दुलहिन उनसे पिंड छुड़ाकर भाग जाना चाह रही थी कि जुड़ी गांठ के खिंचाव से वह भी धड़ाम से गिर पड़ी। इसी बात पर इतनी हंसी !

कोहवर के बिछौने पर ही तो गिरे दोनों ! किसी को भी चोट नहीं आयी। फिर हंसने में रोक कैसी ? ऐसे शादी-ब्याह के सिवा यों गला खोलकर हंसने की छूट तो नही मिलती ! बहुतों का गला एक साथ होने से यह पता भी नहीं चल पाता कि गला बहू का है कि बेटी का ! जो सब सिर्फ शासन के डर से शर्मीली की भूमिका अदा करती रहती हैं, वे सब इस मौके का लाभ अच्छी तरह से उठाती हैं।

आज भी उठा रही थीं।

मौका जब हाथ लगा है !

दुल्हे वालों का हुक्म मानना पड़ता तो दिनभर ऐसी हंसी-खुशी, हो-हुल्लड़ की गुंजाइश नहीं होती। सबेरे ही कब का विदा कर देना पड़ता। केवल कन्यापक्ष की आरजू-मिन्नत से वर-पक्ष वाले शाम तक रुकने को राजी हो गए।

कन्या के पिता ने हाथ बांधकर कहा, 'बासी ब्याह का बड़ा हगामा है, औरतों से पार नहीं पाया जाएगा—दया करके इस वेला···'

सो, कृपा करके कन्या-पक्ष को कुटुंब सेवा का पुण्य कमाने का अवसर देने के लिए पूरी फौज-पलटन के साथ वर-पक्ष वाले इस वेला टिक गए। कुछ दूर पर घोषों के बैठके में उन सबके रहने का इंतजाम था। यहां की स्त्रियों का कलहास्य वहां तक पहुचने का डर नहीं। स्त्रियों ने बासी कोहवर में खूब मजाक-मजाक किया। बार-बेला के बाद बासी ब्याह ! तब तक असल आदमी आ ही पहुंचे शायद ! विदाई में देर भी होगी तो कोई बात नहीं। दुल्हे का घर गोकि कलकत्ता है, मगर फिलहाल शादी इस टोले-उस टोले से हो रही है। इस ब्याह में जिनका सबसे बड़ा हाथ रहा, उन्हीं के यहां से। बेहद सुविधा है।

ये हो-हुल्लड़ करने वालियां सब मुहल्ले की ही बहू-बेटियां हैं। लेकिन सब तरुणी ही नहीं, कुछ अधेड़ भी।

गरचे जेठ की दोपहर थी, तो भी ब्याह जैसा मौका ! चेली बालूचरी, पारसी जामदानी—जिसके पास जो थी, वही पहनकर आयी थी और पसीने-पसीने हो रही थीं। गोकि खाने के समय पहनने के लिए चुन्नन वाली एक-एक सूती साड़ी सब साथ ले आयी है। खाने में अभी देर है। पहले बरातियों का भोग-राग चुक जाए।

लेकिन निष्कंटक सुख कहां होता है ?

उन स्त्रियों के हो-हल्ला से खीजकर खतो ठकुराइन का रंग-मंच पर

आविर्भाव हुआ। कहना फिजूल है, लमहे में उस मंच पर मसान का सन्नाटा छा गया। उस सन्नाटे की ओर एक नजर डालकर ठकुराइन बोल उठी, 'यह हंसी का फुहारा हाटतला तक पहुंच रहा है। थोड़ा रह-सहकर मौज-मजा करें तो हर्ज है?'

नीरवता और गहरी हो गयी।

खंतो ठकुराइन की नजर अब नायक-नायिका के चेहरे पर पड़ी। एक तो रंगे हाथों पकड़े गए चोर की नाईं सिर झुकाए था, और दूसरी रो रही थी! साड़ी में लिपटी उसकी कुंडली हुई-सी देह रुलाई के आवेग से कांप-कांप रही थी।

इस नज्जारे को देखकर खंतो ठकुराइन मुसकराती हुई बोलीं, 'हाय राम, कल से रोती-रोती बेचारी छोरी आधी हो गयी! तुम लोग कुछ समझा-बुझा नहीं रही हो! कि अपने हंसी-मजाक में ही मस्त हो?'

अब की मंच से आवाज आयी। एक ब्याही लड़की बोल उठी, 'यह रुलाई क्या दिलासा देने से थमने की है बुआ! तिस पर उसकी…'

बुआ झंकार-सी उठी, 'रहने दो मजाक! तुम लोग तो और मां मनसा को धुआ दिखाने लग गयीं! रोते-रोते आंख-मुंह की शकल देखने ही लायक हो रही है! ससुराल में बहू को देखकर कोई भी नहीं कहेगी कि लड़की खूबसूरत है! ले, उसे उठा! हाथ-मुह धुलवा दे! बार-बेला बीत चुकी, बासी-ब्याह की तैयारी कर! लड़कियों का जन्म ससुराल के लिए…'

वह लड़की फिक् से हंसकर बोली, 'तुम भला क्यो नहीं कहोगी बुआ? ससुराल क्या चीज होती है, यह तो तुमने कभी जाना नहीं!'

'मैंने? मुझसे मिलान? जरा छोरी की मरण दशा देख लो! मेरी जैसी अवस्था दुश्मन की भी न हो! चल, छोड़ यह सब! तैयारी मे लग जा!'

'कौड़ी का खेल एक बार और नहीं खिलाया जाएगा फुआ?'

'जरूर! जरूर खिलाया जाएगा! देख ले, इतने मे अगर कलकत्ता से सब आ जाएं! अजीब-सा ब्याह—चट मंगनी, पट ब्याह! उठा, छोरी को उठा! कपड़ो मे घिरी-लिपटी, गरमी से चक्कर न आ जाए!'

खंतो ठकुराइन का प्रस्थान।

स्त्रियों ने लड़की को खींचकर सीधे बैठाने की कोशिश की, मगर कामयाब न हुई। उसने मानो प्रतिज्ञा कर रखी हो कि रो-रोकर जान ही दे देगी। सच-मुच ही उसे खूबसूरत समझना असंभव हो रहा है।

तो क्या? ऐसा तो होता ही है। ब्याह वाली दुलहिन रोएगी नहीं? इससे मौज-मजा वाली स्त्रियां क्यो बाज आएं? उन लोगो ने उसी नाकामयाब कोशिश का फिर से अभिनय करना चाहा। चारेक जनी मिलकर क्या उस छोटी

लड़की को काबू नहीं कर सकेंगी। फेंके वह हाथ-पांव, गुर्राये, इससे वे क्यों बाज आएं? ही-ही ही-ही ही-ही!

उधर से ज़ोरों का हल्ला उठा, 'अरे, दही कहां है? यावा का दही नहीं नज़र आ रहा है?···उफ़, कैसी बदइंतज़ामी है, किस कदर बदइंतज़ाम! घट है तो पान नदारद, पान है तो दही का पता नहीं—अजी ओ, बड़ी चाची···' पूछने वाली तरकस भरा प्रश्नों का तीर लिए छोड़ती हुई आगे बढ़ी—'असल आदमी का तो पता ही नहीं है, कनकांजलि कौन देगी? अरे हां, वासी व्याह में तुम्हारे यहां पान का वरण पहले होता है कि पानी का! हाय राम, तुम लोग नए गमछे से सुहाग-आचल की विधि करती हो? कैसी अनासृष्टि! हम लोगों में हलदी रंगे धागे के गुच्छे से की जाती है···'

पूछने वाली खंतो ठकुराइन की भतीजी अन्नो है, यह समझने में देर नहीं लगी। अन्नो का गला ही यह बता देता है। गांव की लड़की है, ज़ोर से तो बोले ही गी। चाहे जितना ज़ोर से।

उसके प्रश्न का उत्तर किसी भारी नारी कंठ से आया—'हम लोगों का 'सुहाग-अंचल' गमछे की गाठ से ही होता है। जिस कुल का जैसा नियम।··· वरण पहले पान का होता है कि पानी का, यह अपनी फुआ से पूछो। वही ठीक बताएंगी!'

छूटते ही खंतो ठकुराइन का गला गूंज उठा, 'हां-हा, खंतो वाम्हनी सदा से ही विधान बताती आयी है। लेकिन मेरे तो हाथ लगाने की गुंजाइश नहीं, मेरी चाकरी केवल गलेबाज़ी की है। ये शंख की चूड़ीवालियां तो हाथ हिला-कर ही सुहागिन हैं! चल, देखती हूं···'

उधर से कोई धीमे से बोल उठी, 'ज़रा देखो-देखो, सुहागिनों के चूड़ी-सिंदूर पर नज़र लगाना देख लो। दुर्गा-दुर्गा! नज़र क्या, ज़हरीली नज़र! सनीचर की नज़र! आप तो ताज़िंदगी हां किए रही न, इसीलिए औरों के खाने-पहनने को देखकर ईर्ष्या से जली मरी जा रही है।'

कि एक कोई वहां से झट उठ गयी।

हो सकता है, खंतो की कोई मुंहलगी है। या कि चुगलखोरी उसका पेशा हो। टटका-टटका कुछ लगाकर अगर कोई हंगामा खड़ा किया जा सके तो वही लाभ! काम-काज के घर में ऐसा होता ही है। तरह-तरह की बातों की खेती चलती रहती है और उसी खेती की फसल से लंका काण्ड खड़ा हो जाता है। उस काण्ड में किसी की तरफ़दारी के कसूर से मान-अभिमान की भी बारी आती है, बहुतेरी सखियां छूटती हैं।

ये बातें महिला महल की ही हैं। पुरुषों के कानों तक नहीं पहुंचती। पहुंचती भी हैं तो वे ध्यान नही देते। उनका कर्मक्षेत्र अलग है। वह क्षेत्र

व्यापार है। उनका दिमाग इस बात में लगा रहता है कि कोई एक खोट निकाल कर ब्याह को तोड़ा जा सकता है या नहीं !

खास करके लड़कियों के ब्याह में !

लेकिन सबके साथ यह बात नहीं होती।

बहुतेरे लोग इस कोशिश में भी रहते हैं कि क्या किए लड़कीवालों की इज्जत रखी जा सकती है, कैसे बरातियों से भली तरह निबहे ! ऐसे लोग भी दुनिया में हैं क्यों नहीं जो दूसरों के काम के लिए जान तक देने को आगे बढ़ आते हैं। नहीं तो यह दुनिया अब तक टिकी कैसे है ?

शायद हो कि तादाद में यही ज्यादा हों !

लेकिन चूंकि पानी से आग का, अमृत से जहर का और हित से अहित का ही ज्यादा बोलबाला देखने में आता है, इसलिए लगता है, वैसों की संख्या कम होगी। प्रतिभा की प्रबलता नहीं होने से तो पाद-प्रदीप के सामने आया नहीं जाता।

जो भी हो, हितुओं की संख्या जितनी भी क्यों न हो, ऐसे मौके पर लड़की-वाले का सर चकराता ही है। यहां भी लड़कीवाले का माथा घूम रहा है, बन्न-बन्न घूम रहा है।

कुटुंब के सामने सम्मान बचाने के लिए ही क्या ?

नहीं ! उसके माथा घूमने का कारण दूसरा है।

कुटुंबों वाला भय तो बहुत कुछ कट गया। बारातियों की इज्जत-खातिर वाली जिम्मेदारी निभ गयी। आज तो बासी विवाह है। अभी-अभी तो स्त्रियां दुलहिन को पोखरे से नहलाकर ले आयी। अब लड़केवालों को नमो-नमो करके कन्या की विदाई कर देने से ही झमेला चुक गया ! हां, वैसे दुश्मन हों, तो लड़केवालों का कान भरकर, गजब ढा सकते है। लड़केवाले आंखें रंगाकर बात-बात में दुलहा को लेकर लौट जाने की धमकी देते हैं···होता भी बहुत कुछ है।

यहां वैसी कोई आशंका नहीं, तो भी लड़की का बाप सुबह से ही घबराकर घर-बाहर कर रहा है। घर से बरामदा, बरामदे से आंगन, आंगन से बाहर। बढ़ते-बढ़ते धीरे-धीरे मौलसिरी तक।

उमगानेवाला कुछ तो नही प्रतीत हो रहा। उसके चेहरे पर आतंकित उद्वेग की छाप पड़ रही है। अभी कोई वैद अगर उसकी नब्ज़ टटोलता तो उसकी नाड़ी की चंचलता से घबरा जाता।

कठघरे में आकर खड़े होने से पहले मुजरिम की नाड़ी में क्या यही चंचलता होती है?

लेकिन प्रतीक्षा का तो अंत नहीं नज़र आता?

दूरवर्ती उस पथ के अंत में क्या है? क्या आएगा?

लाल डोरिया पहने हुई एक छोटी-सी लड़की ने आकर आवाज़ दी, 'बाह्मन चाचा, दादीजी तुम्हे बुला रही हैं!'

बाह्मन चाचा खिजाए-से बोले, 'क्यों?'

'सो मैं नहीं जानती! कह रही हैं—लग्न बीत रहा है। इसके बाद काल-बेला या क्या तो पड़ जाएगी।'

'खैर!' कहकर लड़की के बाप ने आंखों को पैनी करके और एक बार नज़र को खेतों के उस पार दूर तक फेंकने की कोशिश की! उस जलते हुए मैदान के दावदाह के उस पार धुआती-सी छाया का आभास मिल रहा था क्या?

या कि भ्रम है?

भ्रम मिटाने तक का इंतज़ार नही किया जा सकता। वह बच्ची फिर बोली, 'चलो! भटचारज जी बिगड़ रहे हैं।'

वह बच्ची इतना कहकर दौड़ती हुई फिर अदर चली गयी। पता नही क्यों, उस ओर देखकर लड़की के पिता का कलेजा इस कदर हू-हू कर उठा, जैसे उसपर पिसी हुई मिर्च पड़ गयी हो!

क्यों? उस बच्ची जितनी बड़ी ही अपनी उत्सर्ग की गयी बिटिया का मुखड़ा याद करके? दो ही घड़ी के बाद उसकी विदाई है। एक अनजाने अंत:पुर के अंतराल में उसे निर्वासित करना है। उसकी उमंग की कल-काकली मौन हो जाएगी। हो सकता है, बाप से भी अनजानपन का घूंघट काढ़ ले।

इसमें इतना विचलित होने की बात नहीं है, यही सदा-सदा से होता आया है; उसकी मां ने यही किया है, नानी-दादी ने भी यही किया है—ये सब युक्तियां जलन कम करने में कारगर न हुईं, जी मरोर-मरोर उठने लगा।

बेटी-विच्छेद की वेदना ही नही है केवल, शायद कोई भयंकर अपराध का बोध भी उसके कलेजे के अंदर पंजा मार रहा है।

अपराध किए बिना भी अपराध का बोध?

वाजिब काम करके भी आतंक?

व्यापक है। उनका दिमाग़ इस बात में लगा रहता है कि कोई एक खोट निकालकर ब्याह को तोड़ा जा सकता है या नहीं !

खास करके लड़कियों के ब्याह में !

लेकिन सबके साथ यह बात नहीं होती।

बहुतेरे लोग इस कोशिश में भी रहते हैं कि क्या किए लड़कीवालों की इज्जत रखी जा सकती है, कैसे बरातियों से भली तरह निबहे ! ऐसे लोग भी दुनिया में हैं क्यों नहीं जो दूसरों के काम के लिए जान तक देने को आगे बढ़ आते हैं। नहीं तो यह दुनिया अब तक टिकी कैसे है ?

शायद हो कि तादाद में यही ज्यादा हों !

लेकिन चूंकि पानी से आग का, अमृत से जहर का और हित से अहित का ही ज्यादा बोलबाला देखने में आता है, इसलिए लगता है, वैसों की संख्या कम होगी। प्रतिभा की प्रबलता नहीं होने से तो पाद-प्रदीप के सामने आया नहीं जाता।

जो भी हो, हितुओं की संख्या जितनी भी क्यों न हो, ऐसे मौके पर लड़कीवाले का सर चकराता ही है। यहा भी लड़कीवाले का माथा घूम रहा है, बन्न-बन्न घूम रहा है।

कुटुब के सामने सम्मान बचाने के लिए ही क्या ?

नहीं ! उसके माथा घूमने का कारण दूसरा है।

कुटुबों वाला भय तो बहुत कुछ कट गया। बारातियों की इज्जत-खातिर वाली ज़िम्मेदारी निभ गयी। आज तो बासी विवाह है। अभी-अभी तो स्त्रिया दुलहिन को पोखरे से नहलाकर ले आयीं। अब लड़केवालों को नमो-नमो करके कन्या की विदाई कर देने से ही झमेला चुक गया ! हां, वैसे दुश्मन हों, तो लड़केवालों का कान भरकर, गजब ढा सकते हैं। लड़केवाले आंखें रंगाकर बात-बात में दुलहा को लेकर लौट जाने की धमकी देते हैं…होता भी बहुत कुछ है।

यहां वैसी कोई आशंका नहीं, तो भी लड़की का बाप सुबह से ही घबराकर घर-बाहर कर रहा है। घर से बरामदा, बरामदे से आगन, आगन से बाहर। बढ़ते-बढ़ते धीरे-धीरे मौलसिरी तक।

जेठ की दोपहर ! धूप गोया निकलने को आ रही है। मौलसिरी के नीचे ही जो थोड़ी-सी छाया है। लेकिन आग की चिनगी छुलानेवाली हवा तो चल ही रही है। उसे तो रोका नहीं जा सकता।

मगर वह आदमी खड़ा ही है, नशे में हो जैसे। डोल नहीं रहा है। रह-रहकर दूर में कुछ देखने की कोशिश कर रहा है।

कोई सदेह नहीं कि किसी बात का इंतजार है। लेकिन किस बात का ?

उमगानेवाला कुछ तो नहीं प्रतीत हो रहा। उसके चेहरे पर आतंकित उद्वेग की छाप पड़ रही है। अभी कोई वैद अगर उसकी नब्ज टटोलता तो उसकी नाड़ी की चंचलता से घबरा जाता।

कठघरे में आकर खड़े होने से पहले मुजरिम की नाड़ी में क्या यही चंचलता होती है ?

लेकिन प्रतीक्षा का तो अंत नहीं नजर आता ?

दूरवर्ती उस पथ के अंत में क्या है ? क्या आएगा ?

लाल डोरिया पहने हुई एक छोटी-सी लड़की ने आकर आवाज़ दी, 'वाह्मन चाचा, दादीजी तुम्हें बुला रही है !'

वाह्मन चाचा खिजाए-से बोले, 'क्यों ?'

'सो मैं नहीं जानती ! कह रही हैं—लग्न बीत रहा है। इसके वाद काल-बेला या क्या तो पड़ जाएगी।'

'खैर !' कहकर लड़की के बाप ने आखों को पैनी करके और एक बार नजर को खेतों के उस पार दूर तक फेंकने की कोशिश की ! उस जलते हुए मैदान के दावदाह के उस पार धुआती-सी छाया का आभास मिल रहा था क्या ?

या कि भ्रम है ?

भ्रम मिटाने तक का इंतज़ार नहीं किया जा सकता। वह बच्ची फिर बोली, 'चलो ! भटचारज जी बिगड़ रहे हैं।'

वह बच्ची इतना कहकर दौड़ती हुई फिर अंदर चली गयी। पता नहीं क्यों, उस ओर देखकर लड़की के पिता का कलेजा इस कदर हू-हू कर उठा, जैसे उसपर पिसी हुई मिर्च पड़ गयी हो !

क्यों ? उस बच्ची जितनी बड़ी हो अपनी उत्सर्ग की गयी बिटिया का मुखड़ा याद करके ? दो ही घड़ी के वाद उसकी विदाई है। एक अनजाने अंत.पुर के अंतराल में उसे निर्वासित करना है। उसकी उमंग की कल-काकली मौन हो जाएगी। हो सकता है, बाप से भी अनजानपन का घूघट काढ़ ले।

इसमे इतना विचलित होने की बात नहीं है, यही सदा-सदा से होता आया है; उसकी मा ने यही किया है, नानी-दादी ने भी यही किया है—ये सब युक्तिया जलन कम करने में कारगर न हुईं, जी मरोर-मरोर उठने लगा।

बेटी-विच्छेद की वेदना ही नहीं है केवल, शायद कोई भयंकर अपराध का बोध भी उसके कलेजे के अंदर पंजा मार रहा है।

अपराध किए बिना भी अपराध का बोध ?

वाजिब काम करके भी आतंक ?

यह आदमी वेतरह डरपोक है, इसमें संदेह नहीं।

वह छोटी-सी लड़की फिर अंदर से दौड़ी आयी, 'ओ वाह्मन चाचा, तुम्हारी मां तो तूफान मचा रही हैं। कह रही है, महारानी जब तक नहीं आ जाती, तब तक राज-काज बंद रहेगा क्या ?'

नः ! अब रुकना कठिन है। वाह्मन चाचा को जल्दी-जल्दी ही जाना पड़ा। गोकि और थोडी देर खड़ा रहता तो वह मूरत दीखती, जिसकी प्रतीक्षा थी। खां-खा जलते हुए उस प्रातर के पार धुआती-सी जो छाया नज़र आ रही थी, वह धीरे-धीरे इधर बढ़ती आ रही थी, रूप ले रही थी।

जलती आग के प्रकोप से ही गाड़ी के वैल गड़गड़ाकर आगे नहीं वढ़ पा रहे थे। गाड़ीवान गाली वकते हुए लाख पूंछ उमेठ रहा था, पर वे जैसे पीछे ही रहे जा रहे थे !

टप्पर के अंदर से गरदन निकालकर सौदा उद्विग्न स्वर से बोली, 'ओ भाई गाडीवाले, तुम्हारे वैल तो पीछे को ही चल रहे है भैया ! हमें तो बहुत ही जल्दी है !'

गाड़ीवान ने क्षुब्ध गले से कहा, 'क्या करूं मां जी, देख तो रही है कि मैं अपनी कोशिश मैं तो कमी नहीं कर रहा हूं। कमबख्त दौड़ कहा रहे हैं ? सूरज भगवान एकबारगी आग बरसा रहे हैं न !'

इसके साथ ही गाड़ीवान ने वैलों को जोर से पीटा ! वैल हड़बड़ाकर जरा दूर भागे ! अचानक गाड़ी की चाल बढ़-जाने से साधन-सरल गिरते-गिरते रह गए। सत्य ने टप्पर के बास को मजबूती से पकड़कर थकी हुई आवाज़ में कहा, 'छोड़ दो ननदजी, जल्दी करने की जरूरत नहीं। अंत तक गो-हत्या की नौबत ?'

सौदा दुर्गा-दुर्गा कर उठी।

गाड़ी अब कुछ तेज़ चली। चीन्हे-जाने रास्ते का परस मिला।

लेकिन आज भी पोड़की क्यों बोल रही है ?

सत्य से ऐसी दुश्मनी की उसे क्या आ पड़ी ?

पोंड़की की बोली है, कि आदमी का रोना ?

बहुत सारी स्त्रियों की हू-हू ?

इस रुलाई का उत्स किधर है ? गाड़ी जितनी ही घर के नज़दीक पहुंचने लगी, वह आवाज़ उतनी ही साफ होने लगी !

नः ! सत्य अब कुछ नहीं सुनेगी ! कुछ नहीं सोचेगी।

मसान तक जब तक जा नहीं पहुंचती, तब तक कान और मन को निष्क्रिय रखने की साधना करेगी।

उलू-लू-लू-लू-लू । पल-पल उलूध्वनि !

स्त्रियों की सामूहिक उलूध्वनि मानो ब्याह की धूम की कमी को पूरा करना चाह रही हो !

बासी ब्याह का सारा कुछ टटका का उलटा होता है ।

बासी ब्याह में कौड़ी खेलने का जो रिवाज है, उसमें दुलहा पहले, दुलहिन बाद में गोटी चलाती है । वरण पहले दुलहिन को करना होता है, दुलहे को पीछे ! वरण करने वाली भी दूसरी हो, ऐसी रीत है । जिन्होंने वरण का नेग कल किया था, वह आज मंच पर नहीं है । नयी नायिका की खोज हो रही है ।

आखिर कौन करेगी ? अन्नो ? तो तू ही आ अन्नो ! कोई रंगा कपड़ा डालकर आ जा ! वरण-डाला सम्हाल ! बाजूबंद नहीं है तुझे ? झुमकावाला लाकेट ? नहीं हो तो किसी और की लेकर पहन ले ! वरण की घड़ी में तावीज-बाजू पहनने से फबता है ।

कोई एक जनी दु:ख से बोल उठी, 'अहा, मां बेचारी नहीं देख सकी ! कुछ कर भी न पायी । अभी भी आ पहुंचती तो वासी वरण कर लेती ! है नहीं नसीब में !'

'नसीब ?'

'और नहीं तो क्या ? नसीब के सिवा आक्षेप की नदियां और किस समंदर को जाएंगी ?'

नसीब में ही तो सारे सवालों का अंत होता है !

सो नसीब के हाथों ही सारी घटना को सौंपकर क्षोभ करनेवाली अन्नो के झुमके कस देने को बढ़ आयी ।

फिर उलूध्वनि गूंजी । एक नन्ही-सी लड़की ने बड़ी औरतों से भी ज्यादा जोर से शंख में फूंक मारी । गृहिणियां बात करने लगीं और ऐन वक्त पर उस कल-कलोल को छापकर एक शोर उठा, 'आ गयी, आ गयी !'

एक साथ अनेक गले खुशी का रव करते हुए गाड़ी के पास जा धमके ! 'अब आयी ? सुबह से रास्ता ताकते-ताकते घर भर के सब लोगों की आखें घिस गयी ! थोड़ी भी देर पहले आयी होती तो सास के हाथ से जमाई-वरण होता ! खैर, फिर भी बुरे का अच्छा है । आंखों से देख तो लेगी एकबार !'

कौन है ये ?

क्या कहना चाह रही हैं ? और कह किस से रही हैं ?

अंतिम बार के लिए एकबार आखों देख लेने जैसे करुणतम सुख के अश्वासन से उत्सव की इस मुखरता का मेल बैठता है ?

अमंगल की आशंका से सत्य ऐसी कांटा-सी क्यों हो गयी है ? चारों ही ओर तो मंगल के चिह्न है ! द्वार पर मंगल-कलश, आंगन मे आलपना, शामियाना ! तेज धूप की साफ रोशनी में सब-कुछ तो झलमला रहा है !

सब शुभचिह्न !

लेकिन क्यों ? साधन तो सत्य के ही साथ है ! इनकी कुल-प्रथा में पक्की दिखायी जैसी और भी कोई धूमधाम होती है क्या ? उसी की तैयारी ? सिर्फ़ मजा देखने के लिए सौदा उसे खींचकर ले आयी ?

उत्कट मजा !

लेकिन उलूध्वनि इतनी भद्दी क्यों लग रही है ? पोंड़की की पुकार-सी, रोने-रोने-सी ? औरतों के इस जंगली उल्लास को तो सत्य सदा से सुनती आयी है। बुरा लगता है, बुरा लगा है, लेकिन छाती के अंदर ऐसा पोला-पोला तो नही लगा कभी !

जोत बिखेरनेवाला वह मुखड़ा कहां है ? सत्य आयी है, इस खबर से दो सुंदर सुकुमार सुडौल बाहे व्यग्र होकर सत्य को झपटकर जकड़ क्यों नही ले रही हैं ?

और, और वह सदा-सदा का चीह्ना-जाना चेहरा ? जिस चेहरे ने विराग और अनुराग—परस्पर विरोधी इन दो आकर्षणो से सत्य के लिए अपने को अपरिहार्य बना रखा है ?

धुंधली-धुंधली, छाया-छाया जैसी एक अनुभूति लिए सत्य एलोकेशी के आगन मे आयी। या यह कि वह चलकर भी नही आयी ! बहुतेरी स्त्रियों और वालक-बालिकाओ की रेल-पेल के धक्के से ही आ पहुंची !

और पहुंचते ही पत्थर की आंखें लिए खड़ी रह गयी !

बंगालियो के घर की जनम से ही देखी वह छवि सत्य के देखने के लिए किसने आक रखी है ? लेकिन है कौन वह ? कौन ?

दुलहा-दुलहिन, केला-तला, माथे पर सूप-डाली लिए सधवाओं की टोली, इन चिरपरिचित दृश्यो में वह अनचीह्नी कौन है ? जिसके लाल कपड़े का घूघट विधि-निषेध भूलकर गिर-गिर पड़ता है ?

सत्य ने यह शकल कभी नही देखी है ? देखी हैं कभी आहत पशु की एक जोड़ा आखें ?

नहीं ! जिंदगी में कभी नही देखी ! अपरिचय के इस आघात से इसीलिए सत्य की आखें पत्थर हो गयी !

लेकिन सत्य के कान भी बिलकुल पत्थर क्यों नही हो गए ? इतने अनचीन्हे

गले की बातें कानों में क्यों आ रही हैं ?

'नोबू···नोबू ? कहां चला गया ? अब तक तो इंतज़ार में छटपटाते हुए घर-बाहर कर रहा था ? कनकांजलि का रुपया किसको दिया ? ज़रा मुह-हाथ धो लो बहूरानी, कपड़े बदलकर बेटी-जमाई को आशीर्वाद दो ! अहा, कल नहीं आ सकी बहूरानी ! एक ही लड़की, उसका ब्याह नहीं देख पायी ! आती भी कैसे ? समय पर खबर तो नहीं पायी ? तुम्हारी सास ने शादी में ऐसी हड़बड़ कर दी, जैसे ब्याह भागा जा रहा था !···जाने दो ! बग़ैर मेहनत के सोने जैसा जमाई पा गयी ! जोड़ी कैसी सुंदर हुई है, देखो ! शादी बड़ी अच्छी हुई। चमकता-दमकता घर—जाना-सुना परिवार।

सत्य के दिमाग़ में इंजन चल रहा है—बातें क्रमशः मशीन जैसी ठन्-ठन् बजने लगीं···किस्मत से बिटिया को नोबू के साथ भेजा था तुमने—और ठीक उसी समय तुम्हारी सास की सखी की बेटी मुक्ता घूमने आयी थी—जभी तो यह सयोग घट गया ! तुम्हारी खूबसूरत बिटिया को देखकर मुक्ता तो बिलकुल गल गयी ! बोली, 'इस लड़की को बहू बनाए बिना मैं नही मानने की। आसाढ शायद लड़के के जनम का महीना है ! इसीलिए जेठ ही में कर-कराके निश्चित हो गयी। लड़की से पहले लड़के का ब्याह कर रहा है, इसके लिए तुम्हारी सास तो बेटे की गत बना रही थी।.नोबू मारे डर के··· अरे रे, अरी ओ सौदा, बहू अचानक ऐसे पीठ फेरकर कहा चल दी ? तबीयत तो अच्छी नही लग रही है, अभी घाट न ही गयी तो क्या ? यहीं एक लोटा पानी मगाकर···हाय मेरी मा, अरी सौदी, बहू तो मौलसिरी की तरफ जा रही है ! उधर क्या है ? नोबू··· अरे ओ मुन्ने, तेरी मा फिर से गाड़ी पर ही चढ़ना चाह रही है क्या ?'

भागता फिर रहा नोबू अब समाज के सामने प्रकट हुआ। सौदा के पास पहुंचा। भीत स्वर मे बोला, 'बहू को तुम लोगों ने ब्याह की बात नहीं बतायी है ?'

पता नही क्यों, सौदा हठात् सख्त हो गयी। सख्त स्वर में बोली, 'नहीं ! नही बतायी है !'

'जभी ! जभी ! बिना बताए ले आयी, इसी से ऐसा हुआ !'

नवकुमार ने कुछ बिगड़े-से स्वर मे कहा, 'ताज्जुब ! पहले आने से ब्याह में अड़चन डालती, इसलिए पहले बताया नही गया, अब बिना बताए लाने का मतलब ? कहने मे क्या लगा था ?'

सदा की सहनशील सौदा आज ऐसी असहिष्णु कैसे हो गयी ? वह जैसे और कठिन होने लगी। कठिन और कठोर गले से बोली, 'बताने में क्या लगा था, यह समझने की जुरंत तुममें होती, जब तो बताती ! ढेर दिन तुम लोगों का ढेर अन्न खाया है, वही कर्ज चुकाने के लिए बहू को लाकर तुम लोगों के

ज़िम्मे कर जाती हूं। लेकिन कसाई का काम क्यों नही किया, इसके लिए आंखें मत रंगाओ ! उसकी शकल से मैं समझ गयी हूं कि वह अब इस घर में पानी भी नहीं पिएगी, लौट जाएगी ! उसके साथ मैं भी चली…'

सौदामिनी भी तेज़ी से निकल गयी !

मौलसिरी के पेड़ की तरफ ही गयी।

और ब्याह की दुलहिन ने भी एक अजीब परिस्थिति पैदा कर दी। वह उस केले के नीचे ही अचानक बैठ गयी और फुक्का फाड़कर रो पड़ी, 'तुम लोगों ने क्यों मेरा यह हाल किया ? मां मुझे मार डालेगी !'

मा के पीछे-पीछे दौड़ पड़े, इसकी गुंजाइश नहीं थी, क्योंकि दुलहा से गाठ बंधी थी।

अमोघ, अटूट बधन ! जिसकी क्षमता का क्षेत्र क्या तो अनंतकाल के उस-पार तक फैला है !

सारे पश्चिम आकाश मे लाल का समारोह—वही लाल मैदान, तालाब, पेड़-पौधों मे फैल गया है।

थके हुए दोनों बैल घास-पानी और झुकी हुई बेला की स्निग्ध हवा पाकर चेतन-से हुए और गाड़ी को गड़गड़ाकर खीच ले चले।

गाड़ीवान को कह दिया गया था, सांझ होते-होते ब्राह्मण टोले के इस मैदान को पार करना होगा। उसके बाद अगर चलने में असुविधा हो तो हाट-तला मे विश्राम किया जाएगा। घोड़ागाड़ी मिल गयी तो मंगल !

बहुत दिन पहले रामकाली कविराज एक दिन धूल-लगे पांवों ही इस गाव से विदा हुए थे।

आज रामकाली कविराज की बापभक्त बेटी ने बाप का अनुकरण किया।

रामकाली कविराज के साथ पालकी थी। उनकी बेटी के वह नहीं है। इसलिए अनिच्छुक गाड़ीवान को घूस देना *पड़ा। बाएं हाथ मे इसीलिए इस* समय सिर्फ शंख की चूड़ी और लोहा है, मगरमुखी सोने की मोटी बाली *नहीं है।*

वही पूंजी थी पास में। हाथ से निकल गयी।

किंतु कीमत भी कितनी होगी उसकी ? सत्य को अनंतकाल के बंधन से छुड़ा ले जाने के मुकाबले बहुत ज़्यादा ?

गाव छोडकर जा रही है सत्य।

किंतु छुड़ाकर जाना क्या आसानी से सभव हुआ ?

नही ! ऐसा भी होता है ! नही हुआ। लगभग सारा गाव ही गाड़ी को

घेरकर खड़ा हो गया था। सब ने उसे रोकने की कोशिश की।

सत्य ने उनकी बात नहीं रखी।

उसने शांत स्वर से एक ही बात कही।

कहा, 'नाहक ही क्यों तकलीफ कर रही है आप सब ? यह मुझसे न होगा ! यह बात मैं नही रख सकूंगी !'

अंत में एलोकेशी भी आयीं ! हाथ जोड़ने की अदा से बोलीं, 'नही रख सकूंगी यानी नही रखोगी, यही न ! तो मैं सास होकर तुमको हाथ जोड़ती हू, कसूर हो गया, माफ करो बहू ! मुझसे गलती हुई, हजार बार हुई, यह मैं कबूल करती हूं। मैं समझ नहीं सकी, लड़की नोबा की नहीं, अकेली तुम्हारी है। नहीं समझा था, इसीलिए दादीगिरी दिखाकर मैं उसका उपकार करने गयी थी।··· खैर, जो होना था, सो तो हो ही चुका ! ब्याह तो अब लौटने का नही। तुम क्यों सारे गाव को दिखाकर यह खिटकाल कर रही हो ?'

सत्य स्थिर बैठी थी। अपने को जब्त किए हुई थी। उसने सिर्फ दूसरी ओर मुंह फेर लिया।

और नवकुमार ?

एलोकेशी का बेटा ?

वह अपना मान गंवाकर मनाने नहीं आया था ? वह नहीं आए, ऐसा भी हो सकता है ? अंत में वह भी आया था। उसने भी प्रायः हाथ जोड़कर कहा, 'जो हो चुका उसका तो अब उपाय नहीं। फिर क्यों···'

एलोकेशी ने न सही, एलोकेशी के बेटे से उसने बात की। बोली, 'उपाय है या नही, जीवन के बाकी दिनों बैठकर सिर्फ यही सोचूगी !'

'जीवन के बाकी दिनों सिर्फ यही सोचोगी तुम ?'

सत्य अपनी पत्थर हुई आंखों से उन दो क्षुब्ध, हताश भिखारी आंखों को देखती रही।

देखते-देखते कैसे तो एक अनुभूतिहीन स्वर में बोली, 'जीवन के बाकी दिन क्या बहुत हो गए ? बहुतेरा जनम सोचने पर भी इस चिंता का अंत होगा ? इसका उत्तर मिलेगा ?'

नवकुमार ने हताश गले से कहा, 'तुम्हारी सभी बातों का मतलब मैं कभी भी नहीं समझ सका, यह सब भी नहीं समझ पा रहा हूं, लेकिन एक बात पूछता हूं, सुवर्ण ही तुम्हारी सर्वस्व है ? तुड़ू, मुन्ना ये कुछ नही ?'

'कौन कितना है, यह भी तो सोच देखना होगा !'

'मैंने सदा ही देखा, माया-ममता तुम्हारे लिए कुछ भी नही है। जिद ही बड़ी है। तो भी निहोरा करती हूं, मेरा मुह देखकर कम से कम एक बार उस जिद को छोड़ो !'

'मुझे माफ करो !' सत्य ने घूघट को जरा खीच लिया।

नवकुमार रुलाई से टूट पड़ा। वह धोती के छोर से आंखें पोंछने लगा।

लेकिन सत्य तो सदा की निष्ठुर है। मैं अब 'गुस्से का गुसाईं' नही रहूंगी, यह प्रतिज्ञा करने से स्वभाव भी बदलता है कही ?

सत्य ने इसीलिए नवकुमार की आखों से आंखों हटाए बिना ही कहा, 'तीस साल से तो तुम्हारा मुह देखती आयी, अत में अब एक बार अपनी ओर देखने की इच्छा हुई है।'

'अपनी सुवर्ण को आशीर्वाद नहीं दोगी ?'

सत्य को क्या बिजली मार गयी ?

सत्य की मां भुवनेश्वरी एक बार ठीक ऐसे ही प्रश्न से बिजली की तरह कांप उठी थी ? अपने आखिरी दिन ?

सत्य ने नवकुमार की आंखों पर से आखें हटा ली। धीर गले से कहा, 'सदा के लिए चली जा रही हूं—विदाई की घड़ी में अब क्यों कटु बात निकलवाना चाहते हो ?'

गाडी प्रायः चलने लगी, फिर भी नवकुमार साथ-साथ चला—'तुम्हारे पिताजी ऐसे विचक्षण व्यक्ति है, उन्होने भी तुमको आठ साल की उम्र में गौरीदान किया था। उसे तो नही सोच रही हो ?'

सत्य की उन पत्थर की आखों मे अचानक आग-सी लहक उठी, 'सोच नही रही हूं, यह किसने कहा तुमसे ? ज़िदगीभर सोचती आ रही हूं। और अब जाकर बाबूजी से ही इसका उत्तर मांगूगी।'

नवकुमार ने गाड़ी के बास को पकड़ लिया—'मैं तुम्हे वचन देता हूं तुड़् की मा, तुम यदि कहो, कुटुंबों से झगड़कर मैं तुम्हारी सुवर्ण को तुम्हे वापस ला दूंगा···'

सत्य सहसा एक काम कर बैठी। इस खुले मैदान में इसके-उसके सामने नवकुमार ने जिस हाथ से गाड़ी के बास को पकड़ा था, उस हाथ को पकडकर दबाया। पागल जैसे गले से बोली, 'सच कह रहे हो ? लौटाकर ला दोगे ? इस गुड़िया के ब्याह को मिटाकर मेरी सुवर्ण को मुझे लौटा दोगे ?'

सौदा गाड़ी की टप्पर में बैठी थी। चुपचाप ही बैठी थी। अब उसने धीरे से कहा, 'मिटाना कहने से ही क्या मिटाया जा सकता है बहू ? यह क्या मिटा डालने की चीज है ? नारायण को साक्षी रखकर ब्याह···'

सत्य ने नवकुमार के हाथ को छोड़ दिया। कैसी तो एक किस्म की हंसी हंसकर बोली, 'सभी ब्याह में नारायण आकर खड़े होते हैं या नही, हर गठबंधन जन्म-जन्मातर का बंधन है या नही, यह प्रश्न लेकर मैं बाबूजी के पास जा रही हूं, ननदजी !'

नवकुमार की तरफ ताककर सौदा ने शांत गले से कहा, 'उस प्रश्न का भी जवाब तो एक जनम में नहीं मिलेगा।'''तू अब देर क्यों कर रहा है, नोबू ? तू घर जा। कामों का पहाड़ पड़ा है। नाहक की कोशिश के लिए देर करके कुटुंबों से विरोध नहीं खड़ा करना होगा।'

नवकुमार ने फिर भी आखिरी कोशिश की।

लौटते-लौटते भी कहा, 'कसूरवार मैं हूं, मुझे सजा देती हो, दो। तुड़ू ने तो कोई कसूर नहीं किया है। उसका ब्याह नहीं देखोगी ?'

'नहीं ही देखा तो क्या ! दूर से ही आशीर्वाद करूंगी !'

अब साथ नहीं जाया जाता। सारी आरजू-मिन्नत ठुकराकर गाड़ी आगे बढ़ती जा रही है।

सारी अनुभूतियों का आलोड़न उठा और फटकर वह बाहर निकल पड़ा, 'जानता हूं ! जानता था कि बात नहीं रहेगी ! किसी का आग्रह रखने की पात्री तुम नहीं हो ! मगर मैं कहे देता हूं, कंधे चढ़ाकर कोई तुम्हें काशी पहुंचाने नहीं जाएगा !'

आखिरकार हंसते हुए चल देने की राह पाकर सत्य जी गयी क्या ? उसी लहजे में अपनी परिचित अदा से वह हंस पड़ी—'हाय राम, मैं वह कहूंगी भी क्यों ? जबकि सदा के लिए कंधे से उतर ही जा रही हूं ! किसी के कंधे पर सवार हुए बिना अपने ही दो पावों के भरोसे माता वसुमती की माटी छुई जा सकती है या नहीं, यह भी तो मेरा एक प्रश्न है !'

गाड़ीवान गाड़ी को रोक नहीं पा रहा था, बैल आगे बढ़ने को उतावले हो रहे थे। जाते-जाते नवकुमार अचानक उछलकर गाड़ी पर आ रहा और क्षिप्र गले से बोला, 'इसीलिए कहते हैं, औरतों के जगह-जायदाद नहीं रहनी चाहिए। बाप के दिए कबाले का भरोसा है, इसीलिए पति के अन्त को त्याग कर जाने की हिम्मत हो रही है। औरतों का इतना साहस अच्छा नहीं है ! मैं कहे देता हूं, तुम्हारे नसीब में अशेष दुःख है—पति होकर मैं तुम्हें अभिशाप दे रहा हूं !'

यह अभिशाप निरे क्रोध, क्षोभ, हताश, अपमान, लोक-लज्जा और अपराध के ख्याल से है, सत्यवती इतना समझ सकती है। इसीलिए इतने बड़े अभिशाप से भी वह विचलित नहीं हुई। बल्कि लगभग हंसकर ही बोली, 'तुम लोग तो अनादिकाल से यही देते आ रहे हो, पति होकर, बाप होकर, भाई होकर, बेटा होकर ! यह कुछ नया नहीं है ! हम सब को जिंदगी ही अभिशाप की है ! लेकिन तुमने कबाले की जो बात कही, यह जान लो, उस फटे कागज की मुझे याद भी नहीं थी ! जब तुमने याद ही दिला दी तो कहूं, 'बाबूजी की दी हुई चीज को फेंक देना उनका अपमान है। साधन, सरल यदि आदमी बनें, तो वे

उस संपत्ति से त्रिवेणी में लड़कियों का एक स्कूल खोल दें !…और…और उसका नाम जिसमें 'भुवनेश्वरी विद्यालय' रखें !'

'ज़रा रुको !' कहकर सत्य ने आंचल को गले में डाला और पति को प्रणाम करके कहा, 'सारी ज़िंदगी मैं तुम्हें बहुत भला-बुरा कहती रही हूं, बहुत ही सताया है तुम्हें ! यदि बने तो मुझे माफ कर देना !'

सौदा ने मीठी डांट बताकर कहा, 'नोबू, घर जा तू ! इसके पीछे-पीछे दौड़ने से कोई लाभ नहीं है। उस तक तेरी कभी भी पहुंच नहीं हुई, आज भी नहीं होगी। सिर्फ इतना ही कहने को जी चाहता है, मूरख ही हो गया था, तो क्या ममता नाम की चीज़ भी नहीं थी रे ? मां की आज्ञा से बेटी को पार करते समय एक बार के लिए भी पत्नी का चेहरा याद नहीं आया ? तीस साल तक साथ रहे, पशु-पंछी के लिए भी जितनी माया हो जाती है, उतनी भी नहीं हुई तुझे ?'

नवकुमार ने दीप्त-कंठ से कहा, 'तुम यह कह रही हो सौदा-दी ? उसकी मुझे याद नहीं आयी ? मेरी हालत समझ रही हो ? दस के चक्र से भगवान भूत…!'

'नोबू, तू उतर जा ! बेटी दामाद अभी भी घर में हैं ! कुटुंब बिगड़े बैठे है ! बहुत-सारे काम-कर्त्तव्य पड़े है ! वहां गए बिना नहीं चलेगा। बिटिया की सोच !'

'बिटिया की ! मैं बिटिया की सोचूं ?' नवकुमार पागल-जैसा करने लगा—'स्नेहमयी जननी उसकी छाती पर मुंगरी की मार मार आयी, यह तो नहीं सोच रही हो ? वह बेचारी वहीं जो काठ होकर खड़ी रही, और मां ने उसकी तरफ ताका तक नहीं, छिटककर चली आयी ! छाती फट नहीं गयी उसकी ? उस बेचारी का कोई दोष है ?'

सत्यवती अब कुछ नहीं बोली। वह टप्पर के बांस से सिर टिकाकर आंखें बंद किए बैठी रही। सौदा ने अबकी दृढ़ होकर कहा, 'नोबू, उतरता है तू ?'

नवकुमार उतर पड़ा।

धोती के छोर से आंखें पोंछते हुए पीछे की ओर बिना ताके वह हनहनाता हुआ चला गया।

गाड़ी बढ़ती गयी।

मैदान पार करके हाटतला आ ही पहुंची करीब-करीब। यहां घोड़ागाड़ी मिलेगी। सरल उसका इंतजाम करेगा। मां से खीजकर साधन साथ नहीं आया। बाबूजी ने जितना ही गर्हित काम किया हो चाहे, मां का यह बेशर्म

रवैया उसके लिए उससे भी असह्य था।

बैलगाड़ी की मियाद पूरी हो चली है, इसीलिए आसमान की ओर से आंखें फिराने की इच्छा नहीं हो रही। सारे पश्चिम आकाश में लाल सोना निखरा...।

आकाश के उस पार क्या वास्तव में दूसरी कोई दुनिया है? वहां लोगों ने किसी की चिता जलाई है? यह उसी की लाल लपट है?

या कि आग की लपट नहीं, रंग है केवल?

वहां की किसी नवेली बहू ने डूबती धूप में अपनी लाल साड़ी पसार दी है?

सौदा ने एक निःश्वास छोड़ कर कहा, 'ब्याह हो गया, इसीलिए सारी उम्मीदें खत्म हो जाएंगी बहू? सुवर्ण को तुम सदा के लिए छोड़कर चली जाओगी? तुम भी तो ब्याह के बाद ही इतनी बड़ी हुई हो!'

सत्य ने सौदा के मुंह की तरफ ताक कर देखा। उत्तर दिए बिना नहीं रहा गया। धीरे से बोली, 'मैं जो कितनी बड़ी हुई हूं, ननद जी, उसका प्रमाण तो देख ही रही हो!'

'यह तो आदमी की विश्वासघातका है बहू! इससे विचार नहीं किया जा सकता! लेकिन सुवर्ण को गढ़ने की तो तुम्हें बड़ी आशा थी!'

सत्य ने आसमान की ओर नजर डाली। वहां क्या वह सुवर्ण का मुखड़ा ही ढूढ़ने लगी।...सुवर्ण को देख पायी? जभी वैसे अभिभूत की नाईं बोली, 'सुवर्ण यदि आदमी बनने का माल-मसाला लेकर पैदा हुई होगी ननदजी, तो वह आदमी बनेगी! अपने बल पर ही बनेगी! अपनी मा को समझेगी! नही तो अपने बाप की ही तरह सोचेगी, उसकी मां बड़ी निर्दयी है! इस चिंता को रोक सकूं, मेरे पास ऐसा उपाय नहीं है!'

'लेकिन बहू, तुम्हारे बाबूजी तो संसार त्यागकर काशीवासी हुए हैं, उनपर अशान्ति का यह बोझा चढ़ाना क्या उचित होगा तुम्हारे लिए?'

सत्य मानो अब अपने खास लहजे में लौट आयी। अपने ही ढंग से बोली, 'नही ननदजी, ऐसा अन्याय मैं करने ही क्यों लगी? बाबूजी का बोझा क्यों बनूंगी?' उसके बाद जरा हंसकर बोली, 'बहुत दिन पहले, जब सुवर्ण पैदा नहीं हुई थी, पाठशाला खोलकर पढ़ाने का खेल खेला करती थी, याद है ननदजी? अब फिर से देखूंगी, वह खेल भूल गयी हूं या याद है। एक स्त्री का रोटी-कपड़ा उससे नही चल जाएगा?'

'अपना पेट आप ही चलाएगी बहू? यही साहस लेकर घर छोड़ रही है?' सौदा ने एक उसांस ली, 'ऐसा नाता नहीं है कि तुम्हारे पैरों की धूल लूं, लेकिन लेने को जी चाहता है। लेकिन तुमने तो उस समय कहा, काशी...'

'हां, काशी जाऊंगी, बाबूजी के पास। जीवनभर बहुतेरे सवाल संजोकर रखे हैं, पहले उन सबका उत्तर पूछने जाऊंगी।'

अचानक सन्नाटा उतर आया। गाड़ी धीरे-धीरे हाटतला पहुंचकर रुक गयी। बैलगाड़ी का रास्ता समाप्त हो गया।

००